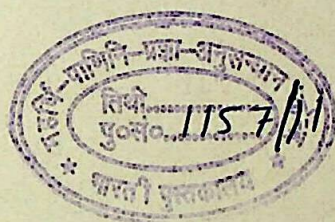


३-५

०॥दि-
ति:

112क

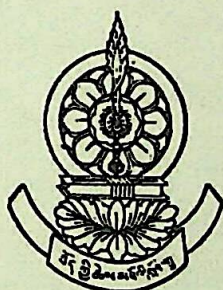


BIBLIOTHECA INDO-TIBETICA SERIES - XXVI



KĀTANTRONĀDISŪTRAVṚTTIḤ

By
ACHĀRYA DURGASIMHA



भोट विद्या संस्थानम्

Editor and Hindi Commentator

Dr. Dharma Datt Chaturvedi

Vyakaranacharya

CENTRAL INSTITUTE OF HIGHER TIBETAN STUDIES
SARNATH, VARANASI

B.E. 2536

C.E. 1992

BIBLIOTHECA INDO-TIBETICA SERIES - XXVI

Chief Editor : *Ven. Samdhong Rinpoche*

First Edition : 550 copies, 1992

Price:

Hardback: Rs.185.00

Paperback: Rs.135.00

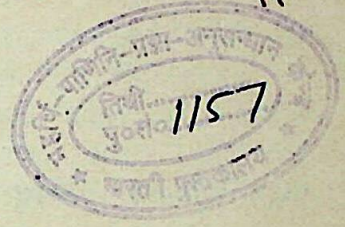
**© by Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath,
Varanasi (U.P.) India, 1992. All rights reserved.**

**Published by
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi-221007, (U.P.), India.**

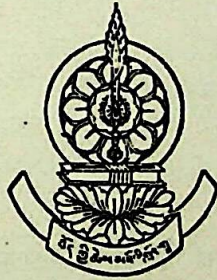
**Printed at
Khandelwal Offset Printers
B 38/3 Ka, Mahmoorganj,
Varanasi.**

भोट-भारतीय ग्रन्थमाला-२६

112



आचार्यदुर्गासिंहविरचिता
कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः



भोट विद्या संस्थानम्

सम्पादकष्टीकाकारश्च

डॉ० धर्मदत्तचतुर्वेदी

व्याकरणाचार्यः

केन्द्रीय-उच्च-तिब्बती-शिक्षा-संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५३६

ख्रीष्टाब्द १९९२

भोट-भारतीय ग्रन्थमाला-२६

प्रधान सम्पादक : भिक्षु समदोङ् रिनपोछे

प्रथम संस्करण : ५५० प्रतियाँ, १९९२ ई०

मूल्य :

सजिल्द -रु० १८५.००

अजिल्द -रु० १३५.००

© केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

प्रकाशक :

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान,
सारनाथ, वाराणसी
पिन कोड- २२१००७

मुद्रक :

खण्डेलवाल आफ्सेट प्रिन्टर्स
बी. ३८/३ क महमूरगंज,
वाराणसी ।

प्रकाशकीय

आचार्य दुर्गासिंह-कृत वृत्ति के साथ कलापव्याकरणोणादिसूत्रों का प्रकाशन कर विद्वत्समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें सन्तोष का अनुभव हो रहा है । संस्थान में कार्यरत युवा विद्वान् डॉ० धर्मदत्त चतुर्वेदी ने भोट एवं संस्कृत भाषा में उपलब्ध अनेक पाठों की सहायता से परिश्रमपूर्वक इस कार्य को सम्पन्न किया है, एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं ।

ज्ञात है कि भोट-देश प्राचीन भारतीय विद्याओं का विश्व में प्रमुख उत्तराधिकारी है । उसने न केवल उनका आज तक यथावत् संरक्षण ही किया है, अपितु उनका संवर्धन भी किया है । इनमें न केवल बौद्धदर्शन का ही, अपितु विविध आध्यात्मिक और भौतिक विद्याओं का भोटानुवाद और भोटटीका-टिप्पणियों के माध्यम से तिब्बत में प्रचार एवं प्रसार होता रहा है । इन्हीं विद्याओं में संस्कृत के चार व्याकरण भी वहाँ विधिवत् प्रचलित रहे । इनमें से कलाप या कातन्त्र व्याकरण से तिब्बत देशवासी सर्वाधिक प्रभावित रहे हैं । इस व्याकरण का तिब्बती भाषा के व्याकरण पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । इसके लगभग १२ ग्रन्थों का भोटभाषा में अनुवाद हुआ था और लगभग २२ टीकाओं की भी रचना हुई । इसी क्रम में कलाप व्याकरण के उणादि सूत्रों का तथा उन पर दुर्गासिंह कृत वृत्ति का भोटभाषानुवाद आज भी उपलब्ध हो रहा है ।

डॉ० चतुर्वेदी ने प्रकृत ग्रन्थ का विशुद्ध वैज्ञानिक सम्पादन, आंशिक पुनरुद्धार एवं हिन्दी-टीका आदि कार्य सम्पन्न किए हैं । व्याकरण के धातु, सूत्र, गण, उणादि एवं लिङ्गानुशासन इस पञ्चाङ्ग में से यह ग्रन्थ (कातन्त्र व्याकरण) के उणादि से सम्बद्ध है । प्रसिद्ध है कि प्राचीन भारतीय विद्वान् विविध विद्याओं के साथ शब्दविद्या पर भी गहन चिन्तन-मनन करते रहे हैं और शब्दों की संरचना आदि की भी उन्होंने गम्भीर मीमांसा की है, जिसे उनके ग्रन्थों में देखा जा सकता है । व्याकरण में जिन बहुत से लोकप्रसिद्ध रूढ शब्दों की सिद्धि शब्दानुशासन-भाग में नहीं की गई, उनकी सिद्धि उण्-आदि प्रत्ययों से की गई है । इन प्रत्ययों से निष्पन्न शब्द व्युत्पन्न एवं अव्युत्पन्न दोनों माने जाते हैं । प्रचलित व्याकरणों में प्रायः उणादि की रचना की गई है, जिनमें शब्दों की सिद्धि के लिए विभिन्न धातु, प्रत्यय, व्युत्पत्तियों की कल्पना की गई है ।

- ख -

डॉ० चतुर्वेदी ने मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित इस ग्रन्थ के देवनागरी-संस्करण के १२० भ्रष्ट एवं असङ्गत पाठों का तथा प्रश्न चिह्नाङ्कित पाठों का ग्रन्थ के तिब्बती अनुवाद एवं बङ्गीय-संस्करण के पाठान्तरो की सहायता से युक्तिपूर्वक समाधान प्रस्तुत किया है । इन्होंने कातन्त्र-व्याकरण के प्रायः ५० अपूर्ण सूत्रों, परिभाषाओं, न्यायवचनों आदि की सन्दर्भसहित पूर्ति भी की है तथा तिब्बती-अनुवाद के १०० से अधिक पाठान्तरो को प्रस्तुत करते हुए इस ग्रन्थ में अप्राप्त किन्तु तिब्बती-अनुवाद में प्राप्त अतिरिक्त पाठों का पुनरुद्धार भी किया है । साथ ही, बङ्गीय-संस्करण में प्राप्त १० अतिरिक्त सूत्रों को भी ग्रन्थ में स्थान दिया है । विद्वान् लेखक ने ग्रन्थ पर हिन्दी टीका भी लिखी है, जिसमें प्रत्येक औणादिक शब्द की सिद्धि, विभिन्न कोशों के आधार पर शब्दार्थ-प्रदर्शन, पाणिनीय एवं अन्य व्याकरणों के उणादिसूत्रों के तुलनात्मक पाठान्तर तथा सन्दर्भ-प्रदर्शन आदि महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किए हैं, जिससे ग्रन्थ की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ गई है । इसमें प्रायः ११७९ शब्दों की व्युत्पत्तिसहित सिद्धि की गई है, अतः प्रस्तुत ग्रन्थ 'औणादिक शब्दकोश' भी बन गया है ।

यह भी ज्ञातव्य है कि भिक्षु नम्-खा-सङ्पो विरचित कलापोणादि सूत्र के भोटानुवाद का एवं श्री दोर्जे ग्यलछन् कृत दुर्गसिंहवृत्ति के भोटानुवाद का आधुनिक विधि से वैज्ञानिक सम्पादन संस्थान में कार्यरत भिक्षु लोब्जंग नोरबू शास्त्री ने सम्पन्न किया है, जो ग्रन्थ के रूप में पृथक् प्रकाशित हो रहा है ।

इस कार्य से इस क्षेत्र में कार्यरत सभी अनुसन्धाताओं, विद्वानों एवं जिज्ञासुजनों का लाभ होगा, ऐसी हमें आशा है ।

इन दोनों विद्वानों से भविष्य में भी भोट एवं भारतीय विद्याओं से सम्बद्ध कार्यों को सम्पन्न करने की आशा है । इस दिशा में हमारी शुभ कामनाएं इनके साथ हैं ।

दिनाङ्क-नवरात्र का प्रथम दिवस
२७ सितम्बर, १९९२

भिक्षु समदोर् रिनपोछे
निदेशक

प्रास्ताविकम्

'महान् हि शब्दस्य प्रयोगविषयः' इति महाभाष्यकारोक्त्या शब्दप्रयोगानुसन्धानक्षेत्रविशालतया निखिलशब्दावबोधनं दुःशकमेव । यौगिकरूढाद्यर्थवाचकशब्देषु यौगिकशब्दास्तु शब्दानुशासनोपदेष्टृ-भिस्तत्तदाचार्यैर्यथायथं व्युत्पादिताः सुप्रयुक्ताश्च न तथा रूढशब्दा व्युत्पादिता अनुशासनभागे । शाकटायनयास्कप्रभृतिभिर्नामशब्दानां धातुजत्वमभिधाय तेषां यद् व्युत्पादनमुणादिप्रत्ययैर्विहितं तदतीवोपकारम् । ते च रूढशब्दाः पाणिनिना शब्दानुशासनेऽप्य-व्याख्याताः शाकटायनेन वा उण्-जुण्प्रभृतिभिः प्रत्ययैर्निष्पादिताः सुव्याख्याताश्चेति विवादास्पदं विषयः । शब्दानुशासनासमा-वेशादुणादिप्रत्ययसाधिताः शब्दास्तत्परिशिष्टरूपेण (खिलपाठरूपेण)-उपदिष्टास्तत्तच्छब्दानुशासनाचार्यैः । परिशिष्टान्तर्गतपठितत्वेनोणादि-प्रत्ययाः समुपेक्षिताः सन्तः विश्वविद्यालयीयपरीक्षापाठ्यक्रमेऽपि न सन्निवेशितास्तस्मादौणादिकशब्दानां प्रकृतिप्रत्ययावगमस्य दुरूहत्व-मेवोपपन्नम् । शाकटायनमते^१ सर्वेषां व्युत्पन्नाव्युत्पन्नानां शब्दानां धातुजत्वम्, परं गार्ग्यमते 'न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानाञ्चैके' (निरुक्त.अ.१, पा.४, खं.१३) इत्युक्त्या व्युत्पन्नशब्दानामेव धातुजत्वं न त्वव्युत्पन्नप्रातिपदिकानाम् । पाणिनेरपीदमेवाभिमतम् । पाणिनिना 'उणादयो बहुलम्' (अ.३/३/१) इत्येकसूत्रेणैवोणादि-प्रत्ययानां बहुलतया विधानाय नियमस्तु प्रवर्तितस्तथापि 'उण्'भिन्ना अन्ये प्रत्ययास्तत्र साक्षान्नोपदिष्टाः ।

-
1. तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च (निरुक्त.अ.१, पा.४, खं.१२) ।

महाभाष्यकारेण पतञ्जलिना नामानि आख्यातजानीति-
 निरुक्तोक्तेः सम्यग् व्याख्या 'उणादयो बहुलम्' इति सूत्रभाष्यावसरे
 तिसृभिः कारिकाभिर्विहिता । तत्र बहुलपदनिर्देशेनोणादिप्रत्ययानां
 बहुसंख्यात्वं सूच्यते । अल्पीयोभिर्धातुभिरुणादिप्रत्यया विहितास्तथैव
 प्रत्यया अपि समुच्चिताः । नाखिलाः प्रत्ययाः पठिता
 धातवश्च । प्रकृतिप्रत्यययोरखिलानि कार्याण्यप्यनिर्दिष्टानि
 सूत्रैश्चापि तानि न कृतानि । निरुक्ते सर्वेषामपि नामशब्दानां
 धातुजत्वं (यौगिकत्वम्) समभिहितं व्याकरणे च
 शाकटायनस्यापीदमेव मतम् । येषां शब्दानां प्रकृतिप्रत्यया न
 विदितास्तेषु प्रकृतिं वीक्ष्य प्रत्ययः समूह्यः प्रत्ययञ्च वीक्ष्य
 प्रकृतिरप्युद्द्येति भाष्यकाराशयः । तस्मादल्पीयांसि
 प्रोक्तान्युणादिसूत्राणि प्रकृतिप्रत्ययविभागस्य निदर्शनान्येव ।
 नागेशानुसारेण सर्वशब्देषु प्रत्ययानां विधानन्तु ब्रह्मणाऽपि न
 शक्यम्² । प्रसिद्धसंज्ञाशब्देषु पूर्व धातुः पश्चाच्च प्रत्ययो
 विधेयः । औणादिकशब्देषु क्वचित् कार्यादनुबन्ध-
 प्रकृतिप्रत्ययविवेक्ते विधेयः ।

| | | | |
|------------------------|--------------|---------|--------------------|
| उणादिशब्दा | अव्युत्पन्ना | एवेति | महाभाष्यकारेण |
| 'आयनेयीनीयियः' | (अ.६/१/२) | | इत्यादिसूत्रभाष्ये |
| 'प्रातिपदिकविज्ञानाच्च | भगवतः | पाणिनेः | सिद्धम्' । |

1. बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।
 कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥
 नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
 यन्न विशेषपदार्थसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥
 संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
 कार्याद् विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु (म.भा.३/३/१) ।
2. सर्वाभ्यः प्रकृतिभ्यः सर्वप्रत्ययानां तत्तदूपेण विधानन्तु ब्रह्मणाऽपि
 दुरुपपादमिति भावः (म.भा.प्र.उद्योत.३/३/१) ।

प्रास्ताविकम्

उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि भवन्तीति । 'आदेशप्रत्यययोः' (अ.८/३/५९) इति सूत्रभाष्येऽपि 'उणादयो ह्यव्युत्पन्नानि प्रातिपादकानि भवन्ति' इति प्रत्यपादि। यथा 'सर्पिषा,' 'यजुषा' इत्यादौ अप्रत्ययत्वात् षत्वाभावमाशङ्क्य बहुलग्रहणात् प्रत्ययसंज्ञामवलम्ब्य षत्वं साधितं व्युत्पत्तिपक्षश्च निराकृतः ।

'न सर्वे औणादिकाः संज्ञाशब्दाः' एतन्मतं स्वामिदयानन्देन 'धृषेर्धिष च संज्ञायाम्' (दया.उ.को.२/८३) इति सूत्रस्य व्याख्यायाम् एवं सूच्यते—'सूत्रेऽस्मिन् संज्ञाग्रहणेन ज्ञायते उणादयः सामान्यार्थे यौगिका भवन्तीति । संज्ञायास्तस्मिन्नर्थे रूढत्वात् । यदि च प्रकृतिप्रत्ययविभागेन उणादिभ्यो यौगिकोऽर्थो न निस्सरेत्' तर्हि सर्व उणादिस्थाः शब्दाः संज्ञावाचका एव स्युः । पुनः संज्ञाग्रहणमनर्थकं स्यात् ।

उणादिविषये श्वेतवनवासिनो विचारा ध्येयाः—

उणादिप्रत्ययान्ताः संज्ञाशब्दाः, तेन तेषामत्र स्वरूपसंवेदन-स्वरवर्णानुपूर्वीमात्रफलमन्वाख्यानम् । (श्वेत.उ.वृ.१-१) ।

उणादीनां संज्ञाशब्दत्वाद् बहुधा व्युत्पादनमिति केचित् । संज्ञाशब्देषु हि व्युत्पत्तेरनियमः, अर्थानुगमाभावात् । तथा च इन्द्रियशब्दोऽप्यनियमेन निरुक्तो भगवता पाणिनिना 'इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गम्' इत्यादिसूत्रेण । अन्ये तु प्रपञ्चार्थं पुनर्व्युत्पादनमित्याहुः । अपरे तत्र 'धान्ये नित्' इत्यनुवर्तयन्ति । (श्वेत.उ.वृ.१-६९) ।

औणादिकशब्दानामर्थनिर्देशोऽपि स्पष्टार्थः । इतरथा रूढित्वादुणादीनां लोकत एवार्थनिश्चयो भवतीति न कर्तव्यः स्यात् । (श्वेत.उ.वृ.१-७३)

पक्षिग्रहणमनर्थकम्, सूर्येऽपि दर्शनात् । अपि च उणादिष्वर्थनिर्देशस्य अतीव प्रयोजनं नास्तीत्युक्तम्, रूढित्वेन एवार्थनिश्चयात् । (श्वेत.उ.वृ.१-१११) । उणादिषु अर्थनिर्देशस्य प्रयोजनं प्रायिकमेव (श्वेत.उ.वृ.१-१३९) । रूढिशब्दानां व्युत्पत्तेरनियमात् (श्वेत.वृ.२-१८) । रूढिशब्दानामपि सत्येवावयवार्थे व्युत्पत्तेरन्याय्यत्वात् । यत्र तु सर्वात्मनार्थानुगमो नास्ति तैलपायिकादौ तत्रैवासदर्थश्रयणम् । (श्वेत.उ.वृ.४-१३) । कृत्स्नं निरवशेषं रूढित्वात् । सर्वार्थानुगमो नास्ति । संज्ञाशब्देषु धातोरर्थान्तरवृत्तित्वमस्ति (श्वेत.उ.वृ.१-२६) ।

कातन्त्रसम्प्रदाये केचिदाचार्या गार्ग्यमतमनुसरन्ति, केचिच्च शाकटायनस्य व्युत्पत्तिपक्षमपि । उक्तं हि त्रिलोचनदासेन 'औणादिका हि द्विविधा व्युत्पन्ना अव्युत्पन्नाश्च' (कात.वृ.पञ्जी.३/४/२) 'वृक्षादिवदमी रूढाः कृतिना न कृताः कृतः' इति दुर्गीसिंहवचनेन कातन्त्रसूत्रोपदेष्टृशर्ववर्माचार्यः अव्युत्पत्तिपक्षमेव मनुते । दुर्गीसिंहस्तु व्युत्पत्तिपक्षमाश्रयते । तस्मादुक्तम्-

शब्दानामानन्त्याद् व्युत्पत्तिर्दृश्यते येषाम् ।
तेषां विज्ञैः कार्या मृग्या धातोस्ततः प्रत्ययान्तात् ॥
(अस्यैव ग्रन्थस्यान्ते)

दुर्गीसिंहेन 'उणादयो भूतेऽपि' (कात.४/४/६७) इति सूत्रस्य वृत्तावपि सूचितम्-प्रकृतिप्रत्ययावगमो व्युत्पत्तावपि रूढित्वेन एव ।

कातन्त्रे 'उणादयो बहुलम्' इति बहुलपदघटितं सूत्रं न लभ्यते, तथापि 'उणादयो भूतेऽपि' इत्यतः उणादयो भूते भविष्यति च निर्दिष्टाः । उणादिवृत्तावपि दुर्गीसिंहेन 'उणादीनां बाहुल्यात्' इत्यनेकशः प्रोक्तम् ।

शब्दानुशासनेऽनिर्दिष्टानां रूढार्थवाचकशब्दानां धातुप्रत्यय-
निदर्शनायैवोणादिसूत्राणि विरचितानि । उणादिनिष्पन्नानि
प्रातिपदिकानि व्युत्पन्नाऽव्युत्पन्नानि भवन्ति । वस्तुतस्तु
लक्ष्यानुरोधेनैव तान्यवबोद्धव्यानि । कैश्चिदुणादिसूत्रव्याख्यातृभिः
रूढोऽर्थः कृतस्तर्हि कैश्चिच्च रूढार्थेन सह यौगिकोऽर्थो
योगरूढश्चार्थोऽपि निष्पादितः । एवं शब्दानुशासनेऽसमावेशितानां
प्रसिद्धानां महत्त्वपूर्णरूढार्थवाचिशब्दानां व्युत्पत्त्यवबोधाय उणादि-
सूत्राध्ययनमपरिहार्यमेव ।

पाणिनीयसम्प्रदाये तदितरसम्प्रदायेषु चोणादिसूत्राणि खिल-
रूपेणोपदिष्टानि । भोजीयव्याकरणे तु शब्दानुशासनान्तर्गतान्ये-
वोणादिसूत्राणि दृश्यन्ते । पाणिनीयसम्प्रदाये कस्तावदुणादि-
सूत्रकारः ? इति विषये तु नागेशभट्ट-श्वेतवनवासिप्रभृतिभिरुणादि-
सूत्राणां कर्तृत्वं शाकटायनस्यैव सूचितम्, तथापि नारायणभट्ट-
दयानन्दस्वामिप्रभृतिभिः पाणिनेरपि तत्कर्तृत्वं सूचितमतो
विवादगर्भङ्गतमुणादिसूत्राणां कर्तृत्वम् । युधिष्ठिरमीमांसकेन तु
पञ्चपाद्युणादिसूत्राणि आपिशलिना प्रोक्तानि दशपाद्युणादिसूत्राणि च
पाणिनिना प्रोक्तानीति सम्भावितम् । विषयेऽस्मिन् मतमतान्तराणि
'व्या. शा. इति.' (भाग-२) इति ग्रन्थे विलोकयितुं शक्यन्ते ।

तत्रोणादिसूत्राणां द्विविधं वर्गीकरणम्-पञ्चपाद्युणादिसूत्राणि
दशपाद्युणादिसूत्राणि च ।

पञ्चपाद्युणादिसूत्राणि- पञ्चसु पादेषु विभक्तानि
ऊनषष्ट्युत्तरसप्तशतम् (७५९) उणादिसूत्राणि उज्ज्वलदत्त-
श्वेतवनवासि-नारायणभट्ट-दयानन्द-पेरुसूरि-रामभद्रदीक्षित- शिवराम-
त्रिपाठि- भट्टोजिदीक्षितप्रभृतिभिरनेकैर्व्याख्यातानि । एतासूणादिवृत्तिषु

1. कृवापा इत्युणादिसूत्राणि शाकटायनस्यैव (म.भा.उद्योत.३/३/१)

पाठभेदस्य बाहुल्यम् । उज्ज्वलदत्त-श्वेतवनवासिनोरुणादिवृत्ती तु पुनः सम्पादनार्हतां भजतः । शिवरामत्रिपाठिना विरचितो लक्ष्मी-निवासाभिधान उणादिकोशः पं० रामअवध पाण्डेयेन सुसम्पाद्य प्राकाश्यमुपनीतः । पञ्चपाद्युणादिवृत्तीनां परिचयो हिन्दीभूमिकायां द्रष्टव्यः ।

दशपाद्युणादिसूत्राणि- अत्र च पादसंख्याऽऽधिक्येऽपि न सूत्रसंख्याऽऽधिक्यम् पञ्चपाद्युणादिसूत्रेभ्यः । दशपाद्युणादिवृत्तिरेका युधिष्ठिरमीमांसकेन सुसम्पाद्य राजकीयसंस्कृतकालेजतः १९४३ तमे ई० वर्षे प्राकाश्यमुपनीता । तेन च स्वपाश्वस्थाऽन्या-ऽप्येकाऽज्ञातकर्तृका दशपाद्युणादिवृत्तिः सङ्केतिता । रामचन्द्र-कृतप्रक्रियाकौमुद्या विट्ठलाचार्यविरचितप्रसादटीकान्तर्गता तृतीया दशपाद्युणादिवृत्तिः प्रकाशिताऽवलोक्यते । अस्या विस्तृतपरिचयाय युधिष्ठिरमीमांसक-सम्पादिताया दशपाद्युणादिवृत्तेर्भूमिका द्रष्टव्या ।

पञ्चपाद्युणादीतराणि सूत्राणि- न केवलं पाणिनीयसम्प्रदाये, अपि तु कातन्त्र-चान्द्र-भोजीय-हैम-सारस्वत-संक्षिप्तसार-सौपद्यादि-व्याकरणसम्प्रदायेष्वप्युणादिसूत्राणि लभ्यन्ते । कातन्त्र-मतिरिच्यान्येषां परिचयो हिन्दीभूमिकायामवलोकयितुं शक्यते ।

कातन्त्रोणादिसूत्राणि- कतिगोत्रोत्पन्नेन वररुचिना कातन्त्र-व्याकरणस्य कृत्प्रकरणं व्यरच्यतेति ज्ञायते 'वृक्षादिवदमी रूढाः' इत्यादिदुर्गसिंहोक्तकारिकया । उणादिसूत्राणां कृदन्तर्गतत्वेन वररुचिप्रणीतान्येवोणादिसूत्राणीति मन्तुं शक्यम् । परञ्चेदमप्युच्यते यथा पाणिनिनोणादिसूत्राणि न कृतानि पश्चाच्च केनचिद् योजितानि तथैव कातन्त्रव्याकरणेऽपि 'दुर्गसिंह' आचार्येण कातन्त्रोणादिसूत्राणि विरचय्य पश्चाद् योजितानि । कातन्त्रोणादिसूत्राणां दुर्गसिंहकर्तृत्वं संशयव्यते तत्र मङ्गलाचरणे-

'उणादयोऽभिधास्यन्ते बालव्युत्पत्तिहेतवे' ।

तथाहि गुरुपदहालदारमहोदयः— 'न हि उणादिसूत्राणि शर्ववर्मप्रणीतानि, अपि तु दुर्गसिंहप्रणीतान्येव । ग्रन्थान्ते सोऽनुपदिष्टपदानां व्युत्पादनं प्रेरयति—

तेषां विज्ञैः कार्य्या मृग्या धातोस्ततः प्रत्ययान्तात्

(अस्यैव ग्रन्थस्यान्ते)

इत्थं दुर्गसिंहकर्तृत्वमुपलभ्यते कातन्त्रोणादिसूत्राणाम् ।

संवृत्तिककातन्त्रोणादिसूत्राणां संस्करणत्रयं समुपलभ्यते—

१. देवनागरीयसंस्करणम् (मद्रासतः प्रकाशितम्)
२. बङ्गसंस्करणम्
३. तिब्बतीय—(अनुवाद) संस्करणम् ।

१. देवनागरीयसंस्करणम् (मद्राससंस्करणं वा)

कातन्त्रोणादिसूत्राणि मद्रासविश्वविद्यालयतः डॉ० टी०आर० चिन्तामणिमहोदयेन कन्नडलिपितः देवनागर्या रूपान्तरितानि तानि च नवनवत्युत्तरशतत्रयं (३९९) सूत्राणि षट्पादात्मकानि दुर्गसिंहकृत— वृत्तियुतानि १९३४ ई० वर्षे प्रकाशितानि । संस्करणेऽस्मिन् अनेके भ्रष्टा असङ्गता अनुपयुक्ताश्च पाठाः सन्ति, तेषां समाधानपूर्वकं सम्पादनमत्र कृतमस्ति । तच्च 'कृतकार्यविवरणम्' इति शीर्षके समवलोकनीयम् ।

२. बङ्गसंस्करणम्— बङ्गलिप्यां निवेदितामार्गकलिकातातः

दुर्गसिंहवृत्तियुतानि कलापोणादिसूत्राणि कलापव्याकरणस्य कृतप्रकरणान्तर्गतानि श्रीमद्गुरुनाथविद्यानिधिभट्टाचार्येण सम्पाद्य १८५५ शकाब्दे प्रकाशितानि । अत्र पञ्चपादाः २६३ सूत्राणि च सन्ति । संस्करणेऽस्मिन् देवनागरीयसंस्करणापेक्षया सूत्रपादसङ्ख्यायां दुर्गवृत्तिपाठे च महदन्तरं विलोक्यते, परञ्च

तिब्बतीभाषायामनूदितकलापोणादेस्तु पर्याप्तं साम्यं दृश्यते ।
 तिब्बतीयसंस्करणे २६७ मितानि सूत्राणि सन्ति, प्रायेण तथैव
 बङ्गसंस्करणेऽस्मिन् पञ्चपादेषु २६३ मितानि सूत्राणि निबद्धानि
 सन्ति । देवनागरीयसंस्करणे बङ्गसंस्करणे च प्रकाशितदुर्गवृत्तेः
 पाठेषु महदन्तरम् । देवनागरीयसंस्करणचतुर्थपादस्य द्वाविंश-
 सूत्रपर्यन्तं बङ्गसंस्करणे चतुर्थः पादः समाप्तिमेति तथा च
 त्रयोविंशसूत्रात् (२३) षट्षष्टितमं (६६) यावत् बङ्गसंस्करणे
 पञ्चमः पादः समाप्तिमेति । देवनागरीयसंस्करणे
 चतुर्थपादस्यान्तिमानि सूत्राण्यपि कलापोणादौ (बङ्गसंस्करणे) न
 सन्ति । देवनागरीय- (मद्रास) संस्करणस्य पञ्चमषष्ठपादौ तु
 सर्वथा परित्यक्तावेव बङ्गसंस्करणे । इत्थं देवनागरीयसंस्करणाद्
 बङ्गसंस्करणे द्वात्रिंशदुत्तरैकशतं (१३२) सूत्राणि न्यूनानि सन्ति ।
 सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयीयसरस्वतीभवनस्थे हस्तलेखे तु
 चत्वारः पादास्त्रिपञ्चाशदुत्तरशतद्वयमेव सूत्राणि च सन्ति ।

१. तिब्बतीयसंस्करणम्- कलापोणादिसूत्राणि

(ग्र.सं.४४२५, पत्र-सं.-31b⁴-34b¹)

अनुवादकः-

भिक्षुः आकाशभद्रः (नम् खा-सङ्पो)

स्थलम्-

श्रीविहारः

तिब्बतीभाषायां कातन्त्रव्याकरणस्य शब्दानुशासनात्मको भागः
 समनूदितस्तथोणादिसूत्राण्यपि अनूदितानि । मद्रासतः प्रकाशिते
 देवनागरीयसंस्करणे षट्पादेषु ३९९ मितानि सूत्राणि निबद्धानि परं
 च तिब्बतीभाषायां भिक्षुणा आकाशभद्रेण (नम् खा-सङ्पो)
 चतुर्षु पादेषु २६७ मितान्येव सूत्राण्यनूदितानि । अत्र
 सूत्रक्रमेऽप्यन्तरमेव । एतावन्त्येवोणादिसूत्राणि बङ्गसंस्करणेऽपि
 लभ्यन्ते । तिब्बतीयसंस्करणे देवनागरीयसंस्करणाद् यान्यधिकानि
 नवीनानि सूत्राणि पठितानि तानि तथैव बङ्गसंस्करणेऽपि

पठितानि । देवनागरीयसंस्करणापेक्षया तिब्बतीयसंस्करणे १३२ सूत्राणि न्यूनानि सन्ति ।

संस्करणेऽस्मिन् वर्णगतदोषाणां भ्रष्टानां पाठानां च संशोधनं कृतमस्ति । देवनागरीयसंस्करणादधिकानां सूत्राणां रूपान्तरणं तिब्बतीभाषातः संस्कृतभाषायामकारि । देवनागराक्षरेषु पञ्चमषष्ठपादयोः १३२ सूत्राणां यो ह्यनुवादस्ति तिब्बतीभाषायामविहितः सोऽनुवादोऽपि तिब्बतीभाषायां साम्प्रतमनुष्ठितः । इत्थमपूर्णं तिब्बतीयसंस्करणं पूर्णत्वमवाप्नोत् । तच्च संस्थानतः प्रकाशयमानं वरीवर्ति ।

२. तिब्बतीयसंस्करणम्— कलापोणादिवृत्तिः

(ग्र.सं.४४२६, पत्र सं-३४b¹-67b⁵)

अनुवादकः—

वज्रध्वजः (दोर्जे ग्यलछन्)

भारतीयपण्डितः—

श्रीमणिकः

तिब्बतीभाषायां कातन्त्रोणादिसूत्रानुवादो भिक्षुणा आकाशभद्रेण दुर्गसिंहकृतोणादिवृत्त्यनुवादस्तु वज्रध्वजेन (दोर्जे ग्यलछन्) भारतीयपण्डितश्रीमणिकस्य सहयोगेन व्यधायि । भोटानुवादसूचीपत्रे पुण्यभद्रस्यापि (पल्देन सोनम् सङ्पो) नाम निर्दिष्टं तदनुरोधेन च वक्तुं शक्यं यत् पुण्यभद्रस्य कृपां लब्ध्वैव वज्रध्वजो भारतीयपण्डितश्रीमणिकेन साकमनुवादमकार्षीत् । तिब्बती-भाषायामाकाशभद्रेण यानि २६७ सूत्राणि चतुर्षु पादेषु समनूदितानि, तेष्वेव २६७ सूत्रेषु वज्रध्वजेन चतुर्षु पादेषु दुर्गसिंहीयवृत्तेस्तिब्बतीभाषायामनुवादोऽपि व्यधायि ।

तिब्बतीयसंस्करणस्य

वैशिष्ट्यम्—

मद्रासतः प्रकाशितायां दुर्गसिंहविरचितोणादिवृत्तौ पूर्वं सूत्रार्थस्ततश्चोदाहरणानां प्रकृतिभूत-धातूनां निर्देशस्ततः शब्दव्युत्पत्तिस्तदनु चोदाहरणमर्थनिर्देशश्च

दृश्यते । तिब्बतीयेऽनुवादे त्वस्मिन् क्रमे व्यतिक्रमो विलोक्यते । तत्र च पूर्वम् उदाहरणानां धातुनिर्देशः, सूत्रार्थः शब्दसिद्ध्युपयोगिसूत्राणि, उदाहरणानि, अर्थाश्चोपन्यस्ताः । इत्थं दुर्गसिंहवृत्तेर्देवनागराक्षरेषु यो ह्यनुवादो लभ्यते तस्मात् तिब्बतीयानुवादे प्रभूतपाठ- भेदैरतिरिक्तपाठसत्त्वेन चानुमीयते यत्तत्र भिन्नमेव किञ्चित् संस्करणमुपयुक्तम् । तस्मादेव तिब्बतीयेऽनुवादे वज्रध्वजेनोक्तं- कलापोणादेर्वृत्तिद्वयी प्राप्ता तत्रैकाऽत्रानुद्यते । प्रतीयते, चतुर्थपादपर्यन्तं २६७ सूत्राणां यत् संस्करणं तस्यैव तिब्बतीभाषायामनुवादो विहितस्तथा षष्ठपादपर्यन्तं ३९९ सूत्राणां यत् पृथक् संस्करणं तच्च कन्नडलिपितः देवनागराक्षरेषु रूपान्तरणं विधाय मद्रासतः डॉ० टी० आर० चिन्तामणिना प्रकाशितम् ।

तिब्बतीयेऽनुवादे देवनागरीयसंस्करणापेक्षया सूत्रपादादिषु वृत्तिपाठेषु यथाऽन्तरं दृश्यते, न तथा बङ्गसंस्करणापेक्षया । बङ्गसंस्करणे २६३ मितानि सूत्राणि पञ्चपादेषु लभ्यन्ते, प्रायेण तथैव तिब्बतीयसंस्करणेऽपि २६७ मितानि सूत्राणि प्राप्यन्ते । एवमुभयत्र सूत्राणां प्रायः साम्यमेव परञ्च बङ्गसंस्करणे तु तदपेक्षयैकस्य पादस्य चाधिक्यम् । यथा मङ्गलाचरण-पद्यस्य तिब्बतीयेऽनुवादे महत्त्वपूर्णा पृष्ठद्वयात्मिका व्याख्या समुपलभ्यते या च मद्राससंस्करणेऽनिर्दिष्टा तस्याः संस्कृते पुनरुद्धारोऽक्रियत । एवमेवातिरिक्तानां पाठानां तिब्बतीतः संस्कृते पुनरुद्धारः कृतः । तिब्बतीयसंस्करणे देवनागरीयसंस्करणात् त्रीणि सूत्राणि नूतनानि लब्धानि । तिब्बतीयेऽनुवादे ये भ्रष्टा अपूर्णाश्च पाठास्ते संशोधिताः । तिब्बतीयानुवादतो ग्रन्थस्यास्य हिन्दी-टीकान्तर्गतशब्दसिद्धौ साहाय्यमपि लब्धम् । यतस्तत्रानेकानि शब्दसिद्ध्युपयोगीनि कातन्त्रव्याकरणस्य सूत्राण्युद्धृतानि यानि च मद्राससंस्करणेऽनुपलब्धान्येव ।

तिब्बतीयेऽनुवादेऽनुपलब्धयोः पञ्चमषष्ठपादयोः १३५ सूत्राणां
संवृत्तिको भोटानुवादः

तिब्बतीयेऽनुवादे चतुर्षु पादेषु २६७ मितान्येव संवृत्तिकानि
सूत्राण्यनूदितानि । मद्रासतः देवनागरीयसंस्करणे तु षट्पादेषु ३९९
सूत्राणि प्रकाशितानि । अतस्तिब्बतीयानुवादस्येवामपूर्णतां विलोक्य
देवनागरीयसंस्करणमाधारीकृत्य तिब्बतीभाषायां पञ्चमषष्ठ- पादयोः
१३५ सूत्राणां संवृत्तिकोऽनुवादो मया श्री एल० एन० शास्त्रिणा
साकं समनुष्ठितः । तिब्बतीयेऽनुवादः संस्थानतः पृथक्
प्रकाश्यते ।

डॉ० टी०आर० चिन्तामणि-सम्पादितकातन्त्रोणादिसूत्राणां कथं
पुनः सम्पादनम् ?

डॉ० टी०आर० चिन्तामणिना १९३४ ई० वर्षे
दुर्गसिंहवृत्तियुतानि कातन्त्रोणादिसूत्राणि कन्नडलिपितः देवनागराक्षरेषु
विधाय मद्रासविश्वविद्यालयतः प्रकाशितानि । अत्र प्रायः समुचिताः
शुद्धाः पाठाः केचित् सम्पादिताः पाठा बृहत्कोष्ठके []
स्थापितास्तथापि सम्पादकेन तत्रानेके प्रश्नचिह्नाङ्किताः (?) पाठाः
केचिच्चापूर्णाः पाठाः सन्दिग्धा भ्रष्टा वा पाठा अपूर्णानि
समुद्धृतानि कातन्त्रव्याकरणीयसूत्राणि न्यायवचनानि च दृष्टिपथं
समागतानि । अस्यैव ग्रन्थस्य तिब्बतीसंस्करणं संस्थानीयग्रन्थालये
समवलोकितं तथा च कलिकातातः प्रकाशितं बङ्गसंस्करणमपि ।

एतदुभयोः संस्करणयोर्देवनागरीयसंस्करणात् पाठभेदेन
पाठाधिक्येन च सूत्रपादसंख्ययोरन्तरावलोकनेन तिब्बती-
बङ्गसंस्करणयोः पाठसमीक्षया सह सम्पादनं हिन्दीटीकां च विधातुं

1. 'कातन्त्रोणादिसूत्राणि' इति ग्रन्थे भ्रष्टपाठानां बहुलतया मूलावबोधे
आयासः अपेक्षितः (कात.व्या.वि.- डॉ० जानकीप्रसादद्विवेदः) ।

योजना व्यधायि । तिब्बतीयानुवादस्य पाठभेदानां सङ्कलनं
संस्थानस्य सम्पादकेन श्री-एल०एन०शास्त्रिणा कारितं
बङ्गसंस्करणस्य च पाठभेदानां सङ्कलनं डॉ० जानकीप्रसादद्विवेद-
महोदयेनाकारि ।

कृतकार्यविवरणम्- प्रस्तूयमानोऽयं ग्रन्थो मद्रासतः प्रकाशितं
डॉ० टी० आर० चिन्तामणि- (१९३४) सम्पादितं देवनागरी-
संस्करणमाश्रितः । सूचितमेवेदं यत्नेन कन्नडलिपितः देवनागर्या
रूपान्तरणं विहितम् । मया चायं ग्रन्थः तिब्बतीयानुवादे-
बङ्गसंस्करणे च प्राप्तान् पाठानाधारीकृत्य सम्पादितस्तत्र कृतकार्यं
निम्नबिन्दुभिरुल्लिख्यते-

१. क्वचित् सूत्रपाठासङ्गतिं निराकृत्य संशोधितोऽशो लघुकोष्ठके
() संस्थापितस्तत्समाधानं च पादटिप्पण्यां विहितम् ।
बृहत्कोष्ठके [] पूर्वसम्पादकस्य पाठोऽवगन्तव्यः ।
२. क्वचिदसङ्गतसूत्रपाठस्थाने संशोधितः पाठ एव
प्रतिष्ठापितः । असङ्गतश्च (म.सं.) पादटिप्पण्यां दर्शितः ।
३. कल्पितानां संशोधितपाठानां पुष्टिर्विभिन्नोणादिग्रन्थसन्दर्भैः
कृता ।
४. मद्रासतः प्रकाशिते देवनागरीयसंस्करणे समुद्धृतान्य-
पूर्णानि कातन्त्रव्याकरणसूत्राणि न्यायवचनानि च ससन्दर्भं
पुरितानि ।
५. देवनागरीयसंस्करणे अशुद्धपाठानां समीक्षणावसरे बङ्ग-
संस्करण(बं.सं.)- तिब्बतीयानुवादयोः (ति.अनु.) शुद्धाः
प्रामाणिकाः पाठाः पादटिप्पण्यां प्रदत्ताः ।

६. दुर्गसिंहीयोणादिवृत्तौ भ्रष्टपाठानामसङ्गतपाठानाञ्च समाधानाय शुद्धपाठस्य प्रामाणिकतायै पाणिनीयोणादिसूत्राणाम् 'उज्ज्वलदत्त-
श्वेतवनवासि- भट्टोजिदीक्षित- दयानन्दप्रभृतीनामुणादिवृत्तिभ्यः
दशपाद्युणादिवृत्तेर्भोजकृत- 'सरस्वतीकण्ठाभरण' इति ग्रन्थाच्च
उद्धरणान्यपि यथास्थानं निर्दिष्टानि ।
७. कातन्त्रोणादितः तिब्बतीयानुवाद- बङ्गसंस्करणयोर्यानि
पाठान्तराणि तानि तत्रैवोपन्यस्तानि ।
८. वृत्तौ धातूनां गणपाठानुसारं क्रियापदानामनिर्दिष्टत्वाद्
क्रियापदानि संशोधितानि ।
९. पञ्चमपादस्य प्रारम्भे मङ्गलाचरणत्वेन निर्दिष्टं पद्यं
पूर्वसम्पादकेन अपूर्णतयोद्धृतम् । अपूर्णतासङ्केताय..... एवं
बिन्दवस्तत्र निर्दिष्टाः । अतस्तत्पद्यस्य पूर्णताऽपि तत्र
विहिता ।
१०. ग्रन्थान्ते सम्पादकेन वृत्तिकारपद्यस्य चतुर्थपादे 'मान्येर्धातोः
ततः प्रत्ययान्ताम्' (?) इत्थं प्रश्नाङ्कितोऽशुद्धः पाठः
प्रदर्शितः । अस्य संशोधनं तत्र 'मृग्या धातोस्ततः
प्रत्ययान्तात्' एवं कृतम् ।
११. देवनागरीयसंस्करणे दुर्गसिंहीयोणादिवृत्तौ 'एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः'
'एवमादयो द्रष्टव्याः' इत्यादिस्थलेषु तत्प्रत्ययसाधितानि
अन्यान्युदाहरणानि पञ्चपाद्युणादिवृत्तिभ्यस्तत्रैव हिन्दीटीकायां
प्रदर्शितानि ।
१२. तिब्बतीयेऽनुवादे देवनागरीयसंस्करणाद् येऽधिकाः पाठाः
समुपलभ्यन्ते (यथा-मङ्गलाचरणपद्यस्य पृष्ठद्वयात्मिका व्याख्या)
तेषां संस्कृते पुनरुद्धारो व्यधायि । बङ्गसंस्करणे च यानि

देवनागरीसंस्करणादधिकानि दश सूत्राणि लब्धानि तानि
बङ्गलिपितः संस्कृते विधाय यथास्थलमुपन्यस्तानि ।

१३. दुर्गवृत्तौ समुद्धृतानां कातन्त्रव्याकरणीयसंज्ञानां
पारिभाषिकशब्दानां वचनानाञ्च ससन्दर्भं पूर्णं सूत्र-
निर्देशपूर्वकं विवरणं कातन्त्रव्याकरणानुसारेण हिन्दी-
टीकायामक्रियत । यथा- 'कोऽनुबन्धः यण्वद्भावार्थः,
जकार इज्वद्भावार्थः कारितसंज्ञा । डोऽनुबन्धः
अन्त्यस्वरादिलोपार्थः । कपिलिकादिदर्शनाल्लत्वम् ।
सन्ध्यक्षरान्तानामाकारः । इदनुबन्धत्वान्नागमः' एवमन्येषामपि
कातन्त्रव्याकरणीयविधीनां हिन्दीटीकायां स्पष्टतया ससन्दर्भं
विवरणं प्रादायि ।

१४. पूर्वसम्पादकेन डॉ० टी० आर० चिन्तामणिना देवनागराक्षरेषु
यत्संस्कृतरूपान्तरणमनुष्ठितं तत्र क्वचित् सन्धियुताः पाठाः
क्वचिच्च सन्धिविरहिताः पाठाः सन्ति । मया तथैव ते
स्थापिताः ।

हिन्दी-टीका व्याकरणस्य विभिन्नसम्प्रदायेषूणादिसूत्राणि
विरचितानि परं तेषु काचित् समृद्धा औणादिकशब्दसाधिका
हिन्दीटीका दृष्टिपथं न समागता । कातन्त्रोणादि-
सूत्राणामप्यद्यावधि केनचिदपि हिन्दीटीका नानुष्ठिता । तस्मादेव
प्रकृतिप्रत्ययविवेचनपूर्विकौणादिकशब्दसाधिकाऽनेकार्थप्रदर्शिका ससूत्रार्था
हिन्दीटीका मया प्रणीता । उणादिसूत्राणामध्ययनाय
तदुदाहरणव्युत्पत्तिबोधाय च हिन्दीटीका नितरामपेक्ष्यते स्म ।
हिन्दीटीकायां समनुष्ठितं कार्यं क्रमेणात्र प्रस्तूयते-

१. प्रतिसूत्रमर्थः ।

२. प्रत्येकमौणादिकशब्दस्य कातन्त्रव्याकरणानुसारेण साधनिका ।

३. सर्वेष्वौणादिकशब्देषु धातूनां गणनिर्देशः (कारुः-डु कृञ् करणे-त०७) ।
४. प्रकृतिप्रत्यययोः स्पष्टनिर्देशः (कृ+उण्) ।
५. सर्वेषां व्युत्पत्तिनिर्देशः (न नन्दति भ्रातृजायाम्, ननान्दा) ।
६. साधनिकाऽन्ते एकस्यैवौणादिकशब्दस्यानेकार्थानां प्रदर्शनाय मेदिनीकोश-वैजयन्तीकोश-दयानन्दोणादिकोश-वैयाकरण-सिद्धान्तकौमुदी-विश्वप्रकाश-अनेकार्थसङ्ग्रह-अमरकोश-दश-पाद्युणादिवृत्ति-सरस्वतीकण्ठाभरण-उज्ज्वलदत्तोणादिवृत्ति-श्वेत-वनवासिकृतवृत्तिप्रभृतिभ्योऽन्येभ्यश्च ग्रन्थेभ्यः ससन्दर्भमुद्धरणानि यथालब्धं प्रदत्तानि ।
७. कातन्त्रोणादितः पाणिनीयोणादिवृत्तिषु चेत् कस्यचिच्छब्दस्य सिद्धिः भिन्नेन प्रत्ययेन भिन्नेन च धातुना कृताऽस्ति तर्हि तत्स्थल एव तत्रत्यास्तुलनात्मकसन्दर्भा अपि प्रदत्ताः ।
८. हिन्दीटीकायां प्रायः ११७९ संख्याकाः शब्दाः साधिता विवेचिताश्च ।

धातुभ्यो विहितैः कु-काल-अनिभिर्धुग्-उण्-कि-कीकादिभिः
शब्दाश्चेति धृषुः कुलालतरणी शीधुश्च कारुर्मुनिः ।
भाषायां विविधा मया नियमत औणादिकाः साधिताः
शब्दान्वेषणतत्परैश्च विबुधैः शब्दामृतं पीयताम् ॥

विद्वद्वशंवदः

स्थानम् सारनाथ-वाराणसी
दिनाङ्कः २१-८-१९९२

डॉ० धर्मदत्तचतुर्वेदी
व्याकरणाचार्यः

भूमिका

व्याकरण की महत्ता- संस्कृत एक प्राचीनतम, विशाल शब्द-भण्डार वाली एवं विश्वव्यापिनी समृद्ध भाषा है । इस भाषा में वेद, वेदाङ्ग, अठारह पुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद, षड् दर्शन, जैन-बौद्ध दर्शन, वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, साहित्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्प, योग, साधना-तन्त्रशास्त्र-ऐन्द्र-काशकृत्स्न-पाणिनीय-कातन्त्र-चान्द्र-सारस्वत-भोजीय-हैम आदि व्याकरण तथा कोशशास्त्र आदि निबद्ध हैं । इस संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण का प्रमुख स्थान है, क्योंकि व्याकरण को इन सभी का उपकारक माना जाता है । व्याकरण के द्वारा प्रकृत्यर्थ एवं प्रत्ययार्थ का सही ज्ञान करके ही तत्त्वावबोध किया जा सकता है, यतः अर्थप्रवृत्ति शब्दों में ही निबद्ध रहती है । भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' नामक ग्रन्थ में व्याकरण के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है- व्याकरणशास्त्र मुक्ति चाहने वालों के लिए एक सीधा राजमार्ग (सड़क) है¹ तथा यह वाणी के अपशब्द रूपी मल की चिकित्सा है । व्याकरण वेदों का भी उपकारक अङ्ग है तथा दृष्ट-अदृष्ट दोनों फलों को देने के कारण इसका अध्ययन एक उत्तम तप भी है । शब्द नाम की जो पुण्यतम ज्योति है, उसके ज्ञानार्थ व्याकरणशास्त्र ही एक सरल मार्ग है । इससे स्पष्ट है कि व्याकरणशास्त्र के अध्ययन के विना वाणी में साधुत्व असम्भावित है तथा इसके विना अन्य विषयों का ज्ञान प्रामाणिक नहीं हो सकता ।

व्याकरण की उत्पत्ति का आदि स्रोत वेदों में ही मिलता है । तभी तो वेदों की रक्षा के लिए व्याकरणाध्ययन

1. इयं सा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः । (वा०प० ब्र.का.१८)

को अपरिहार्य कहा गया है । 'महाभाष्य' में पतञ्जलि के द्वारा व्याकरणाध्ययन के पाँच सामान्य प्रयोजन तथा तेरह गौण प्रयोजन प्रतिपादित हैं, जिनमें अपशब्दों के प्रयोग से बचना, स्वर तथा वर्ण का निर्दोष उच्चारण करना, अनर्थक का अध्ययन न करना, व्यवहार के समय शब्दों का कुशलता के साथ प्रयोग करना, अपशब्दों के उच्चारण से प्रायश्चित्त के भागी न बनना इत्यादि द्रष्टव्य है । 'महाभाष्य' के अनुसार जो पुरुष (व्याकरण) शास्त्र-ज्ञानपूर्वक शब्दों का प्रयोग करता है वही अभ्युदय को प्राप्त होता है¹ । अतः शिष्टों द्वारा प्रयुक्त शब्दों का साधुत्व व्याकरण के द्वारा ही होता है । कहा जाता है कि 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति' (म.भा. ६/१/८४) अर्थात् एक ही शब्द का व्याकरण के द्वारा सम्यक् ज्ञान तथा उसका सही जगह प्रयोग इस लोक तथा स्वर्ग लोक में कामधेनु के तुल्य फलप्रद होता है । तदर्थ व्याकरण का अध्ययन अपेक्षित है ।

व्याकरण-परम्परा- यद्यपि पाणिनि के समय से व्याकरणशास्त्र का प्रचार अधिक हुआ फिर भी पाणिनि से बहुत पूर्व व्याकरण की रचना हो चुकी थी । इसके स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध होते हैं । यह सर्वजन-सम्मत है कि सभी शास्त्रों की उत्पत्ति वेदों से हुई है तथा व्याकरण इनका प्रमुख अङ्ग भी है । वैदिक ब्राह्मण-ग्रन्थों में व्याकरणिक तत्त्वों की चर्चा प्रसङ्गतः मिल जाती है । जैसे 'गोपथब्राह्मण'² में धातु

1. शास्त्रपूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देन (म.भा.प.१) ।

2. ओङ्कारं पृच्छामः, को धातुः, किं प्रातिपदिकम्, किं नामाख्यातम्, किं लिङ्गं किं वचनम्, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः इति-गोपथब्राह्मण (प्र.प्र.१/२४) ।

प्रातिपदिक, नाम-आख्यात, लिङ्ग आदि का विवरण मिलने से स्पष्ट है कि वैदिक काल में व्याकरण के धातु, प्रातिपदिक, लिङ्ग, वचन आदि तत्त्वों का विभाग हो चुका था । ऋक्तन्त्र के अनुसार व्याकरण के एकदेश अक्षरसमाम्नाय का प्रवचन सर्वप्रथम ब्रह्मा ने बृहस्पति के लिए, बृहस्पति ने इन्द्र, इन्द्र ने भरद्वाज, भरद्वाज ने ऋषियों के लिए एवं ऋषियों ने ब्राह्मणों के लिए किया था । महाभाष्य में भी उल्लिखित है कि बृहस्पति ने इन्द्र को एक हजार दिव्य वर्षों तक प्रतिपद पाठरूप 'शब्दपारायण' नाम के व्याकरण का उपदेश किया था, फिर भी वह समाप्त नहीं हो सका । क्योंकि शब्दों का प्रयोगक्षेत्र बहुत विशाल है । किसी एक व्याकरण के ग्रन्थ-द्वारा वे सभी शब्द नहीं जाने जा सकते । शब्दों का देश-देशान्तरों में प्रयोग होता है, इसीलिए वे सभी उपलब्ध नहीं हो पाते । अत एव महाभाष्यकार ने कहा कि शब्दों को उपलब्ध करने हेतु यत्न कीजिए क्योंकि सात द्वीपों वाली पृथ्वी तीन लोक, चार वेद, छह वेदाङ्ग, उपनिषद् तथा वैदिक शाखाओं में यजुर्वेद की १०१ शाखाएँ, सामवेद की १००० शाखाएँ, ऋग्वेद की २१, अथर्ववेद की ९ शाखाएँ, वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, वैद्यक इतना शब्द-प्रयोग का क्षेत्र है । इस क्षेत्र का पर्यवेक्षण किए बिना यदि कोई कहता है कि 'इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता' तो यह कथन उसका साहसमात्र ही है । (द्र.म.भा.प.१) ।

इन्द्र के पूर्ववर्ती आचार्यों का कुछ भी व्याकरण आज जैसे नहीं मिलता वैसे ही इन्द्र-प्रवर्तित ऐन्द्र व्याकरण भी आज उपलब्ध नहीं होता है । किन्तु इन्द्र को व्याकरण का आदि संस्कर्ता आचार्य कहा जाता है । क्योंकि इन्द्र ने देवताओं के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर व्याकरण में

प्रकृति-प्रत्यय का विभाग किया था । कुछ वैयाकरण 'ऐन्द्र व्याकरण का संक्षिप्त कातन्त्र व्याकरण है' ऐसा कहते हैं । वोपदेव द्वारा निर्दिष्ट पद्य में उल्लिखित इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र-ग्रन्थकार इन आठ शाब्दिकों में भी इन्द्र का सर्वप्रथम नाम निर्दिष्ट है । पाणिनि ने अपने 'अष्टाध्यायी' ग्रन्थ में आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक, स्फोटायन इन दस वैयाकरणों के नियमों को भी स्थान दिया है, किन्तु खेद है कि इनके भी व्याकरण सम्प्रति उपलब्ध नहीं होते । इसके अतिरिक्त कातन्त्र-चान्द्र-सारस्वत-भोजीय-हैम आदि व्याकरण तो प्राप्त होते हैं, किन्तु पाणिनीय व्याकरण को ही अधिक अवसर मिलने से इन व्याकरणों का अधिक प्रचार-प्रसार नहीं हो सका । पाणिनीय व्याकरण आज समग्र रूप से प्राप्त है । पाणिनीय सूत्रों पर कात्यायनकृत वार्तिक, पतञ्जलिकृत महाभाष्य, वामन-जयादित्यकृत काशिकावृत्ति, पुरुषोत्तमदेवकृत भाषावृत्ति, शरणदेवकृत 'दुर्घटवृत्ति' स्वामी दयानन्द सरस्वतीकृत 'अष्टाध्यायी भाष्य', रामचन्द्रकृत प्रक्रियाकौमुदी, भट्टोजिदीक्षितकृत सिद्धान्तकौमुदी¹ तथा इस पर 'प्रौढमनोरमा' व्याख्याग्रन्थ, वरदराजाचार्य कृत मध्यसिद्धान्तकौमुदी तथा लघुसिद्धान्तकौमुदी आदि प्रमुख ग्रन्थ समग्र रूप में सम्प्रति उपलब्ध हैं और इनका पठन-पाठन भी चल रहा है । इसके अतिरिक्त व्याकरण के दार्शनिक पक्ष के प्रबल प्रचारक भर्तृहरि का वाक्यपदीय, कौण्डभट्ट का वैयाकरणभूषण, नागेशभट्ट का

-
1. कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः ।
 कौमुदी यद्यकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः ॥
 (व्याकरणाध्येताओं में प्रसिद्ध)

सिद्धान्त-लघु- परमलघुमञ्जूषा बृहच्छब्देन्दुशेखर, लघु-
शब्देन्दुशेखर तथा परिभाषेन्दुशेखर आदि ग्रन्थ भी पठन-पाठन
में प्रचलित हैं । नागेशभट्ट नवीन वैयाकरणों में परिगणित
हैं । वस्तुतः व्याकरण में नागेशभट्ट के नव्य-मत की पर्याप्त
प्रतिष्ठा है । इसके अतिरिक्त धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ,
लिङ्गानुशासन आदि खिलपाठों का भी प्रवचन वैयाकरणों ने
किया, किन्तु खिलपाठ में इन्हें स्थान मिलने से इनके
अध्ययन की उपेक्षा अवश्य हुई । पाणिनीय व्याकरण में इन
सभी अङ्गों का उत्तरोत्तर विकास होता रहा तथा तत्सम्बन्धित
ग्रन्थों का पठन-पाठन अधिक होने से कातन्त्र-चान्द्र-सारस्वत
आदि पूर्व निर्दिष्ट व्याकरणों का अध्ययन-अध्यापन अधिक
नहीं हो सका, जिससे ये व्याकरण आज किसी प्रकार से
जीवित हैं ।

नामशब्दों का धातुजत्व-

शब्द कितने प्रकार के होते हैं ? इस विषय में
यास्क के द्वारा प्रणीत 'निरुक्त' ग्रन्थ में चार पदों (शब्दों)
का अन्वाख्यान मिलता है- नाम, आख्यात, उपसर्ग और
निपात । इनमें नाम शब्द सामान्यतया यौगिक, योगरूढ तथा
रूढ तीन प्रकार के होते हैं । जिन शब्दों में शब्द की
प्रकृतिभूत धातु का अर्थ शब्दार्थ का अनुगमन करता है, वे
यौगिक, तथा जो धात्वर्थ की प्रतीति होने पर भी किसी
विशेष अर्थ में नियत रहते हैं, वे योगरूढ, एवं जिन शब्दों
में योगार्थ का अनुगमन बिल्कुल नहीं होता, वे रूढ शब्द
होते हैं । निरुक्तकार यास्क एवं उनसे पूर्ववर्ती शाकटायन
लोकप्रसिद्ध नाम शब्दों के धातुज होने की घोषणा करते
हैं । इनके मत में सभी नाम शब्द आख्यातज (=धातुज)
होते हैं, अर्थात् सभी शब्दों की मूल प्रकृति धातु है, किन्तु

गाग्य आदि वैयाकरण सभी शब्दों को धातुज न मानकर केवल यौगिक (व्युत्पन्न) शब्दों को ही धातुज मानते हैं । अर्थात् अयौगिक (अव्युत्पन्न) शब्द धातु से नहीं बनते । शाकटायन ने जो अयौगिक शब्दों के धातुजत्व की घोषणा की, उसी के फलस्वरूप संभवतः व्याकरण में उणादिसूत्रों की रचना भी हुई । अतः 'नामान्याख्यातजानीति'¹ इस शाकटायन-प्रोक्त सिद्धान्त को उणादिसूत्रों की रचना का आधार तो कहा जा सकता है, किन्तु 'व्याकरणे शकटस्य च तोकम्' इस निरुक्त-वचन के आधार पर नागेशभट्ट, श्वेतवनवासी, वासुदेव दीक्षित तथा कैयट आदि ने जो उणादिसूत्रों को शाकटायन-प्रोक्त माना है उसमें अन्य प्रमाणों की भी अपेक्षा है । क्योंकि इस वचन का साक्षात् तात्पर्य यही है कि शाकटायन के मत में सभी नाम-शब्द धातुज हैं । अतः उणादिसूत्रों का शाकटायन-कर्तृत्व सर्वमान्य नहीं है ।

शाकटायन के उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुरोध से यह फलित हुआ कि औणादिक नाम-शब्दों के यौगिकत्व-प्रतिपादन के द्वारा उनका रूढार्थ भी व्यक्त किया गया । निरुक्त में शब्दों के धातुजत्व एवं अधातुजत्व पर शाकटायन-गाग्य का खण्डनमण्डनपरक विस्तृत शास्त्रार्थ भी मिलता है । प्रायः वैयाकरणों ने अपने शब्दानुशासन में यौगिक शब्दों की ही विवेचना की है । शाकटायन नामक वैयाकरण के रूढ शब्दों के यौगिकत्व पक्ष की रक्षा अन्य वैयाकरणों ने उणादिसूत्रों की रचना से की । यदि उणादिसूत्रों की रचना न की गई होती तो प्रसिद्ध व्यावहारिक स्त्री-पुरुष,

1. तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च, न सर्वाणीति गाग्यो वैयाकरणानां चैके (निरुक्त १/४/१२) ।

पाणि-कमल आदि शब्दों में प्रकृति-प्रत्यय का बोध नहीं हो पाता । पाणिनि ने भी 'अष्टाध्यायी' में प्रसिद्ध औणादिक शब्दों की विवेचना नहीं की । केवल 'उणादयो बहुलम्' (अ.३/३/१) इस सूत्र से 'उण्' आदि प्रत्ययों की बहुलता का विधान सूचित किया । अधिकांश वैयाकरणों ने पहले जो उणादिसूत्र 'कृत् प्रकरण' के अन्तर्गत थे, उन्हें बाद में 'खिलपाठ' के अन्तर्गत स्थान दिया -ऐसी संभावना है । फलतः उणादिसूत्रों के अध्ययन की उपेक्षा हुई, केवल यही धारणा बना लेना सङ्गत नहीं होगा । उचित तो यह प्रतीत होता है कि आचार्यों द्वारा एक मान्य रचनापद्धति थी, जिसके अनुसार इनका निबन्धन किया गया । औणादिक शब्दों के व्युत्पत्ति-बोध में कठिनता के समाधानार्थ उणादिसूत्रों पर अनेक टीकाएँ तथा व्याख्याएँ की गई । 'पञ्चाङ्गं व्याकरणम्' में भी उणादि का स्थान होने से तथा रूढ शब्दों के बोध हेतु बाद में कुछ वैयाकरणों ने शब्दानुशासन में ही उणादिसूत्रों को स्थान दिया ।

वर्तमान में उणादिसूत्रों के पञ्चपादी एवं दशपादी ये दो पाठ अधिक प्रसिद्ध हैं । इतिहासकारों ने यद्यपि इन दोनों के रचयिता का स्पष्ट निर्णय नहीं किया, फिर भी इन दोनों की पाणिनीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही प्रसिद्धि है । इनमें दशपादी-सूत्रों की अपेक्षा पञ्चपादी-सूत्र अधिक प्रसिद्ध हुए ।

उणादि-प्रत्ययों का बहुलता से विधान होता है ऐसा पाणिनि ने 'उणादयो बहुलम्' इस सूत्र से सूचित किया । महाभाष्य में इस सूत्र की व्याख्या में पतञ्जलि ने स्पष्ट किया है कि उणादिपाठ में कुछ ही धातुओं से प्रत्ययों का विधान किया गया है, सभी धातुओं से नहीं । प्रत्यय भी थोड़े ही पड़े

गये हैं । अतः बहुल ग्रहण के बल के द्वारा अन्य धातुओं से प्रत्ययों की कल्पना करके शब्द निष्पन्न कर लेने चाहिए । जिन शब्दों का उणादिग्रन्थों में संग्रह नहीं किया गया, उन शब्दों में शब्द की प्रकृति के अनुसार प्रत्यय की तथा प्रत्यय से प्रकृति की कल्पना कर लेनी चाहिए । शब्दों में गुणाभाव अथवा वृद्धि आदि कार्यों को देखकर प्रत्ययों में अनुबन्धों (कित्-ङित्) की कल्पना भी कर लेनी चाहिए (द्र.म.भा.३/३/१) । इस तरह महाभाष्य में प्राप्त इस विवरण से स्पष्ट है कि सम्प्रति जो उणादिसूत्र प्राप्त हैं, वे सम्पूर्ण नहीं हैं । ये सूत्र प्रकृति-प्रत्यय विभाग के निदर्शनार्थ ही हैं । अतः इनसे सभी लोक-प्रयुक्त शब्दों को नहीं जाना जा सकता । इसीलिए नागेश भट्ट ने 'सभी संज्ञा-शब्दों में प्रत्ययों का विधान ब्रह्मा के द्वारा भी नहीं किया जा सकता' ऐसा प्रतिपादित किया है (द्र.म.भा.उद्योत.३/३/१) ।

उणादि प्रत्ययों से प्रायः संज्ञा-शब्द निष्पन्न होते हैं । वे संज्ञा-शब्द व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न दोनों प्रकार के माने जाते हैं । शाकटायन को छोड़कर प्रायः गार्ग्य, पाणिनि आदि ने औणादिक शब्दों को अव्युत्पन्न स्वीकार किया है । नागेश ने भी 'उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि भवन्ति' इस महाभाष्योक्त वचन से अव्युत्पन्न पक्ष की पुष्टि की है । स्वामी दयानन्द ने भी सभी औणादिक शब्दों के संज्ञा होने का निषेध किया है । इनके अनुसार औणादिक शब्द सामान्य अर्थ में तो यौगिक होते हैं किन्तु उसी अर्थ में वे रूढ भी

-
1. 'धृषेर्धिष च संज्ञायाम्'- इति सूत्रे संज्ञाग्रहणेन ज्ञायते उणादयः सामान्यार्थे यौगिका भवन्तीति । संज्ञायास्तस्मिन्नर्थे रूढत्वात् । यदि च प्रकृतिप्रत्ययविभागेन उणादिभ्यो यौगिकोऽर्थो न निस्सरेत् तर्हि सर्व उणादिस्थाः शब्दाः संज्ञावाचका एव स्यः (दया.उ.को.२-८३ व्याख्या) ।

होते हैं । अतः स्वामी जी के मत में औणादिक शब्द रूढ एवं यौगिक दोनों प्रकार के होते हैं । श्वेतवनवासी के अनुसार संज्ञा-शब्दों में व्युत्पत्ति का कोई निश्चित नियम नहीं होता, क्योंकि उससे अर्थ का अनुगम नहीं हो पाता¹ । कातन्त्र व्याकरण में कुछ आचार्य गार्ग्य के मत का तो कुछ शाकटायन के मत का अनुसरण करते हैं । 'वृक्षादिवदमी रूढाः' इति दुर्गसिंहोक्त वचन से कातन्त्र व्याकरण के प्रवक्ता शर्ववर्मा आचार्य के अव्युत्पत्तिपक्ष की पुष्टि होती है किन्तु दुर्गसिंह व्युत्पत्तिपक्ष को मानते हैं— यह इसी ग्रन्थ के अन्त में निर्दिष्ट 'शब्दानामानन्त्यात्' इस कारिका से ज्ञात होता है ।

वैसे कुछ उणादिप्रत्ययान्त शब्दों को तो निस्सन्देह व्युत्पन्न कहा जा सकता है । जैसे—करोतीति कारुः (शिल्पी), वातीति वायुः, पातीति पायुः अपान । परन्तु सैकड़ों ऐसे भी औणादिक हैं, जहाँ धात्वर्थ का कुछ भी अन्वय नहीं होता, वहाँ केवल शब्द-निष्पत्ति के प्रदर्शनार्थ ही प्रकृति-प्रत्यय का विभाग किया गया है । जैसे—हस् धातु से निष्पन्न 'हस्त' शब्द में हसना क्रिया, पूज् धातु से 'पोत' शब्द में पवित्र होना क्रिया, अशू व्याप्तौ से 'श्वसुरः' में धात्वर्थ क्रिया । इसी तरह मुद हर्षे—मुद्गः, बन्ध बन्धने—बधिरः आदि शब्दों में धात्वर्थ क्रिया का शब्दार्थ में किसी भी अंश में अन्वय नहीं देखा जाता । उणादि प्रत्यय भी कृत्-प्रत्ययों की तरह वर्तमान, भूत एवं भविष्यत् आदि अर्थों में तथा कर्त्ता, कर्म आदि कारकों में विहित होते हैं ।

1. संज्ञाशब्देषु हि व्युत्पत्तेरनियमः, अर्थानुगमाभावात् । (श्वेत.वृ.१-६९) ।

उणादि-वाङ्मय- पाणिनि के पूर्व भी गणपाठ, धातुपाठ और उणादिपाठ की सत्ता विद्यमान थी ऐसा बोथलिके तथा आफ्रेक्ट का विचार है । पाणिनीय से पूर्ववर्ती काशकृत्स्न व्याकरण के धातुपाठ का कन्नड़ लिपि से देवनागरी लिपि में रूपान्तरण करके उसे श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने प्रकाशित किया । मीमांसक ने 'पुरुषसूक्त' की चन्नवीर कृत कन्नड़टीका में उद्धृत 'ब्राह्मणे' पद के साधुत्वार्थ 'बृहो ममन् मणिश्च' ऐसा सूत्र उल्लिखित है तथा अन्त में 'काशकृत्स्न के दशपादी में यह सूत्र उद्धृत है ऐसा निर्दिष्ट किया है । उन्होंने वर्तमान में प्राप्त दशपाद्युणादिवृत्ति के काशकृत्स्नकृत होने में अपनी असहमति भी व्यक्त की है । काशकृत्स्न व्याकरण का कोई पृथक् उणादिकोश या उणादिग्रन्थ भी नहीं मिलता । इसके बाद आपिशलि का नाम आता है । आपिशलि का भी कोई पृथक् उणादिग्रन्थ नहीं मिलता, जिससे कि आपिशलि कर्तृत्व की सम्भावना की जा सके । परन्तु यु.मी. ने आपिशलि द्वारा पठित 'अमङ्गनाः' सूत्र का प्रभाव पञ्चपादी उणादिसूत्र 'अमन्ताङ्ङः' पर बतलाया तथा 'अम्' प्रत्याहार को आधार बनाकर आपिशलि ने पञ्चपादी उणादिसूत्रों की रचना की होगी' ऐसी सम्भावना की है, किन्तु डा. सत्यकाम वर्मा इस विचार से सहमत नहीं है । वैसे भी इस सम्भावना को नितान्त सत्य नहीं कहा जा सकता ।

पाणिनि ने 'उणादयो बहुलम्' (अ.३/३/१) सूत्र पर उण् आदि ३२५ प्रत्ययों का निर्देश नहीं किया जो पञ्चपादी के नाम से प्रसिद्ध हैं । सम्भव है कि पाणिनि ने पृथक् रूप से उणादिसूत्रों की रचना की हो या अपने पूर्व विद्यमान उणादिसूत्रों की परम्परा को स्वीकार किया हो । वैसे सम्प्रति पञ्चपादी एवं दशपादी दोनों प्रकार के उणादिसूत्रों को

पाणिनीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही समझा जाता है । इसलिए कि पाणिनीय सूत्रों की व्याख्या के साथ ही व्याख्याकारों ने इन उणादिसूत्रों की व्याख्या भी की है । वैसे कैयट, श्वेतनवासी, वासुदेव दीक्षित, नागेश आदि ने पञ्चपादी को शाकटायनकृत ही माना, किन्तु ऐसा मानने में पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते । दूसरी ओर नारायण भट्ट, स्वामी दयानन्द आदि ने पञ्चपादी को पाणिनिकृत मानकर उनकी व्याख्या की है ।

पञ्चपादी उणादिसूत्र— पाँच पादों में निबद्ध उणादिसूत्रों की संख्या ७५९ है । इनसे विहित प्रत्ययों की संख्या ३२५ है । इन प्रत्ययों से निष्पन्न औणादिक शब्दों की संख्या, प्रायः १७७५ (श्वेत.उ.वृ.) है । इन शब्दों में वैदिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के शब्द संगृहीत हैं । यु.मी. ने चन्द्रगोमी कृत त्रिपादी उणादिसूत्रों को इन सूत्रों का पूर्व आधार बताया है । पाणिनीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्रसिद्ध पञ्चपादी उणादिसूत्रों पर उपलब्ध प्रसिद्ध वृत्तियों का संक्षिप्त परिचय अधोनिर्दिष्ट है ।

उज्ज्वलदत्तकृत—उणादिवृत्ति— पञ्चपादी उणादिसूत्रों पर उज्ज्वलदत्त ने 'उणादिसूत्रवृत्ति' के नाम से वृत्ति-ग्रन्थ की रचना की है; जिसे १८७३ ई० में श्रीजीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने सम्पादित करके कलकत्ता से प्रकाशित कराया । इसके पूर्व थोडेर आफ्रेक्ट महोदय ने १८५७ ई० में इसे प्रकाशित कराया था । यह एक विस्तृत वृत्ति है । इसमें औणादिक शब्दों के विविध अर्थों के निरूपणार्थ मेदिनीकोश से अनेक सन्दर्भ प्रदत्त हैं । उज्ज्वलदत्त ने अपनी वृत्ति के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण के अन्तर्गत प्रतिपादित 'उणादिवृत्तयोऽनेका भूरिभिः सूरिभिः कृताः' इस कारिका से

अनेक विद्वानों द्वारा उणादिवृत्तियों के प्रणयन की सूचना दी है, किन्तु इससे पूर्ववर्ती कोई भी उणादिवृत्ति सम्प्रति प्राप्त नहीं होती । उज्ज्वलदत्त ने यह भी कहा है कि जो मेरी वृत्ति की अपने पौरुष से समालोचना करके मेरे नाम पर आवरण डालेगा तो उसका पुण्य नष्ट हो जाएगा । यु.मी. ने उज्ज्वलदत्त के बङ्ग-निवासी होने का अनुमान किया है, यतः वलेर्गुक् च (१-२०) सूत्र की व्याख्या में वकारादि वल्गु को बकारादि समझकर व्युत्पत्ति की है । वैसे भी वकार-बकार के उच्चारण का दोष बङ्ग-निवासियों में पाया जाता है । यु.मी. ने इनका काल १२०० ई० के लगभग माना है । इनका दूसरा नाम 'जाजलि' भी था । इस वृत्ति में औणादिक-शब्दों की अर्थ-पुष्टि-हेतु अमरकोश, विश्वप्रकाश, मेदिनीकोश, उत्पलिनीकोश, कालिदास-प्रणीत ग्रन्थ, भट्टिकाव्य, हारावलीकोश, माघरचित काव्य, विश्वकोश, धरणि-कोश, धातुपारायण, द्विरूपकोश, हट्टचन्द्र, हलायुध आदि ग्रन्थों के अनेकशः सन्दर्भ उद्धृत हैं । इसमें ३२५ प्रत्यय सूत्रों से विहित है तथा पाँच पादों में निबद्ध सूत्रों की संख्या ७५० है । इसमें औणादिक शब्दों से निष्पन्न तद्धितान्त प्रयोगों का भी उल्लेख मिलता है । इस प्रकार यह वृत्ति सर्वाङ्गपूर्ण एवं प्रामाणिक है किन्तु इसमें अनेक भ्रष्ट पाठ भी हैं, जिससे इसे पुनः परिष्कृत कर प्रकाशित करने की आवश्यकता है ।

श्वेतवनवासीकृत-उणादिवृत्ति- उज्ज्वलदत्त के बाद पञ्चपादी उणादिसूत्रों की वृत्तियों में मद्रास निवासी श्वेतवनवासीकृत पाण्डित्यपूर्ण 'उणादिवृत्ति' उपलब्ध है । श्वेतवनवासी गर्गवंशीय, आर्यभट्ट के पुत्र तथा इन्दुग्राम के समीपवर्ती 'अग्रहार' के निवासी थे । यह वृत्ति डॉ० टी.आर. चिन्तामणि- द्वारा सम्पादित सन् १९३३ में मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित

है । श्वेतवनवासी ने इस वृत्ति के मङ्गलाचरण में 'भाष्यकार' को प्रणाम करके उनके मत के स्पर्श से शोधित 'उणादितन्त्र' की व्याख्या करता हूँ, ऐसा प्रतिपादित किया है । इन्होंने इस वृत्ति को 'येयं शाकटायनादिभिः पञ्चपादी रचिता' ऐसा कहकर शाकटायन को पञ्चपादी का रचयिता भी घोषित किया है । इस वृत्ति में प्रत्येक औणादिक शब्द की धातु एवं व्युत्पत्ति भी निर्दिष्ट है, इसके साथ ही महाभाष्यकार के मत भी बहुशः उद्धृत हैं । इसमें ७५० उणादिसूत्र पँच पादों में व्याख्यात हैं । इस वृत्ति की एक विशेषता यह है कि इसमें अ, आ, इ, ई, उ, ऊ,, ऋ, ॠ, लृ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ अं, अः इन सभी स्वरों तथा कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग आदि के सभी वर्णों, य र ल व, श ष स ह तथा उपध्मानीय-जिह्वामूलीय वर्णों की सिद्धि भी की गई है । यद्यपि यह पर्याप्त प्रशस्त तथा विस्तृत वृत्ति है तथापि इसमें भ्रष्टपाठों की अधिकता से पुनः शुद्ध संस्करण तैयार कर इसे प्रकाशित करने की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

भट्टोजिदीक्षितकृत-उणादिवृत्ति- भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनीयसूत्रों पर प्रक्रियाबद्ध 'सिद्धान्तकौमुदी' नामक ग्रन्थ की रचना की जो आज पठन-पाठन में अधिक प्रचलित है । 'सिद्धान्तकौमुदी' में पूर्वकृदन्त तथा उत्तरकृदन्त के बीच में ७४८ उणादिसूत्रों पर इनकी वृत्ति प्रकाशित है । इनकी वृत्ति पर ज्ञानेन्द्र सरस्वतीकृत 'तत्त्वबोधिनी' नामक टीका तथा वासुदेव दीक्षितकृत 'बालमनोरमा' टीका भी है, जो व्याकरण में बहुत समादृत एवं प्रशस्त है । इसके अतिरिक्त इन्होंने शब्दकौस्तुभ, प्रौढमनोरमा आदि ग्रन्थों की भी रचना की है । इनकी वृत्ति में कुछ औणादिक शब्दों के अर्थ-प्रदर्शन हेतु

सन्दर्भ प्रदत्त है तथा कुछ शब्दार्थों के सन्दर्भ नहीं दिए हैं । इसमें अधिकांशतः अमरकोश, मेदिनीकोश, विश्वकोश आदि के सन्दर्भ दिए गए हैं । श्वेतवनवासी आदि की वृत्ति से इस वृत्ति में बहुत से सूत्रपाठान्तर हैं । इसमें प्रायः रूढार्थ ही प्रतिपादित हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ में इस वृत्ति के अनेक तुलनात्मक सन्दर्भ प्रदत्त हैं ।

नारायणभट्टकृत-प्रक्रियासर्वस्व- केरल-निवासी नारायण भट्ट ने पञ्चपादी उणादिसूत्रों पर 'प्रक्रियासर्वस्व' नामक वृत्ति की रचना की है, जो मद्रास विश्वविद्यालय से सन् १९३३ ई० में डॉ० टी.आर. चिन्तामणि के सम्पादकत्व में प्रकाशित है । वृत्तिकार ने पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी' के सूत्रों पर प्रक्रियानुसार 'प्रक्रियासर्वस्व' नामक महत्त्वपूर्ण वृत्तिग्रन्थ की रचना की है, जो २० खण्डों में है । इसका १९वाँ खण्ड उणादि है । इसमें उणादिसूत्रों की व्याख्या कृदन्त प्रकरण के अन्तर्गत विहित है । यह ७५० सूत्रों पर एक अल्पाक्षरा वृत्ति है । इसमें भोजकृत 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक उणादिवृत्ति के शब्दों का संग्रह भी किया गया है । इनका काल इतिहासकारों ने विक्रम की १६वीं शताब्दी सूचित किया है ।

महादेववेदान्तीकृत-निजविनोदा- मद्रास से महादेव वेदान्तीकृत 'पद्मबद्ध उणादिवृत्ति' प्रकाशित है । इनकी वृत्ति का नाम 'निजविनोदा' है, जिसमें पाणिनीय पञ्चपादी उणादिसूत्रों की व्याख्या है । पं० रामअवध पाण्डेय ने इसका अनेक हस्तलेखों के आधार पर शुद्ध संस्करण तैयार किया था, जो प्रकाशित नहीं हो सका । यु.मी. ने इन्हें विक्रम.सं. १७५० से उत्तरवर्ती माना है ।

रामभद्रदीक्षितकृत-मणिदीपिका- पञ्चपादी उणादिसूत्रों पर रामभद्र दीक्षित ने 'मणिदीपिका' वृत्ति लिखी है, किन्तु यह

वृत्ति द्वितीय पाद के ३०वें सूत्र तक ही प्रकाशित है, जो अपूर्ण है । यह वृत्ति मद्रास विश्वविद्यालय से सन् १९७२ ई. में डॉ० के. कुञ्जनी राज के सम्पादकत्व में प्रकाशित है । इनका समय वि.सं. १७४४ के आस-पास है । इन्होंने शाह जी भूपति की प्रेरणा से यह वृत्ति लिखी थी ।

पेरुसूरिकृत-औणादिकपदार्णव- पेरुसूरि विरचित 'औणादिक-पदार्णव' नामक पद्यबद्ध ग्रन्थ मद्रास विश्वविद्यालय से सन् १९३९ ई० में प्रकाशित हो चुका है । लेखक ने पञ्चपादी उणादिसूत्रों की व्याख्या पद्यों में की है, इसमें पद्य-संख्या ४६५ है । किन्तु यह वृत्ति अपूर्ण प्रकाशित है । क्योंकि इसमें प्रथम पाद से लेकर तृतीय पाद तक तथा चतुर्थ पाद के १५६ सूत्रों तक की ही व्याख्या है । ७४८ में से ५८७ सूत्रों पर ही व्याख्या है । इसमें चतुर्थ पाद के शेष सूत्र तथा पञ्चम पाद तो सर्वथा छोड़ दिए गये हैं । इस वृत्ति की यह विशेषता है कि उसमें उणादिप्रत्ययान्त शब्दों से तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों का भी प्रायः उल्लेख किया गया है । वेङ्कटेश्वर-पुत्र पेरुसूरि आन्ध्रप्रदेशीय काञ्चीपुरनिवासी, श्रीधरवंशीय हैं, गुरु-वासुदेव अध्वरी हैं । इनका समय १७६०-१८०० वि.सं. है ।

शिवराम त्रिपाठी-लक्ष्मीनिवासकोश- (१८५० वि.सं.) पञ्चपादी उणादिसूत्रों पर शिवराम त्रिपाठी नामक विद्वान् ने 'लक्ष्मीनिवास' नामक उणादिकोश की श्लोकबद्ध रचना की है । यह औणादिक शब्दों का पद्यबद्ध कोश है । पं. राम अवध पाण्डेय (वाराणसी) ने इसका सम्पादन करके १९८५ ई० में विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से इसे प्रकाशित कराया है । श्री पाण्डेय, जी ने इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में पञ्चपादी उणादिवृत्तियों में निबद्ध उणादिसूत्रों के सभी पाठान्तर

भी दिए हैं तथा 'उणादिसूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन' इस विषय पर शोधप्रबन्ध भी प्रस्तुत किया है । बड़े दुःख का विषय है कि वह सम्प्रति हम लोगों को छोड़कर परलोकवासी हो गए ।

दयानन्द सरस्वतीकृत-उणादिकोश- पाणिनि की अष्टाध्यायी पर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'अष्टाध्यायी भाष्य' की रचना की, जो वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से प्रकाशित है । किन्तु यह अपूर्ण है, इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने 'पञ्चपादी' उणादि सूत्रों पर 'उणादिकोश' नामक एक व्याख्याग्रन्थ भी लिखा है जो वैदिक यन्त्रालय, अजमेर से तथा इसके बाद सोनीपत, हरियाणा से पं. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित सन् १९७४ में प्रकाशित हुआ । इस 'उणादिकोश' की यह विशेषता है कि अन्य उणादिग्रन्थों में तो केवल औणादिक शब्दों के रूढ अर्थ ही प्रदर्शित हैं, किन्तु इसमें रूढ अर्थ के साथ ही यौगिक अर्थ का भी निर्देश किया गया है । जैसे करोतीति कारुः कर्ता (यौगिक) शिल्पी (रूढ) । यु.मी. ने अजमेर संस्करण के भ्रष्ट पाठों का शुद्ध संस्करण तैयार कर अनेक महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों के साथ इसे रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा से प्रकाशित कराया है । इस वृत्ति में ७५३ सूत्रों की व्याख्या है । मैंने इस वृत्ति के ग्रन्थ में अनेकशः उद्धरण दिए हैं ।

इन उपर्युक्त वृत्तिकारों के द्वारा प्रणीत उणादिवृत्तियों के अतिरिक्त अन्य अप्रकाशित तथा अज्ञात लेखकों की वृत्तियों का निर्देश यु.मी. ने व्या.शा.इ. (भाग २) में किया है ।

दशपादी उणादिसूत्र- पञ्चपादी उणादिसूत्रों के अतिरिक्त दशपादी उणादिसूत्र भी प्राप्त होते हैं, किन्तु इनका कर्ता अज्ञात है । यु.मी. ने एक 'दशपाद्युणादिवृत्ति' का अनेक

हस्तलेखों के आधार पर सम्पादन किया जो राजकीय संस्कृत कालेज, बनारस के सरस्वती भवन, पुस्तकालय द्वारा सन् १९४३ ई. में प्रकाशित है । इस वृत्ति के दश पादों में कुल ६६६ सूत्र हैं, जबकि पञ्चपादी में ७५० सूत्र हैं । इस वृत्ति में अधिकांश सूत्र पञ्चपादी के ही हैं । इस वृत्ति की यह विशेषता है कि इसमें वर्णानुक्रम से शब्द पठित है । इसीलिए उण् प्रत्यय इसमें सबसे पहले पठित नहीं है । इसमें सर्वप्रथम अनि प्रत्यय पठित है । इसमें शब्दों की प्रकृतिभूत धातु का गणनिर्देश स्पष्ट है । इसी के साथ कर्ता, कर्म आदि कारकों का भी निर्देश किया गया है । पञ्चपादी उणादिसूत्रों की व्याख्या की तरह पाणिनीय वैयाकरणों ने दशपादी सूत्रों की भी व्याख्या की है । रामचन्द्र-कृत 'प्रक्रियाकौमुदी' पर विट्ठलार्य-कृत 'प्रसाद' टीका के अन्तर्गत दशपादी की व्याख्या मिलती है । किन्तु यह वृत्ति यु.मी. द्वारा सम्पादित वृत्ति से भिन्न है । एक तीसरी दशपादी वृत्ति का हस्तलेख यु. मी. के पास सुरक्षित है, जो अभी अप्रकाशित है । यु.मी. ने 'दशपादी का कर्ता पाणिनि हो सकता है' ऐसी सम्भावना व्यक्त की है । किन्तु अभी यह प्रमाणसापेक्ष है । दशपादी-वृत्ति में प्रसिद्ध 'घर' शब्द भी 'हन्ते रन् घ च' (८/११४) सूत्र से निष्पादित है । इस तरह यह वृत्ति पाण्डित्यपूर्ण एवं प्रकृष्ट है ।

पाणिनीयेतर उणादिसूत्र

केवल पाणिनीय व्याकरण में ही उणादिसूत्र नहीं रचे गये, बल्कि कातन्त्र; चान्द्र, भोजीय, सारस्वत, हैम, सौपदम्, संक्षिप्तसार आदि व्याकरणों में भी उणादिसूत्रों की रचना हुई और उन सूत्रों पर वृत्तियाँ भी लिखी गयीं । यहाँ इन

व्याकरणों में कातन्त्र को छोड़कर शेष का परिचय प्रस्तुत है ।

चान्द्रोणादिसूत्र- चान्द्र व्याकरण के प्रणेता चन्द्रगोमी या चन्द्राचार्य थे । यह बङ्गदेशीय या कश्मीरी थे । कहा जाता है कि गोमिन् की उपासना करने से ये 'चन्द्रगोमी' नाम से प्रसिद्ध हुए । इनका काल इतिहासकारों ने पाँचवीं शताब्दी आदि सम्भावित किया है । इनका व्याकरण नेपाल, कश्मीर, श्रीलङ्का तथा तिब्बत में अधिक प्रचलित रहा । इस व्याकरण में 'चन्द्रोपज्ञमसंज्ञकं व्याकरणम्' अर्थात् संज्ञासूत्रों का विधान नहीं है, यह इसकी प्रमुख विशेषता है । यह व्याकरण लघु, विस्पष्ट तथा सम्पूर्ण है । इस व्याकरण की रचना पाणिनीय व्याकरण के प्रशस्त व्याख्यान-ग्रन्थों के आधार पर हुई है । चन्द्रगोमी के बौद्ध होने से बौद्ध-समाज में भी यह प्रचलित रहा है । चान्द्र-व्याकरण का तिब्बती-भाषा में भी अनुवाद प्राप्त है । 'संस्कृत के बौद्ध वैयाकरण' (पृ. २३) ग्रन्थ के अनुसार चन्द्रगोमी- द्वारा रचित ४८ ग्रन्थ तिब्बतीभाषानुवाद में आज भी सुरक्षित हैं । चान्द्र व्याकरण में ६ अध्याय आज उपलब्ध हैं । इसके प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं । इसके ७-८ अध्याय प्राप्त नहीं होते । जिनमें स्वर-वैदिक शब्दों का समावेश सम्भवतः इनके बौद्धमतावलम्बी होने से नहीं किया गया था ।

पाणिनीय की तरह चान्द्र व्याकरण में भी धातुपाठ, गणपाठ एवं उणादिपाठ की रचना हुई । इसमें चन्द्रगोमी ने सवृत्तिक ३२८ उणादिसूत्रों की रचना ३ पादों में की है । जिनसे १०९० औणादिक शब्द निष्पन्न होते हैं । इस वृत्ति में स्वर-व्यञ्जनान्त शब्द क्रमशः निष्पादित हैं । इसमें मुख्य

सूत्र 'उणादयः' (चा.१/३/१) ऐसा निर्दिष्ट है । यु.मी. ने पञ्चपादी का आधार त्रिपादी चान्द्रोणादि बतलाया है ।

भोजीय-उणादिसूत्र- पाणिनीय एवं चान्द्र व्याकरण पर आधारित 'भोज-व्याकरण' का निर्माण महाराज भोजदेव ने किया । यह बहुश्रुत है महाराज भोज के समय संस्कृत भाषा का बहुत प्रचार-प्रसार था । महाराज भोज उच्चकोटि के संस्कृत विद्वानों को पुरस्कृत करते थे तथा उनके साथ वाग्-विलास भी करते थे । कहा जाता है कि इनके समय में जुलाहे तथा लकड़हारे भी संस्कृत के सुविज्ञ थे । तभी राजा भोज की त्रुटि को एक काष्ठ ढोने वाले ने प्रदर्शित करते हुए कहा था-

'न तथा बाधते राजन् ! यथा बाधति बाधते'

राजा भोज की स्पष्ट घोषणा थी कि चाण्डाल भी यदि विद्वान् हो तो मेरे नगर में रहे, किन्तु यदि ब्राह्मण होते हुए भी वह मूर्ख हो तो मेरे नगर से बाहर हो जाए । इससे स्पष्ट है कि राजा भोज संस्कृत के अनन्य भक्त तथा प्रेमी थे । भोज ने वाक्, चित्त तथा शरीर के मल का नाश (१) सरस्वतीकण्ठाभरण (२) पातञ्जल-योगसूत्र (३) राजमृगाङ्क (वैद्यक ग्रन्थ) इन तीन ग्रन्थों की रचना करके किया । भोज का व्याकरण 'सरस्वतीकण्ठाभरणम्' नाम से प्रसिद्ध है । अन्य व्याकरणों में गणपाठ, उणादिपाठ आदि खिल पाठ के अन्तर्गत पाये जाते हैं, किन्तु भोज की यह विशेषता है कि इन्होंने धातु, गण, लिङ्गानुशासन एवं उणादिपाठों को

-
1. चाण्डालोऽपि भवेद् विद्वान् यः स तिष्ठतु मे पुरि ।
विप्रोऽपि यो भवेन्मूर्खः स पुराद् बहिरस्तु मे ॥
(भोजप्रबन्ध वल्लभदेव कृत)

शब्दानुशासन के अन्तर्गत ही संगृहीत किया है । इससे सम्भव है कि भोज ने इन खिलपाठों का अध्ययन सूत्रपाठ के साथ अधिक उपयोगी समझकर ही शब्दानुशासन में इनका समावेश किया होगा । इनका व्याकरण पाणिनीय से भी आकार में विशाल है, किन्तु यह पाणिनीय पर आधारित है । 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक शब्दानुशासन में ८ अध्याय हैं, तथा प्रत्येक में ४ पाद हैं । इस तरह ३२ पादों में ६४३१ सूत्र निबद्ध हैं । इसमें परिभाषा, लिङ्गानुशासन एवं उणादि भी समाहित हैं । इनके सूत्रों पर दण्डनाथ नारायण-भट्ट-कृत 'हृदयहारिणी' नाम की महत्त्वपूर्ण वृत्ति भी प्रकाशित है ।

भोजकृत 'सरस्वतीकण्ठाभरण'। द्वितीय अध्याय के १-३ पादों में निर्दिष्ट ७९५ उणादिसूत्र, दण्डनाथ कृत 'हृदयहारिणी टीका' सहित डॉ.टी.आर. चिन्तामणि के सम्पादकत्व में सन् १९३४ ई. में मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित है । इस ग्रन्थ में औणादिक शब्दों की धातु एवं व्युत्पत्ति अनिर्दिष्ट है । भोज की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि प्रायः अन्य व्याकरणों में उणादि को परिशिष्ट में स्थान दिया गया किन्तु इसमें शब्दानुशासन के अन्तर्गत ही उणादिसूत्रों को स्थान दिया गया ।

सारस्वत-उणादिसूत्र- इस व्याकरण के विषय में एक किंवदन्ती है कि इसके प्रणेता 'अनुभूतिस्वरूपाचार्य' के मुख से 'पुंक्षु' शब्द के स्थान पर 'पुंशु' ऐसा अपशब्द निकल गया, तब विद्वानों के द्वारा उनका उपहास करने से उन्होंने

-
1. इसी नाम से भोज का एक और ग्रन्थ है जो अलङ्कारशास्त्र से सम्बन्धित है ।

इसी शब्द के साधुत्व- हेतु सरस्वती की उपासना की । सरस्वती ने प्रसन्न होकर इन्हें ७०० सूत्र प्रदान किए । इसीलिए इसका 'सारस्वत' नाम पड़ा । यह किंवदन्ती कितनी सत्य है, कहा नहीं जा सकता । क्षेमेन्द्र ने इस व्याकरण का रचयिता 'नरेन्द्र' है- ऐसा प्रतिपादित किया है । सारस्वत व्याकरण के दो पाठ मिलते हैं एक में ७०० सूत्र हैं तथा दूसरा रामाश्रम द्वारा व्याख्यात 'सिद्धान्तचन्द्रिका' के नाम से प्राप्त होता है जिसमें १५०० सूत्र हैं । अतः यह दो भागों में मिलता है । यु.मी. इसे सारस्वत का ही परिबृंहित रूप मानते हैं । कुछ लोग 'सिद्धान्तचन्द्रिका' को सारस्वत का रूपान्तर भी मानते हैं ।

सारस्वत व्याकरण में उणादिसूत्रों की संख्या ३३ मात्र है, जबकि 'सिद्धान्तचन्द्रिका' में ३७० उणादिसूत्र प्राप्त होते हैं । इन सूत्रों पर सदानन्द-कृत 'सुबोधिनी' टीका भी प्राप्त है । इसके विस्तृत परिचय हेतु व्या.शा.इ., यु.मी. (भाग.२) द्रष्टव्य है ।

हैम-उणादिसूत्र- जैन सम्प्रदाय में हैमचन्द्र सूरि का प्रमुख स्थान है । हैमचन्द्र ने व्याकरण, काव्य-साहित्य, न्याय, धर्म आदि विषयों में अनेक ग्रन्थों की रचना की है । इनके पिता का नाम चाचिग तथा माता का नाम पाहिनी था । इन्होंने सम्राट् सिद्धराज (जयसिंह) के आदेश से शब्दानुशासन की रचना की । इनका जन्म सं. ११४५ में अहमदाबाद, गुजरात में हुआ था । हैमचन्द्र ने 'सिद्ध हैम शब्दानुशासन' नामक विशालकाय व्याकरण की रचना की थी । इसमें कातन्त्र व्याकरण के अनुसार प्रकरणों को रखा गया है । इनका संस्कृत के साथ प्राकृत भाषा पर भी अधिकार था । इनके व्याकरण में ८ अध्याय तथा उनमें निबद्ध सूत्र ३५६६

हैं । अन्तिम आठवाँ अध्याय प्राकृत-भाषा का व्याकरण है । हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण पर स्वविरचित तीन व्याख्याओं में प्रत्युत्पन्नमति वालों के लिए 'बृहती वृत्ति, मध्यम बुद्धि वालों के लिए मध्यवृत्ति, तथा बालकों के लिए लघ्वी वृत्ति की रचना की । इनके व्याकरण पर अन्य विद्वानों ने भी टीकाएँ की हैं ।

हेमचन्द्र ने शब्दानुशासन के साथ ही धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र सवृत्तिक, लिङ्गानुशासन आदि पाठों की भी रचना की । इनके उणादिसूत्रों की संख्या १००६ है । इनकी स्वोपज्ञ व्याख्या २८०० श्लोकों में प्राप्त होती है । इस तरह उणादि-वाङ्मय में सर्वाधिक सूत्रसंख्या हेमचन्द्र-व्याकरण में ही है ।

उपर्युक्त उणादि-वाङ्मय के अलावा क्रमदीश्वर-कृत 'संक्षिप्तसार व्याकरण' में निबद्ध उणादिसूत्रों की व्याख्या गोयीचन्द्र ने की है । इसी तरह पद्मनाभदत्त-रचित 'सुपद्मव्याकरण' में भी उणादिवृत्ति दो पादों में विभक्त है । किन्तु यह अप्रकाशित है । इसी तरह पालिभाषा के कच्चायन-मोगलान-सद्दनीति इन तीन व्याकरणों में भी उणादिसूत्र एवं टीकाएँ प्राप्त होती हैं । यहाँ विस्तारभय से अन्य इसी तरह के अनुपलब्ध उणादि-ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है । विशेष-परिचय हेतु यु.मी.-व्या.शा.इ. (भाग २) द्रष्टव्य है ।

अब प्रकृत ग्रन्थ से सम्बद्ध कातन्त्र व्याकरण तथा उसके उणादिसूत्रों का विवरण इस प्रकार है ।

कातन्त्र-व्याकरण- यह पाणिनीय-व्याकरण से अर्वाचीन है, किन्तु निबद्ध कुछ सूत्र पाणिनीय सूत्रों से पूर्ववर्ती प्रतीत

होते हैं । कुछ वैयाकरण इसका सम्बन्ध पाणिनीय पूर्ववर्ती ऐन्द्र व्याकरण से भी जोड़ते हैं । कुछ लोगों का मत है कि काशकृत्स्न-व्याकरण का संक्षिप्त रूप ही कातन्त्र व्याकरण है । इस व्याकरण की संरचना भी पाणिनीय से भिन्न है, जबकि चान्द्र-जैनेन्द्र आदि व्याकरणों की प्रक्रिया पाणिनीय से प्रभावित है । कातन्त्र व्याकरण प्रक्रिया की दृष्टि से चान्द्र-भोजीय-हैम आदि व्याकरणों से प्रायः भिन्नता रखता है । इसमें वर्णित संज्ञाएँ निरुक्त एवं प्रातिशाख्य ग्रन्थों में तथा कुछ काशकृत्स्न में भी प्राप्त होती हैं ।

कातन्त्र शब्द का 'ईषत् तन्त्रं कातन्त्रम्' इस व्युत्पत्ति में ईषत् अर्थ में कु शब्द को का आदेश होकर 'अल्प तन्त्र' 'लघु तन्त्र' ऐसा अर्थ होता है । इसे 'कौमार व्याकरण' इसलिए कहा जाता है कि कुमार अर्थात् कार्तिकेय के अनुग्रह से 'शर्ववर्मा' ने इसकी रचना की थी । कुछ वैयाकरण कुमारों- बालकों को व्याकरण का साधारण ज्ञान कराने के लिए इसकी रचना हुई, ऐसा भी कहते हैं । कार्तिकेय के वाहन मयूर के पिच्छ (पंख) पर इसको लिखा गया था, इसीलिए इसे 'कलाप व्याकरण' नाम से भी कहा जाता है । बङ्ग-संस्करण तथा तिब्बती-अनुवाद में अधिकांशतः 'कलाप व्याकरण' नाम से ही इसका उल्लेख है ।

कातन्त्र व्याकरण के विषय में कथासरित्सागर के एक आख्यान के अनुसार सातवाहन नामक राजा को व्याकरण-ज्ञान कराने के लिए शर्ववर्मा ने कातन्त्र व्याकरण की रचना की थी । इसका कारण यह है कि यह राजा एक बार अपनी रानियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था तभी एक विदुषी रानी ने जल-क्रीड़ा से थक जाने के कारण राजा से यह अभ्यर्थना की- हे देव ! मोदकं देहि, राजा ने सोचा कि

यह मोदक अर्थात् लड्डू माँग रही है, अतः 'लड्डू' मँगवाकर उसे दे दिए । इससे रानी ने राजा की हँसी उड़ायी, क्योंकि रानी ने जल-क्रीडा से थक जाने के कारण 'मोदकम्-मा+उदकम्' अर्थात् अब जल मत फेंकिए, ऐसा कहा था । राजा इस घटना से बहुत लज्जित हुआ और उसने व्याकरण-ज्ञान करने का संकल्प लिया तथा शर्ववर्मा से व्याकरण पढ़ाने हेतु कहा । शर्ववर्मा ने उसे ६ महीनों में व्याकरण-ज्ञान कराने का वचन दे दिया । शर्ववर्मा ने स्वामी कार्तिकेय से स्वयं को व्याकरण सिखाने की प्रार्थना की और कार्तिकेय ने प्रसन्न होकर 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' इस प्रथम सूत्र का उपदेश किया । कहा जाता है कि जब शर्ववर्मा ने दूसरा सूत्र स्वयं बनाकर कह दिया तब इससे कार्तिकेय ने शाप दे दिया कि यह व्याकरण पाणिनीय व्याकरण का मान-मर्दन नहीं कर पाएगा तथा यह छोटा ही रहेगा । अतः एव इसका 'कातन्त्र व्याकरण' नाम पड़ा ।

इस व्याकरण में मूलतः १४०० सूत्र प्राप्त होते हैं । इन सूत्रों पर दुर्गसिंह कृत वृत्ति भी उपलब्ध है, जिससे यह व्याकरण और अधिक परिष्कृत हुआ । इसमें सन्धि, नाम, आख्यात ये ३ अध्याय शर्ववर्मा-द्वारा प्रोक्त हैं, जबकि अन्तिम चतुर्थ अध्याय- 'कृत् प्रकरण' का कर्ता 'कात्यायनेन ते सृष्टा विबुद्धप्रतिपत्तये' इस दुर्गसिंहोक्त वचन के अनुसार वररुचि कात्यायन है । इतिहासकारों ने कातन्त्र व्याकरण का रचनाकाल ईसवीय सन् का प्रारम्भिक समय निर्दिष्ट किया है । इस व्याकरण के बहुत से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बङ्गलिपि में तथा तिब्बती-अनुवाद में सुरक्षित हैं ।

अन्य व्याकरणों की तरह कातन्त्र व्याकरण में भी धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ, लिङ्गानुशासन आदि खिलपाठ के

अन्तर्गत उपलब्ध हैं । इन सभी पाठों के साथ कातन्त्र-सूत्रपाठ, परिभाषा-पाठ तथा अन्य महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों का संग्रह डॉ०. जानकीप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'कलापव्याकरण' ग्रन्थ में मिलता है, जो संस्थान से सन् १९८८ ई. में प्रकाशित है । इसके पूर्व डॉ० द्विवेदी का 'कातन्त्रव्याकरणविमर्श' नामक शोधप्रबन्ध भी प्रकाशित है जिसमें प्रायः पाणिनीय प्रक्रिया से इस व्याकरण की तुलना की गई है ।

कातन्त्र-उणादिसूत्र- कातन्त्र-उणादिसूत्रों के विभिन्न संस्करणों में उणादिसूत्रों की संख्या में विषमता पाई जाती है । इसके उपलब्ध तीन संस्करणों में (१) मद्रास से प्रकाशित देवनागरी-संस्करण के ६ पादों में ३९९ उणादिसूत्र, (२) कलकत्ता से बङ्ग-लिपि में प्रकाशित 'कलापव्याकरण' ग्रन्थ के अन्तर्गत संगृहीत ५ पादों में २६३ सूत्र, (३) तिब्बती-भाषा में भिक्षु नम् खा सङ्पो द्वारा अनूदित ४ पादों में २६७ सूत्र प्राप्त होते हैं । इन तीनों संस्करणों में दुर्गसिंह-कृत वृत्ति भी समुपलब्ध है ।

उणादिसूत्रकर्ता- जिस तरह पाणिनीय सम्प्रदाय में कुछ वैयाकरण उणादिसूत्रों के रचयिता शाकटायन को तथा कुछ पाणिनि को मानते हैं, उसी प्रकार कुछ विद्वान् कातन्त्रोणादि-सूत्रों का रचयिता वररुचि कात्यायन को तथा कुछ दुर्गसिंह को मानते हैं । कात्यायन को उणादिसूत्रों का भी रचयिता मानने में दुर्गसिंह-कृत 'वृक्षादिवदमी रूढाः' इस वचन को कुछ लोग आधार मानते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि वृक्ष आदि शब्दों की तरह कृत्-प्रत्ययान्त शब्दों को रूढ मानकर कृती (रचनाकार-शर्ववर्मा) ने कृत्-सूत्र नहीं बनाये उन्हें तो कात्यायन ने बनाया है । इससे स्पष्ट है

कि कृदन्त भाग शर्ववर्मा ने न बनाकर कात्यायन ने बनाया । अतः कहा जा सकता है कि इस दुर्गसिंहोक्त वचन में प्रतिपादित वृक्ष आदि शब्द उणादि-प्रत्ययान्त ही होते हैं । अतः कृत्-सूत्रों की तरह उणादि-सूत्र भी वररुचि कात्यायन ने बनाये होंगे । वैसे संस्कृत-वाङ्मय में कात्यायन नामक अनेक वैयाकरण प्राप्त होते हैं । पाणिनीय सूत्रों पर वार्तिकों का प्रणयन कात्यायन ने किया तथा शुक्लयजुर्वेद के प्रातिशाख्यकार भी कात्यायन ही थे । कविराज सुषेण विद्याभूषण के अनुसार कातन्त्र के एकदेशी वररुचि है । इसीलिए वररुचि को ही कातन्त्र-कृतसूत्रों का रचयिता कहा जा सकता है । युधिष्ठिर मीमांसक ने कात्यायन गोत्रज वररुचि को महाराज विक्रम का सभारत्न एवं पुरोहित होने की सम्भावना व्यक्त की, है ।

कातन्त्र-उणादिसूत्रों के रचयिता कातन्त्रवृत्तिकार दुर्गसिंह हैं, ऐसा मत गुरुपद हालदार ने 'व्याकरणदर्शनेर इतिहास' ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है । ऐसा भी कहा जाता है कि जिस प्रकार पाणिनि ने उणादिसूत्र नहीं बनाये बल्कि किसी अन्य ने बनाकर पीछे जोड़ दिए, उसी तरह कात्यायन ने कातन्त्र-उणादिसूत्र नहीं बनाये बल्कि दुर्गसिंह नामक आचार्य ने उणादिसूत्र बनाकर पीछे जोड़ दिए । इस तरह दुर्गसिंह को भी उणादिसूत्रों का रचयिता इतिहासकार मानते हैं और ऐसा मानने में वे दुर्गसिंह-कृत निम्न प्रतिज्ञा को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हैं—

'उणादयोऽभिधास्यन्ते बालव्युत्पत्तिहेतवे'

इसी उणादिवृत्ति ग्रन्थ के अन्त में निर्दिष्ट 'तेषां विज्ञेः कार्य्या मृग्या धातोस्ततः प्रत्ययान्तात्' इस वचन से भी दुर्गसिंह ग्रन्थ में अनुपदिष्ट औणादिक पदों की व्युत्पत्ति के लिए

प्रेरित करता है । अतः दुर्गसिंह ने ही उणादिसूत्र एवं उन पर वृत्ति की रचना की है, यह स्पष्ट हो जाता है ।

संस्कृत-साहित्य में दुर्गसिंह नाम के तीन व्यक्तियों की सम्भावना की गई है । एक निरुक्त-भाष्यकार, दूसरे कातन्त्रवृत्तिकार तथा तीसरे कातन्त्रवृत्तिटीकाकार । कातन्त्र व्याकरण को प्रतिष्ठित तथा परिष्कृत करने का श्रेय दुर्गसिंह के ऊपर ही जाता है । इनकी वृत्ति ही कातन्त्र व्याकरण की कुञ्जी है । यु.मी. ने निरुक्त-वृत्तिकार दुर्गसिंह को कातन्त्र वृत्तिकार दुर्गसिंह से अभिन्न बतलाया है क्योंकि दोनों ग्रन्थकारों ने अपनी व्याख्या को उभयत्र 'वृत्ति' कहा है तथा कातन्त्रवृत्तिटीकाकार ने 'भगवत्' शब्द का प्रयोग किया है । यु.मी. ने इन्हें भारवि तथा मयूर से परवर्ती बतलाया है । काशिका में इनके मतों का खण्डन होने से ये काशिकाकार से पूर्ववर्ती हैं । अतः इनका समय वि.सं. ६००-६८० मानना उचित होगा । इनके देश के विषय में भी इतिहासकार अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं । सिंह के स्थान पर 'सिम्ह' (सिंह) पाठ मिलने से इनके कश्मीरी होने की सम्भावना भी की गई है । इन्होंने अपनी कातन्त्रवृत्ति में 'काम्पिल्ल' शब्द को उदाहृत किया, जिससे यह सम्भावना भी की गई कि विक्रमादित्य के मङ्गल हाथी का नाम 'काम्पिल्ल' होने से ये उज्जयिनी-निवासी भी हो सकते हैं । इसके अतिरिक्त एतद्विषयक अनेक मत प्राप्त होते हैं जिन्हें विस्तारभय से यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है ।

प्रकृत ग्रन्थ से सम्बद्ध कार्य- पूर्व में सूचित किया जा चुका है कि (१) देवनागरी-संस्करण (मद्रास), (२) बङ्ग-संस्करण (कलकत्ता) तथा (३) तिब्बती-अनुवाद ये तीन

संस्करण प्राप्त हुए । इनमें क्रमशः तीनों का विवरण प्रस्तुत है ।

(१) देवनागरी-संस्करण- डॉ० टी.आर. चिन्तामणि ने कातन्त्र व्याकरण से सम्बद्ध दुर्गसिंह-कृत 'उणादिवृत्ति'¹ का कन्नड से देवनागरी में रूपान्तर किया, जो मद्रास विश्वविद्यालय से सन् १९३४ ई. में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' (भोजोणादिसूत्र) के साथ प्रकाशित है । इस उणादिवृत्ति के रचयिता दुर्गसिंह (सिम्ह) हैं । इस वृत्ति में ६ पाद तथा ३९९ सूत्र हैं । डॉ० टी.आर. चिन्तामणि सम्पादित इस वृत्ति में अनेक अपूर्ण पाठ, भ्रष्ट एवं असङ्गत पाठ देखने को मिले, जिनका समाधान यथा स्थल किया गया है ।

(२) बङ्ग-संस्करण- १८५५ शक संवत् में श्रीमद् गुरुनाथ विद्यानिधि भट्टाचार्य-द्वारा सम्पादित 'कलापव्याकरण'² ग्रन्थ के कृत प्रकरण के अन्तर्गत दुर्गसिंह कृत-वृत्ति सहित उणादिसूत्र बङ्ग-लिपि में प्रकाशित है । इस संस्करण में ५ पाद तथा २६३ उणादिसूत्र हैं । मद्रास से प्रकाशित देवनागरी-संस्करण की अपेक्षा इस संस्करण में प्रकाशित दुर्गवृत्ति में पर्याप्त पाठभेद हैं । देवनागरी में प्रकाशित वृत्ति इससे पर्याप्त विस्तृत है । इसमें महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि देवनागरी संस्करण की अपेक्षा इस संस्करण में १३२ सूत्र कम हैं । इसमें ५ पाद हैं, जबकि देवनागरी में ६ पाद हैं । देवनागरी संस्करण के चतुर्थ पाद में ७० सूत्र हैं, जबकि

1. The Uṇādisūtras in Various Recensions, part. VI-Uṇādisūtras of the Kātantra School, with the Vṛtti of Durghsimha, University of Madras, 1934

2. 'कलापव्याकरण-कृतवृत्तिः' (बङ्ग-लिपि) परिशिष्ट-पृ. ३९५-४२०, बङ्गाब्द १३३२, शकाब्द १८५५, छात्र पुस्तकालय, निवेदिता लेन, कलकत्ता ।

इसमें २२वें सूत्र पर ही चतुर्थ पाद समाप्त हो जाता है तथा २३ से ६६वें सूत्र तक पञ्चम पाद है, जो देवनागरी में चतुर्थ पाद के अन्तर्गत ही है । फिर भी देवनागरी के अन्तिम ४ सूत्र (६७, ६८, ६९, ७०) बङ्ग-संस्करण में संगृहीत नहीं है । इसके अतिरिक्त देवनागरी के पञ्चम पाद के ६७ सूत्र तथा छठे पाद के ६८ सूत्र तो बङ्ग-संस्करण में बिल्कुल छूट गये हैं । इस तरह कहा जा सकता है कि बङ्गलिपि में प्रकाशित उणादिवृत्ति का हस्तलेख निश्चित ही देवनागरी-संस्करण से भिन्न रहा होगा, क्योंकि बङ्ग-संस्करण में भी ४ सूत्र ऐसे हैं जो देवनागरी में नहीं हैं । 'कलापव्याकरण' ग्रन्थ (प्रस्तावना पृ.१७) के अनुसार सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय सरस्वतीभवनस्थ एक हस्तलेख में २५३ ही सूत्र निबद्ध हैं । तिब्बती भाषा में अनूदित कलापोणादिवृत्ति से बङ्ग-संस्करण का पर्याप्त साम्य है, क्योंकि दोनों में सूत्र-संख्या प्रायः समान ही है । केवल तिब्बती में इससे एक पाद कम है ।

(३) तिब्बती संस्करण- कलापोणादिसूत्राणि^१ (ग्र.सं.४४२५, पत्र सं. 31b⁴-34b⁷)

अनुवादक-भिक्षु आकाशभद्र (नम् खा सङ्पो)

स्थान- श्रीविहार ।

ज्ञातव्य है कि अन्य व्याकरणों की अपेक्षा कातन्त्र व्याकरण के ही सर्वाधिक ग्रन्थ तिब्बती भाषा में अनूदित है । जैसे कातन्त्र व्याकरण का शब्दानुशासन भाग टीकाओं के साथ अनूदित है, वैसे ही दुर्गीसंह-कृत वृत्ति-सहित उणादिसूत्र भी तिब्बती भाषा में अनूदित है । इस संस्करण में २६७

1. देगे तेनजुर, ग्र.सं. ४४२५ ['नो' ६७ख-७१ख] ।

उणादिसूत्रों का अनुवाद ४ पादों में भिक्षु नम्-खा-सङ्पो ने किया है तथा इन्हीं सूत्रों पर दुर्गीसिंह-कृत वृत्ति का अनुवाद वज्रध्वज (दोर्जे ग्यलछेन) ने किया है । तिब्बती-अनुवाद एवं बङ्ग-संस्करण में तो कुछ साम्य है, किन्तु देवनागरी-संस्करण से इसमें सूत्र-संख्या पाद-संख्या आदि की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर है । देवनागरी-संस्करण के पञ्चम एवं षष्ठ पाद में निहित १३५ सूत्र इसमें उपलब्ध नहीं हैं ।

दुर्गीसिंह कृत उणादिवृत्ति का तिब्बती भाषा में 'कलापोणादिवृत्ति' (ग्र.सं. ४४२६ पत्र सं. 34b¹-67b⁵) के नाम से वज्रध्वज (दोर्जे ग्यलछेन) ने भारतीय पण्डित श्रीमणिक के सहयोग से अनुवाद किया था । तिब्बती-अनुवाद के सूचीपत्र में पुण्यभद्र (पल्देन सोनम्-सङ्पो) का नाम भी निर्दिष्ट है । इससे कहा जा सकता है कि पुण्यभद्र की कृपा प्राप्त करके ही वज्रध्वज ने अनुवाद किया था । अतः पुण्यभद्र इसके अनुवादक नहीं थे । तिब्बती में जिन २६७ उणादिसूत्रों का अनुवाद भिक्षु आकाशभद्र ने किया, उन्हीं सूत्रों पर वज्रध्वज ने दुर्गीसिंह-कृत वृत्ति का अनुवाद भी किया ।

वैशिष्ट्य- दुर्गीसिंह कृत वृत्ति के देवनागरी पाठ तथा तिब्बती-अनुवाद की पाठ-व्यवस्था में बहुत अन्तर देखने को मिलता है । जैसे देवनागरी-संस्करण में सूत्रार्थ, तत्सम्बद्ध प्रत्येक उदाहरण का उसी के साथ धातुपाठ, व्युत्पत्ति, उदाहरण-निर्देश, तथा शब्दार्थ ऐसा क्रम है, जबकि तिब्बती में

1. देगे-तेनजुर, ग्र.सं. ४४२६ ['नो' ३४खे-६७खे]

पहले सभी उदाहरणों की धातुओं का एक साथ निर्देश, उदाहरण, शब्दार्थ तथा शब्द-सिद्धि से सम्बन्धित अन्य सूत्र हैं । तिब्बती-अनुवाद का यह क्रम पञ्चपादी उणादि की अनेक वृत्तियों में पाया जाता है । तिब्बतीय अनुवाद में देवनागरी की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण पाठ मिलते हैं । जैसे मङ्गलाचरण-पद्य की व्याख्या २ पृष्ठों में मिलती है, किन्तु देवनागरी में एक शब्द भी व्याख्या में नहीं मिलता । अतः ऐसे अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण पाठों का संस्कृत में पुनरुद्धार मैंने किया है । इसी प्रकार तिब्बती में ३ सूत्र ऐसे भी हैं जो देवनागरी में अनुपलब्ध हैं, उनका भी संस्कृत में पुनरुद्धार करके यथास्थल इस ग्रन्थ में उल्लेख किया गया है ।

तिब्बती-अनुवाद में अनुपलब्ध १३५ सूत्रों का अनुवाद

पूर्व में स्पष्ट हो चुका है कि देवनागरी- (मद्रास) संस्करण की अपेक्षा तिब्बती-अनुवाद में १३५ सूत्र कम हैं । जो देवनागरी में पञ्चम एवं षष्ठ पादों में हैं । तिब्बती में तो चार ही पाद हैं । अतः इस ग्रन्थ के पञ्चम एवं षष्ठ पाद में निर्दिष्ट १३५ सूत्रों का अनुवाद तिब्बतीभाषा में श्री लोब्जङ् नोरबू शास्त्री के साथ मैंने किया है । इससे तिब्बती-अनुवाद की अपूर्णता दूर हुई । इसका तिब्बती-अनुवाद पृथक् प्रकाशित हो रहा है ।

पुनः सम्पादन क्यों ?

डॉ० टी.आर. चिन्तामणि सम्पादित 'कातन्त्रोणादिवृत्ति' ग्रन्थ जो मद्रास विश्वविद्यालय से १९३४ ई. में प्रकाशित हुआ था, उसी ग्रन्थ को पुनः सम्पादित करके प्रस्तुत कर रहा हूँ । परन्तु ऐसा क्यों ? इसका विस्तृत उत्तर यह है कि पूर्व सम्पादक ने कन्नड-लिपि से देवनागरी में रूपान्तरण

करके इस ग्रन्थ को उपलब्ध कराया तथा जो पाठ उन्हें असङ्गत प्रतीत हुए तदर्थ बृहत् कोष्ठक [] में स्वकल्पित पाठ भी उन्होंने दिए हैं तथा जो पाठ पाण्डुलिपि में स्पष्ट ज्ञात नहीं हुए उनकी सूचना भी सम्पादक ने टिप्पणी में दी है । अतः सम्पादक डॉ० टी.आर. चिन्तामणि का यह कार्य श्लाघनीय है । परन्तु इस ग्रन्थ में बहुत से पाठ अपूर्णतया प्रकाशित हैं तथा कुछ भ्रष्ट या सन्दिग्ध पाठ भी हैं । कुछ पाठों पर तो सम्पादक ने ही प्रश्न चिह्न लगाया है, जो उनकी समझ में नहीं आये । इसमें कातन्त्र-व्याकरण के शब्दानुशासन-भाग के सूत्र भी अपूर्णतया उद्धृत हैं तथा कुछ परिभाषाएँ एवं न्यायवचन भी अपूर्ण रूप में उल्लिखित हैं । मैंने ग्रन्थ के बङ्ग-संस्करण तथा तिब्बती-अनुवाद के आधार पर इस देवनागरी-संस्करण के अनेक असङ्गत, भ्रष्ट, सन्दिग्ध तथा अपूर्ण पाठों के समाधान करने का प्रयास किया है । संयोग से मुझे पञ्चपादी उणादि के अनेक प्राचीन वृत्तिग्रन्थ भी प्राप्त हो गए, जिनसे पाठ-संशोधन में बहुत साहाय्य प्राप्त हुआ । मेरे द्वारा जो पाठ-संशोधन किए गए उन्हें सम्बद्ध स्थलों पर ही देखा जा सकता है । तिब्बती-अनुवाद, एवं बङ्ग-संस्करण में जो इस ग्रन्थ की अपेक्षा अधिक पाठ मिले, उनका भी संस्कृत में पुनरुद्धार किया गया है ।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से संस्कृत ग्रन्थों का बहुत प्रचार-प्रसार हो रहा है, इसलिए राष्ट्रभाषा में इस ग्रन्थ की हिन्दी-टीका भी की गई । जिसमें सूत्रार्थ तथा प्रत्येक औणादिक शब्द की कातन्त्र व्याकरण के अनुसार सिद्धि दिखाई गई है ।

सम्पादन के अन्तर्गत किए गए कार्यों को उदाहरणार्थ निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है—

- (१) सूत्रपाठ-सम्बन्धी असङ्गति का निराकरण करके अपने द्वारा कल्पित सङ्गत पाठ को लघु कोष्ठक () के अन्दर रखा गया तथा उसके औचित्य का प्रतिपादन पाद-टिप्पणी में किया गया है। बृहत् कोष्ठक [] में पूर्व सम्पादक का पाठ है।
- (२) कहीं अत्यन्त असङ्गत पाठ को वहाँ से हटाकर पाद-टिप्पणी में म.सं. (मद्रास-संस्करण) इस सङ्केत के साथ रखा गया तथा उसके स्थान पर संशोधित पाठ किया गया।
- (३) इस ग्रन्थ में समुद्धृत कातन्त्र व्याकरण के अपूर्ण सूत्रों तथा अपूर्ण न्यायवचनों की पूर्ति सन्दर्भ-सहित की गई।
- (४) इस संस्करण के अशुद्ध पाठों की विचारणा के समय इसी के बङ्ग-संस्करण (बं.सं.) एवं तिब्बती-अनुवाद (ति.अनु.) के शुद्ध प्रामाणिक पाठ भी दिए गये।
- (५) इस संस्करण के अशुद्ध एवं भ्रष्ट पाठों के समाधानार्थ प्रामाणिकता हेतु पञ्चपादी-उणादिवृत्तियों में उज्ज्वलदत्त कृत उणादिवृत्ति, श्वेतवनवासी आदि की उणादिवृत्तियों तथा दशपाद्युणादिवृत्ति एवं भोजकृत उणादिग्रन्थ से प्रभूत उद्धरण दिए गये हैं।
- (७) दुर्गवृत्ति में कुछ औणादिक शब्दों की धातु से पद-व्यवस्था के अनुसार व्युत्पत्ति-पाठ की असङ्गति भी

देखने को मिली । अतः ऐसे बहुत से पाठों पर भी विचार किया गया ।

- (८) इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में जो मङ्गलाचरण पद्य की व्याख्या मुद्रित है उसे तिब्बती-अनुवाद के आधार पर मैंने संस्कृत में करके दिया है । ऐसे अनेक अतिरिक्त पाठों का तिब्बती से संस्कृत में पुनरुद्धार किया गया है ।
- (९) बङ्ग-संस्करण में १० अतिरिक्त सूत्र तथा तिब्बती-अनुवाद में इन्हीं सूत्रों में से ४ अतिरिक्त नवीन सूत्र प्राप्त हुए जो इस ग्रन्थ में नहीं थे, उन्हें यथास्थल देकर टिप्पणी में उनकी सूचना दी गई है ।
- (१०) इस ग्रन्थ में पञ्चम पाद के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण के रूप में निर्दिष्ट पद्य को इस तरह बिन्दुओं के साथ देकर पूर्व सम्पादक ने अपूर्णता सूचित की थी, मेरे द्वारा इस पद्य की पूर्णता वहाँ प्रदर्शित की गई है ।
- (११) इस ग्रन्थ के मूल भाग में अनेक जगह 'एवमन्येऽप्यनुसर्तव्या', 'एवमादयो द्रष्टव्याः' इस प्रकार के अनेक निर्देश हैं, जिनसे सूत्र-द्वारा निर्दिष्ट उदाहरणों के अलावा अन्य उदाहरणों की निष्पत्ति करने की सूचना दी गई है । मैंने ऐसे स्थलों पर पञ्चपादी- उणादिवृत्तियों से उसी प्रकार के अन्य उदाहरणों का हिन्दी-टीका के अन्तर्गत उल्लेख कर दिया है ।
- (१२) इसमें प्रायः कातन्त्र व्याकरण के उद्धृत सभी सूत्रों तथा न्यायवचनों के पूर्ण सन्दर्भ मैंने दिये हैं ।
- (१३) इस ग्रन्थ में बहुशः उद्धृत कोऽनुबन्धो यण्वद्- भावार्थः,
अकार इज्वद्भावार्थः, कारितसंज्ञा, डोऽनुबन्धः

अन्त्यस्वरादिलोपार्थः, कपिलिकादित्वाल्लत्वम्, सन्ध्यक्षरान्ता-
नामाकारः, 'इदनुबन्धत्वान्नागमः' इत्यादि अनेक पारिभाषिक
वचनों का विवरण कातन्त्र व्याकरण के अनुसार
सन्दर्भपूर्वक हिन्दी-टीका में दिया गया है ।

(१४) पूर्व सम्पादक-द्वारा इस ग्रन्थ में बहुत से पाठ सन्धि-
रहित रखे गए । उन्हें यथावत् रहने दिया गया है ।

हिन्दी टीका- व्याकरण के विभिन्न सम्प्रदायों में उणादिसूत्रों की
रचनायें हुई तथा उन पर वृत्ति एवं व्याख्याएं भी की गई, किन्तु
राष्ट्रभाषा हिन्दी में अभी तक स्वतन्त्र रूप से कोई ऐसी व्याख्या
या टीका नहीं की गयी जिसमें सभी औणादिक शब्दों की
सूत्रनिर्देशपूर्वक सिद्धि तथा शब्द के सभी अर्थनिर्देश हों । मैंने
इसी न्यूनता को दूर करने के लिए इस 'कातन्त्र-उणादिवृत्ति' की
'हिन्दी-टीका' करने का भी निश्चय किया था । इस 'हिन्दी-टीका'
में प्रत्येक सूत्र का अर्थ, तथा प्रत्येक औणादिक-शब्द की
कातन्त्र-सूत्रों के अनुसार साधनिका की तथा उस शब्द के सभी
अर्थों के विभिन्न ग्रन्थों से उद्धरण भी दिए ।

हिन्दी-टीका में सम्पादित कार्य का संक्षिप्त विवरण इस
प्रकार है-

१. प्रत्येक सूत्र का अर्थ ।
२. प्रत्येक उदाहरण की कातन्त्र व्याकरण के अनुसार
सिद्धि ।
३. सभी धातुओं के गण तथा धातुसंख्या का संस्थान से
प्रकाशित 'कलापव्याकरणम्' ग्रन्थ के आधार पर
निर्देश ।

४. प्रकृति-प्रत्यय का विभागशः निर्देश ।
५. सभी शब्दों की व्युत्पत्ति ।
६. मेदिनीकोश, वैजयन्तीकोश, विश्वप्रकाश, अनेकार्थसङ्ग्रह-कोश, अमरकोश, दयानन्द कृत उणादिकोश, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, दशपाद्युणादिवृत्ति, सरस्वतीकण्ठा-भरण, उज्ज्वलदत्तकृत-उणादिवृत्ति, श्वेतवनवासिकृत-उणादिवृत्ति आदि ग्रन्थों से औणादिक शब्द के अनेक अर्थों के उद्धरण दिए गए हैं ।
७. इस कातन्त्र-उणादि के जो शब्द पाणिनीय-उणादि में भिन्न धातु या भिन्न प्रत्यय से निष्पन्न होते हैं, उनके तुलनात्मक सन्दर्भों का पूर्ण विवरण भी प्रदत्त है ।
८. इस ग्रन्थ की हिन्दी टीका में ११७९ शब्द विवेचित हैं ।

प्रवृत्तिनिमित्त-

जब मैं संस्कृत की प्रथमा कक्षा में पढ़ रहा था तभी से व्याकरण विषय के प्रति मेरी अभिरुचि हो गई थी । शब्दों के साधुत्व एवं शब्दार्थ का सही बोध व्याकरण से होने के कारण तथा सभी शास्त्रों में व्याकरण की अपरिहार्यता को देखकर मध्यमा से आचार्य पर्यन्त मैंने मुख्य विषय के रूप में व्याकरण को ही अपनाया । 'पञ्चाङ्गं व्याकरणम्' इस कथन के अनुसार व्याकरण के पाँच अङ्ग होते हैं, जिनमें उणादिसूत्रों का अपना विशेष स्थान है, परन्तु इनको अध्ययन-अध्यापन में पर्याप्त स्थान न मिलने से इनकी उपेक्षा हुई । फलतः औणादिक शब्दों के प्रकृत्यर्थ एवं प्रत्ययार्थ के विवेक से लोग वञ्चित हुए । इसकें विपरीत शास्त्रकारों में कुछ ने शब्दानुशासन के अन्तर्गत ही उणादि

का समावेश किया, फिर भी इसका अपेक्षित प्रचार-प्रसार नहीं हो सका । उणादि पर अनेक व्याख्याएँ एवं टीकाएँ भी लिखी गयीं, जिनका परिचय दिया जा चुका है । अनेक अप्रकाशित ग्रन्थों को प्रकाशित किया गया तथा भ्रष्ट एवं अशुद्ध पाठों वाले ग्रन्थों को सम्पादित करके प्रकाशित किया गया ।

इसी क्रम में मैंने व्याकरण में उणादि-विषयक कार्य करने का निश्चय किया । एतदर्थ संस्थान के सम्पादक भिक्षु लोब्जङ् नोरबू शास्त्री जी से इस विषय पर वार्ता हुई । श्री शास्त्री जी ने तिब्बती एवं संस्कृत दोनों भाषाओं में विद्यमान व्याकरण ग्रन्थ पर कार्य करने की आवश्यकता प्रतिपादित की । तदनुसार शास्त्री जी के साथ इस विषय पर संस्थान के डॉ० जानकीप्रसाद द्विवेदी (उपाचार्य, संस्कृत विभागाध्यक्ष) जी से सम्पर्क किया गया । डॉ० द्विवेदी ने संस्थान में प्रस्तुत अपनी व्याकरणग्रन्थ-पुनरुद्धार-अनुवादयोजना के विषय में बतलाया और तिब्बती-संस्कृत में विद्यमान 'कातन्त्रोणादिसूत्र' ग्रन्थ पर कार्य की आवश्यकता प्रतिपादित की । मैंने नम्-ख-सङ्पो द्वारा अनूदित 'कातन्त्रोणादिसूत्रों' का तिब्बती-अनुवाद तथा दोर्जे ग्यलछेन द्वारा अनूदित दुर्गसिंह कृत उणादिवृत्ति का तिब्बती अनुवाद श्री नोरबू शास्त्री के सहयोग से देखा तो उसमें मद्रास से प्रकाशित देवनागरी-संस्करण के पाठों से पर्याप्त वैषम्य पाया । डॉ० टी.आर. चिन्तामणि-द्वारा सम्पादित, तथा मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित 'कातन्त्रोणादिवृत्ति' को जब देखा तब उसमें अनेक भ्रष्ट एवं अपूर्ण पाठ देखने में आए । इसके अलावा इसी ग्रन्थ के बङ्ग-संस्करण में भी यही स्थिति मिली । तिब्बती-अनुवाद में २६७ सूत्र अनूदित थे जबकि देवनागरी में ३९९ सूत्र निर्दिष्ट

थे । दोनों संस्करणों में विद्यमान दुर्गवृत्ति के पाठों में भी अन्तर देखा गया । इसका विस्तृत विवरण पूर्व में दिया जा चुका है । तिब्बती-अनुवाद में भी सूत्रपाठ एवं वृत्तिपाठ अधिकांशतः अशुद्ध एवं भ्रष्ट प्राप्त हुए तथा तिब्बती में देवनागरी की अपेक्षा १३२ सूत्र कम भी थे । अतः तिब्बती-अनुवाद की इस अपूर्णता तथा इस ग्रन्थ के तीनों संस्करणों में परस्पर सूत्रसंख्या, पादसंख्या एवं पाठों में वैषम्य, पाठगत भ्रष्टता एवं न्यूनाधिक्य आदि को देखकर इसके समाधानार्थ एक उत्कृष्ट संस्करण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से संस्थान-द्वारा इस पर कार्य करने की स्वीकृति प्राप्त की । पहले तो मैं इसके विशुद्ध सम्पादन तक ही सीमित रहा किन्तु फिर बाद में एक 'हिन्दी टीका' का भी विचार हुआ तथा उसमें सूत्रार्थ एवं औणादिक शब्द की कातन्त्र व्याकरण के अनुसार शब्दसिद्धि, कोशों के आधार पर शब्द के अनेक अर्थों का प्रदर्शन एवं अन्य उणादिग्रन्थों से पाठभेद आदि कार्य करने का निर्णय लिया गया । पूर्व निर्धारित कार्य से इन अंशों के और बढ़ जाने से इस ग्रन्थ का आकार भी बढ़ गया । मैंने संस्थान में संस्कृत-अध्यापन के साथ ही इस कार्य को एक निश्चित अवधि में उपरिवर्णित अपेक्षाओं की पूर्ति के साथ सम्पन्न किया है, जिसे विद्वत्सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

कृतज्ञता-प्रकाश- ग्रन्थ की सम्पन्नता में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जिन महानुभाव विद्वानों से प्रेरणा तथा सहायता प्राप्त हुई, उनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ । सर्वप्रथम बौद्धदर्शन के सुविज्ञ तथा संस्थान के निदेशक, माननीय प्रो० समदोङ्ग रिनपोछे जी, जिन्होंने मुझे

संस्कृत अध्यापन के साथ ही ग्रन्थविषयक अनुसन्धानकार्य-हेतु अनेकशः प्रेरित और निर्दिष्ट भी किया, उन्हीं की प्रेरणा के फलस्वरूप मैंने तिब्बती-भाषा एवं संस्कृत-भाषा में विद्यमान प्रकृत ग्रन्थ को अपना कार्य-विषय बनाया, उन्होंने इस ग्रन्थ के विशुद्ध सम्पादन की योजना को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया एवं कार्य-अवधि में इस कार्य की स्थिति से मैं उन्हें जब भी अवगत कराता रहा तब उनसे मार्ग निर्देशन भी प्राप्त होता रहा । अतः मैं उनके प्रति विनीतभाव से आभार प्रकट करता हूँ तथा विद्याक्षेत्र में प्रगति हेतु शुभाशीष की कामना भी करता हूँ । बौद्धदर्शन के प्रख्यात विद्वान् तथा संस्थान के रिसर्च प्रोफेसर श्रद्धेय डॉ० रामशङ्कर त्रिपाठी जी के निरन्तर प्रोत्साहन-प्रेरणा-निर्देशन आदि से सम्पादन में गतिशीलता तथा इसे शीघ्र प्रस्तुत करने में जो सहायता प्राप्त हुई है, तदर्थ मैं प्रो० त्रिपाठी जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । प्रो० त्रिपाठी जी ने अश्वघोषकृत 'बुद्धचरितम्' ग्रन्थ पर संस्कृत व्याख्या का कार्य भी सौंप दिया है, जिसे भगवान् बुद्ध की अनुकम्पा से अवश्य ही यथासमय प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगा ।

संस्थानीय संस्कृतविभाग के प्रो० डॉ० कामेश्वरनाथ मिश्र जी, पूज्य गुरुवर्य पं० श्रीशशिधर मिश्र जी, एवं प्रोफेसर श्रीनारायण मिश्र जी आदि महानुभावों का भी मैं आभारी हूँ, जिनसे प्रसङ्गतः अपेक्षित सहयोग प्राप्त हुआ । सार्वभौम संस्कृत-प्रचार-संस्थान के संचालक पूज्य पं० श्री वासुदेव द्विवेदी शास्त्री जी, जो संस्कृतभाषा के प्रचार-प्रसारार्थ पूर्णतया समर्पित हैं, के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा परम कर्तव्य है । श्री शास्त्री जी के सान्निध्य में मुझे रहकर बहुत कुछ

सीखने का अवसर प्राप्त हुआ तथा इस कार्य में उनसे उणादिग्रन्थों की प्राप्ति भी हुई । इस कार्य योजना के प्रस्तावक डॉ० जानकीप्रसाद द्विवेदी जी, संस्कृतविभागाध्यक्ष ने इसके बङ्ग-संस्करण के पाठान्तरों का सङ्कलन कराया तथा कातन्त्र-व्याकरण से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का समाधान भी कराया, तदर्थ उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

संस्थान के कुलसचिव, डॉ० कैलाशपति सिंह जी तथा उपकुलसचिव, श्री छेरिंग डक्पा जी के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने यथासमय अपेक्षित प्रशासनिक सुविधाओं को प्रदान किया तथा इसी के साथ शान्तरक्षित ग्रन्थालयाध्यक्ष आचार्य श्री नवाड् शेरब जी का भी आभारी हूँ, जिन्होंने अपेक्षित ग्रन्थोपलब्धि तथा कम्प्यूटर-द्वारा इस ग्रन्थ के प्रकाशन की व्यवस्था सम्पादित की । प्रकाशन-विभाग के इंचार्ज श्री समतेन छोफेल जी का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने प्रकाशन की दिशा में इसे अग्रसर किया ।

इसी ग्रन्थ के तिब्बती-अनुवाद के सम्पादक तथा प्रस्तुत ग्रन्थ की योजना के सहभागी भिक्षु लोब्जङ् नोरबू (सुमतिमणि) शास्त्री जी का तो विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य में प्रवृत्त कराया तथा तिब्बती-अनुवाद के पाठान्तरों का सङ्कलन कराया । इनके द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थ का तिब्बती-अनुवाद संस्थान से पृथक् प्रकाशित हो रहा है । पुनरुद्धार-योजना के सम्पादक भिक्षु नवाड् समतेन जी का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मुझे तिब्बती-संस्करण से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण तथ्यों से परिचित कराया ।

श्री एम० एल० सिंह भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इसे समुचित ढंग से शुद्ध रूप में कम्प्यूटर-यन्त्र द्वारा मुद्रित करके ग्रन्थ-प्रकाशन में यथोचित सहयोग किया ।

तद्विद्वांसोऽनुगृह्णन्तु चित्तश्रोत्रैः प्रसादिभिः ।
 सन्तः प्रणयिवाक्यानि गृह्णन्ति ह्यनसूयवः ।
 न चात्रातीव कर्तव्यं दोषदृष्टिपरं मनः ।
 दोषो ह्यविद्यमानोऽपि तच्चित्तानां प्रकाशते ॥
 (श्लोकवार्तिक-प्रतिज्ञाश्लोक ३-४)

भाद्रपदकृष्ण-

श्रीकृष्णजन्माष्टमी-वि.सं.२०४९

दिनाङ्क : २१-८-१९९२

सम्पादक एवं टीकाकार,

डॉ० धर्मदत्त चतुर्वेदी

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान,

सारनाथ, वाराणसी

साङ्केतिक शब्द-सूची

| | | | |
|--------------|-----------------------|-----------|----------------------|
| अ. | अदादिगण, अध्याय | चु. | चुरादिगण |
| अ. को. | अमरकोश | जु. | जुहोत्यादिगण |
| अनु. | अनुबन्ध | त. | तनादिगण |
| अने. | अनेकार्थसङ्ग्रहकोश | तत्त्व. | तत्त्वबोधिनी टीका |
| अ. सू. | अष्टाध्यायीयसूत्र | | (सिद्धान्तकौमुदी) |
| आ. | आत्मनेपद | ति.अनु. | तिब्बती-अनुवाद |
| इ. | इतिहास | ति.वृ.अ. | तिब्बतीवृत्ति-अनुवाद |
| उ. | उणादि | तु. | तुदादिगण, तुलनात्मक |
| उज्ज्वल. | उज्ज्वलदत्तकृत- | दया.उ.को. | दयानन्द उणादिकोश |
| | उणादिवृत्ति | दश.वृ. | दशपाद्युणादिवृत्ति |
| उ.म.दी. | उणादिमणिदीपिका | दि. | दिवादिगण |
| उ.सू. | उणादि-सूत्र | दु.वृ. | दुर्गीसिंह-वृत्ति |
| एक. | एकवचन | दे.ना. | देवनागरीसंस्करण |
| का.कृ.धा. | काशकृत्स्न-धातुपाठ | द्र. | द्रष्टव्य |
| कात. | कातन्त्रव्याकरणसूत्र | द्वि. | द्विवचन |
| कात.उ. | कातन्त्र-उणादिसूत्र | धा. | धातु |
| कात.धातु. | कातन्त्र-धातुपाठ | धातु. | धातुपाठ |
| कात.रूप. | कातन्त्र-रूपमाला | न | नपुंसकलिङ्ग |
| कात.व्या. | कातन्त्र-व्याकरण | परि.सू. | परिभाषा-सूत्र |
| कात.व्या.बि. | कातन्त्रव्याकरणविमर्श | पा. | पाणिनि, पाद |
| का.वा. | कात्यायन-वार्तिक | पाठा. | पाठान्तर |
| कु. | कुमारसम्भव | पा.व्या. | पाणिनीय व्याकरण |
| क्री. | क्रियादिगण | पा.सू. | पाणिनीयसूत्र |
| ग्र.सं. | ग्रन्थ-संख्या | पुं. | पुल्लिङ्ग |
| ग.सू. | गण-सूत्र | पृ. | पृष्ठ |
| चा. | चान्द्र-व्याकरण | प्र.सर्व. | प्रक्रियासर्वस्वम् |

| | | | |
|------------|---------------------------------|-------------|-------------------------------------|
| बं.सं. | बङ्गसंस्करण | वैज.को. | वैजयन्तीकोश |
| बहु. | बहुवचन | वै.सि.कौ.उ. | वैयाकरणसिद्धान्त |
| बाल. | बालमनोरमाटीका (वै.सि.कौ.) | व्या.शा.इ. | कौमुदी (उणादि) व्याकरणशास्त्र का |
| भू. | भ्वादिगण | | इतिहास |
| मनु. | मनुस्मृति | श्वेत.वृ. | श्वेतवनवासि- |
| म.भा. | महाभाष्यम्(पतञ्जलि) | | उणादिवृत्ति |
| म.सं. | मद्रास-संस्करण | सं. | संख्या, संपादक |
| महा. | महाभारतम् | सरस्वती. | सरस्वतीकण्ठाभरण |
| मु.को. | मुकुन्दकोश | | (उणादिखण्ड, भोजकृत) |
| मेदिनी. | मेदिनीकोश | सि.कौ. | सिद्धान्तकौमुदी |
| यु.मी. | युधिष्ठिर मीमांसक | | (भट्टोजिदीक्षितकृत) |
| रघु. | रघुवंशमहाकाव्य | सि.चं. | सिद्धान्तचन्द्रिका |
| रघु.टी. | रघुनाथचक्रवर्तिटीका (अमरकोश) | | (सारस्वत व्याकरण) |
| रु. | रुधादिगण | सु. | स्वादिगण |
| रूप. | रूपमाला | स्त्री. | स्त्रीलिङ्ग |
| वा. | वार्तिक | हेम. | हेमचन्द्र |
| वा.प. | वाक्यपदीय | क्षी.त. | क्षीरतरङ्गिणी |
| वि.प्र.को. | विश्वप्रकाशकोश | | |
| वृ. | वृत्ति | | |

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठानि

| | |
|------------------------------------|---------|
| १. प्रकाशकीय (निदेशक) | क-ख |
| २. प्रास्ताविकम् (संस्कृतभाषायाम्) | १-१५ |
| ३. भूमिका (हिन्दी) | १६-५६ |
| ४. साङ्केतिकशब्द-सूची | ५७-५८ |
| ५. विषयानुक्रमणिका | ५९ |
| ६. प्रथमः पादः | १-८१ |
| ७. द्वितीयः पादः | ८२-१६० |
| ८. तृतीयः पादः | १६१-२२० |
| ९. चतुर्थः पादः | २२१-२८० |
| १०. पञ्चमः पादः | २८१-३१९ |
| ११. षष्ठः पादः | ३२०-३५७ |
| १२. परिशिष्टम् : | |
| (क) उणादिसूत्र-सूची | ३५८-३६५ |
| (ख) उणादिप्रत्यय-सूची | ३६६-३७० |
| (ग) औणादिकशब्द-सूची | ३७१-३९२ |
| (घ) ग्रन्थ-सूची | ३९३-३९६ |

॥ श्रीः ॥

आचार्यदुर्गासिंहविरचिता
कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

नमस्कृत्य गिरं भूरि¹ -शब्दसन्तानकारणम् ।
उणादयोऽभिधास्यन्ते बालव्युत्पत्तिहेतवे ॥

[भोटानुवादस्य पुनरुद्धारः²]

व्याख्या- नमस्कृत्येत्यादिस्तु विघ्नोपशमनाय सरस्वत्या
वागभिधेय-त्वान्नमस्करणम् । अनेन किं वैशिष्ट्यमिति चेत्,
भूमिशब्दसन्तानकारणम् । भूमेः शब्दास्तु भूमिशब्दाः, तेषां
भूमिशब्दानां यत् सन्तानं निरन्तरप्रवृत्तिस्तत्र कारणं हेतुरिति ।
यतो वाक्स्वरूपावबोधनं सरस्वत्यैव तस्मात् सैव प्रभवित्री ।
सरस्वती एवात्र शरीरिणी । सा नमस्क्रिययाभिद्योत्यते । सरस्वतीं
नमस्कृत्य किमभीष्टं साध्यमिति चेदाह- उणादयोऽभिधास्यन्ते ।
येषां प्रत्ययानामादौ 'उण्' इति [ते उणादयः] प्रयोज्याः ।
अभिधास्यन्ते तु करिष्यन्ते अनेन (मया) इति कारकाभि-
सम्बन्धः ।

कारुप्रभृतिशब्दानां न विशेषेण बोधकत्वमिति, किमेतेन
निश्चितार्थेषु (ते) न प्रवर्तन्ते? प्रवर्तन्ते । न चैतेषामवयवार्था

1. भूमि- (भूम) शब्दसन्तानकारणम्- ति०वृ०अनु० (तनयुर नो न-छोक्)
2. मद्रास से प्रकाशित दुर्गासिंह-कृत उणादिवृत्ति में उपर्युक्त मङ्गलाचरण श्लोक की व्याख्या उपलब्ध नहीं है । परन्तु दुर्गासिंह-कृत उणादिवृत्ति के 'भोटानुवाद' में पर्याप्त एवं सुन्दर व्याख्या प्राप्त होती है । इसी प्रकार अनेक स्थलों पर भोटानुवाद में कुछ महत्त्वपूर्ण एवं अधिक पाठ मिलता है । ऐसे पाठों का तिब्बती से संस्कृत में पुनरुद्धार किया गया है । मङ्गलाचरण-पद्य का उपर्युक्त भोट-पुनरुद्धार द्रष्टव्य है ।

द्रष्टव्याः । यथा 'कर्ता' इत्यत्र कारकार्थः । अभिधानमपि त्रिविधमवबोधव्यम् । अनिश्चितेऽपि स्यादिति चेन्मैवम् ।

कारुशब्दस्य विशेषव्युत्पत्तिर्न भाषिताऽपितु शिल्पिविशेषे भाषितमिदम् । नापि कारकक्रिययोर्वैशिष्ट्यम्, (अपितु) साधारणः कर्ता । तस्मादेतेषां व्युत्पत्तिकरणेन किम्? तथा च वृत्तिकारेणाप्यभिहितम्—

प्रत्ययाः पठिताश्चात्र रूढाद्यर्थेषु वृक्षवत्¹ ।

कृतः । वृक्षकर्मादीनामपि विशेषार्थबोध एव न भवति इत्यभिहितम् ।

भाष्यकारेणापि किञ्चित् कथितम्—

उणादयोऽभिधानेन व्युत्पाद्यन्ते च तद्धिताः ॥

अन्यशास्त्रकारैः कथमाक्षिप्तम्—

'उणादिनामशब्दानां साध्यत्वमभिधीयते' इति ॥

इमे नूनमपेक्षिताः कात्यायनादिभिरन्यस्मिन् उणादि-विशेषावबोधो न कर्तव्यः ? इति न विवद्यम् । अत एवाह-बालव्युत्पत्तिहेतवे । बालैर्विशेषावबोधनार्थाय विशेषावबोधस्य हेतवः एतेऽभिधास्यन्ते । अक्षरादीनामेव विशेषावबोधो न, नामशब्दा अपि बालैरवबोधार्थाः । प्रकृतिप्रत्ययावनुसृत्य एते विशेषेणावबोद्ध्याः । कृता इति । सूत्रकारेणापि विशेषावबोधकस्य पक्षत्वं स्मृतिभिरप्युक्तम् । 'उणादयो भूतेऽपि' (कात. ४/४/६७) 'भविष्यति गम्यादयः' (कात. ४/४/६८) इति उणादिष्वपि ।

1. द्र०-वृक्षादिवदमी रूढाः, कृतिना न कृताः कृतः ।

कात्यायनेन ते सृष्टा विबुद्धप्रतिबुद्धये ॥ (कात. कृतप्रकरणे)

विशेषकालो न । 'ताभ्यामन्यत्रोणादयः' (कात. ४/६/५२) ।
कारकविशेषा अपि दर्शिताः ।

उणादिनिर्दिष्टाः पृथक् पृथक् निर्दिष्टव्याः । यथा
'जागुः कृत्यशन्तृङ्व्योः' (कात. ४/१/८) 'कृगृजागृभ्यः क्विः'
(उ०सू० ३/३७) 'युवुझामनाकान्ताः' (कात. ४/६/५४)
'गण्डिमण्डिभ्यां झः' (उ. ३/१६) 'नाल्विष्णवाय्यान्तेलुषु'
(कात. ४/१/३७) 'स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्य इन इत्नुः' (उ. १-२९)
एवमादयः । अस्य निर्देशस्य प्रारम्भात् प्रयोगाः ।

हिन्दी टीका प्रचुर शब्दों की सन्तान-परम्परा में हेतुभूत सरस्वती को नमस्कार करके बालकों के विशेष शब्दार्थ-ज्ञान हेतु उणादि प्रत्ययों का अभिधान (कथन) किया जाएगा ।

प्रथमः पादः

१. कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूदसनिजनिचरिचटिभ्य उण् ११-१।

दु०वृ० एभ्यो धातुभ्यः..... [उण्प्रत्य] यो भवति ।
उणादयो भूतेऽपि । भूते काले । अपिशब्दाद् वर्तमाने
भविष्यति च । 'ताभ्यामन्यत्रोणादयः' । ताभ्यां
सम्प्रदानापादानाभ्यामन्यस्मिन् कारके कर्तरि कर्मादौ यथाभिधानं
'प्रत्ययः परः' इति परिभाषया उणादयो भवन्ति । णकार-
इज्वद्भावात् । 'डु कृञ् करणे' करोतीति कारुः शिल्पी ।
'वा गतिगन्धनयोः' वातीति वायुः समीरः । 'धेट् पा पाने'
पिबतीति पायुः अपानम् । 'जि जये' जयतीति जायुः
औषधम् । 'डु मिञ् प्रक्षेपणे' मिनोतीति मायुः पित्तम् ।
गोपूर्वस्यान्योऽर्थः गां वाचं मिनोतीति गोमायुः सुगालः । 'स्वद
स्वादने' स्वदते स्वादुः मधुरम् । 'राध साध संसिद्धौ' साध्यतीति
[साध्नोतीति] साधुः कुशलः 'अशूङ् (अशू) व्याप्तौ' अश्नुत

इति आशु शीघ्रम् । 'दृ' विदारणे' दृणातीति दारुः काष्ठम् ।
 'षणु' दाने' सनोतीति सानुः प्रस्थम्, शृङ्गम्, पर्वतैकदेशश्च ।
 'जन जनने' जायत¹ इति जानुः अष्ठिवान्² (अष्ठीवान्) ।
 'चरिः गत्यर्थः' चरतीति चारु शोभनम् । 'चट स्फुट भेदे'
 चटतीति³ चाटुः पटुवादी ।

[भोटानुवादादतिरिक्तपाठस्य पुनरुद्धारः]

डु कृञ् करणे । ड्वनुबन्धस्तेन पूरणेऽर्थे त्रिमक्
 (कात.४/५/६८) विशेषार्थत्वेन प्रयोगः । 'योऽनुबन्धोऽप्रयोगी'
 (कात.३/८/३१) इत्यवगम्य सर्वानुबन्धेषु एवं प्रतिबोद्धव्यम् ।
 'षणु दाने' धात्वादेशः सः (कात.३/८/२४) निमित्ताभावे
 नैमित्तकस्याप्यभावः (परि.३४) इत्यनेन णकारस्य नकारः ।
 उकारोऽनुबन्धस्तु 'उदनुबन्धपूर्विलां क्त्व' (कात.४/६/८४) इति
 विशेषार्थः ।

कृ च, वा च, पा च. इत्यादीनां समासः । तत्स्था
 लोप्या विभक्तयः (कात.२/५/२) उक्तार्थानामप्रयोगः (परि.सू.४९)
 इत्यनेन 'च' शब्दस्य लोपः । 'द्वन्द्वः समुच्चयो नाम्नोर्बहूनां

1. वृत्ति में निर्दिष्ट 'जायते' इस व्युत्पत्ति के लिए 'जनी प्रादुर्भावे' ऐसा धातुपाठ अपेक्षित है । जन जनने (अ.८) धातु से 'जजन्ति' ऐसी व्युत्पत्ति अपेक्षित है, परन्तु वृत्ति में 'जायते' निर्दिष्ट है । अतः जन धातु के अनुसार जजन्ति, तथा जायते इस व्युत्पत्ति के अनुसार. यहाँ जनी प्रादुर्भावे (दि.९४) धातुपाठ अपेक्षित है ।
2. अष्ठिवान्. म.स. । अष्ठीवान् ऐसा दीर्घ ईकार घटित पाठ जो कि "मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्" (पा.सू.६/३/११९) इस सूत्र के अनुसार उचित प्रतीत होता है । द्र०-जानुरष्ठीवदस्त्रियौ (अ.को. २/६/७२) ।
3. चट स्फुट भेदे (चु.१४१) धातु के चौरादिक होने से 'चाटयति' होना चाहिए । इन् (णिच्) न करने पद ही 'चटति' ऐसी व्युत्पत्ति की जा सकती है ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

5

वापि यो भवेत्' (कात.२/५/११) इत्यनेन द्वन्द्वसमासः ।
 अन्यान्यप्रयोगस्य एकैकांशप्रदानत्वाद् अंशादीनां बहुत्वे
 पञ्चमीबहुवचने भ्यस् । रेफसोर्विसर्जनीयः (कात.२/३/६३) इति
 सकारस्य बिन्दुद्वयः (तिलकद्वयं) स्यात् । 'उण्' इत्यतः
 प्रथमैकवचने सिः । सिघटकः इकारः 'सौ सः' (कात.२/३/३२)
 इति विशेषार्थः । व्यञ्जनाच्च (कात.२/१/४९) इत्यनेन
 सिलोपः । 'अपरो लोप्योऽन्यस्वरे यं वा' (कात.१/५/९)
 इत्यनेन विसर्गलोपः । 'न विसर्जनीयलोपे पुनः सन्धिः' .
 (कात.१/५/१६) 'चटिभ्य उण्' इत्यत्र न सन्धिः ।

उणादयो भूतेऽपि (कात.४/४/६७) इति भूते काले ।
 अपिशब्दात् वर्तमानेऽपि । ताभ्यामन्यत्रोणादयः इत्यनेन ताभ्यां
 सम्प्रदानापादानाभ्यामन्यस्मिन् कारके कर्मण्यादौ च यथाभिधानं
 'प्रत्ययः परः' इति परिभाषया एभ्यो धातुभ्य उणादयो भवन्ति ।
 णकारस्तु 'सिद्धिरिज्वद् ञ्णानुबन्धे' (कात.४/१/१) इत्यनेन
 इज्वद्भावार्थस्तेन इज्वद्भावेन ऋकारस्य आर्बुद्धिः । 'व्यञ्जनम्
 अस्वरं परं वर्णं नयेत्' (कात.१/१/२१) । पातिपिबतिभ्यामपि
 आयिरिति 'आयिरिच्यादन्तानाम्' (कात.३/६/२०) ऐ आय्
 (कात.१/२/१३) इत्यायः ।

दृणातेर्वृद्धौ इज्वद्भावेन अस्योपधादीर्घः । जनेरपि ।
 'जनिवध्योश्च' (कात.३/४/६७) इत्यनेन ह्रस्वत्वं न, उणादीनां
 संज्ञाशब्दत्वात्, लक्षणविशेषप्रतिपादनाच्च ।

'कारु' प्रभृतिशब्देभ्यः प्रथमैकवचने सिः, रेफसो-
 र्विसर्जनीयः । नपुंसकेऽर्थे तु 'नपुंसकात् स्यमोर्लोपो न च
 तदुक्तम्' (कात.२/२/२६) इत्यनेन स्यमोर्लोपः । एवं सर्वं त्रितयं
 पृथक् पृथक् क्रियते ।

हिन्दी टीका कृ, वा, पा, जि, मि, स्वद्, साध्, अश्, द्, षण्, जन्, चर् तथा चट् इन सभी धातुओं से उण् प्रत्यय होता है । 'उणादयो भूतेऽपि' (कात.४/४/६७) इस कातन्त्र-नियम से उण् आदि प्रत्यय भूतकाल में तो होते ही हैं, 'अपि' शब्द के बल से वर्तमान एवं भविष्यत् अर्थ में भी होते हैं । 'ताभ्यामन्यत्रोणादयः' (कात.४/६/५२) इस सूत्र से उणादि प्रत्यय सम्प्रदान तथा अपादान से भिन्न कर्ता, कर्म आदि कारकों में होते हैं । इनका अभिधान प्रत्ययः परः (कात.३/२/१) इस परिभाषा-सूत्र के अनुसार प्रकृति से पर में होता है । 'उण्' में 'ण्' अनुबन्ध है । 'योऽनुबन्धोऽप्रयोगी' (कात.३/८/३१) इस सूत्र के अनुसार अनुबन्ध प्रयोगार्ह नहीं माने जाते^१ । उण् में णकार-निर्देश इज्चद्भाव^२ के लिए किया गया है । ज्-ण् अनुबन्ध वाले कृत् प्रत्ययों के आने पर यथासम्भव इच् में कहे गए उपधादीर्घ, वृद्धि आदि कार्य होते हैं^३ ।

कारुः डु कृञ् करणे (त.७) । करण=करना । 'करोति' इस व्युत्पत्ति में कृ धातु से उण् प्रत्यय, ण् अनुबन्ध का अप्रयोग, ण् अनुबन्ध के कारण 'सिद्धिरिज्चद् ञ्णानुबन्धे' (कात.४/१/१) सूत्र से इज्चद्भाव, इज्चद्भाव के कारण 'अस्योपधाया दीर्घो वृद्धिर्नामिनामिनिचट्सु' (कात.३/६/५) सूत्र से कृ में ऋ को आर्वृद्धि 'कार् उ' 'व्यञ्जनमस्वरं परं वर्णं नयेत्' (कात.१/१/२१) सूत्र से व्यञ्जन 'र्' का परवर्ण से संयोग 'कारु' 'धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्' (कात.२/१/१) सूत्र से लिङ्गसंज्ञा 'तस्मात् परा विभक्तयः' (कात.२/१/२) सूत्र के अनुसार सि प्रत्यय, 'रेफसोर्विसर्जनीयः' (कात.२/३/६३) से स् को विसर्ग । कारुः ।

१. कात०व्या० में अनुबन्धों को सीधे अप्रयोगार्ह कहकर हटा दिया जाता है । किन्तु पा०व्या० में अनुबन्धों की पहले इत्संज्ञा की जाती है, पुनः उनका लोप किया जाता है ।
२. सिद्धिरिज्चद् ञ्णानुबन्धे- (कात. ४/१/१) ।
३. अस्योपधाया दीर्घो वृद्धिर्नामिनामिनिचट्सु (कात. ३/६/५)

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

7

शिल्पी, कारीगर । विश्वकर्मणि ना कारुस्त्रिषु कारकशिल्पिनोः
(मेदिनी.रान्त.१५) ।

पाँच शिल्पी¹ - बढई, जुलाहा, नाई, धोती और चमार ।

वायुः वा गतिगन्धनयोः (अ.१७) । जाना, गन्ध देना । वाति ।
वा+उण्, 'आयिरिच्यादन्तानाम्' (कात.३/६/२०) से धातुस्थ आकार के
स्थान में आयि आदेश, शेष पूर्ववत् वायुः । समीर ।

पायुः धेट पा पाने (भू.२६४) । पीना । पिबति (अनेन तैलादिकम्)
(जिसके द्वारा तेल आदि को पीता है) । पा+उण्, पायुः । अपान
(गुदा) । गुदं त्वपानं पायुर्ना (अ.को.२/६/७३) ।

पाति रक्षति इति पायुः रक्षकः (वै.सि.कौ.उ.१/१) ।

जायुः जि जये (भू.१९१) । जीतना । जयति । जि+उण्,
'अस्योपधाया' (कात.३/६/५) सूत्र से धातुघटक इकार को वृद्धि से
ऐकार, 'ऐ आय्' (कात.१/१/१३) से ऐ को आय्, विभक्तिकार्य,
जायुः । औषध । जयत्यभिभवति रोगान् (जो रोगों को दबाता है) ।

मायुः डु मिञ् प्रक्षेपणे (सु.४) । फेंकना । मिनोति (विकारम्) (जो
विकार को फेंकता है) मि+उण्, मायुः । पित्त । कफ । मायुः पित्तं
कफः श्लेष्मा (अ.को.२/६/६२) ।

मिनोति प्रक्षिपति देहे ऊष्माणमिति मायुः (वै.सि.कौ.बाल.उ१/१) ।

गो(पूर्वक) मायु गोमायुः । सृगाल ।

-
1. तक्षा च तन्तुवायश्च नापितो रजकस्तथा ।
पञ्चमश्चर्मकारश्च कारवः शिल्पिनो मताः (अ०को० मणिप्रभा-
२/१०/५) ।

स्वादुः स्वद स्वादने (चु.१६३) । चखना । स्वदते । स्वद्+उण्, स्वादुः । मधुर । इष्ट । स्वादुर्मनोज्ञे मृष्टे च (वि.प्र.को.दान्त.७) ।

साधुः साध ससिद्धौ (दि.२३, सु.१६) । ससिद्धि पूरा करना, सिद्ध करना । साध्यति या साध्नोति । साध्+उण्, विभक्तिकार्य, पूर्ववत्, साधुः । कुशल, निपुण । सज्जन । कुलीन, सुन्दर, मनोहर । रमणीय, वणिक् । सुशील (बं.सं.) । साध्नोति परकार्यमिति साधुः (सि.कौ.बाल.-उ.१-१) । साधुर्वाधुषिके चारौ सज्जने चाभिधेयवत् (वि.प्र.को.धान्त.१२) ।

आशु अशू व्याप्तौ (सु.२२) । व्याप्ति=व्याप्त होना । अश्नुते अश्+उण्, उपधादीर्घ, लिङ्गसंज्ञा, सि. अव्यय होने से 'अव्ययाच्च' (कात.२/४/४) इस सूत्र से सिलोप, आशु । (अव्यय) शीघ्र । द्रुत जल्दबाजी ।

आशुः (पु.) 'अश्नुते सद्योऽध्वानमिति आशुः' अश्वः । अश् भोजने (क्री.८३) अश्यते भुज्यते शीघ्रं धान्यम् (दया.उ.को.१/१) । आशुर्धान्यान्तरे शीघ्रे (मेदिनी.शान्त.२) ।

दारुः (दारु) दृ विदारणे (क्री.१९) । विदारण=तोड़ना, फाड़ना । दृणाति । दृ+उण् वृद्धि-आर्, विभक्तिकार्य, दारुः । काष्ठ (लकड़ी) दारु (नपुं.) । यहाँ कर्तृपरक व्युत्पत्ति (जो काटता है) दृणाति से काष्ठ अर्थ उपलब्ध नहीं होता 'दीर्यति यत् (जो काटी जाती है) इस कर्मव्युत्पत्ति से काष्ठ अर्थ सुगमता से उपलब्ध हो जाता है । पुंनपुंसकयोर्दारुः (अ.को.-रामाश्रमी.२/४/१२) दारुः (पु.) दारु (नपुं.) दारुः स्यात् पित्तले काष्ठे देवदारौ नपुंसकम् (मेदिनी.रान्त.४७) ।

सानुः षणु दाने (त.२) । दान=देना । षण् में ष् को 'धात्वादेः षः सः' (कात.३/८/८४) सूत्र से स् तथा 'णो नः' (कात.३१/८/२५) सूत्र से ण् को न् । सनोति । सन्+उण्, उपधादीर्घादि पूर्ववत्, सानुः । पत्थर,

पर्वत का शिखर, पर्वत का एक भाग । सानुरस्त्री वने प्रस्थे वात्यामार्गाग्रकोविदे (मेदिनी.नान्त.२२) ।

जानुः जनी प्रादुर्भावे (दि.१४) । जायते । प्रादुर्भाव=उत्पन्न होना । जन जनने (अ.८.) जजन्ति । जन्+उण्, उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, जानुः । अष्टीवान् । जंघा या घुटना ।

चारु चर गतौ (भू.१८९) । गति=घूमना, भक्षण करना । चरति । चर्+उण्, उपधादीर्घादि, चारु । शोभन । सुन्दर । स्फुटवादी (बं.सं.) । चारुर्बृहस्पतौ पुंसि शोभने त्वभिधेयवत् (मेदिनी.रान्त.३३) ।

चाटुः चट स्फुट भेदे (चु०१४) । भेद=तोड़ना । चटति । चट्+उण्, उपधादीर्घादि, चाटुः । पटुवादी । कुशलवक्ता, प्रियवाक्य (बं.सं.) । चाटु प्रियं वाक्यम् (वै.सि.कौ.उ.१/३) ।

२. किञ्जरयोः श्रिण्भ्याम् ।१-२।

किञ्जरयोरुपपदयोः यथासङ्ख्यमाभ्याम् उण्प्रत्ययो भवति । 'शृ हिंसायाम्' किं शृणातीति किंशारुः धान्यशूकम् । 'इण् गतौ' जरामेतीति जरायुः गर्भवेष्टनम्^१ ।

किम् एवं जरा उपपद में रहने पर यथाक्रम शृ तथा इण् धातु से उण् प्रत्यय होता है । इसमें पूर्वसूत्र (१.१) से उण् पद की अनुवृत्ति होती है ।

किंशारुः शृ हिंसायाम् (क्री. १५) । हिंसा करना, दुःख देना । 'किं शृणाति । (=बाल के दूड को साफ करता है) किम् पूर्वक शृ+उण्, आर् वृद्धि, लिङ्गसंज्ञा, सि., स् को विसर्ग, किंशारुः । सस्यशूक । बाल का दूड (अ.को.२/२/२१) धान्यविशेष । शर, धान्यशूक ।

१. गर्भाशयवेष्टनम् (ति.अनु.१/२)।

कम्बल (बं.सं.) । किंशारुर्ना सस्यशूके विशिखे कङ्कपक्षिणि
(मेदिनी.रान्त.१३६) ।

जरायुः इण् गतौ (अ.१३) । जाना । जरामेति (जीर्णता को प्राप्त होता है) जरापूर्वक इण्+उण्, वृद्धि, आय् आदेश, विभक्तिकार्य,
जरायुः । गर्भाशय । गर्भ का आवरण । जिस चर्म में गर्भ लिपटा रहता है । गर्भाशयो जरायुः स्यादुल्बं च कललोऽस्त्रियाम्
(अ.को.२/६/३८) ।

३. वहिरहितलिपंशिभ्य उण् ११-३।

एभ्य उण्प्रत्ययो भवति । 'वह प्रापणे' । वहयत्य-
उह्यते [नेने]ति बाहुः भुजः । 'रह त्यागे' रहयतीति राहुः
ग्रहः । 'तल प्रतिष्ठायाम्' हेतौ तालयतीति तालुः वदनैकदेशः ।
पुनरुण्ग्रहणाद् उपधोपधस्याप्यकारस्य दीर्घः । 'पशि नाशने'
पंशतीति पांशुः रेणुः ।

वह रह तल् तथा पश् इन धातुओं से उण् प्रत्यय होता है ।
उण् में ण् अनुबन्ध प्रयोगार्ह नहीं होता ।

बाहुः वह प्रापणे (भूर६०) । प्रापण=पहुँचाना, ढोना । उह्यते अनेन
(कर्म) । वह+उण्, णानुबन्ध के कारण पूर्वोक्त सूत्र से इज्जद्भाव तथा
उपधादीर्घ, वकार को जकार, विभक्तिकार्य, बाहुः । भुजा ।

बाधते इति बाहुः, बाध लोडने, कु अन्त्यदकारस्य हकारादेशः
बाहुः (वै.सि.कौ.उ.१/२७) ।

राहुः रह त्यागे (चु.१७९) । छोड़ना, त्यागना । रहयति । रह+उण्,
उपधादीर्घ । राहुः । ग्रह । रहति त्यजति दीषान् (जो अनेक दोषों
को छोड़ता है) ।

गृहीत्वा चन्द्रं रहति त्यजतीति राहुः (वै.सि.कौ.उ.१/१) ।

तालुः तल प्रतिष्ठायाम् (चु.३६) । प्रतिष्ठा=स्थापना करना, किसी वस्तु को बैठाना । तालयति । तल्+उण्, उपधादीर्घ, विभक्तिकार्यं तालुः । मुख के अन्दर ऊपरी भाग जिसका स्पर्श जिह्वा करती है । (इससे इकार, चवर्ग एवं शकारादि वर्णों का उच्चारण होता है) ।

पा.उ.- तृ+जुण् ऋ को ल, त्रो रश्च लः (उज्ज्वल.१/५) ।

पांशुः (पांसुः) पशि नाशने (चु ३२) । नष्ट होना । 'पशि' में इकार अनुबन्ध से नागम होकर 'पंश्' रूप होता है । पंशति । पंश्+उण्, धातु को उपधादीर्घ, पांशुः (पांसुः^१) । रेणु । धूल । रेणुद्वयोः स्त्रियां धूलिः पांशुर्ना न द्वयोः रजः । (अ.को. २/८/९८) ।

यहाँ पूर्वसूत्र (१.१) से उण् पद की अनुवृत्ति हो सकती थी, पुनः प्रकृत सूत्र में 'उण्' पद का ग्रहण क्यों किया ? पुनः उण् ग्रहण करने से उपधा में भी उपधाभूत अकार को दीर्घ हो जाता है ।

४. कृके वचो घुण् ११-४।

कृकशब्दे उपपदेऽस्माद् घुण् प्रत्ययो भवति । 'वच परिभाषणे' कृकेण^२ शिरो.....वेण^३ वक्ति इति कृकवाकुः ताम्रचूडः ।

'कृक' शब्द के उपपद में रहने पर वच् धातु से घुण् प्रत्यय होता है । घ् अनुबन्ध के कारण चकार को ककार होता है ।

1. तालव्या अपि दन्त्याश्च सम्बसूकरपांसवः (वै.सि.कौ.उ.१/२७) ।

2. कृकेन गलेन वक्ति (अ.को.रामाश्रमी २/५/१७) ।

3. वृत्ति में-शिरो.....वेण ऐसी अपूर्ण व्युत्पत्ति निर्दिष्ट है । कृक शब्द का कण्ठ या गल अर्थ होता है । यहाँ शिरो..... इसकी पूर्ति शिरोधि से वेण 'इसकी पूर्ति-कण्ठीरव' शब्द से की जा सकती है । अर्थ=गले से स्पष्ट घोषणा ।

कृकवाकुः वच परिभाषणे (अ.३०भाषणे) । परिभाषण=बोलना ।
 कृकेण=कण्ठेन वक्ति (जो गले से बोलता है) । कृक(पूर्वक) वच्+घुण्,
 ण्- घ् अनुबन्धों का अप्रयोग, घ् अनुबन्ध के पर में रहने से
 'वचोऽशब्दे' (कात.४/६/६१) से चकार को ककार, उपधादीर्घ,
 विभक्तिकार्य, कृकवाकुः । ताम्रचूड़ (मुर्गा) ताम्र वर्ण का चूड़ा (जूटा)
 होने से 'ताम्रचूड़' कहा जाता है । कुक्कुट तथा कृकलास (बंसं.)
 मयूर । ताम्रशेखर (ति.अनु.) । कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः
 (अ.को. २/५/१७) । कृकवाकुर्मयूरेऽपि सरटे चरणायुधे
 (वि.प्र.को.कान्त.२१७) ।

कृके वचः कश्च (दश.वृ.१/११) कृक वच्+जुण (कृकेण गलेन
 वक्ति) कृकवाकुः ।

५. भृमृतृचरित्सरित [निम]स्जिशीङ्भ्य उः ।१-५।

एभ्य उप्रत्ययो भवति । भृज् भरणे बिभर्तीति भरुः
 भर्ता । 'मृङ् प्राणत्यागे' म्रियते अस्मिन्निति मरुः निर्जलो
 देशः । 'तृ प्लवनतरणयोः' तरतीति तरुः वृक्षः । चरिः
 गत्यर्थः । चरतीति चरुः हविष्यान्नम् ।..... 'त्सर छद्मगतौ'
 त्सरतीति त्सरुः खड्गमुष्टिः दण्डमुष्टिश्च । 'तनु विस्तारे'
 तनोतीति तनुः शरीरम् । 'दु^२ मस्जो'^३ मज्जतीति मद्गुः

1. 'बिभर्ति' रूप दु भृज् धारणपोषणयोः (अ. ८५) से होता है ।
 वृत्ति में निर्दिष्ट भृज् भरणे (भू. ५९७) भौवादिक धातु से 'भरति'
 ऐसी व्युत्पत्ति होनी चाहिए, किन्तु वृत्ति में जो बिभर्ति व्युत्पत्ति की
 गई है । उसके लिए 'दु भृज् धारणपोषणयोः' धातुपाठ होना
 चाहिए । तिब्बती में भी यही पाठ है ।
2. द्वनुबन्धादथुः (कात.४/५/६७) ति.अनु.१/५ ।
3. ति.अनु. (१/५) अति.पा. ल्वाद्योदनुबन्धाच्च (कात.४/६/१०४)
 नाम्यन्तयोर्धातुविकरणयोरुणः (कात.३/५/१) इत्यनेन ऋकारस्य अर् ।
 न्यङ्क्वादीनां हश्च घः (कात.४/६/५७) इति मस्ज् इत्यस्य जकारस्य
 गकारः ।

प्राणिविशेषः, जलवायसो वा । 'शीङ् स्वप्ने' शेते शयुः
अजगरः ।

भृ, मृ, तृ, चरु, त्सरु, तनु, मस्जु, शीङ् इन सभी धातुओं से
उ प्रत्यय होता है । यहाँ 'ण्' अनुबन्ध की निवृत्ति हुई है ।

भरुः भृज् भरणे (भू.५९६) । भरण=पोषण करना । भरति । भृ+उ
'नाम्यन्तयोर्धातुविकरणयोगुणः' (कात.३/५/१) सूत्र से भृ को अर् गुण,
लिङ्गसंज्ञा, सि, विसर्गदिश, भरुः । स्वामी । भरुः स्वर्णे हरे पुंसि
(मेदिनी.रान्त.६९) ।

मरुः मृड् प्राणत्यागे (तु.५११) । प्राण छोड़ना, मरना । म्रियते अस्मिन्
(जहाँ लोग मर जाते हैं) (अधिकरण व्युत्पत्ति) । मृ+उ, गुण,
विभक्तिकार्य, मरुः । निर्जल देश, मरुभूमि (रेगिस्तान) । मरुर्भूधरधन्वनोः
(वि.प्र.को.रान्त.७६) ।

तरुः तृ प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । पार जाना, जल पर तैरना ।
तरति । तृ+उ, गुण, विभक्तिकार्य, तरुः । वृक्ष ।

तरन्ति नरकमनेन रोपकाः इति तरुः (वै.सि.कौ.उ.बाल.१/७) ।
तरन्ति तं छायापुष्पफलार्थिनः (दश.वृ.१/९२) ।

चरुः चर गतौ (भू.१८९) । यहाँ 'धातूनामनेकार्थाः' इस सिद्धान्त से
चर धातु भक्षण अर्थ में प्रयुक्त है । चरति । चर्+उ, विभक्तिकार्य,
चरुः । हविष्यान् । हवनीयपदार्थ । ति० अनु०-हविष्यान् पात्र ।

चरन्ति भक्षयन्ति देवता इममिति चरुः (देवता जिसे खाते हैं) इस
व्युत्पत्ति से चर धातु 'भक्षणार्थक' है (वै.सि.कौ.उ.सू.१-७) । चरुः पुमान्
हव्यान्भाण्डयोः (मेदिनी.रान्त.३२) ।

त्सरुः त्सर छद्मगतौ (भू.१८७) । छद्मगति= टेढे चलना, वक्रगमन । त्सरति । त्सर्+उ, विभक्तिकार्य, त्सरुः । खड्ग । तलवार की मूठ या दण्ड की मूठ ।

तनुः तनु विस्तारे (सु.१) । बढ़ना, विस्तार होना । तनोति । तन्+उ, तनुः । शरीर । 'तनुः काये त्वचि स्त्री स्यात्त्रिष्वल्पा विरले कृशे'- (मेदिनी.नान्त. ९) स्त्रियां भूर्तिस्तनुस्तनूः (अ०को०- २/६/७१) ।

मद्गुः दु मस्जो शुद्धौ (तु.५१) । स्नान करना, धोना, स्वच्छ करना । मज्जति । मस्ज्+उ 'न्यङ्क्वादीनां हश्च घः' (कात.४/६/५७) से जकार को गकार 'धुटां तृतीयः' (कात.२/३/३०) से सकार को दकार, विभक्तिकार्य, मद्गुः । जलमुर्गा, जलवायस (प्राणिविशेष) । मद्गुः पानीयकाकिका इति रभसः (वै.सि.कौ.उ.१/९) ।

शयुः शीङ् स्वप्ने (अ.५५) । सोना । शेते । शी+उ, गुण, अयादेश, विभक्तिकार्य । शयुः । अजगर । सदा शेते इति शयुः, (जो प्रायः सोता रहता है) । अजगरे शयुर्वाहसः (अ.को.१/८/५)

६.[प]टचसिवसिहनिमनित्रपीन्दिकन्दिबन्धि[हच]णिभ्यश्च ।१-६।

एभ्य एकादशभ्य उप्रत्ययो भवति । '[प]ट' गतौ' पटतीति पटुः स्फुटवादी । 'असु क्षेपणे' जन्मनि जन्मनि देहमस्यन्तीति असवः इति नित्यं बहुवचनम् । 'वस निवासे' वसतीति वसु द्रव्यम् । 'हन हिंसागत्योः' हन्ति वैरूप्यमिति हनुः कपोलैकदेशः । 'मन ज्ञाने' मन्यते धर्ममनेनेति मनुः

1. अट पट इति दण्डको धातुः (बं.सं.१/६/१) ।

2. धर्ममनेन- म०सं० । मन् धातु से कर्म में प्रत्यय करके धर्म शब्द के पुल्लिङ्ग होने से "धर्मोऽनेन" ऐसी व्युत्पत्ति होनी चाहिए ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

15

प्रजापतिः । 'त्रपौषि' (त्रपूष्) लज्जायान्' त्रपते । त्रपु
 सीसकम् । 'इदि परमैश्वर्ये' इन्दतीति इन्दुः शशी । 'कदि
 क्रदि' दण्डको धातुः । कन्दति कन्दते वा कन्दुः
 पाकस्थानविशेषः । 'बन्ध बन्धने' बध्नातीति बन्धुः स्वजनः ।
 'वह प्रापणे' वहतीति बहु प्रभूतम् । 'अण रण' इति दण्डको
 धातुः । अणतीति अणुः सूक्ष्मं व्रीहिश्च ।
 चका[रोऽ]नुक्तसमुच्चयमात्रे ।

पट्, अस्, वस्, हन्, मन्, त्रप्, इन्द, कन्द, बन्ध, वह तथा
 अण् इन सभी ग्यारह धातुओं से उ प्रत्यय होता है । इसमें पूर्वसूत्र
 (१.५) से उ की अनुवृत्ति होती है ।

पटुः पट गतौ (भू.१०२) । जाना । पटति । पट्+उ, विभक्तिकार्य
 पटुः । स्पष्टवक्ता । समर्थ (बं.सं.) कुशल । चतुर । पटुर्दक्षे नीरोगे
 चतुरेऽप्यभिधेयवत् । पटोले तु प्रमान् क्लीबे छत्रालवणयोरपि
 (मेदिनी.टान्त.२०) ।

असवः अस् क्षेपणे (दि.४९) । फेंकना, विखेरना । जन्मनि जन्मनि
 देहमस्यन्ति (जो हर जन्म में देह को प्राप्त होता है) । अस्+उ,
 इरेदुरोज्जसि (कात.२/१/५५) से उकार को ओकार 'ओ अव्'
 (कात.१/२/१४) से ओकार को अव् आदेश पुल्लिङ्ग नित्य बहुवचन की
 विवक्षा में जस्, विभक्तिकार्य असवः । प्राण । नित्य बहुवचन ।
 पुंसि भूम्यसवः प्राणाः (अ.को.२/९/११९) ।

1. म.सं. त्रपौषि । प्रायः सभी धातुपाठों में 'त्रपूष्' ऐसा पाठ उपलब्ध
 होता है । अतः त्रपौषि के स्थान पर 'त्रपूष्' ऐसा पाठ होना
 चाहिए । ति-अनु०- त्रपूष् । ति.अनु.- षानुबन्धस्तु
 'षानुबन्धभिदादिभ्यस्त्वङ्' (कात.४/५/८२) इति विशेषार्थः ।

वसु वस निवासे (भू.६६४) । रहना, निवास करना । वसति । वस्+उ, वसु नपुंसक, सि, 'नपुंसकात् स्यमोर्लोपो न च तदुक्तम्' (कात.२/२/६) से सिलोप वसु^१ । द्रव्य ।

हनुः हन हिंसागत्योः (अ.४) । हिंसा= मारना, नष्ट होना, गति-जाना । हन्ति वैरूप्यमिति (जो कुरूपता को नष्ट करता है) हन्+उ, विभक्तिकार्य, हनुः^२ । कपोल का एकदेश । मृत्यु । प्रहरण । वक्त्र का एकदेश ।

मनुः मन ज्ञाने (दि.११३) । जानना, मानना । मन्यते धर्मोऽनेन (जो धर्म को जानता है) मन्+उ, विभक्तिकार्य, मनुः । प्रजापति । 'मनुस्मृति' ग्रन्थ के प्रवक्ता । राजर्षि । मनुरादिराजो मन्त्रश्च (वै.सि.कौ. तत्त्व. उ.सू.१०) ।

त्रपु त्रपूष लज्जायाम् (भू.३८३) । लज्जा करना, लज्जित होना । त्रपते (जो अग्नि देखकर लज्जित सा (पिघल) होता है) त्रप्+उ, त्रपु । सीसक । सीसे के रंग की एक धातु (टीन) जो अग्नि में दिखाने से पिघल जाती है । ककड़ी, खीरा । त्रपु रङ्गसीसकयोः (वि.प्र.को.पान्त.४) ।

इन्दुः इदि परमेश्वर्ये (भू.२२) । परमेश्वर्य= अद्भुत पराक्रम होना, ईश्वरी शक्ति या ऐश्वर्यसम्पन्न होना । इन्दति (ऐश्वर्ययुक्त होता है) । इन्द्+उ, इकारानुबन्ध से नांगम, विभक्तिकार्य, इन्दुः । शशी ।

पा.उ. उन्द्+उ, उकार को इकारादेश, इन्दुः (दया.उ.को.१-१२) ।

1. वसुर्मयूखाग्निजनाधिपेषु योक्त्रे वकेऽस्माद्वसुहृद्वके च ।
वृद्ध्यौषधश्यामघनेषु रत्ने, वसु स्मृतं स्यान्मधुरेऽन्यवच्च ॥
(वि.प्र.को.सान्त.१०) ।

2. हनुर्हृद्विलासिन्यां नृत्यारम्भे गदे स्त्रियाम् । द्वयोः कपोलावयवे
(मेदिनी-नान्त २५-२६)

कन्दुः कदि क्रदि आह्वाने रोदने च (भू.२८) । बुलाना, रोना । कदि क्रदि ये दोनों दण्डकधातु^१ हैं । कदि में इकारानुबन्ध से नागम, कन्द्+उ, कन्दुः । पाकस्थानविशेष । पाकविशेष (बं.सं.) भट्टी । मदिरा बनाने का पात्र । भोगस्थान । क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना कन्दुर्वा स्वेदनी स्त्रियाम् (अ.को.-२/९/३०) ।

तु.- स्कन्देः सलोपश्च (वै.सि.कौ.उ.१/१४) ।

बन्धुः बन्ध बन्धने (क्री.३२) । बाँधना । बध्नाति (जो अपने स्नेहादि में बाँध लेता है) बन्ध्+उ, बन्धुः । स्वजन । अपना खास व्यक्ति, भाई, कुटुम्बी । सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः (अ.को.२/६/६४) । बन्धुर्बन्धूकपुष्पे स्याद् बन्धुर्भातरि बान्धवे (वि.प्र.को.धान्त.१३) ।

बहु वह प्रापणे (भू.६१०) । प्रापण=पहुँचाना, बहना, झरना । वहति । वह्+उ, वकार को बकार, विभक्तिकार्य, बहु । प्रभूत, प्रचुर, अधिक । बहु स्यात् त्र्यादिसङ्ख्यासु विपुलेऽप्यभिधेयवत् (मेदिनी.हान्त.६) ।

अणुः अण शब्दे (भू.१४६) । शब्द करना । अण रण ये दोनों दण्डक धातु हैं । अणति । अण्+उ, अणुः । सूक्ष्म तथा व्रीहि (धान्य) । अणुव्रीहिविशेषे स्यात्पुंसि सूक्ष्मेऽभिधेयवत् (मेदिनी.णान्त.२) ।

सूत्रस्थ चकार अनुक्त समुच्चयमात्र अर्थ में है । इसका तात्पर्य यह है कि अन्य धातुओं से भी उ प्रत्यय करके अन्य शब्दों की निष्पत्ति की जा सकती है । जिन शब्दों का यहाँ उपदेश नहीं किया

-
1. एक ही साथ समानार्थक अनेक धातु जहाँ संगृहीत होते हैं, उन्हें 'दण्डक धातु' कहा जाता है । जैसे पाणिनि-धातुपाठ में जहाँ अनेक धातुओं को एकत्र संगृहीत किया गया उन्हें 'भाषार्थाः' तथा 'गत्यर्थाः' कहा गया ।

गया, उनका समावेश करने हेतु चकार प्रयुक्त है । यथा-कटुः (कटति रसनाम्) । वटुः (माणवक) ।

७. स्यदेः[स्यन्देः] सम्प्रसारणं[धश्च] ११-७।

अतश्च उप्रत्ययो भवति । सस्वरस्य यकारस्य सम्प्रसारणञ्च । अन्तदकारस्य धकारादेशः । 'स्यन्दू प्रस्रवणे' स्यन्दते सिन्धुः नदी सागरश्च ।

स्यन्द् धातु से उ प्रत्यय होता है । सस्वर यकार को सम्प्रसारण तथा धातुघटक दकार को धकारादेश होता है । इसमें पूर्वसूत्र 'भृ मृत्' (१.५) से उ की अनुवृत्ति होती है ।

सिन्धुः स्यन्दू प्रस्रवणे (भू.४८३) । प्रस्रवण= टपकना, झरना, सींचना । स्यन्दते (उदकमस्मिन्) । स्यन्द्+उ, यकार को सम्प्रसारण से इकार तथा दकार को धकार, विभक्तिकार्य, सिन्धुः । नदी तथा समुद्र । सिन्धु देश (पंजाब) की नदी । सिन्धुर्नाब्धौ नदे देशे सिन्धुस्तु सरिति स्त्रियाम् (अ.को.३/३/१०१) ।

८. मनिजनिनमां मधजतनाकश्च ११-८।

[ए]षामुप्रत्ययो भवति मधजतनाकाः यथासंख्यमादेशा भवन्ति । 'मन ज्ञाने' मन्यते मधुः पुष्परसः । 'जन जनने' जायते जतु लाक्षा । 'णमु प्रह्वत्वे' णो नः । नमतीति नाकुः ।

-
1. पाठा. मधजतनाकश्च-बं.सं. । हलन्त मध्-जत्-एवं नाक् आदेशों का विधान उचित प्रतीत होता है । अकारान्त आदेश के विधान से अन्त्य अकार का लोप करना पड़ेगा । 'अतः मधजतनाकश्च' पाठ ही उचित है ।

मन्, जन् एवं नम् धातुओं से उ प्रत्यय तथा इनके स्थान में क्रमशः मध्, जत्, एवं नाक् आदेश होते हैं ।

मधुः मन ज्ञाने (दि.११३) । ज्ञान करना । मन्यते । मन्+उ, मन् के स्थान में मध् आदेश, विभक्तिकार्य, मधुः । पुष्परस । चैत्रमास । महुअे की शराब । शहद । दूध । ऋतु । मधुनामक असुर । 'मधु' (नपुंसक) ।

मधु मद्ये पुष्परसे क्षौद्रेऽपि- (अ.को. ३/ ३/१०२) मधुश्चैत्रतुदैत्येषु जीवाशोकमधूकयोः । मधु क्षीरे जले मद्ये, क्षौद्रे पुष्परसेऽपि च (अने०सं०-का० २, -२४७:४८)

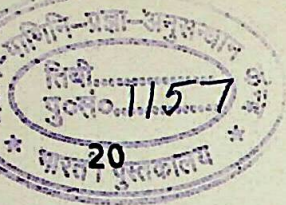
जतु जन जनने (अ.८०) । जजन्ति । जनी प्रादुर्भावे (दि.१४) जायते । जन्+उ, जन् के स्थान में जत् आदेश, विभक्तिकार्य, जतु । लाक्षा, लाख, महावर । जतु लाक्षा कल्कद्रव्यञ्च (उज्ज्वल.१-१९), ति.अनु.-वृक्ष ।

नाकुः णमु प्रह्वत्वे (भू.१५९ शब्दे. च) । प्रह्वत्व= नमस्कार करना, वन्दना करना, झुकना । नमति । नम्+उ, नम् के स्थान में नाक् आदेश, विभक्तिकार्य, नाकुः । वल्मीक (वामी) । बम्बौट । दीमकों के द्वारा एकत्रित मिट्टी का ढेर । वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुनपुंसकम् (अ.को.२/१/१४) नाकुर्वामलूरे गिरौ मुनौ (वि.प्र.को.कान्त.४१) ।

९. रज्जुतर्कुवल्गुफल्गुशिशुरिपुपृथुलघवः । १-९।

एते उप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । निपातनमप्राप्तिप्रापणार्थं प्राप्तेश्च बाधन.....[अर्थम्] । लक्षणेन यदसिद्धं तत्सर्वं निपातनात् सिद्धम् । 'सृज विसर्गे' सृज्यत इति रज्जुः गुणमयी । 'कृती'।

1. ईकारस्तु, 'न डीश्वीदनुबन्धवेटामपतिनिष्कुषोः' (कात.४/६/९०) इति विशेषार्थः । तिअनु.१/९ ।



छेदने' कृन्ततीति तर्कुं कर्तनम् । 'वल वल्ल च' वलत इति वल्यु मनोज्ञम् । 'फल निष्पत्तौ' फलतीति फल्यु असारम् । 'शश प्लुतगतौ' शशतीति शिशुः बालकः । 'रप लप' निष्ठुरं रपतीति रिपुः शत्रुः । 'प्रथ प्रख्याने' प्रथते वर्धते पृथु विस्तीर्णम् । 'लधिः गत्यर्थः' । लङ्घत इति लघुः अल्पः ।

रज्जु, तर्कु, वल्यु, फल्यु, शिशु, रिपु, पृथु, लघु ये उ प्रत्ययान्त सभी शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

निपातन जो (सूत्र-नियम) प्राप्त नहीं होता उसे प्राप्त कराने के लिए तथा जो (सूत्र) प्रवृत्त होने योग्य है, उसे रोकने के लिए निपातन किया जाता है । जो (साधुशब्द) लक्षण (सूत्र) से सिद्ध नहीं हो पाता वह निपातन से सिद्ध किया जाता है ।

निपातन-प्रक्रिया का आश्रय उस परिस्थिति में लिया जाता है जब शब्द की सिद्धि सूत्रों से नहीं हो पाती । शब्द की प्रकृति के अनुसार प्रकृति-प्रत्यय आदि अपेक्षित कार्य की कल्पना कर ली जाती है । इसमें अप्रवृत्त सूत्रों को प्रवृत्त कराकर तथा प्रवृत्त होने वाले सूत्रों का परिहार कर शब्द की सिद्धि कर ली जाती है ।

रज्जुः सृज विसर्गे (दि.११६) । विसर्ग= छोड़ना, त्यागना, रचना करना । सृज्यते अनेन । सृज्+उ, निपातन से सृ में ऋ को र, स् का विपर्यय । स् को घुटां तृतीयः (कात. २/३/६०) से दकार, दकार को जकार, तथा विभक्तिकार्य, रज्जुः । गुणमयी । रस्सी । रज्जुर्वेण्यां गुणे योषित् (मेदिनी.कान्त.१४) ।

'सृजन्ति उदकनिस्सारयेति' (जल निकालने के लिए जिसे बनाया जाता है) सृज्+उ, धातु को असुम् आगम, 'सृ असृज् उ' ऋ को र्

1. तर्कु म.सं. । 'तर्कुः' पुल्लिङ्ग होता है । वृत्ति में 'तर्कु' के स्थान पर 'तर्कुः' ऐसा विसर्गान्त पाठ होना चाहिए ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

21

(यण), सकार को श्चुत्व से शकार, जश्चुत्व से जकार, धातुस्थ सकार का लोप, रज्जुः । रस्सी । (दया.उ.को.१/१५) ।

तर्कुः कृती छेदने (तु.१२) । काटना, छेदना, तोड़ना । कृन्तति । कृत+उ, वर्णविपर्यय से तर्क, कृ को अर्, विभक्तिकार्य, तर्कुः । कर्तन । सूत्रवेष्टन । सूत्रवेष्टनयन्त्रविशेष (तकली) ।

तु.- कृतेराद्यन्तविपर्ययश्च (वै.सि.कौ.उ.१/१६) ।

वल्गु वल संवरणे (भू.४१६) । आच्छादित करना, चलना । वलते । वल्+उ, निपातन से गकारागम, विभक्तिकार्य, वल्गु । मनोज्ञ (प्रिय) शोभन । लक्ष्मी । वल्गुः स्यात् छागले पुंसि सुन्दरे चाभिधेयवत् (मेदिनी.गान्त.२३) ।

तु.- वलेर्गुक् च (वै.सि.कौ.उ.१/१९) ।

फल्गु फल निष्पत्तौ (भू.१७६) । निष्पत्ति=उत्पन्न करना । सफल करना । फलति । फल्+उ, निपातन से गकारागम, विभक्तिकार्य फल्गु । असार । (छिलका आदि) निरर्थक । नदी । फल्गुः प्रोक्तो मले सारे निःसारे फल्गु वाच्यवत् (वि.प्र.को.गान्त. २७) ।

शिशुः 'शश प्लुतगतौ' (भू.२३९) । प्लुतगति=फुदकते हुए चलना या कूदते हुए चलना । शश्+उ, निपातन से अकार को इकार विभक्तिकार्य, शिशुः । बालक ।

शः कित् शन्वच्च । शो (तनूकरणे)+उ, आत्व सन्यतः से इत्व, आलोप शिशुः (वै.सि.कौ.उ.१/२०) । श्यति मातुः स्तनं पीत्वा (दश.वृ.१/१०५) ।

रिपुः रप व्यक्तायां वाचि (भू.१३५) । स्पष्ट कहना । निष्ठुरं रपति (कठोर वचन बोलता है) । रप्+उ, निपातन से उपधा को इकार, विभक्तिकार्य, रिपुः । शत्रु । अनिष्टं रपति रिपुः (वै.सि.कौ.उ.२६) ।

तु.- रपेरिच्चोपधायाः (वै.सि.कौ.उ.१/३६) ।

पृथु प्रथ प्रख्याने (भू.४९१) । प्रख्यान=प्रसिद्ध होना, विस्तार होना । प्रथते । प्रथ्+उ, र् को ऋ सम्प्रसारण, विभक्तिकार्य, पृथु । विस्तीर्ण । चौड़ा । विस्तृत । पृथु राजा, अग्नि । महान् । पृथुर्नृपे कृष्णजीरे वाप्यां पृथु महत्यपि (वि.प्र.को.थान्त.४) ।

लघुः लघि गत्यर्थः (भू.३३१) । जाना । इकारानुबन्ध से न् आगम । लङ्घते । लङ्घ्+उ, नकारलोप, विभक्तिकार्य, लघुः^१ । अल्प ।

प्रथेः ष्विन् सम्प्रसारणञ्च^२ । (बं.सं.१-१०)

अस्मात् ष्विन् भवति सम्प्रसारणञ्च । षकारो नदाद्यर्थः । 'प्रथ प्रख्याने' पृथ्वी मही ।

प्रथ् धातु से ष्विन् प्रत्यय तथा सम्प्रसारण होता है । 'ष्विन्' में ष् नदाद्यर्थ है । इससे स्त्रीलिङ्ग में 'नदाद्यन्वि.' (कात.२/४/५०) इत्यादि सूत्र से 'ई' प्रत्यय होता है ।

पृथ्वी प्रथ प्रख्याने (भू.४९१) । प्रथते । प्रथ्+ष्विन् । सम्प्रसारण से प्र में र् को ऋ, नान्त होने से उपधादीर्घ, 'नदाद्यन्वि.' (कात.२/४/५०) इत्यादि सूत्र से स्त्री० में ई, लिङ्गसंज्ञा सि, सिलोप, न् लोप, पृथ्वी । मही । पृथ्वी भूमौ महत्याञ्च त्वक्पत्र्यां कृष्णजीरके (मेदिनी.वान्त.१९) ।

1. लघुरगुरौ च मनोज्ञे निःसारे वाच्यवत्क्लीबम् ।

शीघ्रे कृष्णागुरुणि च, स्पृक्कानामौषधौ स्त्रियाम् ॥

(मेदिनी. घान्त. 5)

2. यह सूत्र मद्रास-संस्करण में तथा तिब्बती-अनुवाद में असंगृहीत है । बंग-संस्करण के आधार पर यहाँ दिया गया है । पञ्चपादी उणादि में 'प्रथेः ष्विन्सम्प्रसारणञ्च' (वै.सि.कौ.उ.सू. १-१४८) ऐसा सूत्र प्राप्त है ।

तु.- प्रथ्+षवन् पृथवी । प्रथ्+षिवन् पृथिवी ।

१०. इषिधृषिभिदिगृधि[मृदि]पृभ्यः कुः । १-१०।

एभ्यः कुप्रत्ययो भवति । 'इषु इच्छायाम्' इच्छतीति इषुः शरः । 'जि^१ धृषा^२ धृष्णोतीति धृषुः प्रगल्भः । 'भिदिर्' भिनतीति भिदुः वज्रम् । 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्' गृध्यतीति गृधुः कामः । ['मृद क्षोदे'] मृदनातीति मृदु कोमलम् । 'पृ पालने' पृणातीति पुरुः क्षत्रियविशेषः । कानुबन्धो यण्वद्भावादगुणार्थः ।

इषु, धृषु, भिदु, गृधु, मृदु, पृ इन सभी धातुओं से कु प्रत्यय होता है । कु में क् यण्वद्भाव के लिए प्रयुक्त है । 'के यण्वच्च योक्तवर्जम्' (कात.४/१/७) से यण्वद्भाव होने से गुण का निषेध^३ होता है ।

इषुः इषु इच्छायाम् (तु.७०) । चाहना । इच्छति । इष्+कु, यण्वद्भाव से धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, इषुः । शर (बाण) ।

तु.- ईषेः किच्च (वै.सि.कौ.उ.१/१३) ईषते हिनस्ति ईष्+उ, ईकार को इकार इषुः ।

धृषुः जि धृषा प्रागल्भ्ये (सु.१८) । प्रागल्भ्य=गर्व करना, अपने को बड़ा मानना । धृष्णोति । धृष्+कु, यण्वद्भाव से गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, धृषुः । प्रगल्भ । बुद्धिमान् । दक्ष (उज्ज्वल.१-२४) ।

भिदुः भिदिर् विदारणे (रु.२) । विदारण= तोड़ना, फाड़ना । भिनत्ति । भिदु+कु, शेष पूर्ववत्, भिदुः । वज्र ।

१. ज्यनुबन्धमतिपूजार्थेभ्यश्च क्तः (कात.४/४/६६) ति.अनु. ।

२. आदनुबन्धाच्च (कात.४/६/११) ति.अनु. ।

३. यण्वद्भावेऽगुणत्वं सम्प्रसारणञ्च स्यात् (कात. दु.वृ. ४/१/७) ।

गृधुः गृधु अभिकाङ्क्षायाम् (दि.८०) । अभिकाङ्क्षा= अधिक चाहना ।
गृध्यति । गृध्+कु, गृधुः । काम । आकाङ्क्षी ।

मृदु मृद क्षोदे (क्री.३७) । क्षोद= पीसना, कूटना, चूर्ण करना ।
मृदनाति । मृद+कु, विभक्तिकार्य, मृदु । कोमल । मृदुः स्यात्
कोमलेऽतीक्ष्णे (मेदिनी.दान्त.१४) ।

पुरुः पृ पालने (क्री.१६) । पालन करना, पूर्ति करना । पृणाति ।
पृ+कु 'उरोष्ठचोपधस्य च' (कात.३/५/५३) इस सूत्र से ऋ को उर्
आदेश, विभक्तिकार्य, पुरुः । क्षत्रियविशेष । राजा, धर्मलोक (श्वेत.वृ.
१-२३) । पुरुः प्राज्येऽभिधेयवत् । पुंसि स्याद् देवलोके च
नृपभेदपरागयोः (मेदिनी. रान्त. ५७-५८) ।

क् अनुबन्ध का प्रयोजन यण्वद्भाव होता है । यण्वद्भाव होने
से धातु को गुण का निषेध होता है (कात.४/१/७) । (पा.व्या. में
'किङिति च' (अ.सू.१/१/५) सूत्र से क् अनुबन्ध में गुण का निषेध
होता है) ।

११. कृग्रो ऋत उश्च। १-११

अनयोः कुप्रत्ययो भवति, ऋकारस्य उरादेशश्च । 'कृ
विक्षेपे' किरतीति कुरुः देशविशेषः ।[गृ निग]रणे गिरतीति
गुरुः आचार्यः ।

कृ एवं गृ इन दोनों धातुओं से कु प्रत्यय तथा धातुघटक ऋ
को उर् आदेश होता है ।

1. म.सं. उश्च । ऋ के स्थान में उर् होने पर 'कुरुः' होता है ।
वृत्ति में भी उर् आदेश का उल्लेख है । अतः उश्च के स्थान
पर 'उर् च' ऐसा पाठ होना चाहिए । द्र०- बं.सं., ति.अनु. ।

कुरुः कृ विक्षेपे (तु.२१) । विक्षेप=फेंकना । किरति (धर्मविजययशासि-
जो धर्म विजय या यश का प्रक्षेपण करता है) । कृ+कु, ऋ को उर्
आदेश, विभक्तिकार्य, कुरुः । देशविशेष । राजर्षि । देशवाची होने पर
नित्य बहुवचन कुरवः । कुरुर्नृपान्तरे भक्ते पुमान् पुंभूमि नीवृति
(मेदिनी.रान्त.१६) ।

गुरुः 'गृ निगरणे' (तु.२२) । निगरण= निगलना, खाना । गिरति ।
गृ+कु, ऋ को उर्, विभक्तिकार्य, गुरुः^१ । आचार्य । वृहस्पति ।
ईश्वर । पूज्य जन ।

गृ शब्दे गृणात्युपदिशति वेदशास्त्रविद्यामाचारं च स गुरुः, सर्वेषां
गुरुत्वादीश्वरः आचार्यः पिता वा । (दश. वृ.१-१०९) ।

१२. अर्तेरू च^२ ११-१२।

अस्मात् कुप्रत्ययो भवति । ऋकारस्य उरादेशः ।
चकारादूरादेशश्च । 'ऋ सृ गतौ' इयतीति उरुः महान् ।
ऊरुः सक्थि ।

ऋ धातु से कु प्रत्यय होता है । ऋ को ऊर् आदेश भी
होता है । सूत्रस्थ चकार से उर् आदेश होता है । वृत्ति में सूत्रस्थ
ऊर् का उर् पाठ है । क्योंकि चकार से 'उर्' का ग्रहण अभीष्ट
है । अतः शुद्ध पाठ 'ऋकारस्य उरादेशः चकारादुरादेशः' ऐसा होगा ।
सूत्र में 'अर्तेरू' के स्थान में 'अर्तेरूर्' ऐसा पाठ होना चाहिए ।

उरुः ऋ गतौ (अ.७४) । इयति । ऋ+कु, ऋ को उर्, उरुः ।
विस्तीर्ण, विशाल ।

१. गुरुस्त्रिलिङ्ग्यां महति दुर्जलधुनोरपि ।
पुमान् निषेकादिकरे पित्रादौ सुरमन्त्रिणि ॥ (मेदिनी.रान्त.२५) ।
२. म.सं. अर्तेरू च । 'ऋ' को ऊर् होता है, तदनुसार 'अर्तेरूर् च'
ऐसा पाठ होना चाहिए ।

ऋ+ऊर् ऊरुः । सक्थि । सक्थि क्लीबे पुमानुरू
(अ.को.२/६/७३) ।

१३. भ्रस्जेः सलोपश्च ११-१३।

अस्मात् कुप्रत्ययो भवति । अस्य च सकारलोपः ।
'भ्रस्ज पाके' भृज्जतीति भृगुः प्रपातो मुनिश्च ।

भ्रस्ज् धातु से कु प्रत्यय होता है । धातु के अवयव स् का लोप होता है ।

भृगुः भ्रस्ज पाके (तु.४) । पाक= पकाना, भूजना । भृज्जति ।
भ्रस्ज्+कु, 'भ्रस्ज्' घटक स् का लोप, 'गृहिज्यावयिव्यधिवष्टिव्यचि-
प्रच्छिन्नश्चिभ्रस्जीनामगुणे' (कात.३/४/२) इस सूत्र से भ्रस्ज् में रकार तथा
अकार को सम्प्रसारण से ऋकार । 'न्यङ्क्वादीनां हश्च घः'
(कात.४/६/५७) से चकार को गकार, विभक्तिकार्य, भृगुः । प्रपात
(झरना) । मुनि । शुक्र । जमदग्नि-पिता । ऋषि ।

कात.व्या० में 'प्रथिग्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च'
(कात.४/६/५७-दु.वृ.) सूत्र से 'भृगु' में सम्प्रसारण विहित है ।

१४. नावञ्चेः ११-१४।

निशब्द उपपदेऽस्मात् कुप्रत्ययो भवति । 'अञ्चु
गतिपूजनयोः' न्यञ्चतीति न्यङ्कुः मृगविशेषः ।

नि शब्द के उपपद में रहने पर अञ्च् धातु से कु प्रत्यय
होता है । इसमें पूर्व सूत्र 'इषिधृषि' (१.१०) इत्यादि से 'कु' की
अनुवृत्ति होती है ।

1. भृगुः शुक्रे प्रधाने च जमदग्नौ पिनाकिनि ।

भागे रूपार्द्धके प्रोक्तो, भागधेयैकदेशयोः ॥ (वि.प्र.को.गान्त.६) ।

न्यङ्कुः अञ्चु गतिपूजनयोः (भू.४८) । जाना, पूजा करना । नि पूर्वक प्रयोग । न्यञ्चति । नि अञ्च्+कु 'इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः' (कात.१/५/८) सूत्र से निघटक इकार को यकार, 'न्यञ्च् उ' 'न्यङ्क्वादीनां हश्च घः' (कात.४/६/५७) सूत्र से चकार को ककार 'मनोरनुस्वारो धुटि' (कात.२/४/४४) सूत्र से अनुस्वार 'वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा' (कात.१/४/१६) सूत्र से अनुस्वार को कवर्गीय पञ्चम वर्ण ङ्, विभक्तिकार्य, न्यङ्कुः । मृगविशेष । विशेष जाति का हिरण । न्यङ्कुर्मुनौ मृगे पुंसि (मेदिनी.कान्त.२७) ।

१५. अपष्ट्वादयः ११-१५।

अपष्टुदुष्टुसुष्टुहरिद्रुमितद्रुशतद्रुशङ्कुधनुमयुपशुदेवयुजटायुकुमारयु-
मृगयवः । एते शब्दाः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' अप तिष्ठतीति अपष्टु अविद्यः । दुस्तिष्ठतीति दुष्टु । सु तिष्ठतीति सुष्टु शोभनम् । 'द्रु गतौ' हरि द्रवतीति हरिद्रुः वृक्षविशेषः । मितं द्रवतीति मितद्रुः समुद्रः । शतं द्रवतीति शतद्रुः नदीविशेषः । 'शकि शङ्कायाम्' शङ्कतेऽस्माज्जन इति शङ्कुः कीलकः । 'धन धान्ये' दधाति [दधन्ति] धनुः राशिः शस्त्रञ्च । [डु मिञ् प्रक्षेपणे] मिनोतीति मयुः किन्नरः । [पश] इति सौत्रोऽयं धातुः । पशतीति पशुः चतुष्पदः । 'या प्रापणे' देवान् यातीति देवयुः धार्मिकः । कुमारं यातीति कुमारयुः राजपुत्रः । जटां यातीति जटायुः पक्षिविशेषः । मृगान् यातीति मृगयुः लुब्धकः । एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

अपष्टु, दुष्टु, सुष्टु, हरिद्रु, मितद्रु, शतद्रु, शङ्कु, धनु, मयु, पशु, देवयु, जटायु, कुमारयु, मृगयु ये सभी कु प्रत्ययान्त १४ शब्द निपातन भाव से सिद्ध होते हैं । (बङ्ग-संस्करण में 'शितद्रु' एक अतिरिक्त शब्द निर्दिष्ट है, किन्तु वहाँ 'मितद्रु' शब्द संगृहीत नहीं है । अधिक

सम्भव है मकार के स्थान पर प्रमाद से शकार होकर 'शितद्रु' हो गया हो) ।

अपष्ठु ष्ठा गतिनिवृत्तौ (भू.२६७) । गतिनिवृत्ति= रुकना, ठहरना । अप तिष्ठति । अप ष्ठा+कु, 'निमित्ताभावे नैमित्तकस्याप्यभावः' (कात.परि.सू.२९) से 'स्था' के थकार को ठकार आकारलोप, विभक्तिकार्य, अपष्ठु । अविद्वान् । प्रतिकूलपदार्थ, वाम (बं.सं.) (अ.को.३/१/८४) । अपष्ठुः निरवद्ये च शोभनार्थे च दृश्यते (मेदिनी.कान्त.१८) ।

दुष्ठु दुस्तिष्ठति । दु ष्ठा+कु, दुष्ठुः । अशोभन । अविनीत, निन्दित । दुष्ठु स्याद् दुर्बलेऽधमे (वि.प्र.को.ठान्त.६) ।

सुष्ठु सु तिष्ठति । सु ष्ठा+कु, पूर्ववत्, सुष्ठु । समीचीन, शोभन ।

हरिद्रुः द्रु गतौ (भू. २७९) । हरि द्रवति । (हरि को प्राप्त होता है) । हरि द्रु+कु, उकार लोप, विभक्तिकार्य, हरिद्रुः । वृक्षविशेष । हल्दी की लकड़ी ।

हरयोः द्रवन्ति यस्मिन् वने तद् वनं हरिद्रुः ऋषिविशेषः (श्वेत.वृ.१-३४) ।

मितद्रुः मितं द्रवति (जो परिमित सीमा तक जाता है) । मित द्रु+कु, मितद्रुः । समुद्र ।

शतद्रुः शतं द्रवति (जो सौ धाराओं में बहती है) । शत द्रु+कु, उकार लोप, विभक्तिकार्य, शतद्रुः । नदीविशेष । गङ्गा । शतद्रुस्तु शुतुद्री स्याद् विपाशा तु विपाट् स्त्रियाम् (वै.को.४/२/२७)

शङ्कुः शकि शङ्कायाम् (भू.३२५) । शङ्का करना । शङ्कतेऽस्माज्जनः (जिससे व्यक्ति शङ्का करता है) । इदनुबन्ध से न् आगम् । शङ्क्+कु, शङ्कुः । कीलक । कील । खूँटी ।

शस्त्र, संख्या, वृक्षभेद, जलभेद, पाप, स्थाणु, विष
(दया.उ.को.१-१३६) ।

धनुः धन धान्ये (अ.७९) । उत्पन्न करना, पैदा करना । दधन्ति ।
धन्+कु, धनुः । नवम राशि तथा शस्त्र । धनुर्वेद । धनुः संज्ञा
पियालद्रौ राशिभेदे शरासने (वि.प्र.को.नान्त.१७) ।

मयुः डु मिञ् प्रक्षेपणे (सु.४) । प्रक्षेपण=फेंकना । मिनोति । मि+कु,
निपातन से गुण, अयादेश, विभक्तिकार्य, मयुः। किन्नर (कुबेर का दूत)।
देवयोनि (किन्नर-घोड़े के मुँह तथा आदमी के शरीर वाले एवं आदमी
के मुँह तथा घोड़े के शरीर वाले) किन्नरः किम्पुरुषस्तुरङ्गवदनो मयुः
(अ.को.१/१/७९) । मयुस्तुरङ्गवदने मृगेऽपि मयुरुच्यते (वि.प्र.को.यान्त.११) ।

पशुः पश (सौत्र धातु) । पशति । पश्+कु, पशुः । चतुष्पद ।
गौ । अग्नि । पशुर्मृगादिदेवाजे नाव्ययं पशु दर्शने (मेदिनी.शान्त.१०) ।

पश्यति सर्वमिति पशुः अग्निः, पश्यति जानाति स्वार्थमिति पशुः
गवादिः (दया.उ.को.१/२७) ।

देवयुः या प्रापणे (अ.१६) । पहुँचना, जाना । देवान् याति (जो
देवताओं के पास जाता है) । देव या+कु, आकारलोप, विभक्तिकार्य,
देवयुः । धार्मिक । बं.स.- स्वर्गगामुक । देवयुर्वाच्यलिङ्गः स्याद्धार्मिके
लोकयात्रिके (मेदिनी.यान्त.८६) ।

कुमारयुः कुमारावस्थां याति (जो कुमार अवस्था को प्राप्त होता है) ।
कुमार या+कु, विभक्तिकार्य, कुमारयुः । राजपुत्र ।

जटायुः जटां याति (जिसके पास जटायें होती हैं) । जटा या+कु,
धातुघटक आकार का लोप, विभक्तिकार्य, जटायुः । पक्षिविशेष ।
सम्पाति का अनुज । जटायुः पुंसि सम्पातेः कनीयसि च गुगुलौ
(मेदिनी.यान्त.८४) ।

मृगयुः मृगान् याति (जो शिकार हेतु मृगों के पास जाता है) । मृग या+कु, आकारलोप, विभक्तिकार्य, मृगयुः । लुब्धक (शिकारी) । व्याध । मृगयुः पुंसि गोमायौ व्याधे च परमेष्ठिनि (मेदिनी.यान्त. १०१) । मृगयुर्ब्रह्मणि प्रोक्तो गोमायुर्व्याधयोरपि (वि.प्र.को.यान्त. ९९) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अन्य शब्दों को कु प्रत्यय तथा निपातन से अपेक्षित कार्यो का विधान करके सिद्ध कर लेना चाहिये । यथा— मित्र या+कु, मित्रयुः । अध्वर्युः याजक । ईर्ष्युः आशङ्की । केवलयुः मानी । गृहयुः गृहपति ।

१६. आङ्परयोः खनिशृभ्यां डुः । १-१६।

आङ्परयोरुपपदयोः यथासङ्ख्यमाभ्यां डुप्रत्ययो भवति । डोऽनुबन्धः अन्त्यस्वरादिलोपार्थः । 'खनु अवदारणे' आ समन्तात् खनतीति आखुः मूषकः। । 'शृ हिंसायाम्' परं शृणातीति परशुः कुठारः ।

'आङ्' (आ) 'पर' इन दोनों के उपपद में रहने पर यथाक्रम खन् एवं शृ धातु से डु प्रत्यय होता है । डु प्रत्ययस्थ ङ् अनुबन्ध से "डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः" (कात. २/६/४२) इस सूत्र से अन्त्य स्वरादि का लोप होता है ।

आखुः खनु अवदारणे (भू.५८४) । अवदारण=खोदना । आ समन्तात् खनति (जो सभी ओर से भूमि को खोदता है) । आ खन्+डु, ङ् अनुबन्ध से अन्त्य स्वरादि 'अन्' का लोप, विभक्तिकार्य, आखुः । मूषिक । वराह ।

-
1. 'मूषिकसिमिकौ' (कात.उ.२/१९) के अनुसार 'मूषिक' शब्द ही साधु है । बं.सं. में भी 'मूषिक' पाठ है । अतः 'मूषिकः' पाठ साधु प्रतीत होता है ।

परशुः शृ हिसायाम् (क्रि.१५) । मारना, नष्ट होना । परं शृणाति (शत्रुओं को नष्ट करता है) । पर शृ+डु, ड् अनुबन्ध के कारण धातुस्वर ऋ का लोप, विभक्तिकार्य, परशुः । कुठार । शस्त्रभेद ।

पृषोदरादित्वाद् अकारलोपात् पशुरपि (वै.सि.कौ.उ.सू. १-३३) ।

उपेः गः। (बं.सं.१-१८)

उपोपपदेऽस्माद् दुर्भवति । 'कै गै रै शब्दे' उपगुः ऋषिविशेषः ।

'उप' इस शब्द के उपपद में रहने पर गै धातु से डु प्रत्यय होता है ।

उपगुः गै शब्दे (भू.२५६) । शब्द करना । गायति । 'सन्ध्यक्षरान्ता-नामाकारोऽविकरणे' (कात.३/४/२०) सूत्र से गै में ऐ को आकार, उप गा+डु 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' से आकार का लोप, विभक्तिकार्य, उपगुः । ऋषिविशेष । गाय के समीप । ग्वाला । अव्यय ।

१७. मद्यकिवासिमथिचतिभ्य उरः । १-१७।

..... [एभ्य उरप्रत्ययो] भवति । 'मदि स्तुतौ' मन्दते मन्दुरा वाजिशाला । 'अकि लक्षणे' अङ्कते अङ्कुरः बीजप्रादुर्भावः । 'वास उपसेवायाम्' वासयतीति वासुरा रात्रिः । 'मन्थ विलोडने' मन्थतीति मथुरा पुरी । 'चते चदे च' चतत इति चतुरः दक्षः । दकारात्तोऽगुणश्च ।

1. 'उपेः गः' यह सूत्र कलापोणादि के बं.सं. के आधार पर दिया गया है । म.सं. में यह संगृहीत नहीं है । ति.अनु. में भी असंगृहीत है ।

मद् अक् वास् मथ् चत् इन धातुओं से उर प्रत्यय होता है ।

मन्दुरा मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (भू.३०१) । स्तुति करना, तुष्ट करना, उन्मत्त होना, सोना, चाहना, चमकना । धातुघटक इकार अनुबन्ध के कारण न् आगम । मन्दते । मन्द्+उर, स्त्री० में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, मन्दुरा । वाजिशाला (घुड़शाला) । मन्दुरा वाजिशालायां शयनीयार्थवस्तुनि (मेदिनी.रान्त.२००) ।

अङ्कुरः अकि लक्षणे (भू.३२६) । लक्षण=चिह्न करना, गिनना । इदनुबन्ध के कारण न् आगम । अङ्कते । अङ्क्+उर, विभक्तिकार्य, अङ्कुरः । बीज का प्रादूर्भूत रूप । अङ्कुरो रुधिरे लोम्नि पानीयेऽभिनवोद्भिदि (मेदिनी.रान्त.१०८) ।

वासुरा वास उपसेवायाम् (चु.२०) । उपसेवा=वासित करना, सुगन्धित करना । वासयति । वास्+उर, स्त्री. में आ, विभक्तिकार्य, वासुरा । रात्रि । वासुरा रात्रिर्गीतिश्च (बं.सं.) गर्दभ । वासुरा वासितायां स्याद् वासतेयभुवि स्त्रियाम् (मेदिनी.रान्त.२१४) ।

मथुरा मन्थ विलोडने (भू.६) । विलोडन=मथना, विचार करना, मनन करना । मन्थति । मन्थ्+उर, स्त्रीत्व-विवक्षा में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य मथुरा । पुरी । कृष्ण-जन्मभूमि । मथ्यन्ते शत्रवोऽस्यामिति (जहाँ शत्रुओं का मन्थन किया जाता है) । मथुरा (श्वेत.वृ.१-३८) ।

चतुरः चते याचने (भू.५७६) । याचन=माँगना । चतते । चत्+उर, चतुरः । दक्ष ।

१८. **मकुरददुर्दुरविधुरासुराः** ११-१८।

एते शब्दा उरप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'मकि मण्डने' मङ्कते मङ्कुरः कल्कः । 'दृ विदारणे' दृणातीति ददुरः भेकः ।

'विध विधाने' विधति इति विधुरः विह्वलः । 'असु क्षेपणे अस्यतीति असुरः देवारिः ।

मकुर, दर्दुर, विधुर, असुर, ये सभी उर प्रत्ययान्त शब्द निपातन भाव से निष्पन्न होते हैं ।

मकुरः (मङ्कुरः) मकि मण्डने (भू.३२६) । मण्डन=अलङ्कृत करना, सजाना । इदनुबन्ध से नागम । मङ्कते । मङ्क्+उर, नलोप, विभक्तिकार्य, मकुरः दर्पण (शीशा) । नकार लोप न करने पर मङ्कुरः । निपातन से मङ्क् धातु घटक अकार को उकार, मुकुरः¹ । दर्पण । मकुर तथा मुकुर ये दोनों पाठ मिलते हैं । (बं.सं.मुकुरो दर्पणः) । 'दर्पणे मुकुरादर्शौ व्यजनं तालवृन्तकम्' (अ.को.२/६/१३९) ।

दर्दुरः दृ विदारणे (क्री.१९) । विदारण=चीरना, फाड़ना । दृणाति । दृ+उर, निपातन से उर, विभक्तिकार्य, दर्दुरः² । भेक । मेंढक ।

विधुरः विध विधाने (तु.३८) । विधान करना । विधति । विध्+उर विधुरः । विह्वल । विकल । विधुरं स्यात् प्रविश्लेषे विधुरो विकलेऽन्यवत् । (वि.प्र.को.रान्त.१३१) ।

व्यथ्+उरच्, विधुरः (व्यथतेऽनेनेति) (दया.उ.को.१/३९) ।

असुरः असु क्षेपणे (दि.४९) । फेंकना, विखेरना । अस्यति (देवान्) (जो देवताओं को फेंकता है) अस्+उर, विभक्तिकार्य, असुरः । देवारि । दानव ।

-
1. मुकुरो मल्लिकापुष्पे दर्पणे च कलिद्रुमे ।
कुलालदण्डे वकुरो मकुरोऽप्येषु विश्रुतः ॥ (वि.प्र.को.रान्त.१२६) ।
 2. दर्दुरस्तु गिरावीषदभग्नवस्तुनि वाच्यवत् ।
दर्दुरस्तोयदे भेके वाद्यभाण्डाद्रिभेदयोः ।
दर्दुरा चण्डिकायाञ्च, ग्रामजाले तु दर्दुरम् ॥
(वि.प्र.को.रान्त.१४२-१४२) ।

प्रज्ञाद्यणु, आसुरः (वै.सि.कौ.उ.१/४२) ।

१९. सावशेराप्तौ ११-१९।

सावुपपदेऽस्मादुरप्रत्ययो भवति, आप्तौ गम्यमानायाम् ।
'अश भोजने' 'अशू व्याप्तौ' स्वशनुते स्वशुरः दम्पत्योः पिता ।

सु उपपद में रहने पर अश् धातु से उर प्रत्यय होता है,
आप्ति=प्राप्ति अर्थ के द्योत्य रहने पर ।

स्वशुरः अशू व्याप्तौ (सु.२२) । व्याप्ति=व्याप्त होना । स्वशनुते । सु
(पूर्वक) अश्+उर, सु घटक उकार को वकार, विभक्तिकार्य, स्वशुरः ।
दम्पति का पिता । पति का पिता भी दम्पति को प्राप्त करता है
तथा पत्नी का पिता भी दम्पति को प्राप्त करता है, यही आप्ति अर्थ
है । पत्नी का पिता पति का स्वशुर होता है तथा पत्नी का स्वशुर
पति का पिता होता है । 'शु' की उपपद के रूप में कल्पना करने
पर 'श्वशुरः' होता है । शुशब्दस्तालव्यादेरयं श्वशुरः (बं.सं.) । शु
शीघ्रमशनुते प्राप्नोति कन्या यस्मात् स श्वशुरः (सि.च.३२) । शु
शीघ्रमशनुत आप्नोति जामाता यं स श्वशुरः दम्पत्योः पिता
(दया.उ.को.१-४४) । पतिपत्न्योः प्रसूः श्वश्रूः श्वशुरस्तु पिता तयोः
(अ.को.२/६/३१) ।

२०. अवमह्योष्टिषः ११-२०।

आभ्यां टिषप्रत्ययो भवति । टानुबन्धो नदाद्यर्थः । 'अव
रक्ष पालने' अवतीति अविषः समुद्रः । 'मह पूजायाम्' महतीति
महिषः सैरिभः । नदादित्वात् महिषी राज्ञी ।

अव् तथा मह् धातु से टिष प्रत्यय होता है । टिष में ट्
अनुबन्ध नदादि के लिए प्रयुक्त है । नदादि होने से स्त्री० में

'नदाद्यन्चिवाह्वयस्यन्तृसखिनान्तेभ्य ई' (कात.२/४/५०) सूत्र से ई प्रत्यय होता है ।

अविषः अव पालने (भू.१०२) । पालन करना, रक्षा करना । अवति । अव+टिष्, ट् अनुबन्ध का अप्रयोग, विभक्तिकार्य, अविषः । समुद्र । अन्तरिक्ष, राजा ।

महिषः मह पूजायाम् (भू.२५०, चु.१८७) । पूजा=सम्मान करना । महति । मह+टिष्, विभक्तिकार्य, महिषः । सैरिभ (भैसा) । चतुष्पाद-विशेष । असुर (श्वेत.वृ.१-४४) । पर्याय- लुलाय, वाहद्विष, कासर । ति.अनु.-पशुविशेष ।

ट् अनुबन्ध के कारण 'नदाद्यन्चि' इत्यादि सूत्र से स्त्री० की विवक्षा में महिष् से ई, महिषी । राज्ञी । भूमि । भार्या । महिषी कृताभिषेकासैरिभ्योरोषधी भिदि (मेदिनी.षान्त.४३) ।

२१. रुहवृद्धिश्च ११-२१।

अस्मात् टिषप्रत्ययो भवति वृद्धिश्च । 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे' रोहतीति रौहिषं कर्तृणम् ।

रुह धातु से टिष प्रत्यय तथा धातु की वृद्धि होती है ।

रौहिषम् रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे (भू.५६७) । बीज उगना, उत्पन्न होना, पैदा होना । रोहति । रुह+टिष्, धातु की उपधावृद्धि, विभक्तिकार्य, रौहिषम् । कर्तृण (अनुपयोगी घास) । ति.अनु.- लाल घास ।

रौहिषः गन्धमृगः (बं.सं.) । मछली, हरिण, वनमहिष (उ.म.दी. पृ.४६) ।

ट् अनुबन्ध के कारण 'नदाद्यन्वि' इत्यादि सूत्र से स्त्री० में ई रौहिषी । लता । रौहिषं कर्तृणे क्लीबं पुंसि स्याद्धरिणान्तरे (मेदिनी.षान्त.४३) ।

२२. किल्विषाव्यथिषौ ११-२२।

एतौ टिषप्रत्ययान्तौ निपात्येते । 'कृ विक्षेपणे' किरतीति किल्विषं पापम् । 'व्यथ दुःखभयचलनयोः' नञ्पूर्वः । न व्यथते अव्यथिषः सूर्यः ।

किल्विष अव्यथिष ये दोनों टिष प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

किल्विषम् कृ विक्षेपे (तु.२१) फेंकना, प्रक्षेपण करना । कुरेदना । किरति । कृ+टिष (ट् अनुबन्ध) निपातन से इल् आदेश तथा वकारागम^१, विभक्तिकार्य, किल्विषम् । पाप । रोग । अपराध । किल्विषं पापरोगयोः । अपराधेऽपि (मेदिनी.षान्त.३४) ।

अव्यथिषः व्यथ दुःखभयचलनयोः (भू.४९०) । दुःख भोगना, क्षुब्ध होना । न व्यथते । नञ् (पूर्वक) व्यथ्+टिष, 'नस्य तत्पुरुषे लोप्यः' (कात.२/५/२२) से नञ्-घटक न् का लोप, विभक्तिकार्य, अव्यथिषः । सूर्य । भुवन । स्त्री० में ई- अव्यथिषी । पृथ्वी । अव्यथिषोऽब्धिसूर्ययोः (वै.सि.कौ.उ.१/४९) ।

२३. तिमिरुधिमदिमन्दिचन्दिबधिरुचिशुषिभ्यः किरः ११-२३।

एतेभ्यः किरप्रत्ययो भवति । 'तिम ष्टिम' तिप्प्यतीति तिमिरं तमः । 'रुधिर्' रुणद्धीति रुधिरं रक्तम् । 'मदी हर्षे' माद्यतीति मदिरा सुरा । 'मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु'

१. इत्कारो वकारागमश्च (बं.स.) । किरतेः इरादेशो लत्वं वकारागमश्च (ति.अनु.) ।

मन्दते मन्दिरं गृहम् । 'चदि आह्लादने' चन्दतीति चन्दिरः
हस्ती । 'बध बन्धने' बध्नातीति बधिरः श्रोत्रविकलः । 'रुच
दीप्तौ' रोचते रुचिरं सुन्दरम् । 'शुष शोषणे' शुष्यतीति शुषिरं
विवरम् । को यण्वत् । तेन गुणाभावः ।

तिम्, रुध्, मद्, मन्द, चन्द, बध्, रुच्, शुष्, इन धातुओं से
किर प्रत्यय होता है । किर में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है । इससे
गुण का निषेध होता है ।

तिमिरम् तिमि आर्द्रभावे (दि.१४) । आर्द्रभाव= गीला होना, छिपना ।
तिम्यति । तिम्+किर, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव, गुणनिषेध, विभक्तिकार्य,
तिमिरम् । तम् । अन्धकार । अक्षिरोग । तिमिरं तमोऽक्षिरोगश्च
(उज्ज्वल. १-५२) । तिमिरं ध्वान्ते नेत्रमयाऽन्तरे (मेदिनी.रान्त.१६२) ।

रुधिरम् रुधिर् आवरणे (रु.१) । रोकना । रुणाद्धि । रुध्+किर, क्
अनुबन्ध के कारण यण्वद्भाव, गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, रुधिरम् ।
रक्त । रुधिरोऽङ्गारके पुंसि क्लीबं तु कुङ्कुमासृजोः (मेदिनी.रान्त.२०६) ।

मदिरा मदी हर्षे (दि.४८) । माद्यति । मद्+किर, मदिरा । सुरा ।
भूमि । भूमि (श्वेत.वृ.१-५०) । ।

मन्दिरम् मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (भू.३०१) । मन्दते ।
मन्द+किर क् अनुबन्ध का अप्रयोग, विभक्तिकार्य, मन्दिरम् । गृह ।
नगर, आवास । देवालय । मन्दिरं नगरेऽगारे क्लीबं ना मकरालये
(मेदिनी.रान्त.१९७) ।

चन्दिरः चदि आह्लादने (भू.२६) । प्रसन्न होना । चन्दति ।
चन्द+किर विभक्तिकार्य, चन्दिरः । हाथी । चन्द्र । चन्दिरः चन्द्रहस्तिनौ
(उज्ज्वल.१-५२) ।

बधिरः बन्ध बन्धने (क्री.३२) । बाँधना । बध्नाति । बन्ध्+किर,
नकारलोप, विभक्तिकार्य, बधिरः । कर्णेन्द्रियरहित । श्रोत्रविकल ।
उच्चैःश्रवा ।

रुचिरम् रुच दीप्तौ (भू.४७३) । दीप्ति=चमकना । रुचना । रोचते ।
रुच्+किर, विभक्तिकार्य, रुचिरम् । सुन्दर । दीप्त । ति.अनु.-रुचिरः ।

शुषिरम् शुष शोषणे (दि.२७) । सूखना । शुष्यति । शुष्+किर,
शुषिरम् । विवर । बिल । छिद्, आकाश (उज्ज्वल. १-५१) । शुषिरं
वंशादिवाद्ये विवरे च पुनपुसकम् (मेदिनी.रान्त.२२९) ।

किर प्रत्यय में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । इससे
उपर्युक्त सभी शब्दों में धातु को गुण का निषेध होता है ।
(कात.४/१/७) ।

24. अजिरादयः । १-२४ ।

अजिरशिशिरशिविरस्थिरखदिराः । एते किरप्रत्ययान्ता
निपात्यन्ते । 'अज क्षेपणे' वैरूप्यमजतीति अजिरं प्राङ्गणम् ।
'शसु हिंसायाम्' शसतीति शिशिरः ऋतुविशेषः । 'शव पिसृ'
शवतीति शिविरं संवृत्ति-स्थाननिवेशश्च । ष्ठा गतिनिवृत्तौ'
तिष्ठतीति स्थिरः निश्चलः । 'खादृ भक्षणे' खादतीति खदिरः ।
एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

अजिर, शिशिर, शिविर, स्थिर, खदिर ये सभी किर प्रत्ययान्त
शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । किर में क् अनुबन्ध अप्रयोगार्ह
है । इसमें पूर्व सूत्र से किर की अनुवृत्ति होती है ।

अजिरम् अज क्षेपणे (भू.६४) । क्षेपण=फेंकना, हटाना । वैरूप्यम्
अजति (विकृति=असमानता को हटाता है) । अजति । अज्+किर,
अजेर्वी (कात.३/५/४५) से वी का निपातन से निषेध, विभक्तिकार्य,

अजिरम् । प्राङ्गण (आँगन) अङ्गण, चत्वर (चबूतरा) वायु । अजिरं प्राङ्गणे काये विषये ददुरेऽनिले (मेदिनी.रान्त.१०९) ।

शिशिरः शसु हिंसायाम् (भू.२४०) । हिंसा=मारना, दुःख देना । शश प्लुतगतौ (भू.२३९) । प्लुतगति=शीघ्र जाना । शसति (शीघ्रं गच्छति) शश्+किर, निपातन से धातु की उपधा को इकार, विभक्तिकार्य, शिशिरः । ऋतुविशेष । (आश्विन-कार्तिक में होने वाली ऋतु) तुषार । शीतल । शिशिरः स्याद् ऋतोर्भेदे तुषारे शीतलेऽन्यवत् (वि.प्र.को.रान्त.१२७)

शिविरम् शव गतौ (भू.२३८) । शवति । शव्+किर, धातु की उपधा को इकार, निपातन से व् को ब, विभक्तिकार्य, शिविरम् । सैनिकों का निवास स्थान । किसी समुदाय का जमाव । निवेश । ति.अनु.-स्थान । निवेशः शिविरं षण्ठे (अ.को.२/८/३३) ।

पा.उ. शेरतेऽस्मिन् (जहाँ लोग सोते हैं, वह स्थान शिविर होता है । शी+किरच् बुगागम, ह्रस्व, शिविरम् (वै.सि.कौ.उ.सू. १-५३) ।

स्थिरः ष्ठा गतिनिवृत्तौ (भू.२६७) । गतिनिवृत्ति= ठहरना, रुकना । तिष्ठति । स्था+किर, धातुघटक आकार का लोप, स्थिरः । निश्चल ।

स्था+किर, निपातन से वकारागम स्थविरः । अचल ।

खदिरः खाद् भक्षणे (भू.१०) । खाना । खाद्+किर, निपातन से धातु की उपधा को ह्रस्व, विभक्तिकार्य, खदिरः । वृक्षविशेष । खदिरो दन्तधावने (वि.प्र.को.रान्त.२२०) ।

इसी प्रकार की प्रकृति वाले किर प्रत्ययान्त अन्य शब्दों को भी निपातन-प्रक्रिया के द्वारा निष्पन्न कर लेना चाहिए ।

यथा- इषिरः अग्नि । मुदिरः मेघ । खिदिरः चन्द्रमा ।
छिदिरः अग्नि, शस्त्र, विवर । भिदिरम् वज्र । मुहिरः पवित्र । महिरः
विचित्र । मुचिरः मोक्ष । अशिरः आदित्य, भोजन । स्फिरः बहुसार ।

25. शलिमण्डिभल्लिभ्य ऊकञ् । १-२५ ।

एभ्य ऊकञ्प्रत्ययो भवति । 'फल'² शल'³ शलतीति
शालूकं जलसम्भवम् । 'मडि' भूषायाम् मण्डते शिरः अलङ्करोति
मण्डूकः भेकः । 'भल भल्ल' भल्लते हिनस्तीति भल्लूकः
पशुविशेषः ।

शल मण्ड भल्ल इन धातुओं से ऊकञ् प्रत्यय होता है । ज्
अनुबन्ध इज्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । इससे उपधादीर्घादि कार्य होते हैं ।
(सिद्धिरिज्वद् ञानुबन्धे कात.४/१/१) ।

शालूकम् शल गतौ (भू. ५५४) । शलति । शल्+ऊकञ्, ज्
अनुबन्ध से इज्वद्भाव के कारण उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, शालूकम् ।
जलसम्भव । कमल का मूल या कन्द । उत्पलमूल- (श्वेत.४-४३)
मूलद्रव्य ।

मण्डूकः मडि भूषायाम् (भू.१०३) । भूषा=अलङ्कृत करना ।
सजाना । मण्डते शिरः (शिर मण्डित होता है) । भेक (मेंढक)
प्लव, शकुनि, हिंस्र मृग (श्वेत.वृ.४-४३) । मण्डूकः शोणके मुन्यन्तरे
स्याद् गूढवर्चसि (मेदिनी.कान्त.१३७) ।

1. शल श्वल्ल आशुगतौ (बं.सं.१-२७) ।

2. फल म.सं. । म.सं. में 'फल' पाठ है, जबकि धातु पाठ में 'पल
शल (भू.५५४) गतौ' ऐसा पाठ है । अतः फल के स्थान पर
पल पाठ रखना उचित है ।

3. शलिमण्डिभलिभल्लिभ्य ऊकञ् (बं.सं.१-२७) ।

भल्लूकः भल भल्ल परिभाषणहिंसादानेषु (भू.४१८) । परिभाषण करना, हिंसा तथा दान करना । भल्लते । भल्ल्+ऊकञ् भल्लूकः । पशुविशेष । ऋक्ष । रीछ ।

उणादित्वाद् उपधोपधस्याप्यकारस्य दीर्घः भाल्लूकः स एव (बं.सं.१-२७) ।

२६. सितनिगमिमसिसच्यवधाज्क्रुशिभ्यस्तुन् । १-२६ ।

एभ्यस्तुन्प्रत्ययो^१ भवति । 'षिञ् बन्धने' सिनोति बध्नाति जलं सेतुः जलरोधः । 'तनु विस्तारे' तनोतीति तन्तुः सूत्रम् । 'गम्लु गतौ' गच्छतीति गन्तुः पथिकः । आङ्पूर्वस्तु आगन्तुः । अतिथिः । 'मसी परिणामे' मस्यतीति मस्तु दधिमण्डम् । 'षच सेचने' सचते सक्तु यवविकारः । 'अव रक्ष पालने' आखुभ्यो गृहमवतीति ओतुः विडालः । 'डु धाज्' दधातीति धातुः अस्थ्यादिः लोहितादिर्वा गैरिकापेतं वस्तु । 'क्रुश आह्वाने' तुन्नन्तस्य तुः^२ । क्रुशेः घुटि स्त्रियाम् असंबुद्धावनपुंसके ना (त्रा)भिधानम् । तत्र तृचि(च) च (न) शसादिषु षष्ठीवहुवचन-वर्जितेषु स्वरेषु वा तत्रागमस्य परत्वात् स्वरस्याभावो ज्ञेयः । क्रोशन्तीति क्रोष्टारः तान् क्रोष्टून्^३ । क्रोशतीति क्रोष्टा । तेन क्रोष्ट्रा क्रोष्टुना^४ । व्यञ्जनविषये तुन्नेव । क्रोष्टुभ्याम् । क्रोष्टुभिः, क्रोष्टुभ्यः, क्रोष्टूनाम्, क्रोष्टुषु इति । उणादीनां बाहुल्यात्-

१. नकारस्तूच्चारणार्थः-ति.अनु. ।

२. पाठा. तुः बं.सं. । तु के स्थान पर 'तृ' पाठ ही उचित प्रतीत होता है । क्योंकि तुन्नन्त तथा तृजन्त दो प्रकार के शब्द बनते हैं । अतः तुन्नन्त के स्थान पर 'तुन्' न कह कर 'तृ' ही कहना चाहिए ।

३. शसोऽकारः सश्च नोऽस्त्रियाम् (कात.२/१/५२)-ति.अनु. ।

४. टा ना (कात.२/१/५३) इत्यनेन नादेशः-ति.अनु. ।

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥

सि, तन्, गम्, मस्, सच्, अव्, धा तथा कृश् इन धातुओं से
तुन् प्रत्यय होता है । तुन् में न् अनुबन्ध है ।

सेतुः षिञ् बन्धने (सु.२) । बन्धन=बाँधना, रोकना । 'धात्वादेः षः सः'
(कात.३/८/२४) सूत्र से ष् को स् । सिञोति जलं (जो जल को
रोकता है) सि+तुन्, धातु की उपधा को 'नामिनश्चोपधाया लघोः'
(कात.३/५/२) । इस सूत्र से गुण से एकार, विभक्तिकार्य, सेतुः ।
जलरोध (जल) । सेतुरालौ च वरुणे (वि.प्र.को. तान्त.१८) ।

तन्तुः तनु विस्तारे (त.१) । बढ़ना, विस्तार करना । तनोति ।
तन्+तुन्, अनुस्वार, वर्गान्त, तन्तुः । सूत्र ।

गन्तुः गम्लृ गतौ (भू.२७९) । गच्छति । गम्+तुन्, गन्तुः । पथिक,
रास्तागीर ।

आङ् (पूर्वक) गम्+तुन्, आगन्तुः । अतिथि, अभ्यागत ।

मस्तु मसी परिणामे (दि.६०) । परिणाम=आकार बदलना । मस्यति ।
मस्+तुन्, मस्तु । दधिमण्ड (दही की मलाई) दही में रहने वाली
वस्तु । मण्डं दधिभवं मस्तु (अ.को.२/९/५४) ।

सक्तुः षच समवाये. (सेचने भू.३३८) । समवाय= पूरा जानना, सम्बन्धी
होना, सींचना । सचते । सच्+तुन् 'चजोः कगौ धुङ्घानुबन्धयोः'
(कात.४/६/५६) से चकार को ककार, विभक्तिकार्य, सक्तुः । यवविकार
या धान्यविकार (सतुवा) ।

ओतुः अव पालने (भू.२०२) । पालन करना, रक्षा करना । 'आखुभ्यो
गृहम् अवति' (जो चूहों से घर की रक्षा करता है) अव्+तुन्, अव् के

वकार को 'श्रिव्यविमविज्वरित्वरामुपधया' (कात.४/१/५७) सूत्र से ऊर्ध्व आदेश, गुण से ओकार, विभक्तिकार्य, ओतुः । विडाल, बिलार ।

धातुः डु धाञ् धारणपोषणयोः (अ.८५) । धारण करना, पोषण करना । दधाति । धा+तुन्, विभक्तिकार्य, धातुः^१ । अस्थि आदि, लोहित या गैरिक आदि से युक्त वस्तु ।

व्याकरण में क्रियावाचक या भाववाचक शब्द (क्रियाभावो धातुः, कात.३/१/९, पा.सू.१/३/१) ।

क्रोष्टुः क्रुश आह्वाने (भू.५६४) । पुकारना, रोना । क्रोशति । कुश्+तुन्, धातु को गुण, 'छशोश्च' (कात.३/६/६०) से श् को ष, तथा तुन् के तकार को 'तवर्गस्य षटवर्गाट् टवर्गः' (कात.३/८/५) सूत्र से टकार, विभक्तिकार्य, क्रोष्टुः । शृगाल । सियार ।

तुनन्त को 'तृ' भाव होता । 'क्रोष्टृ' शब्द में ऋ को सम्बुद्धिसंज्ञक सि, शस् व्यञ्जनादि विभक्ति एवं नपुंसकलिङ्ग में उकार हो जाता है ।

क्रुश् धातु से घुट् में स्त्रीलिङ्ग में सम्बुद्धिरहित तथा नपुंसक-भिन्न तुन् का अभिधान नहीं होता । तृजन्त क्रोष्टृ से शसादि में षष्ठी-बहुवचन-वर्जित स्वरादि विभक्तियों में ऋ का अभाव वैकल्पिक होता है । नु आगम होने से स्वर का अभाव होता है । इस तथ्य को दुर्गीसिंह ने 'धातोस्तृशब्दस्यार्' (कात.२/१/६८) इस सूत्र की वृत्ति में इस प्रकार स्पष्ट किया है- 'तृशब्दस्येति किम् ? ननान्दरौ ननान्दरः । नजि च नन्देः (कात.उ.सू.१-९०) । क्रुशेस्तुन् घुटि स्त्रियां च नास्त्यौणादिकत्वात् । क्रोष्टा, क्रोष्ट्री । तृचा सिद्धम् । शसादौ तु तृजन्तस्य तुनन्तस्य च प्रयोगः क्रोष्टृन्, क्रोष्टून् । क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना

१. श्लेष्मादि रससिक्तादि महाभूतानि तदगुणाः ।
इन्द्रियाण्यश्मविकृतिः शब्दयोनिश्च धातवः ॥ (अ.को.३/३/६५)

इत्येवमादयः' । शसादि में तृजन्त क्रोष्टृ तथा तुन्नन्त क्रोष्टृ का प्रयोग होता है ।

'क्रोशति' इस व्युत्पत्ति में बहुवचन में 'क्रोष्टारः' होता है । तृतीया में टा आदि विभक्तियों में विकल्प से ऋ को उ होता है । इसीलिए क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना आदि दो रूप होते हैं । व्यञ्जनादिविभक्ति के परे तुन्नन्त ही प्रातिपदिक होता है । इसीलिए भ्याम्-भिस् आदि विभक्तियों में उकारघटित 'क्रोष्टुभ्याम्', 'क्रोष्टुभिः', 'क्रोष्टुभ्यः', 'क्रोष्टूनाम्', 'क्रोष्टुषु' रूप होते हैं । षष्ठी-बहुवचन में 'नु' आगम के कारण 'क्रोष्टूनाम्' रूप साधु माना जाता है ।

औणादिक प्रत्ययों का प्रयोग बहुलता से होता है । अतः औणादिक प्रत्यय 'तुन्' का भी यहाँ बहुलता से प्रयोग मानकर 'क्रोष्टु-क्रोष्टृ' दोनों ही प्रातिपदिक आवश्यकतानुसार स्वीकार्य होंगे ।

उणादि प्रत्ययों के बाहुलक का नियम-

विधि (सूत्र) का कहीं प्रवृत्त होना, कहीं प्रवृत्त न होना, कहीं विकल्प से होना और कहीं अन्य कार्य का होना । इस प्रकार यह चार तरह का बाहुलक होता है (पा.सू.-उणादयो बहुलम् ३/३/१) ।

२७. कमिमनिजनिवसिहिभ्यश्च ।१-२७।

एभ्यस्तुन्प्रत्ययो भवति । 'कमु कान्तौ' कमते । इति कन्तुः कन्दर्पः । 'मन ज्ञाने' मन्यते मन्तुः ज्ञानी मुनिश्च । 'जन जनने' जजन्ति जन्यते वा जन्तुः प्राणी । 'वस निवासे' वसति सुखमनेन इति वस्तु धनम् । वास्तु गृहभूमिः ।

1. कमते म.सं. । 'कमु कान्तौ' इस भौवादिक (भू.४०५) धातु से कामयते रूप होता है । आय् के विकल्प विधान से ही कमते हो सकता है । का.कृ.धा. में 'कमते एवं कामयते' उभय रूप निर्दिष्ट है । कात.व्या. एवं पा.व्या. में 'कमते अनिर्दिष्ट है ।

भिन्ननिर्देशाद् वसेर्वा दीर्घत्वं वक्तव्यम् । 'हि गतौ' हिनोतीति हेतुः कारणम् ।

कम्, मन्, जन्, वस्, तथा हि इन धातुओं से तुन् प्रत्यय होता है । पूर्वसूत्र से यहाँ 'तुन्' की अनुवृत्ति होती है । न् अनुबन्ध प्रयोगार्ह नहीं होता ।

कन्तुः कम् कान्तौ (भू.४०५) । कान्ति=इच्छा करना, चाहना । कामयते । कम्+तुन्, 'मनोरनुस्वारो धुटि' (कात.२/४/४४) से मकार को अनुस्वार तथा अनुस्वार को तद्वर्गीय पञ्चम वर्ण नकार, विभक्तिकार्य, कन्तुः । कन्दर्प । कामदेव । चित्त ।

मन्तुः मन ज्ञाने (दि.११३) । ज्ञान करना । मन्यते । मन्+तुन्, मन्तुः । ज्ञानी तथा मुनि । ति.अनु.- ब्रह्मा । अपराध । वैमनस्य । मन्तुः पुंस्यपराधेऽपि मनुष्येऽपि प्रजापतौ (मेदिनी.तान्त.४३) ।

जन्तुः 'जन जनने' (अ.८०) । उत्पन्न करना । जजन्ति या जन्यते । जन्+तुन्, विभक्तिकार्य, जन्तुः । प्राणी ।

वस्तु-वास्तु वस निवासे (भू.६१४) । निवास करना । वसति सुखमनेन (जिससे सुख-पूर्वक वास करता है) वस्+तुन्, वस्तु । धन । ति.अनु.- आश्रय ।

वस् धातु के पृथक् निर्देश से वैकल्पिक दीर्घ भी होता है- वास्तु गृहभूमि (वासभूमि) ।

हेतुः हि गतौ वृद्धौ च (सु.११) । जाना, बढ़ना । हिनोति (=प्राप्नोति कार्यम्) हि+तुन्, गुण हेतुः । कारण ।

पत्+तुन् पतुः पतितः (बं.सं.) ।

२८. केत्वादयः ११-२८।

केत्वृत्तुक्रत्वाप्पुपीत्वेधतुवहतुजीवातवः । एते तुन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'कै गै रै' शब्दे 'सन्ध्यक्षरान्तानाम्' इत्याकारः । कायतीति केतुः ध्वजः । 'ऋ गतौ' इयतीति ऋतुः वसन्तादिः । 'डु कृञ्' करोतीति क्रतुः यागः । क्रियते स्वर्गकामैर्वा । आप्लु व्याप्तौ आप्नोतीति आप्तुः याज्ञिकः । 'पा पाने' पिबतीति पीतुः सूर्यः 'एधङ् वृद्धौ' एधते एधतुः अग्निः । 'वह प्रापणे' वहतीति वहतुः अनड्वान् । 'जीव प्राणधारणे' जीवतीति जीवातुः जीवनम् । एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

केतु, ऋतु, क्रतु, आप्तु, (अप्तु) पीतु, एधतु, वहतु तथा जीवातु ये सभी तुन् प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

केतुः कै शब्दे (भू.२५६) । बोलना, ध्वनि करना । कायति । 'सन्ध्यक्षरान्तानामाकारोऽविकरणे' (कात.२/४/२०) इस सूत्र से कै में सन्ध्यक्षर ऐ को आ । का+तुन्, निपातन से धातुगत आकार को एकार, केतुः । ध्वज (पताका) तथा ग्रहविशेष । ति.अनु.- लक्ष्म । केतुर्ना रुक्पताकाविग्रहोत्पादेषु लक्ष्मणि (मेदिनी.तान्त.१३)।

ऋतुः 'ऋ गतौ' (अ.७४) । इयति । ऋ+तुन्, ऋतुः । वसन्त आदि । हेमन्तादि (बं.सं.) । ति.अनु.- शिशिरादि । ऋतुः स्त्रीकुसुमे मासि वसन्तादिषु- (दीषु) धारयोः (वि.प्र.को.तान्त.२०) ।

क्रतुः डु कृञ् करणे (त.७) । करोति । क्रियते स्वर्गकामैः (स्वर्ग की इच्छा रखने वालों के द्वारा जिसे किया जाता है) कृ+तुन्, निपातन से ऋ को रु, विभक्तिकार्य, क्रतुः । यज्ञ । क्रतुर्यज्ञे मुनेर्भिदि (वि.प्र.को.तान्त.१८) ।

तु.- कृञः कतुः (वै.सि.कौ.उ.१/७७) ।

आप्तुः (अप्तुः) 'आप्तृ व्याप्तौ' (सु.१४) । व्याप्त होना । आप्नोति ।
 आप्+तुन् आप्तुः=याज्ञिक । यज्ञाग्नि । ति.अनु.-अप्तुः ।

आप्नोतेर्ह्रस्वश्च (वै.सि.कौ.उ.सू.१-७४) सूत्र से आप् धातु को
 ह्रस्व, अप्तुः । शरीर ।

पीतुः 'पा पाने' (भू.२६४) । पीना । पिबति । पा+तुन्, धातुस्थ
 आकार को निपातन से ईकार, विभक्तिकार्य, पीतुः । सूर्य । अग्नि ।
 हाथियों का झुण्ड ।

ति.अनु.- पिबतेरकारस्य इकारः पितुः ।

एधतुः एध वृद्धौ (भू.२९२) । बढ़ना । एधते । एध्+तुन्, धातु को
 अकार अन्तादेश, एधतुः । अग्नि । रश्मि । पुरुष । एधतुः पुरुषेऽग्नौ
 ना कलितं विदिताप्तयोः (मेदिनी.तान्त.१०२) ।

वहतुः वह प्रापणे (भू.६१०) । पहुँचाना, ढोना । वहति । वह्+तुन्,
 धातु को अकार अन्तादेश, वहतुः । अनङ्वान् (बैल) । वहतुः पथिके
 वृषभे पुमान् (मेदिनी.तान्त.१५०) ।

जीवातुः जीव प्राणधारणे (भू.१९२) । प्राण धारण करना, जीना ।
 जीवति । जीव्+तुन्, धातु को दीर्घान्तादेश, जीवातुः । जीवन, प्राणी ।

बं.सं., ति.अनु.- जीवतुः । जीवेरातुः (वै.सि.कौ.उ.१/७९) ।
 भक्त, जीवित, जीवनोपयुक्त औषध । जीवातुरस्त्रियां भक्ते जीविते
 जीवनौषधे (मेदिनी.तान्त.११२) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अन्य शब्दों को भी तुन् प्रत्यय
 तथा निपातन-प्रक्रिया के द्वारा निष्पन्न कर लेना चाहिए ।

यथा- गातुः-गाथक, पथिक । भातुः सूर्य । यातुः पथिक ।
 पोतुः पविता ।

२९. स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्य इन्। इत्नुः ११-२९।

एभ्य इनन्तेभ्य इत्नुप्रत्ययो भवति । 'स्तन शब्दे' चौरादिकाः । [स्तनयतीति स्तनयित्नुः] । 'तुष हृष तुष्टौ' [हर्षयतीति हर्षयित्नुः] [पुष पुष्टौ पोषयतीति पोषयित्नुः] 'गद व्यक्तायां वाचि' [गदयतीति गदयित्नुः] वावदूकः । 'मदि हर्षे' हेताविन् । मदयतीति मदयित्नुः सीधुः ।

स्तनि, हृषि, पुषि, गदि, मदि, इन सभी 'इन' प्रत्ययान्त धातुओं से इत्नु प्रत्यय होता है । सूत्रस्थ 'इनः' पद में पञ्चमी एक वचन के स्थान पर 'गदिमदिभ्यः' के अनुरोध से बहुवचन होना चाहिए ।

स्तनयित्नुः स्तन शब्दे (चु.१८०) । शब्द करना, गरजना । स्तनयति । स्तन्+इन गुण अयादेश, स्तनय्+इत्नु स्तनयित्नुः । मेघ या विद्युत । मृत्यु । रोग । स्तनयित्नुः पुमान्वारिधरेऽपि स्तनितेऽपि च (मेदिनी.नान्त.११९) । पयोवाहे तद्धनौ मृत्युरोगयोः (वि.प्र.को.नान्त.१९४) ।

हर्षयित्नुः हृष तुष्टौ (दि.६७) । तुष्ट होना, प्रसन्न होना । हर्षयति । हृष्+इन, गुण अयादेश । हर्षय्+इत्नु, हर्षयित्नुः । सुवर्ण । सुजन । सुत । हर्षयित्नुः सुते हेमिन् (वि.प्र.को.नान्त.१९४) ।

पोषयित्नुः पुष पुष्टौ (भू.२२८) । पुष्ट करना । पोषयति । पुष्+इन, गुण अयादेश, पोषय्+इत्नु, विभक्तिकार्य, पोषयित्नुः । भर्ता । सुवर्ण ।

गदयित्नुः गद व्यक्तायां वाचि (भू.१३) । स्पष्ट बोलना । गदयति । गदय्+इत्नु, विभक्तिकार्य, गदयित्नुः । वावदूक (अधिक बोलने वाला)

1. 'इनः' यह पद 'पुषिगदिमदिभ्यः' का विशेषण है । अतः पञ्चमी बहुवचन के अनुसार 'इनः' के स्थान पर 'इन्भ्यः' ऐसा पाठ होना चाहिए । वृत्ति में भी 'इनन्तेभ्य' पाठ है । वैसे 'वचन-विपरिणाम' नियम से अन्वय करके ही समाधान किया जा सकता है । अनन्वितार्थकविभक्तिकल्पनापेक्षया अन्वययोग्यविभक्तिकल्पनं विपरिणामः ।

कामुक । वाचाल । गदयितुः स्मृतः कामे जल्पाके कामुकेऽपि च
(वि.प्र.को.नान्त.१९३)

मदयितुः मदी हर्षे (हर्षग्लेपनयोर्मदिः भू.५२९, मदी हर्षे दि.४८) ।
मदयति । मदय्+इत्लु, मदयितुः । सीधुः (शराब) । कामुक (बं.सं. ।
मदयितुः मदयुते (कामदेवे) पुमान् मद्ये नपुंसकः (मेदिनी.नान्त.९९) ।

घोषयितुः कोकिलः (बं.सं.) । घोषयितुः द्विजे पिके
(वि.प्र.को.नान्त.१९४) ।

यहाँ इनन्त सभी धातुओं को 'कारितस्यानामिङ्विकरणे'
(कात.३/६/४४) । से होने वाले कारितलोप का 'नाल्विष्णवाय्यान्तेत्लुषु'
(कात.४/१/३७) इस सूत्र से प्रतिषेध होता है । इसीलिए गुण नहीं
होता है (बं.सं.-ति.अनु.) ।

३०. मृगोरुतिः । १-३०।

आभ्यामुतिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । 'मृङ्
प्राणत्यागे' म्रियन्ते क्षुद्रजन्तवः स्पर्शनास्य इति मरुत् वायुः । 'गृ
निगरणे' गिरतीति गरुत् पक्षिपिच्छम् ।

मृ तथा गृ इन दोनों धातुओं से उति प्रत्यय होता है । उति
में इकार उच्चारणार्थ है । उत् प्रयुक्त होता है । यहाँ तकार की
रक्षा के लिए इकार प्रयुक्त है ।

मरुत् मृङ् प्राणत्यागे (तु.१११) । प्राणत्याग=मरना, प्राण छोड़ना ।
म्रियन्ते क्षुद्रजन्तवः स्पर्शनास्य (जिसके स्पर्श से क्षुद्र जीव-जन्तु नष्ट हो
जाते हैं) मृ+उति (इ अनुबन्ध का अप्रयोग) मृ में ऋ को अर् गुण,
विभक्तिकार्य, मरुत् । वायु ।

गरुत् गृ निगरणे (तु.२२) । निगरण=निगलना, खाना । गिरति ।
गृ+उति, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, गरुत् । पक्षी का पंख या पक्षी
की पूँछ । आदित्य । ति.अनु.-पक्षिराज ।

३१. कृषिचमितनिधनिबधिसर्जिखर्जिभ्य ऊः ।१-३१।

एभ्य ऊप्रत्ययो भवति । 'कृष विलेखने' कृष्यते कर्षूः
शुष्कगोमयम् । 'चमु छमु' चमतीति चमूः सेना । 'तनु
विस्तारे' तनोतीति तनूः शरीरम् । 'धन धान्ये' दधन्तीति धनूः
शस्त्रम् । 'बध बन्धने' बधते (बध्नाति) चित्तमिति वधूः
पुत्रादिभार्या । 'सर्ज आर्जने' सर्जतीति सर्जूः विद्युत् । 'खर्ज
मार्जने' खर्जतीति खर्जूः कण्डूतिः ।

कृष, चमु, तनु, धनु, बध्, सर्ज्, खर्ज् इन धातुओं से ऊ
प्रत्यय होता है ।

कर्षूः कृष विलेखने (भू.२२३, तु.६) विलेखन=जोतना, खींचना । कृष्यते
(कर्म) कृष+ऊ, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, कर्षूः । सूखा गोबर ।
शुष्क गोबर की कण्डी की अग्नि । खेती, उपलों का अङ्गार । नहर
(अ.को.३/३/२२३) । कर्षूः पुमान् करीषाग्नौ स्त्रियां कुल्येष्टिखातयोः
(मेदिनी.षान्त.१) ।

चमूः चमु अदने (भू.१५६) । खाना, पाना । चमति । चम्+ऊ,
विभक्तिकार्य, चमूः (स्त्री.) । सेना । चमूः सेनाविशेषे च सेनामात्रे च
योषिति (मेदिनी.मान्त.१२) ।

चमति भक्षयति शत्रून् इति चमूः सेना, (श्वेत.वृ.१-१७८) ।

तनूः तनु विस्तारे (त.१) । तनोति । तन्+ऊ, तनूः । शरीर ।
(द्र. तनुः शरीर, कात.उ.१-५) ।

धनूः धन धान्ये (अ.७९) । उत्पन्न करना, फलना । दधन्ति ।
धन्+ऊ, धनूः (स्त्री.) । शस्त्र ।

द्र. धनुः (उ.सू.१-१५), धनुः शरासन (२-४६) ।

वधूः बध बन्धने (क्री.३२) । बाँधना । बधते या बध्नाति चित्तम् (जो
मन को बाँध लेती है) बध्+ऊ, बकार को वकार, वधूः । पुत्रादि की
स्त्री । वधूः स्नुषानवोढास्त्रीभार्यास्पृक्काङ्गनासु च (वि.प्र.को.धान्त.२०) ।

सर्जूः सर्ज अर्जने (भू.६५) । अर्जित करना । सर्जीति । सर्ज्+ऊ,
सर्जूः । विद्युत् (बिजली) । वणिक् । सर्जूर्वीणिजि, विद्युति
(मेदिनी.जान्त.१७) ।

खर्जूः खर्ज मार्जने च (भू.६७) । खर्जीति । खर्ज्+ऊ, खर्जूः ।
कण्डूति (खुजली) मण्डूक, विद्युत (श्वेत.वृ.१-७८) । खर्जूः कीटान्तरे
स्मृता । खर्जूरीपादपे कण्डूवां (मेदिनी.जान्त.७) ।

३२. त्रो दोऽन्तश्च । १-३२।

अस्मादूप्रत्ययो भवति दोऽन्तश्च । 'तृ प्लवनतरणयोः'
तीर्यतेऽनया तर्दूः ।

तृ धातु से ऊ प्रत्यय तथा उसके अन्त में दकार होता है ।

तर्दूः तृ प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । पार जाना, तैरना । तीर्यतेऽनया ।
तृ+ऊ, दकारागम, ऋ को अर्, तर्दूः । दारुहस्त । लकड़ी की मूठ
वाली कड़छी । दर्वी । नौका, यष्टि । स्यात्तर्दूर्दारुहस्तकः
(अ.को.२/९/३४) ।

३३. दरिद्रातेर्यालोपश्च ११-३३।

इश्च आश्च यौ योर्लोपो यालोपः । अस्मादुप्रत्ययो भवति इकाराकारयोर्लोपश्च । 'दरिद्रा दुर्गतौ' दरिद्रातीति दद्वः कुष्ठविशेषः ।

इकार तथा आकार का द्वन्द्व समास होता है । इश्च आश्च (यण्) यौ, योर्लोपः यालोपः (तत्पुरुष) (इकार तथा आकार का लोप) ।

दरिद्रा धातु से ऊ प्रत्यय होता है तथा धातुघटक इकार तथा आकार का लोप होता है ।

दद्वः दरिद्रा दुर्गतौ (अ.३७) । दुर्गति=दरिद्री होना, दुःखित होना । दरिद्राति । दरिद्रा+ऊ, दरिद्रा में इ तथा आ का लोप, चकार बल से पक्ष में रेफ का लोप (बं.सं.) दद्वः कुष्ठविशेष । कुष्ठभेद । दद्वुणो दद्वुरोगी स्यात् (अ.को.२/६/५९) ।

वृत्तिकार के अनुसार रेफ लोप न होने पर 'दद्वः' रूप भी होगा ।

३४. कण्ड्वादयः [कच्छ्वादयः] ११-३४।

कण्डू [कच्छू] दिधिषूजम्बूकम्ब्वड्वलाबूपादूकर्कन्धूकसेरूकासू-
नृभूरतवः । एते ऊप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'कच बन्धने'
कचतीति (कचते) कच्छूः पामा । दीधीङ् दीप्तिवमनयोः दिधीते
दिधिषूः पुनर्भूः स्त्री । 'जन जनने' जजन्तीति जम्बूः
वृक्षविशेषः । 'कमु कान्तौ' कमते कम्बूः परद्रव्यापहारी ।
'अड उद्यमे' अडतीति अडूः (आडूः) जलतरणिः । 'लवि
अवसंसने' । आड्पूर्वः । अलाबूः तुम्बीफलम् । 'पद गतौ'
पद्यते पादूः उपानत् । [डु धाज् धारणपोषणयोः] कर्क कण्टकं
दधातीति कर्कन्धूः बदरी । 'कस सिष' कसतीति कसेरूः

तृणविशेषः मूलम्(च) 'कस गतौ' कसतीति कासूः वातरोगः ।
'भा दीप्तौ' नृपूर्वः । नृभिर्भातीति नृभूः राजा । 'ऋ गतौ'
इयतीति रतूः कृमिविशेषः । एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

कच्छू, दिधिषू, (दीधिषू) जम्बू, कम्बू, आडू, अलाडू, पाडू,
कर्कन्धू, कसेरू (कशेरू) कासू, नृभू, रतू ये सभी ऊ प्रत्ययान्त शब्द
निपातन से सिद्ध होते हैं ।

कच्छूः कच बन्धने (भू.आ.३४०) । बाँधना । कचते । कच्+ऊ,
निपातन से छकार, द्वित्वादि कार्य, विभक्तिकार्य, कच्छूः पामा (गीली
खुजली या खसरा) । कच्छ्वां तु पाम पामा विचर्चिका
(अ.को.२/६/२५)।

दिधिषूः दीधीङ् दीप्तिवमनयोः (अ.५७) । चमकना, वमन करना ।
दीधीते । दीधी+ऊ, निपातन से दीधी घटक दोनों ईकारों को ह्रस्व
तथा ष् अन्तादेश (दीधीतेरादेः ह्रस्वत्वं षोऽन्तः बं.सं.,ति.अनु.) दिधिषूः ।
पुनः व्याही हुई स्त्री (दो बार विवाह की हुई स्त्री) ।

दो बार व्याही हुई स्त्री के पति का नाम दिधिषू और दो
बार व्याही हुई स्त्री के द्विजाति वर्ण वाले पति का नाम 'अग्रेदिधिषू'
होता है । दिधि धैर्यं स्यति त्यजति दिधिषूः (सि.चं.सु.१-५५) ।

जम्बूः जन जनने (अ.८०) । उत्पन्न होना । जजन्ति । जन्+ऊ,
निपातन से बकार, न् को अनुस्वार, पञ्चम वर्ण जम्बूः वृक्षविशेष
(जामुन का पेड़) ।

चान्द्रव्याकरणे जम्बुरिति ह्रस्वान्तो दर्शितः इत्युज्ज्वलदत्तः
(दश.वृ.१-१७६) । जम्बूः स्यात् पादपान्तरे तथा सुमेरुसरिति द्वीपभेदेऽपि
च स्त्रियाम् (मेदिनी.बान्त.४) ।

कम्बूः कमु कान्तौ (भू.४०५) । चाहना । कामयते । कम्+ऊ, निपातन से बकार, कम्बूः । परद्रव्य का हरण करने वाला । शङ्ख । कम्बूः शङ्खेऽस्त्रियां पुंसि शम्बूके वलये गजे । (मेदिनी.बान्त.२) ।

आडूः अड उद्यमे (भू.१२७) । उद्यम=प्रयत्न करना । अडति । अड्+ऊ, धातु को दीर्घ विभक्तिकार्य, आडूः । जलतरणि (जल में पौड़ने का साधन) नौका । जलभृङ्गार । योनिव्याधि ।

तु.- अडो ङश्च, आडूर्जलप्लवद्रव्यम् (वै.सि.कौ.उ.सू.१-८६) ।

अलाबूः 'लवि अवस्रसने' (भू.३८५) । अवस्रसन=लटकना, नीचे औघा गिरना । न लम्बते (नञ्पूर्वक) लम्ब्+ऊ, निपातन से लम्ब् के अकार को दीर्घ तथा नकारलोप (नञ्पूर्वस्य लबेरकारस्य दीर्घः नलोपश्च बं.सं.) विभक्तिकार्य, अलाबूः । तुम्बीफल, कददू, लौकी (शाकविशेष) ।

वृत्ति में आङ्पूर्वक लवि धातु से अलाबू की निष्पत्ति का उल्लेख है जब कि बं.सं. में नञ् पूर्वक लवि धातु से निष्पत्ति की गई । नञि लम्बेर्नलोपश्च (वै.सि.कौ.उ.सू.१-८७) ।

पादूः पद गतौ (दि.१०७) । पद्यते । पद्+ऊ, निपातन से धातु को दीर्घ, विभक्तिकार्य, पादूः । उपानत् । जूता, खड़ाऊँ । ति.अनु.- काष्ठ-उपानत् ।

कर्कन्धूः डु धाज् धारणपोषणयोः (अ.८५) । धारण करना । कर्क कण्टकं दधाति (जो काँटों को धारण करता है) । कर्क (पूर्वक) धा+ऊ, निपातन से धातुघटक आकार का लोप विभक्तिकार्य, कर्कन्धूः । बदरी (बेर फल) ।

पा.व्या. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् (वा.३६३२, पा.सू.१-१-६४) कर्कन्धूः ।

कसेरूः कस गतौ (भू.५६८) । कसति । कस्+ऊ, निपातन से धातु को एर् अन्तादेश, विभक्तिकार्य, कसेरूः । तृणजाति मूल ।

पा.उ.- के श्र एरङ् चास्य (श्वेत.वृ.१-८६) क् (उपपद) शृ+एरङ्-कशेरूः, जलजाति विशेष, वीरुद विशेषः, फलजाति ।

बाहुलकात् उ प्रत्यये कशेरूः (वै.सि.कौ.उ.सू.१-८८) ।

कासूः कस गतौ (भू.५६८) । कसति । कस्+ऊ, निपातन से धातु को वृद्धि कासूः । वात रोग । शक्ति नामक अस्त्र-(श्वेत.वृ.१-२३) बुद्धि तथा वाणी में अस्पष्टता । कासूस्तु शक्त्यायुधे रुजि । बुद्धौ विकलवाचि स्यात् (अ.सं.को.का.२, पृ.४६, श्लो.५९१) ।

नृभूः भा दीप्तौ (अ.१५) । चमकना । नृभिर्भाति (जो मनुष्यों से सुशोभित होता है) नृ पूर्वक प्रयोग । नृ भा+ऊ, धातुघटक आकार का लोप, विभक्तिकार्य नृभूः । राजा ।

ति.अनु. त्रिपूर्वः- त्रिभूः । त्रिभुवन ।

रतूः ऋ गतौ (अ.७४) । इयति । ऋ+ऊ, निपातन से ऋ को रकार तथा तकार अन्तादेश, विभक्तिकार्य, रतूः । कृमिविशेष (कीड़ा) ।

ऋत्+कू, रमागम् रन्तूः । रन्तूर्देवनदी सत्यवाक् च (वै.सि.कौ.उ.सू.१-९२) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अन्य शब्दों को भी ऊ प्रत्यय तथा निपातन-प्रक्रिया के द्वारा निष्पन्न कर लेना चाहिए । जैसे- मर्जूः (रजः शुद्धि) खडूः मृतशय्या । शृधूः, गुण, प्रज्ञा । अन्दूः लौह-शुद्धखला । दृन्भूः सर्पजाति । कफेलूः श्लेष्मातक ।

३५. हसृतडिरुहियूषिभ्य इति: १-३५।

एभ्य इतिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । 'हञ् हरणे' हरतीति हरित् वर्णविशेषः । 'सृ गतौ' सरतीति सरित् नदी । 'तड आघाते' चौरादिकः । अस्य च अत एव दीर्घाभावः । ताडयतीति तडित् विद्युत् । 'रुह बीजजन्मनि' रोहयतीति रोहित् मत्स्यो वर्णविशेषश्च । 'यूष हिंसार्थः' यूषतीति योषित् नारी ।

ह, सृ, तड, रुह, तथा यूष् इन सभी धातुओं से इति प्रत्यय होता है । इति में अन्त्य इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है । इत् का प्रयोग होता है ।

हरित् हञ् हरणे (भू.५९६) । हरण करना । ह+इति, धातुघटक ऋ को अर्, विभक्तिकार्य हरित्^१ । वर्णविशेष । दिशा ।

अश्व, सूर्य, मृग (श्वेत.वृ.१-९५) । शाद्वल (नयी घास से हरा भरा स्थान) । सूर्याश्व, मृग, वायु, (उ.म.दी.१-९६) । ककुभ्वर्ण, तृण, वाजिविशेष (वै.सि.कौ.बाल.उ.सू.) ।

सरित् सृ गतौ (भू.२७४) । सरति । सृ+इति, सृ में ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, सरित् । नदी ।

तडित् तड आघाते (चु.३०) । आघात करना, चोट पहुँचाना । चौरादिक होने से 'चुरादेश्च' (कात.३/२/११) से इन्, ताडयति ।

1. हरित्ककुभि वर्णे च तृणवाजिविशेषयोः ।

हरितेऽपि च दुर्वायां, हरिद्वर्णयुतेऽन्यवत्॥

(वि.प्र.को.तान्त.१४०) ।

हरिद्विशि स्त्रियां पुंसि हयवर्णविशेषयोः । अस्त्रियां स्यात्तृणेऽपि च (मेदिनी.तान्त.१७४) ।

ताडि+इति, चौरादिक होने से दीर्घ का अभाव, विभक्तिकार्य, तडित् ।
विद्युत् (अ.को.१/३/९) बिजली ।

तु.- ताडेर्णिलुक् च (वै.सि.को.उ.सू.१-९८) ।

रोहित्. रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (भू.५६७)। बीज से उत्पन्न होना । रोहति । रुह+इति, धातु को गुण ओकार, विभक्तिकार्य रोहित् । मत्स्य (मछली) वर्णविशेष । विशिष्ट लता, हरिणी । लाल रक्त, मृग । अग्नि (श्वेत.वृ.१-९५) । ति.अनु.- सूर्य । रोहितं कुङ्कुमे रक्ते ऋजुशक्रशरासने । पुंसि स्यान्मीनमृगयोर्भेदे रोहितकट्टुमे (मेदिनी.तान्त.१४६-१४७) ।

योषित् यूष हिंसायाम् (का.कृ.धा.भू.२९३) । मारना, नष्ट करना । यूषति । यूष+इत् गुण, विभक्तिकार्य, योषित् । नारी । प्रमदा । स्त्री योषिदबला योषा (अ.को.२/६/२) ।

३६. शमेर्ढः^१ । १-३६।

अस्मात् ढप्रत्ययो भवति । 'शमु दमु उपशमे' शाम्यतीति शण्डः नपुंसकः ।

शम् धातु से ढप्रत्यय होता है ।

1. शमेर्ढः म.सं. । यहाँ सूत्र में शमेर्ढः के स्थान पर 'शमेर्ढः' तथा वृत्ति में शण्डः के स्थान पर 'शण्डः' पाठ किया गया है । इसका कारण यह है कि मद्रास संस्करण में 'शमेर्ढः' सूत्र दो बार पठित है । चतुर्थ पाद में भी (४-२३) 'शमेर्ढः' पठित है । यहाँ भी यही पाठ रखा जाय तो व्यर्थ ही है । इसी के बग-संस्करण में 'शमेर्ढः' पाठ मिलता है । शण्डः का अर्थ चोर, महिष होता है । शण्डः का अर्थ नपुंसक होता है । अतः वृत्ति में निर्दिष्ट नपुंसक अर्थ की सङ्गति 'शण्डः' से हो सकती है । अतः शण्डः पाठ ही उचित होगा । मुद्रण दोष से सम्भवतः ढ को ड हो गया हो 'यतः परिशिष्ट में भी शब्द सूची के अन्तर्गत ढान्त पाठ मिलता है । (ट.उज्ज्वल.१-१०१) ।

शण्डः शम् उपशमे (दि.४२) । शमन करना, शान्त होना । शाम्यति । शम्+ड 'मनोरनुस्वारो धुटि' (कात.२/४/४४) सूत्र से म् को अनुस्वार 'वर्गे तद् वर्ग पञ्चमं वा' (कात.१/४/१६) से टकार का तद् वर्गीय पञ्चम वर्ण णकार, विभक्तिकार्य, शण्डः । नपुंसक । वृषभ (सौंड) ।

'शमेर्डः' सूत्र का दो बार (१-३६, ४-२३) । प्रयोग निर्दिष्ट है । यदि शम् धातु से ड प्रत्यय का विधान एक ही बार अभीष्ट होता तो दो बार इसी धातु से ड प्रत्यय हेतु पृथक् दो सूत्र न किए जाते । इससे स्पष्ट है कि एक बार शम् धातु से ड तथा दूसरी बार कोई दूसरा प्रत्यय करना अभीष्ट है तभी सूत्र की आवृत्ति करनी पड़ी । कात.उ. के बंग. संस्करण में भी मद्रास संस्करण में निर्दिष्ट 'शमेर्डः' का अनुवाद 'शमेर्डः' उपलब्ध होता है । अन्य उणादि ग्रन्थों में भी 'शमेर्डः' पाठ उपलब्ध होता है । यदि यहाँ 'शमेर्डः' पाठ उचित होता तो पुनः अग्रिम सूत्र (४-२३) में 'ड' का निर्देश न होता । इसमें दूसरा तर्क यह है कि यदि यहाँ 'ड' होता तो सूत्रकार अग्रिम सूत्र (१-३७) में पुनः 'ड' का ग्रहण न करते । इसी से 'ड' की अनुवृत्ति हो जाती । अतः यहाँ 'शमेर्डः' के स्थान पर 'शमेर्डः' पाठ रखा गया ।

श्वेत.वृ.-१-१७) । षण्डः षण्डः, बाहुलकात् षकारस्य सकाराभावः । दश.वृ.- शमेर्डः (१०-१५, ५-११) भी इस पाठ में एक जगह 'शमेर्डः' पाठ होना चाहिए । षण्डः स्यात् पुंसि गोपतौ । आकृष्टाण्डे वर्षवरे तृतीयाप्रकृतावपि (मेदिनी.टान्त.४) ।

शान्तमस्य स्पर्शेन्द्रियमिति शण्डः नपुंसकः (दश.वृ.५-११) ।

३७. अनुनासिकान्ताडुः । १-३७।

अनुनासिकान्ताद्धातोः डप्रत्ययो भवति । 'वन शब्दार्थः' । वनतीति बण्डः । षण्डः । 'खनु अवदारणे' खनतीति खण्डं शकलम् अर्धं वा । 'कुण शब्दे' कुणति जनेन कुण्डं जलाश्रयः । 'दमु उपशमने' दाम्यतीति दण्डः यष्टिः । रण शब्दार्थः । रणतीति रण्डा विधवा । 'चण श्रण दाने' श्रणतीति श्रण्डः गोपतिः । 'मन ज्ञाने' मन्यते ज्ञानं मण्डम् । 'मुण प्रज्ञाने' मुणतीति मुण्डः भिक्षुविशेषः । मुण्डं शिरः ।

अनुनासिकान्त धातुओं से ड प्रत्यय होता है । कात.व्या. में अनुनासिक संज्ञक वर्ण ड, ञ, ण, न, म् होते हैं । (कात.१/१/१३) । वन् खन् कुण्, दम्, रण्, श्रण्, मन्, मुण् इन सभी अनुनासिकान्त धातुओं से ड प्रत्यय होता है । बंस. में इन सभी धातुओं को 'दण्डकधातु' कहा गया है ।

वण्डः वन शब्दे (भू.१४६) । वनति । वन्+ड, न् को अनुस्वार तथा उसको तद् वर्गीय पञ्चम वर्ण णकार विभक्तिकार्य, बण्डः हस्तपादादिरहित (बंस.) अपाहिज । अपाङ्ग । अल्परोष । अल्परोष । अल्पशेषा जिसकी जननेन्द्रिय के अग्र भाग को ढकने वाला चमड़ा नहीं होता ।

षण्डः षणु दाने (त.२) । दान करना । सनोति । धात्वादेः षः सः (कात.३/८/२४) से ष् को स, विभक्तिकार्य, षण्डः । वृषभ (सौंड) गोपति । नपुंसक । समूह, वन । षण्डं पद्मादिसङ्घाते न स्त्री स्याद् गोपतौ पुमान् (मेदिनी.डान्त.२६) ।

खण्डम् खनु अवदारणे (भू.५८४) । अवदारण= खोदना । खनति । खन्+ड, अनुस्वार, तद्वर्गीय पञ्चम वर्ण से णकार, विभक्तिकार्य, खण्डम् । शकल या अर्ध (टुकड़ा) भाग । खण्डोऽस्त्री शकले चक्षुविकारमणिभेदयोः (मेदिनी.डान्त.७-८) ।

कुण्डम् कुण शब्दोपकरणयोः (तु.४७) । १- शब्द करना २- सम्भालना । कुणति । कुण्+ङ, अनुस्वार, तद् वर्गीय पञ्चम वर्ण (परसवर्ण) कुण्डम् । जल का आधार । यज्ञीय खात । पति के जीवित रहते हुए दूसरे पुरुष से उत्पन्न पुत्र । कुण्डमग्न्यालये मानभेदे देवजलाशये (मेदिनी.डान्त.४) ।

दण्डः दमु उपशमने (दि.४२) । उपशमन= शान्त करना । दमन करना । दाम्यति । दम्+ङ, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, दण्डः । यष्टि । छड़ी । दण्डोऽस्त्री लण्डे पुमान् (मेदिनी.डान्त.१५) ।

रण्डा रण शब्दे (भू.१४६) । रणति । रण्+ङ, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, स्त्रीत्व-विवक्षा में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, रण्डा । विधवा । पतिहीना । रण्डा मूषकपर्ण्या च विधवायां च योषिति (वि.प्र.को.डान्त.२३) ।

रमु क्रीडायाम्+ङ, रण्डा (वै.सिकौ.उ.१/१११) ।

श्रण्डः श्रण दाने (भू.११५) । दान देना । श्रणति । श्रण्+ङ, श्रण्डः । गोपति (बैल) ।

मण्डम् मन ज्ञाने (दि.४८) । ज्ञान करना । मन्यते । मन्+ङ, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, मण्डम् । पके हुए ओदन का जल (मौंड) । धात्री । गाढा, झिकना पदार्थ, चाँवलो का मौंड, मलाई, आभूषण, मेंढक एरण्ड वृक्ष । मण्डो मस्तुनि भूषाग्रामेरण्डे सारपिच्छयोः (अने.सं.को.२-१२७) । मण्डः पञ्चाङ्गुले शाकभेदे क्लीबं तु मस्तुनि (मेदिनी.डान्त.२१) । मण्डा धात्री समाख्याता, मण्डं पक्वौदनोदकम् (दया.उ.को.१-११४) ।

मुण्डः मुण प्रतिज्ञाने (तु.४६) । प्रतिज्ञान=प्रण करना, वचन देना । मुणति । मुण्+ङ, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, मुण्डः ।

भिक्षुविशेष । मुण्डं (नपुं.) शिर । मुण्ड नामक एक राक्षस । मुण्डो दैत्यान्तरे राहौ मूर्धमुण्डितयोरपि (वि.प्र.को.डान्त.१७) ।

बं.सं.-ति.अनु. अण्डं डिम्ब । काण्डः शर । भण्डः अयोग्य वेषधारी । शण्डः पद्मसमूह । ये सभी शब्द म.सं. में असंगृहीत हैं ।

इसी प्रकार अन्य शब्दों को भी ड प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न कर लेना चाहिए । यथा- गण्डः कपोल, पिटक । चण्डः दैत्य । फण्डः उदर । पण्डः नपुंसक, मति ।

३८. वरणडादयः । १-३८ ।

वरण्डकरण्डशिखण्डपापिण्डपिचण्डाः । एते डप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'वृज् वरणे' वृणोतीति वरण्डः मुखरोगविशेषः गृहकदेशश्च । 'डु कृज्' करोतीति करण्डः स्त्रीणामाधारः^२ । 'शासु अनुशिष्टौ' शास्तीति शिखण्डः मयूरपिच्छम् । 'पा रक्षणे' पातीति पापिण्डः संहितद्रव्यम् । 'डु पचष् पाके' पचत्यन्नं पिचण्डं जठरम् ।

वरण्ड, करण्ड, शिखण्ड, पापिण्ड, पिचण्ड, ये सभी ड प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

वरण्डः वृज् वरणे (सु.८) । वृणोति । वृ+ड, धातुघटक ऋ के स्थान में निपातन से अरन्, न् को अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, वरण्डः । मुखरोगविशेष तथा घर का एक भाग (बरामदा) । मुख में होने वाला व्रण या फुन्सी (फोड़ा) । वरण्डोऽप्यन्तरावेदौ समूहमुखरोगयोः (मेदिनी.डान्त.३३) ।

-
१. पाठा. (सू.) वरण्डकरण्डकुण्डपिण्डमुण्डादयः (कात.बं.सं.१-४०) ।
 २. स्त्रीणां मापाधारः ति.अनु. ।

करण्डः डु कृञ् करणे (त.७) । करोति । कृ+ड, कृ में ऋ को अरन्, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, करण्डः । स्त्रियों के वस्त्रों का आधार विशेष । टोकरी । फूलों की डलिया । बाँस से निर्मित पिटारी । करण्डो मधुकोशासिकारण्डवदलाढके (वि.प्र.को.डान्त.३१) ।

तु.- अण्डन् कृसृभृवृजः (वै.सि.कौ.उ.१/१२६) ।

शिखण्डः शासु अनुशिष्टौ (अ.३९) । अनुशासन करना । शास्ति । शास्+ड, निपातन से शास् घटक आस् को इकार तथा खन्, अनुस्वारादि, विभक्तिकार्य, शिखण्डः । मोर की पूँछ । शिखा, कली । शिखण्डो बर्हचूडयोः (वि.प्र.को.डान्त.२८) ।

पापिण्डः पा रक्षणे (अ.१) । पाति । पा+ड, निपातन से 'पिन्', अनुस्वारादि, विभक्तिकार्य, पापिण्डः । सञ्चित द्रव्य ।

पिचण्डः 'डु पचष् पाके' (भू.६०३) । पचति । पच्+ड, निपातन से उपधा के स्थान में इन्, अनुस्वारादि, पिचण्डः । जठर । पशु का अवयव । पिचण्डो जठरे प्रोक्तः पशोरवयवेऽपि च (अने.सं.को.३-१८७)

३९. कमेरठः । १-३९।

अस्मादठप्रत्ययो भवति । 'कमु कान्तौ' कमते। कमठः कच्छपः ।

1. कमते (म.सं.) 'कमु कान्तौ' धातु का पा.व्या. तथा कात. व्या. में 'कामयते' रूप होता है । वृत्ति में 'कमते' रूप निर्दिष्ट है । कम् को 'आय्' होकर कामयते रूप होता है । यदि आय् का वैकल्पिक विधान होता तब कमते भी हो सकता था । 'न कम्पमिचमः' इस नियम से कात.व्या. में ह्रस्व का निषेध होकर 'कामयते' होता है । युधिष्ठिर मीमांसक ने का.कृ.धा. में निर्दिष्ट कमते तथा कामयते पर आपत्तिजनक टिप्पणी भी दी है- 'पणते पणायते', कमते कामयते, अत्र आयणिडौ कथं विकल्प्येते इति न ज्ञायते (भू.पृ.७९, का.कृ.धा.) कात रूप. में भी 'कमेरिनिङ् कारितम्' (सू.४६२) इस सूत्र से ह्रस्व

कम् धातु से अठ प्रत्यय होता है ।

कमठः कमु कान्तौ (भू.४०५) । कान्ति=चाहना । कामयते ।
कम्+अठ, विभक्तिकार्य, कमठः । कच्छप (कछुआ) । कूर्मे कमठकच्छपौ
(अ.को.१/१०/२०) कमठः कच्छपे पुंसि भाण्डभेदे नपुंसकम्
(मेदिनी.ठान्त.१२) ।

४०. शकिशमिवहिभ्योऽलः ११-४०।

एभ्योऽलप्रत्ययो भवति । 'शक्लु शक्तौ' शक्नोतीति
शकलं खण्डम् । 'शमु दमु उपशमे' शाम्यति चित्तमस्मात्
शमलम् अपवित्रम् । 'वह प्रापणे' वहतीति वहलं विस्तीर्णम् ।

शक्, शम्, वह इन धातुओं से अल प्रत्यय होता है ।

शकलम् शक्लु शक्तौ (सु.१५) । शक्ति=सकना, समर्थ होना ।
शक्नोति । शक्+अल, विभक्तिकार्य, शकलम् । खण्ड । टुकड़ा ।
शकलं त्वचि खण्डे स्याद्रागवस्तुनि वल्कले (मेदिनी.लान्त.१३५) ।

शमलम् शमु उपशमने (दि.४२) । उपशमन=शान्त होना, विश्राम
लेना । शाम्यति चित्तमस्मात् (जिससे मन विरत होता है) । शम्+अल,
विभक्तिकार्य, शमलम् । अपवित्र । विष्ठा । शकृत ।

वहलम् वह प्रापणे (भू.६१०) । प्रापण=पहुँचना । वहति । वह+अल,
वहलम् । विस्तीर्ण । वहलः घन (सरस्वती.२/३/९८) ।

४१. वृषलादयः ११-४१।

वृषलदेवलकेवलकललपललाः । एते अलान्ता निपात्यन्ते ।
'पृषु वृषु' वर्षतीति नीचकर्म वृषलः शुद्रः । 'दिवु क्रीडादिषु'

निषेध करके 'कामयते' एक मात्र का ही निर्देश किया है ।
सम्भवतः काशकृत्स्नव्याकरण के किसी सूत्र द्वारा इसकी पुष्टि हो ।

दीव्यतीति देवलः देवद्रव्योपजीवी । 'केवृ' केवते परमिति केवलः असहायः । 'कल सङ्ख्याने' कलते कललं गर्भवेष्टनम् । 'पल रक्षणे' चौरादिकः । पालयति देहं पललं मांसम् ।

वृषल, देवल, केवल, कलल, पलल ये सभी अल प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

वृषलः वृषु सेचने (भू.२२६) । सेचन=सीचना, वर्षा करना । वर्षति नीचकर्म (जो निकृष्ट कर्मों की वर्षा करता है) वृष्+अल, निपातन से गुण का अभाव, विभक्तिकार्य, वृषलः । शूद्र । वृषलो गृञ्जने शूद्रे चन्द्रगुप्तेऽपि राजनि (मेदिनी.लान्त.१३४) ।

देवलः दिवु क्रीडादिषु (दि.१) । दीव्यति । दिव्+अल, निपातन से धातु को गुण, विभक्तिकार्य, देवलः । पुजारी । पण्डा । देवताओं के लिए समर्पित द्रव्य पर जीने वाला । देवद्रव्यापहारी (बं.सं.) । दीव्यति अधर्मिणो विजिगीषति देवलः धार्मिकः (दया.उ.को.१-१०६)

केवलः केवृ सेवने (भू.४२२) । सेवा करना । केवते परम् (जो दूसरे की सेवा करता है) । केव्+अल, विभक्तिकार्य, केवलः । असहाय । अकेला ।

कललम् कल सङ्ख्याने (भू.४१९) । सङ्ख्यान=संख्या करना, गिनना । कलते । कल्+अल, विभक्तिकार्य, कललम् । गर्भ का वेष्टन ।

पललम् पल रक्षणे (चु.५०) । पालयति देहम् (देह की रक्षा करता है) । पालि+अल, इन् का लोप, धातु को ह्रस्व, विभक्तिकार्य

1. केवलो ज्ञानभेदे स्यात् केवलश्चैककृत्स्नयोः ।

निर्णति केवलञ्चोक्तं केवलः कुहने क्वचित् ॥ (वि.प्र.को.लान्त.१३४)

पललम् । मांस । पललं तिलचूर्णे स्यात् पललं पङ्कमांसयोः
(वि.प्र.को.लान्त.६१) ।

४२. कण्ठः ११-४२।

अस्मात् ठप्रत्ययो भवति । कण शब्दार्थः । कणतीति
कण्ठो गलः ।

कण् धातु से ठ प्रत्यय होता है ।

कण्ठः कण शब्दे (भू.१४६, ५१४) । शब्द करना । कणति ।
कण्+ठ, विभक्तिकार्य, कण्ठः । गल । ग्रीवा । कण्ठो गले सन्निधाने
ध्वनौ मदनपादपे (मेदिनी.ठान्त.२) ।

४३. पतिचण्डिभ्यामालञ् ११-४३।

आभ्यामालञ्प्रत्ययो भवति । जकार इज्ज्वद्भावार्थः ।
'पल शल पल्लु पथे च गतौ' पतत्युदकमत्र पातालम्
अधोभुवनम् । 'चडि कोपे' चण्डते' कुप्यते चण्डालः
निषादः ।

पत् तथा चण्ड् इन दोनों धातुओं से आलञ् प्रत्यय होता है ।
ञ् अनुबन्ध इज्ज्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । इज्ज्वद्भाव होने से वृद्धि,
सम्प्रसारण आदि कार्य होते हैं ।

पातालम् पल्लु गतौ (भू.५५४) । गिरना । पतति उदकमत्र (जहाँ जल
गिरता है) पत्+आलञ्, इज्ज्वद्भाव से धातु को वृद्धि, विभक्तिकार्य

-
1. चडि धातु आत्मनेपदी तथा कुप् धातु परस्मैपदी है । वृत्ति में
'चण्डते कुप्यते' ऐसा निर्दिष्ट है । चण्डते का अर्थ कुप्यते किया
गया है । यहाँ 'चण्डते' इस कर्तृपरक व्युत्पत्ति के अनुसार
'कुप्यति' ऐसा होना चाहिए । कर्मपरक व्युत्पत्ति अभीष्ट होने पर
'चण्ड्यते कुप्यते' ऐसा कहना चाहिए ।

पातालम् । अधोभुवन । पातालं नागलोके स्याद्विवरे वडवानले
(मेदिनी.लान्त.११०) ।

चण्डालः चडि कोपे (भू.३६८) । कोप=क्रोध करना, गुस्सा करना ।
चण्डते । इदित् होने से न् आगम् । चण्ड्+आलञ्, ज् अनुबन्ध से
इज्जद्भाव के कारण प्राप्त वृद्धि का उपधा में अकार के अभाव से
निषेध, विभक्तिकार्य, चण्डालः । निषाद । ब्राह्मण वर्ण की स्त्री तथा
शूद्र वर्ण के पुरुष के संयोग से उत्पन्न सन्तान । (मनु.१०/१२) ।
स्याच्चण्डालस्तु जनितो ब्राह्मण्यां वृषलेन यः (अ.को.२/१०/४) ।

४४. कुणि।पीङ्भ्यां कालः । १-४४।

आभ्यां धातुभ्यां कालप्रत्ययो भवति । ककारो
यण्वद्भावार्थः । 'कुण शब्दे' कुणतीति कुणालः नगररक्षकः
मगधरक्षकश्च । कुणाला नगरी । 'पीङ् पाने' पीयते पियालः^२
वृक्षविशेषः ।

कुण् तथा पीङ् धातु से काल प्रत्यय होता है । 'काल' में क्
अनुबन्ध से यण्वद्भाव होता है । इससे धातु को गुण का निषेध होता
है ।

कुणालः कुण शब्दोपकरणयोः (तु.४७) । कुणति । कुण्+काल,
प्रत्ययस्थ क् को यण्वद्भाव होने से धातु को गुणनिषेध, विभक्तिकार्य,
कुणालः । नगररक्षक तथा मगध देश का रक्षक । कुणाल नामक
राजा । 'कुणालावदान' नामक बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ । ति.अनु.-पक्षी ।
कुणाल से स्त्री. में आ, विभक्तिकार्य, कुणाला । नगरी ।

तु.- पीयुक्वणिभ्यां कालन् ह्रस्वं सम्प्रसारणञ्च (दया.उ.को.३/७६) ।

१. पाठा. कुलिपीङ्भ्यां काल. (कात.उ.बं.सं.) ।
२. प्रीयः सौत्रः प्रियालः (वै.सि.कौ.उ.३/३५६) ।

पियालः पीङ् पाणे (दि.१०) . पीयते । पी+काल, धातुघटक ईकार को 'इय्' विभक्तिकार्य, पियालः । वृक्षविशेष (चिरौजी का पेड़) । मृगाः पियालद्रुममञ्जरीणाम् (कुमा.३-३१) ।

४५. शीङो वालवलजौ ११-४५।

अस्माद् वालवलजौ प्रत्ययौ भवतः । 'शीङ् स्वप्ने' शेते जले शेवालं जलनीली । शैवलं तदेव ।

शीङ् धातु से वाल तथा वलज् प्रत्यय होते हैं । वलज् में ज् अनुबन्ध इज्वद्भावार्थ प्रयुक्त है ।

शेवालम् शीङ् स्वप्ने (अ.५५) । सोना, नींद लेना । शेते जले (जो जल में सोती रहती है) । शी+वाल, धातुघटक ईकार को गुण से एकार, विभक्तिकार्य, शेवालम् । जलनीली । हरे या नील रंग का लता रूप पदार्थ, जो जल के ऊपर बिछा रहता है । इसे सामान्यतः 'काई' कहा जाता है ।

शी+वलज्, आदि वृद्धि, विभक्तिकार्य, शैवलम् । सेवार । शैवाल । शैवलं पद्मकाष्ठे स्यात् शैवालेऽपि पुमानयम् (मेदिनी. लान्त.१४१) ।

४६. इल्वलपल्वलशुक्लतण्डुलशिथिलचषालमालाः^१ ११-४६।

एते वलजन्ता निपात्यन्ते । 'इल गतौ' एलतीति^२

१. इल्वलादयश्च (बं.सं.सू.१-४८) ।

२. इल गतौ (तु.७३) धातु के तौदादिक होने से गुणनिषेध के कारण 'इलति' रूप होना चाहिए । वृत्ति में गुणसहित, 'एलति' रूप चिन्त्य है । का.कृ.धा. के अनुसार तो इल् धातु का (भू.२४७) का भौवादिक पाठ होने से 'एलति' रूप होता है ।

इल्वलास्तारकाः 'पल रक्षणे' पालयतीति पल्वलम् पुष्करिणी-जलम्^२ । 'शुच शोके' शोचतीति शुक्लः सितः । 'तड आघाते' ताडयतीति तण्डुलः धान्यविशेषः । 'श्रथि शैथिल्ये' श्रथते शिथिलः निराधारः । 'चष भ्लष भक्षणे' चषतीति चषालः यूपकटकः । (मा माने) मातीति माला स्रक् ।

इल्वल, पल्वल, शुक्ल, तण्डुल, शिथिल, चषाल, माला ये सभी वलञ् प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

इल्वलाः इल गतौ (तु.७१) । इलति । इल्+वलञ्, निपातन से वृद्धि का अभाव, स्त्री. बहु. में जस्, विभक्तिकार्य, इल्वलाः । तारक । नक्षत्र । राक्षस । इल्वलास्तच्छिरो देशे तारका निवसन्ति याः (अ.को.१-३-२३) । इल्वलो नाम राक्षसः कश्चित् (श्वेत.वृ.४-१७७) ।

पल्वलम् पल रक्षणे (चु.५०) । पालयति । पालि+वलञ्, निपातन से धातु को ह्रस्व, इन् का लोप, विभक्तिकार्य, पल्वलम् । जलाशय । सरोवर । छोटा सरोवर । पुष्करिणी का जल ।

पा(पाने)+वलञ्, लगागम, ह्रस्व (वै.सि.कौ.उ.बाल.४/५४७) ।

शुक्लः शुच शोके (भू.४४) । शोक करना, दुःख करना । शोचति । शुच्+वलञ्, निपातन से च् को क् तथा वलञ् घटक व का लोप, गुण का निषेध, विभक्तिकार्य शुक्लः । सित । सफेद । शुक्लो योगान्तरे सिते । नपुंसकन्तु रजते (मेदिनी.लान्त.५३) ।

1. दु.वृ. में 'पललम्' पाठ भ्रष्ट है । सूत्रपाठ 'पल्वलम्' है । इसके पूर्व वृषलादयः (१-४१) सूत्र के अन्तर्गत 'पललम्' शब्द की निष्पत्ति की जा चुकी है । अतः 'पललम्' पाठ असङ्गत है । पुष्करिणीजल इस अर्थ की सङ्गति भी 'पललम्' (=मांस) से नहीं हो सकती । इसीलिए संस्कृत वृत्ति में 'पललम्' के स्थान पर 'पल्वलम्' ऐसा पाठ रखा गया है ।
2. लघुसरोवरजलम् ति.अनु. । अल्पसरः बं.सं. ।

शुच्+रन्, च को क, र को ल शुक्लः (वै.सि.कौ.उ.२/१८६) ।

तण्डुलः तड आघाते (चु.३०) । चोट पहुँचाना । तड्+वलज्, निपातन से वकार को उकार, विभक्तिकार्य, तण्डुलः । धान्यविशेष ।
ति.अनु.- धान्यविकार । तण्डुलः स्याद् विडङ्गे च धान्यादिनिकरे पुमान् (मेदिनी.लान्त.९६) ।

तड्+उलच्, नुम् (वै.सि.कौ.उ.४/५४७) ।

शिथिलः श्रथि शैथिल्ये (भू.३१८) । ढीला होना । श्रथ्+वलज्, निपातन से श्रथ में अकार को इकार, नकारलोप, इत्व, विभक्तिकार्य शिथिलः । निराधार । अट्ट (बं.सं.) अनुद्योगी ।

श्रथ मोचने+किरच्, उपधा को इकार, रेफलोप प्रत्यय रेफ को ल, शिथिलम् (वै.सि.कौ.उ.१/५३) ।

चषालः चष भक्षणे (भू.५९२) । चषति । चष्+वलज्, निपातन से वकार को अकार, ज् अनुबन्ध से इज्जद्भाव के कारण उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, चषालः । यज्ञ के खम्भे की लकड़ी । यूपकटक । यूपकङ्कण । ति.अनु. पूजापात्र । चषालो होमकुण्डे स्याद् गर्ते (वि.प्र.को.लान्त.११६) ।

माला मा माने (अ.२६) । परिमाण करना, नापना । माति । मा+वलज्, वकार का लोप, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य माला । स्रक् ।

४७. सारेरङ्गः ११-४७।

अस्मादङ्गप्रत्ययो भवति । 'शृ सृ हिंसायाम्' सृणाति कश्चित् । हेताविन् । सारयतीति सारङ्गः मृगः ।

इनन्त सृ (सारि) धातु से अङ्ग प्रत्यय होता है ।

सारङ्गः सृ हिंसायाम् (क्री.१५) । मारना । सारयति । सृ+इन्, (दीर्घ)
सारि+अङ्ग, इन् का लोप, विभक्तिकार्य, सारङ्गः^१ । मृग । पशु ।

४८. शृङ्गभृङ्गाङ्गानि ११-४८।

एते अङ्ग^२प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'शृ सृ हिंसायाम्'
शृणातीति शृङ्गम् गवादीनां विषाणम् । 'डु भृज्' बिभर्तीति
भृङ्गः भ्रमरः । 'अम रोगे' अमति अङ्गं शरीरम् ।

शृङ्ग, भृङ्ग, अङ्ग ये सभी अङ्ग प्रत्ययान्त शब्द निपातन से
सिद्ध होते हैं ।

शृङ्गम् शृ हिंसायाम् (क्री.१५) । शृणाति । शृ+अङ्ग, धातु को ह्रस्व,
प्रत्ययस्थ अकार का लोप, विभक्तिकार्य, शृङ्गम् । गाय आदि के
सींग । पर्वत का शिखर । मत्स्य भेद । ओषधि भेद । सुवर्ण भेद
(दया.उ.को. १-१२६) । शृङ्गं प्रभुत्वे शिखरे चिह्ने क्रीडाम्बुयन्त्रके ।
विषाणोत्कर्षयोश्चाथ शृङ्गः स्यात् कूर्चशीर्षके (मेदिनी.गान्त.२५) ।

भृङ्गम् डु भृज् धारणपोषणयोः (अ.८५) । धारण करना, पोषण
करना । बिभर्ति । भृ+अङ्ग, निपातन से अकारलोप, विभक्तिकार्य,
भृङ्गम् । भ्रमर । पक्षी । मधुव्रतेऽपि भृङ्गन्तु केशराजगुडत्वचोः
(वि.प्र.को.गान्त.२१) ।

1. सारङ्गश्चातके भृङ्गे कुरङ्गे च मतङ्गजे ।
पक्षभेदे च सारङ्गः सारङ्गः शबलेऽन्यवत् (वि.प्र.को.गान्त.४९) ।
2. पा.उ.- शृ+गन्, नुडागम, शृङ्गम् (श्वेत.वृ.१-११५) । यहाँ इन तीनों
शब्दों की निष्पत्ति 'अङ्ग' प्रत्यय से उचित प्रतीत नहीं होती यतः
प्रत्ययस्थ अकार का लोप करना पड़ता है । अङ्ग के स्थान पर
'ग' प्रत्ययमात्र का विधान करना चाहिए ।

अङ्गम् अम रोगे (चु.१६०) । आमयति । अम्+अङ्ग, अकारलोप, विभक्तिकार्य, अङ्गम् । शरीर का अवयव । अङ्गं गात्रान्तिकोपाय-प्रतीकेष्वप्रधानके (वि.प्र.को.गान्त.१४) ।

४९. मुदिगृभ्यां गगौ ११-४९।

आभ्यां गगौ प्रत्ययौ भवतो यथासङ्ख्यम् । 'मुद हर्षे' मोदते मुद्गः धान्यविशेषः । 'गृ निगरणे' गिरतीति गर्गः ऋषिः । को यण्वत् ।

मुद् तथा गृ इन दोनों धातुओं से यथाक्रम गक् एवं ग प्रत्यय होते हैं । गक् में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है ।

मुद्गः मुद हर्षे (भू.३०४) । मोदते । मुद्+गक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, मुद्गः । धान्य-विशेष । मूंग ।

गर्गः गृ निगरणे (तु.२२) । निगलना, खाना । गिरति । गृ+ग, ऋ को अर् गुण, विभक्तिकार्य, गर्गः । ऋषि । ब्रह्मा का पुत्र । विद्वान् ।

५०. शृदृभ्यामदिः ११-५०।

आभ्यामदिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । 'शृ हिंसायाम्' शृणाति रोगेण जनमिति शरत् ऋतुविशेषः । 'दृ विदारणे' दृणाति शत्रुमिति दरत् प्रपातः ।

शृ एवं दृ धातु से अदि प्रत्यय होता है । 'अदि' में इकार उच्चारण के लिए प्रयुक्त है । अत् शेष रहता है ।

शरत् शृ हिंसायाम् (क्री.१५) । शृणाति रोगेण जनम् (जो मनुष्य को रोग से नष्ट कर देती है) । शृ+अदि (इ अनुबन्ध) ऋ को अर्, 'वा विरामे' (कात.२/३/६२) सूत्र से दकार को तकार, विभक्तिकार्य

शरत् । ऋतुविशेष । शृणाति कामुकानिति शरत् ऋतुविशेषः
(श्वेत.वृ.१-११९) ।

दरत् 'दृ विदारणे' (क्री.१९) । दृणाति शत्रुमिति (जो शत्रु को नष्ट करता है) दृ+अदि, ऋ को अरु, विभक्तिकार्य, दरत् । प्रपात । चट्टान । पहाड़ । हृदय । कूल, टीला । काष्ठविशेष । दरत् स्त्रियां प्रपाते च भयपर्वतयोरपि (मेदिनी.दान्त.३०) ।

५१. धृज् (दृङ्:) षोऽन्तोऽगुणश्च ११-५१।

अस्मादिप्रत्ययो भवति । अस्य धातोः षोऽन्तो भवति । अकार उच्चारणार्थः । गुणाभावश्च । 'दृङ् आदरे' द्रियते आद्रियते दृषत् पाषाणः ।

दृ धातु से अदि प्रत्यय होता है । दृङ् को ष् अन्तादेश होता है । अकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है । धातु को गुण नहीं होता है ।

दृषत् दृङ् आदरे (तु.११२) । आदर करना । द्रियते कार्यार्थम् (किसी कार्य के लिए जिसका आदर किया जाता है) दृ+अदि, धातु को ष् अन्तादेश तथा धातुघटक ऋ को गुण का अभाव, विभक्तिकार्य, दृषत् । पाषाण (शिला) । चट्टान । पत्थर, उपल ।

द्रियते आद्रियते कार्यार्थम् (कार्य के लिए जिसे आधार बनाया जाता है) धृ+अदि, षान्तादेश, गुणाभाव, ध् को द्, विभक्तिकार्य, दृषत् । दृषत् निष्पेषणशिलापट्टप्रस्तरयोः पुमान् (मेदिनी.दान्त.३२) ।

1. धृज् म.सं. । दृषत् की निष्पत्ति दृ धातु से उचित है, धृज् से नहीं । धृ धातु में धकार को दकार करना पड़ेगा । बं.सं. में दृङ् का निर्देश है । अतः धृज् के स्थान पर 'दृङ्' पाठ का होना उचित है ।

५२. यूष्यसिभ्यां मदिक् ११-५२।

आभ्यां मदिक्प्रत्ययो भवति । यूष हिंसार्थः^१ । यूषसि त्वं युष्मत् । 'असु क्षेपणे' अस्यतीति अहम्^२ (अस्मद्) अथवा लिङ्गमात्रोदाहरणम्^३ । यूषतीति युष्मद् (त्वम्) अस्यतीति अस्मद् (अहम्) अत एव निर्देशाद् यूषेः ह्रस्वः । इकार उच्चारणार्थः । ककारो यणवद्भावार्थः । तेनागुणत्वम् ।

यूष् एवं अस् धातु से मदिक् प्रत्यय होता है । मदिक् में 'मत्' शेष रहता है । इ-क् अनुबन्ध अप्रयोगार्ह है ।

युष्मत् यूष हिंसायाम् । यूषसि त्वम् । यूष्+मदिक् 'यूष्यसिभ्यां' इस सूत्रस्थ ह्रस्व निर्देश के बल से धातु की उपधा को ह्रस्व, विभक्तिकार्य, युष्मत् ।

अस्मत् असु क्षेपणे (दि.४९) । अस्यति । अस्+मदिक्, विभक्तिकार्य, अस्मत् ।

लिङ्गमात्र में युष्मद् के स्थान में त्वम् तथा अस्मद् के स्थान में अहम् आदेश 'त्वमहं सौ विभक्त्योः' (कात.२/३/१०) सूत्र से होता है । त्वम् । अहम् । मदिक् में क् अनुबन्ध से यणवद्भाव के कारण गुणनिषेध होता है ।

1. यूष हिंसायाम् बं.सं. १-५४ ।

2. अस् धातु से मदिक् प्रत्यय करके वृत्ति में 'अस्मत्' उदाहरण अपेक्षित था । जिस तरह यूष् का 'युष्मत्' उदाहरण निर्दिष्ट है । अतः 'अहम्' के स्थान पर 'अस्मत्' ऐसा पाठ अपेक्षित है ।

3. लिङ्गमात्र (प्रातिपदिक) के उदाहरण त्वम्- अहम् अपेक्षित हैं । 'त्वमहं सौ विभक्त्योः' (कात.२/३/१०) से त्वम्-अहम् आदेश होते हैं ।

५३. अर्तिहुसुधृक्षिणीपदभायास्तुभ्यो मः । १-५३।

एभ्यो मप्रत्ययो भवति । 'ऋ गतौ' अर्तीति' (इयर्तीति) अर्मः व्याधिविशेषः । 'हु दाने' हूयते होमः अग्निदानम् । 'षुञ् अभिषवे' सुनोतीति सोमः चन्द्रः । 'धृञ् धारणे' नरके पतन्तः² (पततः) प्राणिनः धरति इति धर्मः पुण्यम् । 'क्षि क्षये' क्षयतीति क्षेमः कुशलम् । 'णीञ् प्रापणे' नयतीति नेमः कालः । 'पद गतौ' पद्यते याति लक्ष्मीं पदम् कमलम् । 'भा दीप्तौ' भातीति भामः प्रदीप्तः । 'या प्रापणे' यातीति यामः प्रहरः । 'ष्टुञ् स्तुतौ' स्तौतीति स्तोमः सङ्घातः ।

ऋ, हु, सु, धृ, क्षि, नी (णी) पद, भा, या, स्तु, इन सभी धातुओं से म प्रत्यय होता है ।

अर्मः ऋ गतौ (अ.७२) । इयर्ति । ऋ+म, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, अर्मः । व्याधिविशेष । अक्षिरोग ।

होमः हु दाने (अ.६७) । देना, यज्ञ करना, हवन करना । हूयते । हु+म, धातुघटक उकार को गुण से ओकार, विभक्तिकार्य, होमः । अग्निदान । घी आदि की आहुति । हवन, यज्ञ । ति.अनु.-अग्नि-यज्ञ ।

सोमः षुञ् अभिषवे (सु.१) । अभिषव=यज्ञान्त स्नान करना, नहाना, मन्त्रादि द्वारा अर्कं निकालना । ष् को 'धात्वादेः षः सः' से स् ।

1. अर्तीति म.सं. । 'ऋ गतौ' इस आदादिक धातु का इयर्ति रूप होता है, अर्ति नहीं । अतः वृत्ति में अर्ति के स्थान पर 'इयर्ति' पाठ होना चाहिए ।
2. पतन्तः म.सं. । वृत्ति में 'प्राणिनः' इस द्वितीया बहुवचनान्त विशेष्य का विशेषण पतन्तः (प्र.एक) रूप असाधु है । द्वि.बहु. में 'पततः' रूप होगा । अतः पतन्तः के स्थान पर 'पततः' रूप अपेक्षित है ।

सुनोति । सु+म, गुणादेश, सोमः । चन्द्र । कपूर । ओषधि ।
पुष्परस । किरण, जल, वायु, कुबेर, शिव यम आदि ।

धर्मः धृञ् धारणे (भू.५९९) । नरके पततः प्राणिनः धरति (जो नरक
में गिरते हुए प्राणियों को धारण करता है) धृ+म, ऋ को अर्,
विभक्तिकार्य, धर्मः । पुण्य ।

ध्रियते वाऽस्मिन् आचारः इति धर्मः न्याय (दश.वृ.७-२६) सत्य
आचरण । धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः क्रतौ ।
अहिसोपनिषन्त्याये ना धनुर्यमसोमपे । (मेदिनी.मान्त.१६) ।

क्षेमः क्षि क्षये (भू.७२) । नष्ट होना । क्षयति । क्षि+म्, क्षि घटक
इकार को गुण से एकार, विभक्तिकार्य, क्षेमः । कुशल ।

कुशलं क्षेममस्त्रियाम् (अ.को.१/४/२६) । क्षेमदुष्पत्रगणहासकाः
(अ.को.२/४/१२८) । क्षेमं स्याल्लब्धरक्षणे । चण्डायां ना शुभे न स्त्री
कात्यायन्याञ्च योषिति (मेदिनी.मान्त.८) ।

नेमः नीञ् प्रापणे (भू.६००) । 'णो नः' सूत्र से णकार को नकार ।
नयति । नी+म, गुणादेश, विभक्तिकार्य, नेमः । काल । समय ।
ऋतु । सीमा । खण्ड । पुरोहित । नेमः कीलेऽवधौ गर्ते प्राकारे
कैतवेऽपि च (मेदिनी.मान्त.१८) ।

पद्मम् पद गतौ (दि.१०७) । पद्यते याति लक्ष्मीम् (जो लक्ष्मी को
प्राप्त होता है) (अथवा पद्यते प्राप्यते मधुकरैः इति पद्मम्) पद्+म,
विभक्तिकार्य, पद्मम् । कमल । शंख, निधि । १६ अङ्गों वाली
संख्या । पद्मोऽस्त्री पद्मके व्यूहनिधिसङ्ख्यान्तरेऽम्बुजे । ना नागे स्त्री
फज्जिका (मेदिनी.१८) ।

भामः भा दीप्तौ (अ.१५) । चमकना । भाति । भा+म, विभक्तिकार्यं
भामः । तेज । भीरु (बं.सं.) । क्रोध । भामः क्रोधे रवौ दीप्तौ
(मेदिनी.मान्त.२१) ।

यामः या प्रापणे (अ.१६) । याति । या+म, विभक्तिकार्यं, यामः ।
प्रहर । काल । समयविशेष । दिन का अष्टम भाग । यामस्तु प्रहरे
वृते (वि.प्र.को.मान्तः९) ।

स्तोमः ष्टुञ् स्तुतौ (अ.६५) । स्तुति करना, प्रशंसा करना ।
स्तौति । स्तु+म, धातुघटक उकार को गुण से ओकार, विभक्तिकार्यं,
स्तोमः । समूह । समुदाय । स्तुति । प्रशस्ति । सूक्त । यज्ञ ।
स्तोमः स्तोत्रेऽध्वरे वृन्दे (अ.को.३/३/१४०) । क्षौमं दुकल । लेमः
संसर्ग । सेमः^१ काल ।

५४. ग्रसेरा च^२ १-५४।

अस्मान्मप्रत्ययो भवति । अस्य चान्त्यस्य सस्यात्वं
स्यात् । 'ग्रस् ग्लस् अदने' ग्रस्यते ग्रामः जनपदनिवासः ।

ग्रस् धातु से म प्रत्यय होता है । ग्रस् धातु के अन्त्य सकार
को आत्व होता है ।

ग्रामः ग्रस् अदने (भू.४४५) । खाना, भक्षण करना । ग्रस्यते (कर्म)
ग्रस्+म, धातु घटक सकार को आकार तथा सवर्ण दीर्घ, विभक्तिकार्यं,
ग्रामः । जनपद निवास । जन निवास । शाला, समुदाय, सङ्ग्राम या
युद्ध । गान विद्या में स्वर का एक भेद । नगर के विपरीत लोगों

1. ये तीनों शब्द कलापोणादि के बंग संस्करण में अतिरिक्त प्राप्त
हैं । देवनागरी म.सं. में असंगृहीत हैं ।

2. पाठाः ग्रसेराच्च बं.सं. । ग्रस् धातु से 'आत्' होता है । 'ग्रसेरा
च' यही पाठ अधिक प्राप्त होता है । द्र. श्वेत.वृ.१-१२९,
उज्ज्वल.१-१४२ ।

का समुदाय (दश.वृ.७-२८) । ग्रामः स्वरे संवसथे वृन्दे शब्दादिपूर्वकः
(वि.प्र.को.मान्त.१४) ।

५५. इन्दि (इन्धि) युधिश्याधूहिभ्यो मक् ११-५५।

एभ्यो मक्प्रत्ययो भवति । 'जि इन्धी दीप्तौ' इन्धे इध्मं
काष्ठम् । 'युध सम्प्रहारे' युध्यते युध्मं प्रहरणम् । 'श्यैङ्
गतौ' 'सन्ध्यक्षरान्तानाम् आ' । श्यायते श्यामो वर्णविशेषः ।
'धू विधूनने' धुनातीति^२ धूमः अग्निशिखा । 'हि गति
[वृद्ध्योः]' हिनोतीति हिमं तुहिनम् ।

इन्ध्, युध्, श्या, धू, हि इन सभी धातुओं से मक् प्रत्यय होता
है । 'मक्' में क् अनुबन्ध से यणवद्भाव के कारण गुणनिषेध होता
है ।

इध्मम् जि इन्धी दीप्तौ (रु.२२) । चमकना, प्रकाशित होना । इन्धे ।
इन्ध्+मक् 'अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः' (कात.३/६/१) सूत्र से न् लोप,
विभक्तिकार्य, इध्मम् । काष्ठ, लकड़ी । समिधा ।

युध्मम् युध सम्प्रहारे (दि.११०) । प्रहार करना, युद्ध होना । युध्यते ।
युध्+मक्, युध्मम् । प्रहरण । शस्त्र । युध्मः शरो योद्धा च

1. इन्दि म.सं. । 'इध्मम्' शब्द की निष्पत्ति इन्ध् धातु से उचित है,
इन्द् से नहीं । वृत्ति में भी इन्ध् धातु पठित है । अतः इन्दि
के स्थान पर इन्धि पाठ रखना उचित होगा ।
2. धुनाति म.सं. । 'धू विधूनने' (तु.१०५) इस तौदादिक धातु का
'धुवति' रूप होता है । 'धूञ् कम्पने' (क्री.१३) से धुनाति होता
है । वैसे कम्पन एवं विधूनन दोनों समानार्थक हैं । किन्तु 'धू
विधूनने' वृत्ति में पठित होने से धुनाति के स्थान पर तौदादिक
'धुवति' पाठ होना चाहिए । वैसे 'धूमः' की निष्पत्ति दोनों धातुओं
से की जा सकती है ।

(वै.सि.कौ.बाल.उ.सू.१४२) । युध्यतेऽस्मिन् राजा इति युध्यः शरत्कालः शूरश्च (दश.वृ.७/३१) ।

श्यामः श्यैङ् गतौ (भू.४५९) । सन्ध्यक्षरान्तानामाकारोऽविकरणे (कात.३/४/२०) । इस सूत्र से 'श्यै' में ऐकार को आकार । श्यायते । श्या+मक्, विभक्तिकार्य, श्यामः^१ । वर्णविशेष (सौवला) ।

धूमः धू विधूनने (तु.१०५) । विधूनन=कम्पित करना, काँपना । ध्रुवति । धू+मक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव होने से गुणनिषेध विभक्तिकार्य, धूमः । अग्निशिखा ।

धूमः का 'अग्निशिखा' अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता । 'अग्निशिखा' के अग्निज्वाला, इन्द्रपुष्पी, केसर आदि अर्थ उपलब्ध हैं । (द्र.अ.को.२/४/११८, २/४/१३६, २/६/१२४) धूम के लिए अग्निविकार (बं.सं.) या अग्निसम्भव अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं ।

हिमम् हि गतिवृद्ध्योः (सु.४) । जाना, बढ़ना । हिनोति । हि+मक्, गुणाभाव, हिमम् । तुहिन । बर्फ । तुषार । ओस (पाला) । हिमं तुषारमलयोद्भवयोः स्यान्नपुंसकम् (मेदिनी.मान्त.३८) ।

हन्+मक्, हि आदेश, बाहुलकात् गुण, हेमम् (दश.वृ.७-३४) ।

५६. घर्मसीमाग्रीष्माधमाः ११-५६ ।

एते मक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'घृ क्षरणदीप्त्योः' घरतीति^२ (जिघर्तीति) घर्मः संतापः । 'षिञ् बन्धने' सिनोतीति

1. श्यामः स्यान्मेचके वृद्धदारके हरिते घने ।

वटद्रुमे प्रयागस्य श्यामः श्यामा तु बलुलौ ॥

श्यामो दमनके गन्धतृणे श्यामेऽभिधेयवत् । (वि.प्र.को.मान्त.१०-१२)

2. घरति म.सं. । 'घृ क्षरणदीप्त्योः' इस आदादिक धातु का 'जिघर्ति' रूप होता है । घृ सेचने (भू.२७६) इस भौवादिक धातु का

सीमा अवधिः । 'गृ निगरणे' गिरतीति ग्रीष्मः ऋतुः । नञ्पूर्वो
धाञ् । न दधातीति अधमः नीचः ।

धर्म, सीमा, ग्रीष्म, अधम ये सभी मक् प्रत्ययान्त शब्द निपातन से निष्पन्न होते हैं ।

धर्मः घृ क्षरणदीप्त्योः (अ.७२) । क्षरण=टपकना, क्षरित होना । दीप्ति=चमकना । जिघर्ति । घृ+मक्, निपातन से घृ में ऋ को गुण से अर्, विभक्तिकार्य धर्मः । संताप । धूप, प्रकाश, निदाघ, यज्ञ । धर्मः स्यादातपे ग्रीष्मेऽप्युष्णस्वेदाम्भसोरपि (मेदिनी.मान्त.१२) ।

सीमा षिञ् बन्धने (सु.२) । बाँधना । सिनोति । सि+मक्, निपातन से धातुघटक इकार को दीर्घ, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य सीमा । अवधि । तट, मर्यादा, परिधि । सीमा घाटे स्थितौ क्षेत्रे मर्यादावेलयोरपि (वि.प्र.को.मान्त.३३) ।

ग्रीष्मः 'गृ निगरणे' (तु.२२) । निगलना, खाना । गिरति । गृ+मक्, निपातन से ऋ की रीष् आदेश, विभक्तिकार्य, ग्रीष्मः । ऋतु । ताप ।

ग्रसते जनान् स्वतेजसा इति ग्रीष्मः धर्मः (दश.वृ.७-३७) । ग्रसते शीतं रसादिकं वा इति ग्रीष्मः (दया.उ.को.१-१४९) । ग्रीष्म ऊर्ध्वर्तुभेदयोः (मेदिनी.मान्त.१०) ।

अधमः डु धाञ् धारणपोषणयोः (अ.८५) । न दधातीति । नञ् (पूर्वक) धा+मक् 'नस्य तत्पुरुषे लोप्यः' (कात.२/५/२२) सूत्र से नञ् घटक नकार का लोप, निपातन से धातु को ह्रस्वादेश, विभक्तिकार्य, अधमः । नीच । कुत्सित, निकृष्ट । न्यून ।

'घरति' रूप होता है । वृत्ति में आदादिक 'घृ' का पाठ होने से दीप्ति अर्थ में निष्पन्न 'धर्म' की निष्पत्ति हेतु घरति के स्थान पर 'जिघर्ति' पाठ होना चाहिए ।



अव्+अम, वकार को धकार, अधमः (उज्ज्वल.५-५४) ।

५७. युजिरुचितिजां घमक् ११-५७।

एभ्यः घमक्प्रत्ययो भवति । घानुबन्धः कत्वगत्वार्थः ।
'युजिर् योगे' युनक्तीति युग्मं युगलम् । 'रुच दीप्तौ' रोचते
रुक्मं सुवर्णम् । 'तिज निशाने' तितिक्षतीति । (तितिक्षते) तिग्मं
तीक्ष्णम् ।

युज्, रुच्, तिज् इन धातुओं से घमक् प्रत्यय होता है । 'घमक्'
में घ् अनुबन्ध का प्रयोजन ककार तथा गकार के विधानार्थ है ।
'चजोः कगौ धुङ्घानुबन्धयोः' (कात.४/६/५६) इस सूत्र से कत्व एवं
गत्व का विधान होता है ।

युग्मम् युजिर् योगे (रु.७) । योग=जुड़ना, इकट्ठा होना । युनक्ति ।
युज्+घमक्, घ् अनुबन्ध के कारण 'चजोः कगौ धुङ्घानुबन्धयोः'
(कात.४/६/५६) सूत्र से चकार को गकार, विभक्तिकार्य, युग्मम् ।
युगल । जोड़ा ।

रुक्मम् रुच दीप्तौ (भू.४७३) । रोचते । रुच्+घमक्, घ् अनुबन्ध के
कारण पूर्वोक्त सूत्र से चकार को ककार, विभक्तिकार्य, रुक्मम् ।
सुवर्ण । लौह । रुक्मं तु काञ्चने लौहे (वि.प्र.को.मान्त.१६) ।

तिग्मम् तिज निशाने क्षमायां च (भू.३४८, चु.७३) । निशान=तीक्ष्ण
करना, तेज बनाना । क्षमा करना । तितिक्षते । तिज्+घमक्, घ्
अनुबन्ध के कारण जकार को गकार, विभक्तिकार्य, तिग्मम् । तीक्ष्ण ।

-
1. तितिक्षति म.सं. । तिज् धातु का सन्नन्त आत्मनेपद रूप 'तितिक्षते'
होता है । वृत्ति में परस्मैपद 'तितिक्षति' रूप निर्दिष्ट है ।
कात.व्या. में दुर्गसिंह ने 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' (कात.३/२/२१) के
उदाहरण में 'तितिक्षते' आत्मनेपद का निर्देश किया है । अतः
'तितिक्षति' के स्थान पर 'तितिक्षते' पाठ अपेक्षित है ।

५८. भियः सुरन्तो वा ११-५८।

अस्मान्धक्प्रत्ययो भवति सुरन्तश्च वा । उकारानुबन्धः ।
'जि भी भये' भियते (भीयते) अस्मिन्^२ भीमः भयानकः ।
भीष्मः कुरुपितामहः ।

॥ इति दौर्गसिंह्यामुणादिवृत्तौ प्रथमः पादः ॥

भी धातु से ध्मक् प्रत्यय तथा धातु को विकल्प से सु या स् अन्तादेश होता है । सु घटक उकार अनुबन्ध अप्रयोगार्ह है । 'ध्मक्' में क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुण का निषेध होता है ।

भीमः जि भी भये (अ.६८) । डरना । भीयते अस्मात् (जिससे डरता है) भी+ध्मक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुणाभाव विभक्तिकार्य, भीमः । भयानकः । पाण्डु के द्वितीय पुत्र भीमसेन (भीमा सेना यस्य भीमसेनः) । भीमोऽम्लवेतसे घोरे शम्भौ मध्यमपाण्डवे (मेदिनी.मान्त.२१) ।

भी+ध्मक्, धातु को स् आदेश, स् को ष, विभक्तिकार्य, भीष्मः । कुरुपितामह । भीष्मो गाङ्गेयघोरयोः (मेदिनी.मान्त.२१) ।

(दुर्गसिंह कृत उणादिवृत्ति के प्रथम पाद की हिन्दी टीका समाप्त)

1. पाठा. सान्तो वा (बं.सं.) । सुरन्तः के स्थान पर 'सान्तः' पाठ लाघवजनक है । यतः भीष्मः की निष्पत्ति में स् मात्र का प्रयोग वाञ्छित है । उकार अनुबन्ध निरर्थक है । अतः 'सुरन्तः' के स्थान पर 'सान्तः' पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है ।
2. 'भियत अस्मिन्' म.स. । 'भीयते' पाठ असमीचीन है । भी धातु से कर्म में ईकारघटित 'भीयते' रूप होता है । अतः 'भियते' के स्थान पर दीर्घ ईकार घटित पाठ 'भीयते' होना चाहिए । 'अस्मिन्' ऐसी अधिकरण व्युत्पत्ति भी असङ्गत है । यतः 'भीमादयोऽपादाने (कात.४/६/५१) इस सूत्र से 'भीम' शब्द की निष्पत्ति 'बिभेति अस्मात्' इस अपादान व्युत्पत्ति से की गई । अतः 'भीयते अस्मात्' ऐसी व्युत्पत्ति उचित है ।

॥ अथ द्वितीयः पादः ॥

५९. अशिलटिखटिविशिभ्यः क्वः ।२-१।

एभ्यः क्वप्रत्ययो भवति । ककारोऽगुणार्थः । 'अशू व्याप्तौ' अश्नुते व्याप्नोतीति अश्वः तुरङ्गः । 'लट बाल्ये च' लटतीति लट्वा पक्षिविशेषः । 'खट काङ्क्षे' खट्यते शयनार्थमिति खट्वा शय्या । 'विश प्रवेशने' विशति लोकोऽस्मिन्निति विश्वं जगत् ।

अश्, लट्, खट्, विश् इन धातुओं से क्व प्रत्यय होता है । 'क्व' में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । कात.व्या. में यण्वद्भाव से गुण का निषेध² होता है ।

अश्वः अशू व्याप्तौ (सु.२२) । व्याप्ति=व्याप्त होना, व्यापक होना । अश्नुते=व्याप्नोति । अश्+क्व, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, लिङ्गसंज्ञा, सि, 'रेफसोर्विसर्जनीयः' (कात.२/३/६३) सूत्र से स् का विसर्ग, अश्वः । तुरङ्ग (घोड़ा) । वहि । अश्वः पुम्भेदवाजिनोः (वि.प्र.को.वान्त.१९) ।

अश्वशब्दो वहावपि दृश्यत इत्युणादयो बहुलम् इत्यत्रानुन्यासः (उज्ज्वल.१-१५०) ।

लट्वा लट बाल्ये (भू.८५) । बाल्य= बालक के समान चेष्टा करना, बोलना । लटति । लट्+क्व, स्त्री. में 'स्त्रियामादा' (कात.२/४/४९)

1. पाठा. नटि बं.सं. । बं.सं. में नट् धातु से क्व प्रत्यय करके 'नट्वा' शब्द निष्पादित है । अन्य उणादि ग्रन्थों में 'लट्वा' शब्द साधित है । सम्भवतः बं.सं. में मुद्रण दोष से ल के स्थान पर न हो गया है ।
2. के यण्वच्च योक्तवर्जम् (कात.४/१/७) दु.वृ.- यण्वद्भावेऽगुणत्वं सम्प्रसारणञ्च स्यात् ।

सूत्र से आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, लट्वा । पक्षिविशेष । बं.सं.-नट्वा । क्षुद्रकटक । गौरैया पक्षी । करञ्जफल । वाद्यविशेष । एक खल पुरुष । व्यभिचारिणी स्त्री । लट्वा करञ्जभेदे फलेऽवद्ये खगान्तरे (मेदिनी.लान्त.२२) ।

खट्वा खट काङ्क्षे (भू.१३) । चाहना, इच्छा करना । खट्यते शयनार्थम् (जो सोने के लिए चाही जाती है) खट्+क्व, स्त्रीत्वविवक्षा में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, खट्वा । शय्या । खाट, चारपाई ।

विश्वम् विश प्रवेशने (तु.५७) । प्रवेश करना, घुसना । विशति लोकोऽस्मिन् (जिसमें मनुष्य प्रवेश करता है) विश्+क्व, क् अनुबन्ध से यणवद्भाव के कारण गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, विश्वम् । जगत् । संसार । विश्वं समस्ते जगति विश्वदेवेऽपि नागरे (वि.प्र.को.वान्त.१९) ।

६०. शर्वजिह्वाग्रीवा^१(ः) (२-२)

एते क्वप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'शृ हिंसायाम्' शृणाति दैत्यान् शर्वः श्रीमहादेवः । 'ओ हाक् त्यागे' भुक्त्वा रसान् जहातीति जिह्वा रसना । 'गृ शब्दे' गृणातीति ग्रीवा कन्धरा ।

शर्व, जिह्वा, ग्रीवा ये तीनों क्व प्रत्ययान्त शब्द निपातन^२ से सिद्ध होते हैं ।

शर्वः शृ हिंसायाम् (क्री. १५) । नष्ट करना, मारना । शृणाति दैत्यान् (जो दैत्यों का नाश करता है) शृ+क्व, शृ में ऋ को निपातन से

१. शर्वजिह्वाग्रीवा (म.सं.) ऐसा विसर्गरहित पाठ अयुक्त है । इन तीनों शब्दों के द्वन्द्व समास में बहुवचनान्त शर्वजिह्वाग्रीवाः ऐसा पाठ होना चाहिए ।

२. द्र.पृ.१९ ।

अर् गुण, विभक्तिकार्य, शर्वः । श्रीमहादेव । शङ्कर । ईश्वरः शर्व
ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः (अ.को. १/१/३०) ।

जिह्वा ओ हाक् त्यागे (अ.७१) । त्यागना, छोड़ना । भुक्त्वा रसान्
जहाति । (जो ग्रहण करके रसों को छोड़ती है) । हा+क्व, धातु को
द्वित्व, प्रथम हकार को जकार तथा निपातन से इकारादेश, आकार का
लोप, स्त्रीत्व विवक्षा में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, जिह्वा । रसना
(जीभ) ।

पा.उ. लिहन्त्यनया जिह्वा, लकारस्य जः गुणाभावश्च
(वै.सि.कौ.उ.सू.१-१५२) ।

'जीव प्राणधारणे' अस्माद् वन् वकारस्य हकारः, जिह्वा ।
(श्वेत.वृ.१-१४०) । जयति यया सा जिह्वा (दया.उ.को.१-१५४) ।

ग्रीवा गृ शब्दे (क्री.२२) । शब्द करना । गृणाति । गृ+क्व, निपातन
से धातुघटक ऋ को री भाव, स्त्री. में आ, विभक्तिकार्य, ग्रीवा ।
गर्दन । ग्रीवाभङ्गाभिरामम् (शाकु. १-७) । ग्रीवा कन्धरायां तच्छिरायाञ्च
योषिति (मेदिनी. वान्त.६) ।

६१. वृषितक्षिराजिधन्विप्रदिवियुभ्यः कनिः । २-३ ।

को यण्वद्भावार्थः । एभ्यः कनिप्रत्ययो भवति । 'जिषु
णिषु वृषु' वर्षतीति वृषा इन्द्रः । 'तक्षू त्वक्षू' तक्षतीति तक्षा
वर्धकिः । 'राजू दीप्तौ' राजत इति राजा अधिपतिः । धन्वि
गत्यर्थः । धनतीति^१ (धन्वतीति) धन्वा तटम् । 'दिवु

1. पाठा.-वृषतक्षूक्षि बं.सं. ।

2. धनति म.सं. ।

क्रीडादिषु' प्रदीव्यतीति प्रदिवा दिवसः । 'यु मिश्रणे' यौतीति युवा तरुणः ।

वृष, तक्ष, राज्, धन्व, प्र (प्रति) पूर्वक दिव्, तथा यु, इन सभी धातुओं से कनि प्रत्यय होता है । 'कनि' में इकार तथा ककार अनुबन्ध अप्रयोगार्ह है । क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव होने के कारण गुण का निषेध होता है ।

वृषा वृषु सेचने (भू.२२६) । सेचन=सींचना, बरसा करना । वर्षति । वृष्+कनि, वृष् में ऋ को क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुण का निषेध, लिङ्गसंज्ञा, सि, उपधादीर्घ, 'व्यञ्जनाच्च' (कात.२/१/४९) से सि का लोप 'लिङ्गान्तनकारस्य' (कात.२/३/५६) सूत्र से नकार का लोप, वृषा । इन्द्र । वृषभ । सूर्य । वृषा कर्णे महेन्द्रे ना (मेदिनी.षान्त.३५) ।

तक्षा तक्षु तनूकरणे (भू.२०६) । तनूकरण= छीलना, पतला करना । तक्षति । तक्ष्+कनि, लिङ्गसंज्ञा, सि, उपधादीर्घ, सिलोप, न् लोप, -तक्षा । वर्धकि (बढ़ई) उक्षा, बलीवर्द (बं.सं.) ।

राजा राज् दीप्तौ (भू.५३९) । दीप्ति=चमकना, शोभित होना । राजंते । राज्+कनि, नान्त होने से 'घुटि चासम्बुद्धौ' (कात.२/२/१७) से उपधादीर्घ, सि का लोप, न् का लोप, राजा । अधिपति ।

राजा प्रभौ च नृपतौ क्षत्रिये रजनीपतौ ।

यक्षे शक्रे च पुंसि स्याद्रागी रक्तेऽपि कामुके ॥

(मेदिनी.नान्त.१५)

धन्वा धन्वि गत्यर्थः (भू.१८९) । धन्वति । धन्व्+कनि, शेष पूर्ववत् धन्वा । तट । मरुभूमि । निर्जल देश । कुत्सित देश । धनुष । धन्वा जङ्गलदेशे स्याद्धन्वचापे स्थलेऽपि च (वि.प्र.को.नान्त.११५) ।

1. पाठा.-प्रतिपूर्वो दिवु क्रीडायाम् प्रतिदिवा दिवसः (बं.सं.१-६३) ।

प्रदिवा दिवु क्रीडादिषु (दि.१) । खेलना आदि । प्र दिव्+कनि, पूर्ववत् प्रदिवा । दिवस । प्रतिपूर्वक-प्रतिदिवा (बं.सं.) । द्यूतकर ।

युवा यु मिश्रणे (अ.८६) । मिश्रित करना, मिलाना, जोड़ना । यौति । यु+कनि, वान्तादेश, उपधादीर्घादि पूर्ववत्, युवा । तरुण । युवा स्यात्तरुणे श्रेष्ठे निसर्गबलशालिनि (मेदिनी.नान्त.११) ।

६२. नञि जहातेः । २-४।

नञि उपपदे जहातेर्धातोः कनिप्रत्ययो भवति । 'ओ हाक् त्यागे' रविं न जहातीति अहः दिनम् । नस्य तत्पुरुषे लोपः (लोप्यः) ।

'नञ्' के उपपद में रहने पर हा धातु से कनि प्रत्यय होता है ।

अहः ओ हाक् त्यागे (अ.७१) । रविं न जहाति (जो सूर्य को नहीं छोड़ता है) । नञ् (पूर्वक) हा+कनि, 'नस्य तत्पुरुषे लोप्यः' (कात.२/५/२२) इस सूत्र से नञ् घटक नकार का लोप, धातुघटक आकार का लोप, विभक्तिकार्य, अहः । दिन ।

६३. पूषादयः । २-५।

पूषन् अर्यमन् मज्जन् उक्षन् श्वन् प्लीहन् मातरिश्वन् क्लेदन् स्नेहन् मूर्धन् यूषन्(दोषन्) एते कन्यन्ता निपात्यन्ते । 'पुष पुष्टौ' पुष्णाति वर्धते पूषा आदित्यः । 'ऋ गतौ' इयतीति अर्यमा आदित्यः । 'टु मस्जो' मज्जतीति मज्जा अस्थिसारः^२ । 'उक्ष सेचने' मूत्रेण उक्षति भुवं सिञ्चति इति उक्षा बलीवर्दः । 'टु ओ शिव' चौरादीन् श्वयति गच्छतीति

1. बं.सं. एवं ति.अनु. में क्लेदन्-स्नेहन्-मूर्धन् ये तीनों उदाहरण अनुपलब्ध हैं ।
2. अस्थिनिवासः ति.अनु. ।

श्वा कुक्कुरः । 'अहि प्लिहि (प्लिह) गतौ' प्लीहते (प्लेहते)
 प्लीहा व्याधिविशेषः । 'दु ओ शिव' मातरि पूर्वः । मातरि
 श्वयति रेतो वर्धते मातरिश्वा वायुः । 'क्लिदू आर्द्रभावे'
 क्लिद्यते क्लेदा चन्द्रः । 'ष्णिह प्रीतौ' स्निह्यतीति स्नेहा
 मित्रम् । 'मूर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः' मूर्च्छन्त्यत्राहताः प्राणिनो मूर्धा
 मस्तकम् । 'यूष हिंसार्थः' यूषतीति यूषन् (यूषा) 'यूष्णो
 धान्यरसान् पश्य' । दुष्यतीति दोषन्^२ (दोषा) 'दोष्णो बाहू
 पश्य' अनयोश्च 'न शसादौ' इति प्रयोगोऽभिधानम् ।

पूषन्, अर्यमन्, मज्जन्, उक्षन्, श्वन्, प्लीहन्, मातरिश्वन्, क्लेदन्,
 स्नेहन्, मूर्धन्, यूषन्, दोषन् ये सभी कनि प्रत्ययान्त शब्द निपातन से
 सिद्ध होते हैं ।

पूषा पुष पुष्टौ (क्री.४८) । पुष्ट करना, समर्थन करना । पुष्णाति ।
 पुष्+कनि, (क्-इ अनुबन्धों का अप्रयोग) लिङ्गसंज्ञा, सि, नान्तत्वात्
 उपधादीर्घ, सिलोप, न् लोप, पूषा । आदित्य । सूर्य ।

अर्यमा ऋ गतौ (अ.४) । इयर्ति । ऋ+कनि, धातु को निपातन से
 गुण, तथा यम्, उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, अर्यमा । आदित्य । अर्यमा तु
 पुमान् सूर्ये पितृदेवान्तरेऽपि च (मेदिनी.नान्त.६४) ।

अर्य (पूर्वक) मा+कनिन्, आकार लोप, अर्यमा (वै.सि.कौ.उ.सू.
 १-१५७) ।

मज्जा 'दु मज्जो शुद्धौ' (तु.५१) । शुद्ध होना । मज्जति
 (अस्थिषु) । मज्ज्+कनि, स् को ज्, मज्ज् अन्= 'मज्जन्' उपधादीर्घ,
 विभक्तिकार्य, मज्जा । अस्थिसार ।

1. यूषन् म.सं. । 'यूषन्' के स्थान पर 'यूषा' पाठ अपेक्षित है ।
 यूष्+कनि, = 'यूषन्' उपधादीर्घ आदि से 'यूषा' निष्पन्न होगा ।
2. दोषन् म.सं. । दुष्+कनि, उपधादीर्घादि से 'दोषा' होता है । अतः
 उदाहरण में 'दोषा' पाठ वृत्ति में होना चाहिए ।

उक्षा उक्ष सेचने (भू.२२६) । सींचना । मूत्रेण उक्षति भुवं सिञ्चति (जो मूत्र से भूमि को सींचता है) उक्ष्+कनि, 'उक्षन्' उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, उक्षा । बलीवर्द (बैल) ।

श्वा 'दु ओ शिव गतिवृद्ध्योः' (भू.६१६) । जाना, बढ़ना । चौरादीन् श्वयति । (जो चोरों की ओर जाता है) । शिव्+कनि इकार लोप उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, श्वा । कुक्कुर (कुत्ता) ।

प्लीहा प्लिह गतौ (भू.४४८) । प्लेहते । प्लिह्+कनि, इकार को दीर्घ, उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, प्लीहा । व्याधिविशेष । कुक्षिव्याधि । गुल्मरोग (हृदय की बायीं कांख में होने वाला अतिरिक्त मांसपिण्डविशेष) तिल्ली । (अ.को.२/६/६६)

मातरिश्वा दु ओ शिव गतिवृद्ध्योः (भू.६१६) । मातरि श्वयति रेतो वर्धते (अन्तरिक्ष में जिसकी शक्ति बढ़ती है) । मातरि पूर्वक शिव्+कनि, इकारलोप सप्तमी विभक्ति का अलुक्, विभक्तिकार्य, मातरिश्वा । वायु ।

क्लेदा क्लिद् आद्रभावे (दि.७६) । गीला होना, भीगना । क्लिद्यते । क्लिद्+कनि, धातु को निपातन से गुणादेश, उपधादीर्घ, लिङ्गसंज्ञा सि, सिलोप, न् लोप, क्लेदा । चन्द्र । क्रोध ।

स्नेहा णिह प्रीतौ (दि.४०) । प्रीति करना, स्नेह करना । 'णिहं' में ष् को धात्वादेः षः सः (कात.३/८/२४) सूत्र से स् तथा णो नः (कात.३/८/२५) सूत्र से ण् को न् । स्निह्यति । स्निह्+कनि, गुणादेश, पूर्ववत् स्नेहा । मित्र । व्याधि । चन्द्र ।

मूर्धा मुच्छा (मूच्छा) मोहसमुच्छ्राययोः (भू.५८) । मोह=मोहित होना, समुच्छ्राय=बढ़ना । मूच्छन्ति अत्राहताः प्राणिनः (जिस पर चोट लगने से

प्राणी मूर्च्छित हो जाते हैं) मूर्च्छ(या) मुच्छ्+कनि, निपातन से धातु को धकारान्तादेश, उपधादीर्घ, सिलोप, न् लोप, मूर्धा । मस्तक । शिर ।

मुहान्त्यस्मिन्नाहते मूर्धा, मुहेरुपधाया दीर्घो धोऽन्तादेशो रमागमश्च (वै.सि.कौ.उ.सू.१-१५७) ।

यूषा यूष हिंसार्थः । यूषति । यूष्+कनि, =यूषन्, उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, यूषा । धान्यरस, मांड । यूषन् शब्द के प्रथमा एकवचन से लेकर द्वितीया द्विवचन तक रूप नहीं होते । द्वि० बहु-यूष्णः । 'यूष्णः=धान्यरसान् पश्य' ।

दोषा दुष वैकृत्ये (दि.२८) । दुष्यति । 'दुष्+कन्, निपातन से गुण, उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, दोषा । भुजा । द्वि.बहु.-'दोष्णः=बाहू पश्य' (बाहुओं को देखो) ।

'अनयोश्च न शसादौ' इति प्रयोगोऽभिधानम्(?) वृत्ति में यह अपूर्ण पाठ उद्धृष्ट है । इसकी पूर्ति 'ह्मासदोषपूषां शसादौ स्वरे वा' (कात.रूप.सू.२९४) इस सूत्र से की जा सकती है ।

६४. हृकृञ्भ्यामेणुः^१ । २-६ ।

आभ्यामेणुप्रत्ययो भवति । 'हृञ् हरणे' हरति मनः हरेणुः गन्धद्रव्यम् । 'डु कृञ् करणे' करोति कार्यं करेणुः हस्ती हस्तिनी वा ।

ह तथा कृ धातु से एणु प्रत्यय होता है ।

हरेणुः हृञ् हरणे (भू.५९६) । हरण करना । हरति मनः । हृ+एणु, ऋ को अर् गुण, विभक्तिकार्य, हरेणुः । गन्धद्रव्य । कलाय ।

1. पाठा०- कृहृञ्भ्यामेणुः (बं.सं.), (दया.उ.को.-२-१) ।

रेणुका । (अ.को.२/९/१६) । हरेणुर्ना सतीने स्त्री रेणुकाकुलयोषितोः
(मेदिनी.णान्त-८६) ।

करेणुः डु कृञ् करणे (त.७) । करोति कार्यम् । कृ+णु, ऋ को
अरु, विभक्तिकार्य, करेणुः । हस्ती । हाथी । हथिनी । कर्णिकार
वृक्ष । पालकाप्य की माता । करेणुर्गजहस्तिन्योः कर्णिकारतरावपि
(अने.सं.श्लो.२०५) ।

६५. दाभारिवृञ्भ्यो नुः । २-७।

एभ्यो नुप्रत्ययो भवति । 'डु दाञ् दाने' ददातीति दानुः
दाता । 'भा दीप्तौ' भातीति भानुः सूर्यः । 'रि गतौ'
रियते। रेणुः धूलिः । 'वृञ् वरणे' वृणोतीति वणुः
नादविशेषः ।

दा, भा, रि, वृञ् इन धातुओं से 'नु' प्रत्यय होता है ।

दानुः डु दाञ् दाने (अ.८४) । देना, दान देना । ददाति ।
दा+नु, विभक्तिकार्य, दानुः । दाता । दानुः दातरि विक्रान्ते
(मेदिनी.णान्त.१०) ।

भानुः भा दीप्तौ (अ.१५) । चमकना, द्योतित होना । भाति ।
भा+नु, विभक्तिकार्य, भानुः । सूर्य । किरण ।

रेणुः रि गतौ (तु.१५) । रियति । रि+नु, गुण, न् को ण्,
विभक्तिकार्य, रेणुः । धूलि । रेणुः स्त्रीपुंसयोर्धूलौ पुल्लिङ्गः पर्पटे पुनः
(मेदिनी.णान्त.२५) ।

-
1. रियते, म.सं. । रि धातु के परस्मैपदी होने से 'रियति' पाठ होना चाहिए । रिपि ऋषी गतौ (तु-१५) ।

वर्णुः वृञ् वरणे (सु.८) । वरण करना, पसन्द करना । वृणोति ।
वृ+नु, अर् गुण, न् को ण्, वर्णुः । नादविशेष । आदित्य । नदी ।
शरीर । वर्णुर्नददेशभेदयोः (वै.सि.कौ.उ.सू.३-३८) ।

६६. सूविषिभ्यां यण्वत् (२-८)

आभ्यां नुप्रत्ययो भवति । स च यण्वत् तेनागुणत्वम् ।
'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' सूयते सूनुः पुत्रः । 'विष्णु व्याप्तौ'
वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः हरिः ।

सू तथा विष् इन दोनों धातुओं से नु प्रत्यय होता है । नु
को यण्वद्भाव भी होता है । यण्वद्भाव का प्रयोजन धातु को गुण
का निषेध है ।

सूनुः षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' (अ.५४) । गर्भ पृथक् करना, उत्पन्न
होना । सूयते । धात्वादेः षः सः से ष् को स् । सू+नु, नु को
यण्वद् भाव होने से धातुघटक उकार को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य,
सूनुः । पुत्र । सूर्य । सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ (वै.सि.कौ.उ.सू.३-३५) ।

विष्णुः विष्णु व्याप्तौ (अ.८३) । व्याप्त रहना । वेवेष्टि व्याप्नोति
(विश्वम्) । विष्+नु, नु को यण्वद्भाव होने से गुणनिषेध, न् को ण्,
विभक्तिकार्य, विष्णुः । हरि । जित्वरे चाथ विष्णुः स्यात् कृष्णेऽर्के
वसुदैवते (वि.प्र.को.णान्त.१९) ।

६७. धेन्वादयः । २-९।

धेनुजहनुस्थाणुवेणुवग्नवः । एते नुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।
'धेट पा पाने' सन्ध्यक्षरान्तानामाकारः । धयति पिबति वत्सः
तान् (ताम्) धेनुः नवप्रसूता गवादिः । 'ओ हाक् त्यागे'

1. 'तान्' म.सं.- । यहाँ 'तान्' के स्थान पर 'ताम्' या 'याम्' पाठ
होना चाहिए । बछड़ा जिसे पीता है, या उसे पीता है ।

जहातीति जहनुः विद्याधरः ऋषिविशेषो वा । 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'
जगति प्रलीनेऽपि तिष्ठतीति स्थाणुः ईश्वरः । 'वै शोषणे'
सन्ध्यक्षरान्तानामाकारः । वायति जलं वेणुः वंशः । 'वच
परिभाषणे' वक्तीति वग्नुः¹ प्रियवादी, एवमादयो द्रष्टव्याः ।

धेनु, जहनु, स्थाणु, वेणु, वग्नु ये सभी नु प्रत्ययान्त शब्द
निपातन से निष्पन्न होते हैं ।

धेनुः घेट पा पाने (भू.२६४) । पीना, पान करना । धयति, पिबति
वत्सः ताम् (बछड़ा जिसका दूध पीता है) ।
सन्ध्यक्षरान्तानामाकारोऽविकरणे (कात.२/४/५०) इस सूत्र से घेट् घटक
एकार को आकार । धा+नु, निपातन से आकार के स्थान में एकार,
विभक्तिकार्य, धेनुः । नवप्रसूत गाय आदि । धेनुः स्यान्नवसूतिका
(अ.को.२/९/७१) ।

जहनुः ओ हाक् त्यागे (अ.७१) । जहाति । हा+नु, हा को द्वित्व,
प्रथम हकार को जकार, तथा आकार का लोप, विभक्तिकार्य, जहनुः ।
विद्याधर या ऋषिविशेष राजर्षि मुनिविशेष । जहनु की दत्तक
पुत्री-जाहन्वी-गङ्गा । जहनुः स्यात् पुंसि राजर्षिभेदे च मधुसूदने
(मेदिनी.नान्त.७) ।

स्थाणुः ष्ठा गतिनिवृत्तौ (भू.२६७) । रुकना । जगति प्रलीनेऽपि
तिष्ठति (जो संसार के प्रलीन हो जाने पर भी विद्यमान रहता है) ।
स्था+नु, न् को ण्, विभक्तिकार्य, स्थाणुः । ईश्वर । शङ्कर । ध्रुव ।
शङ्कु । शाखापत्रादिरहित वृक्ष, दूठा पेड़, कील । स्थाणुः कीले स्थिरे
हरे (वि.प्र.को.णान्त.२७) ।

सम्भवतः 'ताम्' के स्थान पर मुद्रण दोष से 'तान्' पाठ हो गया
हो । अतः 'ताम्' या 'याम्' ऐसा पाठ होना चाहिए ।
द्र०-वै.सि.कौ.उ.सू.-३-३४) ।

1. 'वग्नुः' यह शब्द बं.सं. एवं ति.अनु. में अनुपलब्ध है ।

वेणुः वै शोषणे (भू.२६१) । सुखाना । 'वायति जलम्' (जो जल को सुखाता है) 'वै' में सन्ध्यक्षर ऐकार को आकार । वा+नु, आकार को एकार, न् को ण्, वेणुः । वंश (बांस) । वेणुर्भूपान्तरे वंशे (वि.प्र.को.णान्त.२७) ।

तु.- अजेर्वी, वेणुः (वै.सि.कौ.३/३८) ।

वग्नुः वच परिभाषणे (अ.३०) । वक्ति । वच्+नु, च् को गु, विभक्तिकार्य, वग्नुः । प्रियवादी । वावदूकः विप्रलापी च (श्वेत.वृ.३-३३) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले दूसरे शब्दों को भी इसी प्रक्रिया के अनुसार सिद्ध कर लेना चाहिए ।

यथा-कृणुः-कोशकार । जिगनुः वायु । कृलुः शिल्पी । हलुः व्याधि, शस्त्र ।

६८. रमिकासिकुषिपातृवचिरिचिसिचिगुभ्यस्थक् ।२-१०।

एभ्यस्थक्प्रत्ययो भवति । को यण्वद्भावार्थः । 'रमु क्रीडायाम्' रमति^१ (रमते) मनसि रथः स्यन्दनः । 'काशु दीप्तौ' काशतीति^२ (काश्यते) काष्ठं दारु । 'कुष निष्कर्षे' कुष्णातीति कुष्ठं गन्धद्रव्यं रोगविशेषश्च । 'पा पाने' पीयते पाथः जलम् । 'तृ प्लवनतरणयोः' तीर्यते अनेनेति तीर्थम् धर्मस्थानं पुण्यस्थलं वा । 'वच परिभाषणे उच्यते उक्थं

1. रमति म.सं. । 'रमु क्रीडायाम्' (भू.आ.५६१) धातु आत्मनेपदी है । वृत्ति में परस्मैपद 'रमति' पाठ है । धातुपाठ के अनुसार 'रमते' पाठ होना चाहिए ।

2. काशति म.सं. । 'काशु दीप्तौ' (दि.१०५) धातु देवादिक आत्मनेपद है । वृत्ति में 'काशति' रूप आसाधु है । देवादिक काश् से काश्यते तथा भौवादिक कासु (भू.४३९) से 'कासते' रूप होगा ।

साम । 'रिचिर्' विरेचने' रिणक्ति इति रिक्थम् । 'षिचिर् चलने'² सिक्थं मधूच्छिष्टम् । 'गु पुरीषोत्सर्गे' गुवतीति गूथं विष्ठा ।

रम्, कास्, कुष्, पा, तृ, वच्, रिच्, सिच्, गु इन धातुओं से थक् प्रत्यय होता है । थक् में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है । इससे धातु को गुण का निषेध होता है ।

रथः रमु क्रीडायाम् (भू.आ.५६१) । क्रीडा=खेलना । रमण करना । रमते मनसि (जो मन में अच्छा लगता है) रम्+थक्, मकार का लोप, विभक्तिकार्य, रथः । स्यन्दन । काय । पाद । वेतस वृक्ष । रथस्तु स्यन्दने पादे शरीरे वेतसद्रुमे (अने.सं.को.श्लो.२२४) ।

काष्ठम् काश् दीप्तौ (दि.१०५, भू.४३९-कास्) । चमकना, प्रकाशित होना । काश्यते या कासते । काश्+ थक्, शकार को षकार, षकार परक थकार को 'तवर्गस्य षटवर्गाद् टवर्गः' (कात.३/८/५) इस सूत्र से ठकार, विभक्तिकार्य, काष्ठम् । दारु । इन्धन ।

कुष्ठम् कुष निष्कर्षे (क्री.४०) । निष्कर्ष=रगड़ कर निकालना, चमकना । कुष्णाति । कुष्+थक्, थकार को ठकार, विभक्तिकार्य, कुष्ठम् । (पु.नपु.) गन्धद्रव्य (कूट औषधि) तथा रोगविशेष (श्वेत कुष्ठ) । कुष्ठं रोगे पुष्करेऽस्त्री (मेदिनी.ठान्त.३) ।

1. 'रिहिर्' म.सं. । कात.धातु में 'रिचिर्' पाठ है तथा पा.धा. में भी रिचिर् (क्षी.त.रु.४) ही पाठ उपलब्ध है । तदनुसार वृत्ति में 'रिहिर्' के स्थान पर 'रिचिर्' पाठ रखा गया । सम्भवतः प्रमाद से चकार के स्थान में 'ह' वर्ण हो गया हो ।

2. षिचिर् चलने, म.सं. । षिच् धातु कात.धातु. में क्षरण अर्थ में पठित है । तदनुसार वृत्ति में 'षिच क्षरणे' ऐसा पाठ अपेक्षित है ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

95

पाथः पा पाने (भू.२६४) । पीना, पान करना । पीयते (कर्म)
पा+थक्, विभक्तिकार्य, पाथः । जल । पाथोऽर्केऽग्नौ जले क्लीबम्
(मेदिनी.थान्त.९) । कबन्धमुदकं पाथः पुष्करं सर्वतोमुखम् ।
(अ.को.१/१०/४) ।

तीर्थम् तु प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । पार जाना, तैरना । तीर्थते
अनेन (कर्म) । (जिसके द्वारा पार होता है) । तृ+थक्, ऋ को ईर्,
विभक्तिकार्य, तीर्थम् । धर्मस्थान या पुण्य स्थल । तीर्थम्-गुरुः यज्ञः,
पुरुषार्थो मन्त्री जलाशयो वा (दया.उ.को.२/७) ।

उक्थम् वच परिभाषणे (अ.इ.) । कहना, बोलना । उच्यते ।
वच्+थक्, 'स्वपिवचि' (कात.३/४/३) इत्यादि सूत्र से वकार को
सम्प्रसारण से उकार, 'चजोः कगौ' (कात.४/६/५६) इत्यादि सूत्र से
चकार को ककार, विभक्तिकार्य, उक्थम् । साम । सामवेद । साम्युक्थं
स्वरपत्तनम् (त्रि.शे.पृ.२६१, श्लो.२) ।

रिक्थम् रिचिर् विरेचने (रु.४) । विरेचन=मलशुद्धि होना, दस्त खुलना,
खाली करना । रिणक्ति । रिच्+थक्, क् अनुबन्ध से यणवद्भाव के
कारण गुणनिषेध, चकार को ककार, विभक्तिकार्य, रिक्थम् ।
दायभाग । उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति ।

सिक्थम् सिचिर् क्षरणे (षिच तु.११) । क्षरण=सींचना, रिसना ।
सिञ्चति । धात्वादेः षः सः । सिच्+थक्, चकार को ककार,
विभक्तिकार्य, सिक्थम् । मधु का उच्छिष्ट=मौम (शहद से निकाला
हुआ) । सिक्थो भक्तपुलाके ना मधूच्छिष्टे नपुंसकम् (मेदिनी.थान्त.१३) ।

गूथम् गु पुरीषोत्सर्गे (तु.१०६) । पुरीषोत्सर्ग=मल निकालना, शौच
करना । गुवति । गु+थक्, निपातन से दीर्घ, (बं.सं.) विभक्तिकार्य,

1. तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजस्सु च ।

अवतारविजुष्टाभुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु ॥ (मेदिनी.थान्त.७) ।

गूथम् । विष्ठा । मल । पुरीषं गूथवर्चस्कमस्त्री विष्ठाविषे स्त्रियो ।
(अ.को.२/६/६८) ।

६९. अवे भृजः । २-११।

अवे उपपदे भृजस्थग् भवति । 'डु' धाज् [?] डु भृज्' अव विभर्ति इति अवभृथः यज्ञान्तस्नानम् ।

अव उपपदपूर्वक भृज् धातु से थक् प्रत्यय होता है । क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है ।

अवभृथः डु भृज् धारणपोषणयोः (अ.८५) । धारण करना, पोषण करना । अव विभर्ति । अव (पूर्वक) भृ+थक्, यण्वद्भाव के कारण गुणाभाव, विभक्तिकार्य, अवभृथः । यज्ञसमाप्ति पर शुद्धि के लिए किया जाने वाला विशेष स्नान । दीक्षान्तोऽवभृथो यज्ञे (अ.को. २/७/२७) ।

७०. न्युदोः शीङ्गाभ्याम् । २-१२।

अनयोरुपपदयोरभ्यां यथासङ्ख्यं थग् भवति । 'शीङ्' स्वप्ने' निपूर्वः । नियतं शेते जनोऽत्र निशीथः अर्धरात्रिः । 'कै गै रै शब्दे' सन्ध्यक्षरान्तानामाकारः । उत्पूर्वः^२ । उद्गीयते उद्गीथः श्रुतेः प्रणवः ।

1. डु धाज् ? 'डु भृज्' ऐसा वृत्ति में पृथक् पाठ है । कात.धातु. में धाज् एवं भृज् धातु एक साथ पठित हैं पृथक् नहीं । अतः 'डु धाज् डु भृज् धारणपोषणयोः' (अ.८५) ऐसा पाठ वृत्ति में होना चाहिए ।

2. उदपूर्वः म.सं. । 'उद्गीथ' शब्द में उत् पूर्वक गै धातु का प्रयोग है । अतः यहाँ 'उत्' ऐसा तकारान्त 'उत्पूर्वः' पाठ 'उदपूर्वः' के स्थान पर किया गया ।

'नि' तथा 'उत्' के उपपद में रहने पर यथाक्रम शीङ् एवं गा धातु से थक् प्रत्यय होता है । थक् में क् अनुबन्ध होने से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुण का निषेध होता है ।

निशीथः शीङ् स्वप्ने (अ.५५) । सोना, निद्रा लेना । नियतं शेते जनोऽत्र (जिस समय व्यक्ति निश्चित रूप से सोया रहता है) । नि (पूर्वक) शी+थक्, गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, निशीथः । अर्धरात्रि । रात्रिमात्र । निशीथस्तु पुमानर्द्धरात्रिमात्रके (मेदिनी.थान्त.२०) ।

उद्गीथः गै शब्दे (भू.२५६) । उद् गीयते (कर्म) । उत् पूर्वक प्रयोग । सन्ध्यक्षर ऐ को आकार, उद् गा+थक्, आकार को ईकार, विभक्तिकार्य, उद्गीथः । वेद का प्रणव 'ओम्' । सामध्वनि । साम का भेद । उद्गीथः प्रणवः सामवेदध्वनिः इत्यरुणः (अम.सुधा.पृ.४५५) ।

७१. पृष्ठयूथप्रोथाः ।२-१३।

एते थक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'पृषु वृषु' पर्वतीति पृष्ठं पश्चात्कायः । 'यु मिश्रणे' यूतीति^१ (यौतीति) यूथं समूहः । 'भृङ्'^२ (भृङ्) 'पृङ्' (पृङ्) प्रवते चलतीति प्रोथः अश्वघोषान्तरम्^३ (घोणान्तरम्) ।

पृष्ठ, यूथ, प्रोथ ये तीनों थक् प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

१. यूतीति, म.सं. । 'यु मिश्रणे' इस आदादिक धातु का 'यौति' रूप होता है । वृत्ति में 'यूति' पाठ असमीचीन है । अतः 'यूतीति' के स्थान पर 'यौतीति' पाठ अपेक्षित है ।
२. भृङ् पृङ्, म.सं. । पृङ् से 'प्रवते' रूप नहीं होता । कात. धातु. में 'पृङ् गतौ' (भू.४५९) ऐसा धातु पाठ है ।
३. अश्वघोषान्तरम् म.सं. । 'घोषा' के स्थान पर 'घोणा' पाठ शुद्ध होगा । अश्वनासान्तरम् (ब.सं.) ।

पृष्ठम् पृषु सेचने (भू.२२६) । सेचन=सीचना । पर्षति । पृष्+थक्, थकार को ठकार, विभक्तिकार्य, पृष्ठम् । शरीर का पिछला भाग । स्तोत्र । पृष्ठं चरममात्रेऽपि देहस्यावयवान्तरे (मेदिनी.ठान्त.७) ।

यूथम् यु मिश्रणे (अ.६) । मिलना, जोड़ना । यौति । यु+थक्, निपातन से धातु को दीर्घ ऊकार, विभक्तिकार्य, यूथम् । समूह । तिर्यग् जातीय का समूह । यूथं तिरश्चां पुनपुंसकम् (अ.को.२/५/४१) । यूथं तिर्यक्समूहेऽस्त्री पुष्पभेदे च योषिति (मेदिनी.थान्त.११) ।

प्रोथः पृङ् गंतौ (भू.४५९) । प्रवते । पृङ्+थक्, थकार को ठकार, निपातन से धातुघटक उकार को ओकार गुणादेश, विभक्तिकार्य । प्रोथः । अश्व की नाक (नथुन) समुद्रतरङ्ग, नाक के छिद्र का निचला प्रदेश (श्वेत.वृ.२/१२) । प्रोथोऽस्त्री हयघोणायां ना कट्यामध्वगे त्रिषु (मेदिनी.थान्त.१०) ।

७२. स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिरुदिमदिमन्दिचन्धुन्दी-
दिभ्यो^१ रक् १२-१४।

एभ्यो धातुभ्यो रक्प्रत्ययो भवति । यण्वद्भावादनुषङ्ग-
लोपः^२ । 'स्फायी ओ प्यायी वृद्धौ' स्फायते स्फारम् प्रभूतम् ।
'तञ्चि वञ्चि'^३ तञ्चतीति तक्रम् मथितम् । वञ्चतीति वक्रं
कुटिलम् । 'शक्लृ शक्तौ' पां [पातु] शक्नोतीति शक्रः ।

१. चन्धुन्दीदिभ्यः, म.सं. । इदित् धातु को न् आगम करके 'चन्दि' पठित है इसी प्रकार इदि धातु को भी न् आगम् घटित 'इन्दि' ऐसा पाठ होना चाहिए । तदनुसार 'चन्धुन्दीदिभ्यः' ऐसा 'इन्दि' घटित पाठ अपेक्षित है ।
२. कात.व्या. में 'व्यञ्जनान्नोऽनुषङ्गः' (२/१/१२) सूत्र से नकार की अनुषङ्ग संज्ञा तथा 'अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः' (कात.३/६/१) सूत्र से उसका लोप होता है ।
३. वञ्चु-चञ्चु-तञ्चु-त्वञ्चु इत्यादयः सन्तानधातवः ति.अनु. ।

'क्षिप प्रेरणे' क्षिपतीति क्षिप्रं शीघ्रम् । क्षुदिर् संवरणे^१ क्षुदतीति (क्षुणत्तीति) क्षुद्रः दुर्जनः । 'रुदिर् अश्रुविमोचने' रोदतीति रुद्रः शङ्करः । 'मदि हर्षे' माद्यतीति मद्रः देशविशेषः । 'मुदि(मदि) स्तुत्यादौ' मन्दते मन्द्रः गम्भीरध्वनिः । 'चदि आह्लादने' चन्दतीति चन्द्रः शशी । 'उन्दी क्लेदने' उनत्तीति उन्द्रः । [जल] चरविशेषः । 'इदि परमैश्वर्ये' इन्दतीति इन्द्रो देवराजः ।

स्फाय्, तञ्च्, वञ्च्, शक्, क्षिप्, क्षुद्, रुद्, मदी, मन्द्, चन्द, उन्द्, इन्द् इन सभी धातुओं से 'रक्' प्रत्यय होता है । 'रक्' में क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से अनुषङ्ग संज्ञक नकार का लोप अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः' (कात.३/६/१) सूत्र से अनिदनुबन्ध धातुओं को अगुणप्रत्यय परे रहने पर होता है ।

स्फारम् स्फायी वृद्धौ (भू.४१३) । बढ़ना, फूलना । स्फायते । स्फाय्+रक्, 'व्योर्व्यञ्जनेऽये' (कात.४/१/३५) से यकार लोप, 'घोषवत्योश्च कृति' (कात.४/६/८०) से इट् का निषेध, विभक्तिकार्य, स्फारम् । प्रभूत । बहुल । अधिक । समुद्र । सुवर्णादिविकार या बुद्बुद (दया.उ.को.२/१३) । स्फारः स्याद् विकटे स्फारः कनकादेश्च बुद्बुदे (वि.प्र.को.रान्त.२१) ।

तक्रम् तञ्च् गतौ (भू.४९) । तञ्चति । तञ्च्+रक्, 'न्यङ्क्वादीनां हश्च घः' (कात.४/६/५७) सूत्र से चकार को ककार, 'अनिदनुबन्धानां' (कात.३/६/१) इत्यादि सूत्र से अनुषङ्गसंज्ञक नकार का लोप,

-
1. संवरणे मं.सं. । 'क्षुदिर्' धातु 'संषेण' अर्थ में (रु.६) पठित है, जिसका 'क्षुणत्ति' रूप होता है । वृत्ति में 'क्षुदति' रूप निर्दिष्ट है । 'क्षुदति' तभी सम्भव होता जब यह धातु तुदादि में पठित होती ।

विभक्तिकार्यं, तक्रम् । मथित । मथा हुआ । दधि, मट्ठा, मक्खन ।
तक्रं ह्युदश्विन्मथितं पादाम्ब्वद्धाम्बु निर्जलम् (अ.को.२/९/५३) ।

वक्रम् वञ्चु गतौ (भू.४९) । वञ्चति । वञ्च्+रक्, चकार को
ककार, विभक्तिकार्यं, वक्रम् । कुटिल, क्रूर । वक्रः स्यात् कुटिले क्रूरे
पुटभेदे शनैश्चरे (वि.प्र.को.रान्त.५२) ।

शक्रः शक्लु शक्तौ (सु.१५) । समर्थ होना, कर सकना ।
शक्नोति । शक्+रक्, विभक्तिकार्यं, शक्रः । इन्द्र । कुटज । अर्जुन
वृक्ष । शक्रः पुमान् देवराजे कुटजार्जुनधूरुहोः (अ.को.रामाश्रमी,
२/४/६६) ।

क्षिप्रः क्षिप प्रेरणे (तु.५) । प्रेरण=प्रेरित करना । क्षिपति । क्षिप्+रक्,
विभक्तिकार्यं, क्षिप्रः । शीघ्र । क्षिप्रम् (नपुं.) । लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्
(अ.को. श्लो.१/१/६८) ।

क्षुद्रः क्षुदिर् संवरणे (संपेषणे-रु.६) । पीसना, कूटना । क्षुणत्ति ।
क्षुद्+रक्, क्षुद्रः । दुर्जन । दीन, हिंसक (श्वेत.वृ.२/१५९) । क्षुद्रः
स्यादधमक्रूरकृपणाल्पेषु वाच्यवत् (मेदिनी.रान्त.१७) ।

रुद्रः रुदिर् अश्रुविमोचने (अ.३१) । आँसू गिराना, रोना । रोदिति ।
रुद्+रक्, विभक्तिकार्यं, रुद्रः । शङ्कर । एकादश रुद्र ।

रोदयति दानवयोषितः । रोदि+रक्, णि लुक्, ओकार को उकार,
रुद्रः । (श्वेत.वृ.२/१७०, दश.वृ.८/३९) ।

तदुक्तं कौर्म्ये-रोदनात्तव रुद्रेति नामधेयं त्वमावह इति
(अ.को.रघु.टी.पृ.३३, पक्ति.१७) ।

तदुक्तं स्कन्दे-रुजः सर्वगता यस्माद् हारयामि जगत्त्रयम् ।

रोदनं हन्मि यस्माच्च, रुद्रस्तस्मादहं प्रिये ॥

(तत्रैव)

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

101

मद्रः मदी हर्षे (दि.४८) । प्रसन्न होना, आनन्दित होना । माद्यति ।
मद्+रक्, विभक्तिकार्य, मद्रः । देशविशेष ।

मन्द्रः मदि स्तुत्यादौ (भू.३०१) । स्तुति आदि करना । मन्दते । इदित्
होने से न् आगम् । मन्द+रक्, विभक्तिकार्य, मन्द्रः । गम्भीर ध्वनि ।
मन्द्रस्तु गम्भीरे (अ.को.१/७/२) । स मन्द्रः कण्ठमध्यस्थस्तारः शिरसि
गीयते (अ.को.१/७/५१ प्रक्षिप्त) ।

चन्द्रः चदि आह्लादने (भू.२६, दीप्तौ च) । आह्लादन=आनन्दित
होना, चमकना । इदित् होने से न् आगम् । चन्दति । चन्द+रक्,
विभक्तिकार्य, चन्द्रः । शशी । चन्द्रमा । रोगापनयनेन छादनात् चन्द्रः
(अ.को.रघु.टी.पृ.२९२, श्लो.१४५) ।

चन्द्रः सुवर्णे कपूरे मेचके रजनीपतौ काम्पित्ये सलिले काम्ये ।
(अने.सं.को.पृ.१६, श्लो.१११)

उद्रः उन्दी क्लेदने (रु.१६) । क्लेदन=भीगना । उनत्ति । उन्द+रक्,
नकार का लोप, उद्रः । जलचरविशेष, जलजन्तु । जलमार्जार ।
उद्विडाल । सम् पूर्वक उद्र-समुद्रः ।

इन्द्रः इदि परमैश्वर्ये (भू.२२) । परमैश्वर्य=अद्भुत पराक्रम युक्त
होना । ईश्वरीय शक्ति होना । इदित् होने से न् आगम् । इन्दति ।
इन्द+रक्, इन्द्रः । देवराज । अन्तरात्मा । आदित्य, योग । इन्द्रः
शचीपतावन्तरात्मन्यादित्ययोगयोः । (वि.प्र.को.-रान्त.६२) ।

७३. सुसूधाज्गृधिशिवतिवृत्तिछिदिमुदितृपिदम्भिभुभिभ्यश्च ।२-१५।

एभ्यो रक्प्रत्ययो भवति । चकारः समुच्चयार्थः । 'षुज्
अभिषवे' 'षु प्रसवे वा । सुनोति इति सवति वा मदं सुरा
मद्यम् । 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' सूते सूरः रविः । 'डु धाज्'
दधातीति धीरः अचलः । 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्' गृध्यतीति

[गृध्रः पक्षिविशेषः] ['श्विता] वर्णे श्वेतते श्वित्रं कुष्ठम् । 'वृतु वर्तने' वर्तते वृत्रः इन्द्रारिः । 'छिदिर् द्वैधीकरणे' छिनत्तीति छिद्रं रन्ध्रम् । 'मुदि हर्षे' मुद्यते लोकोऽनया मुद्रा आज्ञाकरणम् । 'तृप [प्रीणने¹, तृप्यन्ते देवा अनेन इति तृप्ः] पुरोडाशः । 'दम्भु दम्भे' दम्भोतीति दम्भं स्तोकम् । 'शुभ शुम्भ शोभार्थे' शुभतीति शुभ्रं शुक्लं मङ्गलं वा ।

सु, सू, धा, गृध्र, श्वित, वृत, छिद्, मुद्, तृप्, दम्भ, शुभ्र इन धातुओं से रक् प्रत्यय होता है । 'रक्' में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । सूत्रस्थ चकार समुच्चयार्थ है । इसके बल से अन्य धातुओं से भी रक् प्रत्यय हो सकता है ।

सुरा षुञ् अभिषवे (सु.१) । अभिषव=यज्ञान्त स्नान करना, नहाना । षु में ष् को 'धात्वादेः षः सः' से स् । सुनोति । सु+रक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुणनिषेध, स्त्रीत्व-विवक्षा में 'स्त्रियामादा' इस सूत्र से आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, सुरा । मद्य । शराव । मदिरा । सुरा मद्ये चषकेऽपि सुरा क्वचित् (वि.प्र.को.रान्त.१४) ।

तु.- सु+क्रन् (वै.सि.कौ.उ.२/१८२) ।

सूरः षूङ् प्रणिगर्भविमोचने (अ.५४) । गर्भ निकालना, उत्पन्न करना । सूते । धात्वादेः षः सः । सू+रक्, गुणाभाव, विभक्तिकार्य, सूरः । रवि । शूरः तालव्यवानिति पुरुषोत्तमः उणादिवृत्तौ । शूरादयः (सि.चं.उ.२-१०) (अ.को.रघु.टी.पृ.८१) । सूरश्चारभटे सूर्ये (वि.प्र.को.रान्त.२५) ।

धीरः डु धाञ् धारणपोषणयोः (अ.८५) । धारण करना, पोषण करना । दधाति । धा+रक्, आकार को ईकार, विभक्तिकार्य, धीरः । अचल । धीरो धैर्यान्विते स्वैरे बुधे क्लीबं तु कुङ्कुमे (मेदिनी.कान्त.५१) ।

गृध्रः गृधु अभिकाङ्क्षायाम् (दि.प.८०) । चाहना । गृध्यति । गृध्+रक्, यण्वद्भाव से गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, गृध्रः । पक्षिविशेष । गीध । काक (सरस्वती-२/३/३१) । गृध्रः खगान्तरे पुंसि वाच्यलिङ्गोऽथ लुब्धके (मेदिनी.रान्त.२६) ।

गृध्यति अभिकाङ्क्षति मांसादिकमिति (अ.को.रघु.टी.पृ.३१५) ।

श्वित्रम् श्विता वर्णे (भू.४८४) । वर्ण=सफेद होना, शुभ्र होना । श्वेतते । श्वित्+रक्, विभक्तिकार्य, श्वित्रं । कुष्ठ । सफेद कोढ़ । कुष्ठश्वित्रे दुर्नामकाऽर्शसी (अ.को.२/६/५४) ।

वृत्रः वृत्तु वर्तनि (भू.२८४) । वर्तन=वर्ताव करना, रहना, होना । वर्तते । वृत्+रक्, विभक्तिकार्य, वृत्रः । इन्द्र का शत्रु । वृत्र नामक असुर । अन्धक । शत्रु पर्वत, दैत्यभेद (वै.को.६/१/५६) । वृत्रो रिपौ ध्वनौ ध्वान्ते शैले चक्रे च दानवे (वै.सि.कौ.उ.२/१३) ।

छिद्रम् छिदिर् द्वैधीकरणे (रु.३) । टुकड़े करना, काटना । छिनत्ति । छिद्+रक्, गुणाभाव, विभक्तिकार्य, छिद्रम् । रन्ध्र । बिल । दोष ।

मुद्रा मुद हर्षे (भू.३०४) । प्रसन्न होना । मुद्यते लोकोऽनया (जिससे लोक प्रसन्न होता है) । मुद्+रक्, गुणाभाव, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, मुद्रा । मोहर लगाने का उपकरण । विश्वसनीय, नीलाञ्जनविशेष साधन (श्वेत.वृ.२/१३) । चिह्नकरण । मुद्रा प्रत्ययकारिणी (वै.सि.कौ.उ.२/१३) (त्रि.शे.पृ.२९८, श्लोक २९) ।

तृप्ः तृप् प्रीणने (दि.३५, सु.२१) । प्रीणन=तृप् होना । तृप्यन्ते देवा अनेन (जिससे देवता तृप् होते हैं) । तृप्+रक्, गुणाभाव, विभक्तिकार्य, तृप्ः । पुरोडाश । चावलों को पीसकर कपाल में बनाई गई यज्ञ की आहुति । ति.अनु.-रक्तयज्ञ ।

दध्रम् दम्भु दम्भे (सु.१९) । दम्भ=ठगना, ढोंग करना । दम्भोति । दम्भ्+रक्, म् का लोप, विभक्तिकार्य, दध्रम् । स्तोक । थोड़ा । दध्रः समुद्रः स्वल्पं च (वे.सि.कौ.उ.सू.२/१७) ।

शुभ्रम् शुभ शोभार्थे (तु.३७) । शोभित होना । शुभति । शुभ्+रक्, क् अनुबन्ध के कारण यण्वद्भाव होने से गुणाभाव, विभक्तिकार्य, शुभ्रम् । शुक्ल या मङ्गल । दीप्त । सफेद । शुभ्रं प्रदीप्ते धवलेऽभ्रके (वि.प्र.को.रान्त.७१) ।

७४. तम्यमिजीनां दीर्घश्च । २-१६।

एभ्यो रक्प्रत्ययो भवति दीर्घश्च । 'तमु काङ्क्षायाम्' ताम्यतीति ताम्रं शुल्चम् । 'अम द्रम हम्म मीमृ हय गतौ' अम्यते सेव्यते आग्रः सहकारः । 'जि जये' जयतीति जीरः^१ वृक्षविशेषः ।

तमु, अमु, जि इन धातुओं से रक् प्रत्यय तथा धातु को दीर्घ होता है ।

ताम्रम् तमु काङ्क्षायाम् (दि.४३) । काङ्क्षा=चाहना । ताम्यति । तम्+रक्, धातु की उपधा को प्रकृत सूत्र से दीर्घदिश, विभक्तिकार्य, ताम्रम् । शुल्च (तांबा) ।

१. जिरो वृक्षविशेषः बं.सं. । यहाँ प्रकृत सूत्र से दीर्घ होकर 'जीरः' ऐसा पाठ अपेक्षित है ।

आम्रः अम गतौ (भू.१६०) । अम्यते सेव्यते । अम्+रक्, धातु की उपधा को प्रकृत सूत्र से दीर्घदेश, विभक्तिकार्य, आम्रः । सहकार । आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः (अ.को.२/४/३३) ।

जीरः जि जये (भू.१९१) । जीतना, विजयी होना । जयति । जि+रक्, धातु की उपधाभूत इकार को दीर्घ ईकार, विभक्तिकार्य, जीरः । वृक्षविशेष ।

अग्नि, वृद्ध, अश्व, शरत् (श्वते.वृ.२/२६) । अणु, खड्ग, वणिग्द्रव्य (दया.उ.को.२/२४), (पा.उ. जोरी च, २/२६) ।

म.भा. 'रकि ज्यः सम्प्रसारणम्' (१/१/४) से ज्या को सम्प्रसारण, रक्, जीरः ।

जीवे रदानुक् (दश.वृ.१/१६३) । जीवति प्राणान् धारयति जीरदानुः । औषध (वैदिक प्रयोग) ।

७५. शूद्रादयः । २-१७।

शूद्रोग्रवज्रविप्रभद्रगौरभेरीराः । एते. रक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'शदलृ शातने' शीयते शूद्रः तुरीयो वर्णः । [उच समवाये] उच्यत इति उग्रः दुःसहः । 'दु ओ स्फूर्ज' वज्रनिर्घोषे' स्फूर्जतीति वज्रं [पविः । वि] द ज्ञाने' वेत्तीति विप्रः ब्राह्मणः । 'भदि कल्याणे सौख्ये च' भन्दते भद्रं कल्याणम् । 'गाङ् गतौ' गायते गौरः अवदातः । स्त्रियां गौरी अवदाता भवानी वा । 'जि भी भये' बिभेति जनोऽनया भेरी दुन्दुभिः । 'इण् गतौ' एति जनः इमाम् इरा सुरा । कपिलिकादिदर्शनल्लत्वम् । इला भूमिः ।

1. पाठा.- व्रज गतौ बं.सं. ।

शूद्र, उग्र, वज्र, विप्र, भद्र, गौर, भेरी, इरा ये सभी रक् प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । 'रक्' में क् अनुबन्ध के कारण धातु को गुण का निषेध होता है ।

शूद्रः शदलृ शातने (भू.५६३, तु.५९) । शातन=गिरना, जीर्ण होना, कम होना । शीयते^१ । शद्+रक्, निपातन से धातु को ऊकारादेश, विभक्तिकार्य, शूद्रः । चतुर्थ वर्ण । जाति वाची । स्त्री-शूद्री । शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजाः (अ.को.२/१०/१) ।

शुचेर्दश्च, शुच्+रक्, दकारान्तादेश, दीर्घ (श्वेत.वृ.२-२१) ।

उग्रः उच समवाये (दि.६२) । समवाय=इकट्ठा होना, एकत्र होना । उच्यते । उच्+रक्, चकार को गकार, विभक्तिकार्य, उग्रः । दुःसह । महेश्वर, उत्कट क्षत्र (दया.उ.को.२/२९) । उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठः (अ.को.१/१/३४) । उग्रः शूद्रासुते क्षत्राद्दुद्रे पुंसि त्रिषूत्कटे (मेदिनी.रान्त.९) ।

वज्रम् दु ओ स्फूर्जा वज्रनिर्घोषे (भू.७०) । वज्रनिर्घोष=बादल गरजना, बिजली का शब्द होना । स्फूर्जीति । स्फूर्ज्+रक्, निपातन से स्फूर् के स्थान में वकारादेश, एवं रेफ लोप, विभक्तिकार्य, वज्रम् । इन्द्र का शस्त्र ।

व्रज् (गतौ)+रक्, निपातन से रेफ का लोप (वै.सि.कौ.उ.२/२/२७) वज्रम् । क्षेत्र, तात, चय, रेणु, कुलिश, हीरक (अने.सं.को.२/४६५) । वज्रोऽस्त्री हीरके पवौ (वै.सि.कौ.उ.२/२७) ।

विप्रः विद् ज्ञाने (अ.२७) । जानना । विद्+रक्, धातु को पकारादेश, विभक्तिकार्य, विप्रः । ब्राह्मण । मेधावी ।

1. शद् के स्थान में 'शदेः शीयः' (कात.३/६/७९) सूत्र से 'शीय' आदेश होकर 'शीयते' रूप होता है ।

वप्+रक्, उपधा को इकार, विप्रः (वै.सि.कौ.उ.२/२७) ।

भद्रम् भदि कल्याणे सौख्ये च (भू.३००) । कल्याण=शुभ कर्म करना, सुखी होना । इदित् होने से न् आगम । भन्दते । भन्द्+रक्, निपातन से न् का लोप विभक्तिकार्य, भद्रम् । कल्याण । भद्रः शिवे खञ्जरीटे वृषभे च कदम्बके (मेदिनी.रान्त७०) ।

गौरः गाङ् गतौ (भू.४५९) । गायते । गा+रक्, निपातन से घातुघटक आकार को औकार, विभक्तिकार्य, गौरः । अवदात । सफेद । गौरः श्वेतेऽरुणे पीते विशुद्धे चाभिधेयवत् । ना श्वेतसर्षपे चन्द्रे न द्वयोः पद्मकेशरे । (मेदिनी.रान्त.२७) ।

स्त्री. में नदाद्यन्वि इत्यादि सूत्र से ई, विभक्तिकार्य, गौरी, शुभ्रा या भवानी ।

गुङ्+रक्, वृद्धि, गौरोऽरुणे सिते पीते (वै.सि.कौ.उ.२/२७) ।

भेरी जि भी भये (अ.६८) । डरना । बिभेति जनोऽनया (जिससे व्यक्ति डरता है) । भी+रक्, क् अनुबन्ध के कारण यण्वद्भाव के द्वारा गुण-निषेध होने पर भी निपातन बल से गुणादेश, स्त्री. में ई प्रत्यय, विभक्तिकार्य, भेरी । दुन्दुभि । बड़ा डोल ।

इरा, इला इण गतौ (अ.१३) । एति जनः इमाम् (मनुष्य जिसे प्राप्त करता है) इ+रक्, गुणाभाव स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, इरा । सुरा, शराब । इरा भूवाक्सुराम्बुषु (मेदिनी.रान्त.९) ।

कपिलिकादिदर्शनल्लत्वम् (कपिरिकादेर्लोकतः सिद्धिः कपिरिका-कपिलिका दु.वृ.कात.३/६/९९) इस नियम से जैसे कपिरिका-कपिलिका

आदि में लत्व देखा जाता है वैसे ही 'इरा' में र् को ल् होकर 'इला' शब्द भी निष्पन्न होता है । भूमि ।

७६. वृश्चिकृषिभ्यां किकः १२-१८।

आभ्यां किकप्रत्ययो भवति । 'व्रश्चू छेदने' वृश्चतीति वृश्चिकः अली । 'कृष विलेखने' कृष्यतीति^१ कृषिकः कृषीवलः^२ ।

व्रश्च् तथा कृष् इन दोनों धातुओं से किक प्रत्यय होता है । 'किक' में प्रथम ककार के यण्वद्भावार्थ होने से गुण का निषेध होता है ।

वृश्चिकः व्रश्चू छेदने (तु.१९) । छेदन=काटना, डसना । वृश्चति । व्रश्च्+किक, व्रश्च् घटक रकार को 'गृहिज्या' (कात.३/४/२) इत्यादि सूत्र से सम्प्रसारण से ऋकार, विभक्तिकार्य, वृश्चिकः । भ्रमर । बिच्छू । ८वीं राशि वृश्चिक, कैकड़ा । कैचुआ । वृश्चिकश्च दुणे राशौ शूककीटौषधीभिदोः (मेदिनी.णान्त.१६०) ।

कृषिकः कृष विलेखने (तु.६०) । विलेखन=जोतना, हल चलाना । कृषति । कृष्+किक, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुणनिषेध,

१. 'कृष विलेखने' (तु.६) तौदादिक धातु से 'कृषति' तथा भौवादिक कृष् से 'कर्षति' रूप होता है । वृत्ति में निर्दिष्ट 'कृष्यति' क्रिया रूप असाधु प्रतीत होता है । यदि कहीं दैवादिक पाठ हो तब 'कृष्यति' की पुष्टि हो सकती है । अतः कृषति या 'कर्षति' पाठ उचित प्रतीत होता है ।
२. गर्भीशिशुः ति.अनु. ।

विभक्तिकार्य, कृषिकः । कृषीवल । किसान । हल जोतने वाला ।
कृषिकश्च कृषीवलः (अ.को.२/९/६) ।

७७. मूषिकसि(सी)मिकौ १२-१९।

एतौ किकप्रत्ययान्तौ निपात्येते । 'मुष खण्डने'^१
मुष्यतीति मूषिकः आखुः । 'स्यमु स्वन ध्वन शब्दे' स्यमतीति
सिमिकः^२ (सीमिकः) तरुविशेषः ।

मूषिक एवं सिमिक ये दोनों किक प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

मूषिकः मुष स्तेये (क्री.४९) । स्तेय=चुराना । मुष्णाति । मुष्+किक,
यण्वद्भाव से गुणनिषेध, निपातन से धातु को दीर्घ, विभक्तिकार्य,
मूषिकः । आखु । चूहा ।

सिमिकः स्यमु शब्दे (भू.५४१) । शब्द करना । स्यमति ।
स्यम्+किक, य् को सम्प्रसारण से इ, विभक्तिकार्य, सिमिकः ।
तरुविशेष ।

दीर्घदिश, सीमिकः (श्वेत.वृ.२-४५) (उज्ज्वल.२/४३) ।

७८. क्रिय इकः १२-२०।

अस्मादिकप्रत्ययो भवति । 'डु क्रीञ् द्रव्यविनिमये'
क्रीणातीति क्रियिकः क्रेता ।

१. मूर्धन्यान्त 'मुष्' (क्री.४९) धातु 'स्तेय' अर्थ में तथा दन्त्य 'मुस्' खण्डन (दि.५९) अर्थ में पठित है । वृत्ति में निर्दिष्ट मुष धातु के दिवादि में पठित न होने से उससे 'मुष्यति' नहीं हो सकता । अतः 'मुष्यति' इस व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'मुस खण्डने' ऐसा धातुपाठ वृत्ति में होना चाहिए । 'मुष स्तेये' से मुष्णाति इस व्युत्पत्ति से सिद्ध करनी चाहिए ।
२. पाठाः सीमिकः (बं.सं.) स्यमेः किकन् यण् दीर्घश्च सीमिकः (सरस्वती-२/२/१७) ।

क्री धातु से इक प्रत्यय होता है । इसमें 'क' यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त नहीं है ।

क्रयिकः डु क्रीञ् द्रव्यविनिमये (क्री.१) । द्रव्यविनिमय=पैसा देकर सामान खरीदना, व्यापार करना । क्रीणाति । क्री+इक, ईकार को एकार गुण, एकार को 'ए अय्' (कात.१/२/१२) सूत्र से अय् आदेश, विभक्तिकार्य, क्रयिकः । खरीदने वाला । क्रायकक्रयिकौ समौ (अ.को.२/१/७९) ।

७९. श्याहजवद्दुदक्षिभ्य इनः ।२-२१।

एभ्य इनप्रत्ययो भवति । 'श्यैङ् गतौ' सन्ध्यक्षरान्तानामाकारः । श्यायत इति श्येनः पक्षिविशेषः । 'हज् हरणे' गीतेन ह्रियते हरिणः मृगः । 'अव रक्ष पालने' अवतीति अविनः अध्वर्युः । 'दु गतौ' द्रवतीति द्रविणं धनम् । 'दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च' दक्षते दक्षिणः प्रवीणः । स्त्रियां (दक्षिणा^१) दानम् ।

श्या, हज्, अव, दु, दक्ष इन सभी धातुओं से 'इन' प्रत्यय होता है ।

श्येनः श्यैङ् गतौ (भू.४५९) । श्यायते । 'सन्ध्यक्षरान्तानामा-कारोऽविकरणे' सूत्र से 'श्ये' में ऐ को आ । श्या+इन, आकार को एकार गुणादेश, विभक्तिकार्य, श्येनः । पक्षि विशेष । बाज पक्षी । श्येनः पक्षिणि पाण्डुरे (मेदिनी.नान्त.२१) ।

-
1. वृत्ति में 'स्त्रियां दानम्' ऐसा निर्दिष्ट है । यहाँ प्रमाद से दान अर्थ वाची शब्द 'दक्षिणा' का संग्रह छूट गया । दक्षिणः (पु.) का स्त्री. में 'दक्षिणा' होता है । अतः 'स्त्रियां दक्षिणा दानम्' ऐसा पाठ होना चाहिए । इसीलिए कोष्ठ में इसे रखा गया । बं.सं.-दक्षिणा दानम् ।

हरिणः 'हृञ् हरणे' (भू.५९६) । गीतेन ह्रियते (गीत सुनाकर जिसका हरण किया जाता है) ह्र+इन, ऋ को अर् गुण, न को ण, विभक्तिकार्य, हरिणः । मृग । हरिणः पुंसि सारङ्गे विशदे त्वभिधेयवत् (मेदिनी.णान्त.८७) ।

अविनः अव पालने (भू.२०२) । पालन करना, रक्षा करना । अवति । अव्+इन, अविनः । अध्वर्यु । होता । पुरोहित । ऋत्विक् ।

द्रविणम् द्रु गतौ (भू.२७९) । द्रु+इन, गुण अवादेश, न को ण विभक्तिकार्य, द्रविणम् । धन । गेह । सत्य । पराक्रम-सुवर्ण । (दया.उ.को.२-५१) । द्रविणं न द्वयोर्वित्ते काञ्चने च पराक्रमे (मेदिनी.णान्त.५१) ।

दक्षिणः दक्षिणा, दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च (भू.४३०) । बढ़ना, जल्द करना । दक्षते । दक्ष्+इन, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, दक्षिणः । प्रवीण । सरल, वामभाग, परतन्त्र, अनुवर्तन (दया.उ.को.२-५१) ।

स्त्री.-दक्षिण+आ, दक्षिणा । दान । प्रतिष्ठा । सत्कारपूर्वक दिया जाने वाला द्रव्य । बं.सं.-यज्ञान्त दानादि । दिक् ।

८०. वृजिनाजिनेरिणविपिनतुहिनमहिनानि । २-२२ ।

एतानि इनप्रत्ययान्तानि निपात्यन्ते । 'वृजी वर्जने' वृज्यतेऽपनीयतेऽनेनेति वृजिनं पापम् । 'अज गतिक्षेपणयोः' अजतीति अजिनं चर्म । 'ऋ गतौ' इयतीति इरिणम् ऊषरं क्षेत्रम् । 'डु वपु' उह्यते विपिनं वनम् । 'तुहिर् दुहिर् अर्दने' तोहति अर्दति तुहिनम् । अथ वा 'दह भस्मीकरणे' दहतीति तुहिनम् दस्य तुकारादेशः हिमम् । 'मह पूजायाम्' महतीति महिनं महत्त्वम् ।

वृजिन, अजिन, इरिण, विपिन, तुहिन, महिन ये सभी 'इन' प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

वृजिनम् वृजी वर्जने (अ.५५,रु.२०,चु.२६४) । वर्जन=छोड़ना, वर्जित करना । वृज्यते अपनीयते अनेन । वृज्+इन, निपातन से गुणाभाव, विभक्तिकार्य, वृजिनम् । पाप । कुटिल मार्ग । केश । वृजिनं कल्मषे क्लीबं केशे ना कुटिले त्रिषु (मेदिनी.नान्त.३४) ।

अजिनम् अज गतिक्षेपणयोः (भू.६४) । जाना, फेंकना । अजति । अज्+इन, 'अजेवी' (कात.३/४/५१) सूत्र से प्राप्त वी का निपातन से निषेध, विभक्तिकार्य, अजिनम् । चर्म ।

अज्+इन, अज् को अज आदेश तथा 'वी' भाव की निवृत्ति, अजिनम् (श्वेत.वृ.२-५०) ।

इरिणम् ऋ गतौ (अ.७४) । इयति । ऋ+इन्, 'अर्तिपिपत्योश्च' (कात.३/३/२५) से ऋ को इ, रकार, न् को ण्, विभक्तिकार्य, इरिणम् । ऊपर प्रदेश । खेत । मैदान । शून्य । इरिणं शून्यमूषरम् (अ.को.३/३/५६) ।

विपिनम् डु वपु बीजसन्ताने (भू.६०९) । बीज बोना । उप्यते (कर्म) । वप्+इन, निपातन से इकारादेश, विभक्तिकार्य, विपिनम् । वन । गहन । वेपु (कम्पने)+इन, धातु को ह्रस्व, विपिनम् (श्वेत.२-५५) ।

तुहिनम् तुहिर् अर्दने (भू.२४९) । अर्दन=मारना, दुःख देना । तोहति । तुह्+इन, निपातन से गुणाभाव, तुहिनम् ।

अथवा- दह भस्मीकरणे (भू.२४३) दह्+इन, इकार को तुकारादेश, विभक्तिकार्य, तुहिनम् । हिम, बर्फ ।

महिनम् मह पूजायाम् (भू.२५०) । महति । मह+इन्, महिनम् ।
महत्त्व ।

महेरिण च । चादिनन् । माहिनम्-महिनम् । राज्य ।
(वै.सि.कौ.२/५६) । बं.सं.=वाद्य ।

८१. वचिप्रच्छिश्रिदुश्रुपुज्वां विवप् दीर्घश्च ॥२-२३॥

एभ्यः विवप्प्रत्ययो भवति दीर्घश्च स्वरस्य चैषाम् ।
'वच परिभाषणे' उच्यते वाक् वाणी । 'प्रच्छ जीप्सायाम्'^१
शब्दं पृच्छतीति शब्दप्राट् शिष्यः । 'भज श्रिञ्^२ सेवायाम्'
पुण्यकृतं श्रयतीति श्रीः लक्ष्मीः । 'दु गतौ' द्रवतीति दूः
कामरूपी । 'श्रु गतौ' श्रवतीति श्रूः यज्ञोपकरणं हविर्द्रव्यम् ।
'पुङ् प्लुङ्' कटं प्रवते कटपूः^३ कटप्रवर्तकः^४ । जु इति
सौत्रोऽयं धातुः । जायते [जवते] जूः जवनम् ।
पिशाचवाण्यामिति केचित् । वचिप्रच्छयोः दीर्घे कृतेऽनित्यत्वात्
सम्प्रसारणं नेष्यते ।

वच, प्रच्छ, श्रि, दु, श्रु, पु, जु, इन धातुओं से विवप् प्रत्यय
तथा धातु के स्वर को दीर्घदिश होता है ।

१. जीप्सायाम् म.सं. । 'जीप्सायाम्' के स्थान पर 'जीप्सायाम्' पाठ किया गया ।
२. श्रीङ् म.सं. । श्रीङ् के स्थान पर 'श्रिञ्' पाठ किया गया ।
३. कटेन प्रवर्तते म.सं. । वृत्ति में म.सं. में निर्दिष्ट 'कटपूः' की 'कटेन प्रवर्तते' ऐसी व्युत्पत्ति असङ्गत है । पुङ् धातु से प्रवते का कर्म 'कट' होगा । अतः 'कटं प्रवते' ऐसी व्युत्पत्ति होगी । 'कटेन प्रवर्तते' के स्थान पर 'कटं प्रवते' पाठ किया गया । कटं प्रवते कटपूः (वै.सि.कौ.अ.सू.३/२/२७८) ।
४. गजमदः बं.सं. ।

वाक् वच परिभाषणे (अ.३०) । कहना, बोलना । उच्यते ।
वच्+क्विप्, क्विप् का लोप, धातुस्वर को दीर्घ, तथा चकार को
ककार, 'स्वपिवचियजादीनां यण्परोक्षाशीःषु' (कात.३/४/३) से प्राप्त
सम्प्रसारण का अभाव, विभक्तिकार्य, वाक् । वाणी । शब्द ।

शब्दप्राट् प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् (तु.४९) । ज्ञीप्सा=पूछना, जानने की इच्छा
करना । शब्दं पृच्छति (शब्द को पूछता है) शब्द (पूर्वक)
प्रच्छ्+क्विप्, क्विप् का लोप, 'गृहिज्या' इत्यादि सूत्र से प्राप्त सम्प्रसारण
का अभाव, धातुस्वर को दीर्घ, तथा 'छ्वोः शूटौ पञ्चमे च'
(कात.४/१/५६) से छकार को शकार, छशोश्च (कात.३/६/६०) से श्
को ष, 'हशषछान्तयजादीनां डः' (कात.२/३/४६) से ष को ड, ड को
द, विभक्तिकार्य, शब्दप्राट् । शिष्य ।

श्रीः श्रिञ् सेवायाम् (भू.६०४) । सेवा करना । पुण्यकृतं श्रयति (जो
पुण्यवान् की सेवा करती है) । श्रि+क्विप्, क्विप् का लोप, धातुस्वर
इकार को दीर्घ, विभक्तिकार्य, श्रीः^१ । लक्ष्मी ।

द्रुः द्रु गतौ (भू.२७९) । द्रवति । द्रु+क्विप्, क्विप् का लोप, धातुस्वर
उकार को दीर्घ, विभक्तिकार्य, द्रुः । कामरूप । हिरण्य ।

श्रूः श्रु गतौ (श्रवणे, भू.२७८) । श्रवति । श्रु+क्विप्, धातुस्वर उकार
को दीर्घ, विभक्तिकार्य, श्रूः । यज्ञ की आहुति ।

कटपूः पुङ् गतौ (भू.४५९) । कटं प्रवते । कट (पूर्वक) पु+क्विप्,
दीर्घ, विभक्तिकार्य, कटपूः । चटाई बनाने वाला । कामुक जन ।
कीट ।

-
१. श्रीर्वेशरचना शोभा भारती सरलद्वये ।
लक्ष्म्यां त्रिवर्गसम्पत्तिविद्योपकरणेषु च ॥ (मेदिनी.रान्त.१)

जूः (सौत्र धातुः) । जुङ् गतौ (का.कृ.धा.भू.५५२) । जवते ।
जु+क्विप्, दीर्घ, क्विप् का लोप, विभक्तिकार्य, जूः । द्रुतगति ।
वेगवान् । पिशाच वाणी । जूराकाशे सरस्वत्यां पिशाच्यां जवनेऽपि च
(वि.प्र.को.जान्त.१) ।

वच् एवं प्रच्छ धातु को दीर्घ करने पर 'गृहिज्यावयि'
(कात.३/४/२०) इत्यादि सूत्र से सम्प्रसारण प्राप्त था किन्तु यह
सम्प्रसारण अनित्य होने से नहीं होता ।

८२. परौ व्रजेश्च १२-२४।

परावुपपदे व्रजेर्धातोः क्विप्प्रत्ययो भवति । स्वरस्यास्य
दीर्घत्वम् । चकारो दीर्घानुवृत्त्यर्थः । 'वज व्रज गतौ'
परिव्रजतीति परिव्राट् भिक्षुः ।

'परि' के उपपद में रहने पर व्रज् धातु से क्विप् प्रत्यय होता
है । व्रज् के स्वर को दीर्घ भी होता है । सूत्रस्थ चकार पूर्वसूत्र
(२-२३) से दीर्घ की अनुवृत्ति के लिए पठित है ।

परिव्राट् व्रज गतौ (भू.६३) । परिव्रजति । परि (पूर्वक) व्रज्+क्विप्,
व्रज् घटित स्वर को दीर्घ, 'ह्रस्वछान्तयजादीनां ङः' से यजादित्वात् ज्
को ङ, तथा ङ् को ट्, विभक्तिकार्य, परिव्राट् । भिक्षु ।

८३. तनेः कयः १२-२५।

अस्मात् कयप्रत्ययो भवति । ककार उत्तरत्र
यण्वत्कार्यार्थः । 'तनु विस्तारे' तनोति वंशं तनयः पुत्रः ।

तन् धातु से कय प्रत्यय होता है । 'कय' में क् अनुबन्ध
परवर्ती सूत्र (२-२६) में यण्वद् भाव के लिए प्रयुक्त है । जिससे
धातु को गुण का निषेध होता है ।

तनयः तनु विस्तारे (त.१) । विस्तार=बढ़ाना, फैलाना । तनोति वंशम् (वंश को फैलाता है) । तन्+कय, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, विभक्तिकार्य, तनयः । पुत्र । आत्मजः तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियान्त्वमी । (अ.को.२/६/२७) ।

तन्+कयन्, तनयः (वै.सि.कौ.उ.४/५३९) ।

८४ हजो दोऽन्तश्च १२-२६।

अस्मात् कयप्रत्ययो भवति । अस्य च दोऽन्तो भवति । अकार उच्चारणार्थः । यण्वद्भावादगुणत्वञ्च । 'हज् हरणे' बुद्ध्या अर्थं हरतीति हृदयं मनः ।

ह धातु से कय प्रत्यय तथा धातु को दकार अन्तादेश होता है । 'द' में अ उच्चारणार्थ है । 'कय' में क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव होने से धातु को गुण का निषेध होता है ।

हृदयम् हज् हरणे (भू.५९६) । हरण करना, चुराना । बुद्ध्या अर्थं हरति (जो बुद्धि से तत्त्व का हरण करता है) । ह्+कय, यण्वद्भाव के कारण 'ह' में ऋ को गुणनिषेध, तथा द् अन्तादेश, विभक्तिकार्य, हृदयम् । मन । हृदयं मानसे बुक्कोरसोरपि नपुंसकम् (मेदिनी.यान्त.११५) ।

हियते विषयैरिति हृदयम् मनः (वै.सि.कौ.उ.बाल.४/५४०) ।

८५ रातेर्देः^१ १२-२७।

अस्माद्धेः प्रत्ययो भवति । डकारोऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः ।
'रा ला आदाने' गुणान् रातीति राः । 'दैः' इत्यात्वम् ।

रा धातु से 'दै' प्रत्यय होता है । 'दै' में डकार 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) सूत्र से अन्त्य तथा अन्त्य व्यञ्जन वर्णों के लोपार्थ प्रयुक्त है ।

राः रा आदाने (अ.२२) । आदान=लेना, ग्रहण करना । गुणान् राति (जो गुणों को ग्रहण करता है) । रा+दै, इ अनुबन्ध से धातु के अन्त्य स्वर=आकार का लोप, 'दैः' (कात.२/३/१९) इस सूत्र से ऐकार को आकार, विभक्तिकार्य, राः । धन । द्रव्य । राः पुंसि स्वर्णवित्तयोः (मेदिनी.रान्त.१) ।

८६. गमेर्दोः १२-२८) ।

अस्माद्धोः प्रत्ययो भवति । 'गम्लृ गतौ' गच्छतीति गौः 'गोरौ घुटि' इत्यौत्वम् । दिगादिषु दशसु ।

गम् धातु से डो प्रत्यय होता है । इसमें भी इ अनुबन्ध अन्त्यस्वरादि के लोपार्थ प्रयुक्त है ।

गौः गम्लृ गतौ (भू.२७९) । गच्छति । गम्+डो, इ अनुबन्ध के कारण 'डानुबन्धे'. (कात.२/६/४८) सूत्र से धातुषट्क 'अम्' का लोप,

-
१. दैः ग.सं. । वृत्ति में 'दैः' ऐसा पाठ था, जिसके स्थान पर 'दैः' पाठ रखा गया । यतः डु अनुबन्ध के कारण अन्त्य स्वरादि का लोप 'डानुबन्धे' इत्यादि सूत्र से होता है । उसी प्रकार वृत्ति में भी 'दकारः' के स्थान पर 'डकारः' पाठ रखा गया ।

'गौरौ घुटि' (कात.२/२/३३) इस सूत्र से अन्त्य ओकार का औकार, विभक्तिकार्य गौः^१ । दश दिशाये ।

८७. ग्लानुदिभ्यां डौः । २-२९।

आभ्यां डौः प्रत्ययो भवति । 'ग्लै हर्षक्षये' सन्ध्यक्षरान्तानामात्वम् । ग्ला [यतीति ग्लौः चन्द्रः] 'णुद् प्रेरणे' नुद्यते धीवरैः नौः तरी ।

'ग्लै' तथा 'णुद्' इन दोनों धातुओं से 'डौ' प्रत्यय होता है । 'ग्लै' में सन्ध्यक्षर ऐकार को 'सन्ध्यक्षरान्तानामाकारोऽविकरणे' (कात.३/४/२०) इस सूत्र से आकार होता है ।

ग्लौः 'ग्लै हर्षक्षये' (भू.२५१) । हर्षक्षय=ग्लानि युक्त होना, हर्ष नष्ट होना । ग्लायति । सन्ध्यक्षर ऐ को आ । ग्ला+डौ, ड् अनुबन्ध के कारण धातुस्वर आकार का लोप, विभक्तिकार्य, ग्लौः । चन्द्र । चन्द्रमा ।

नौः णुद् प्रेरणे (तु.२२) । णो नः' (कात.३/८/२५) से ण् को न् । नुद्यते धीवरैः (केवटों के द्वारा जिसे चलाया जाता है) । नुद्+डौ, ड् अनुबन्ध से धातु में अन्त्य स्वरादि 'उद्' का पूर्वोक्त सूत्र से लोप, विभक्तिकार्य, नौः । नौका । स्त्रियां नौस्तरणिस्तरिः (अ.को.१/१०/१०) ।

८८- भ्रमेर्ङ् २-३०।

अस्माङ्कः प्रत्ययो भवति । 'भ्रमु चलने' भ्रमतीति भ्रूः नेत्रोपरिस्थानम् ।

१. वादिदग्भूरश्मिवज्रेषु पश्वक्षिस्वर्गवाजिषु ।

नवस्वर्थेषु मेधावी गोशब्दमवधारयेत् ॥ (दश.वृ.२/११)

भ्रम् धातु से डू प्रत्यय होता है । डू में इ अनुबन्ध अन्त्यस्वादि के लोपार्थ है । 'ऊ' मात्र अवशिष्ट रहता है ।

भ्रूः भ्रमु चलने (भू.५५८) । भ्रमति । भ्रम्+डू, इ अनुबन्ध से पूर्वोक्त सूत्र (कात.२/६/४२) से 'भ्रम्' में 'अम्' का लोप, विभक्तिकार्य, भ्रूः । आँख के ऊपर रोमपंक्ति । नेत्रोपरि स्थित रोमावलि ।

८९ दमेडोस् १२-३१।

अस्माद्धोस्प्रत्ययो भवति । 'दमु उ [पशमने' दाम्यतीति] दोः भुजः ।

दम् धातु से डोस् प्रत्यय होता है । 'डोस्' में इ अनुबन्ध अप्रयोगार्ह है । 'ओस्' मात्र प्रयुक्त होता है ।

दोः दमु उपशमने (दि.४२) । दाम्यति । दम्+डोस् । इ अनुबन्ध से धातुघटक 'अम्' का लोप, लिङ्गसंज्ञा, सि, स् का 'रेफसोर्विसर्जनीयः' (कात.२/३/६३) सूत्र से विसर्ग, दोः । बाहु ।

९० सतेरयूः १२-३२।

अस्मादयूप्रत्ययो भवति । 'सु गतौ' सरतीति सरयूः सरित् ।

सु धातु से 'अयू' प्रत्यय होता है ।

सरयूः सु गतौ (भू.२७४) । सरति । सु+अयू, ऋ को अरु, विभक्तिकार्य, सरयूः । अयोध्या में स्थित नदी ।

सतेरयुः, सु+अयू, सरयुः । अयूरिति पाठान्तरम्, सरयूः (वे.सि.कौ.उ.सू.३/२२) ।

९१ शीङो धुक् । २-३३।

अस्माद्धुक्प्रत्ययो भवति । 'शीङ् स्वप्ने' शेते अनेनेति शीधुः सुराविशेषः ।

'शीङ्' धातु से 'धुक्' प्रत्यय होता है । क् अनुबन्ध अगुणार्थ प्रयुक्त है ।

शीधुः शीङ् स्वप्ने (अ.५५) । शेते अनेन (जिससे व्यक्ति बेसुध सोता है) । शी+धुक्, क् अनुबन्ध से गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, शीधुः । सुरा । शीधु (नपुं.) ।

९२. [भुजिमृडोः] युक्त्युक्तौ । २-३४।

अनयोः धात्वोः युक्त्युक्प्रत्ययौ भवतो यथासङ्ख्यम् । 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' भुज्यते भुज्युः ओदनः । 'मृङ् प्राणत्यागे' म्रियतेऽनेनेति मृत्युः अन्तकः । अनयोः गुणो न भवति, औणादिकत्वात् ।

भुज् एवं मृङ् धातुओं से क्रमशः युक् तथा त्युक् प्रत्यय होते हैं । क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ (गुणनिषेध) प्रयुक्त है ।

भुज्युः भुज पालनाभ्यवहारयोः (रु.१४) । रक्षा करना, खाना । भुज्यते । भुज्+युक्, गुणनिषेध, 'उणादित्वात्' इस हेतु से 'युवुष्मामनाकान्ताः' से प्राप्त अन का निषेध, विभक्तिकार्य, भुज्युः । ओदन । भात । चावल । पात्र । आदित्य ।

मृत्युः मृङ् प्राणत्यागे (तु.१११) । मरना, प्राण छोड़ना । म्रियते अनेन (जिससे व्यक्ति मर जाता है) मृ+त्युक्, क् अनुबन्ध से गुण का निषेध, यु को अन का निषेध, विभक्तिकार्य, मृत्युः । अन्तक । मृत्युर्ना मरणे यमे (मेदिनी.यान्त.४६) ।

उणादि होने से इन दोनों धातुओं को गुण नहीं होता ।

९३. कृपृवृज्निधाज्भ्यो नः । १२-३५।

एभ्यो नः प्रत्ययो भवति । 'कृ विक्षेपे' । किरतीति कर्णः श्रोत्रम् । 'पृ पालने' पिपर्ति वृक्षं पर्णम् दलम् । 'वृज् वरणे' वृणोतीति वर्णः शुक्लादिः । 'डु धाज्' निपूर्वः । निधीयते निधानं निधिः ।

कृ, पृ, वृज् तथा निपूर्वक धाज् धातुओं से न प्रत्यय होता है ।

कर्णः कृ विक्षेपे (तु.११) । विक्षेप=फेंकना । किरति विक्षिपति । कृ+न, ऋ को अ, न् को ण्, विभक्तिकार्य, कर्णः । श्रोत्र । कान । युधिष्ठिर-भ्राता । कर्णः पृथाज्येष्ठसुते सुवर्णालौ श्रुतावपि (वि.प्र.को.णान्त.१२) ।

पर्णम् पृ पालनपूरणयोः (अ.७०) । पिपर्ति । पृ+न, गुण, नकार को णकार, पर्णम् । दल । पत्ता । पर्ण स्यात् किंशुके पत्रे (वि.प्र.को.णान्त.१४) ।

वर्णः वृज् वरणे (सु.८) । पसन्द करना, वरण करना । वृणोति । वृ+न, गुण, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, वर्णः । शुक्ल रंग । अक्षर । ब्राह्मणादि ।

१. पाठा. डु कृज् करणे ति.अनु. ।

निधानम् डु धाञ् धारणपोषणयोः (अ.८५) । निधीयते । नि(पूर्वक)
धा+न, विभक्तिकार्य, निधानम् । निधि । खजाना ।

९४ धृषेर्धिष च १२-३६।

अस्मात् नः प्रत्ययो भवति धिषादेशश्च । 'जि धृषा
प्रागल्भ्ये' धृष्णोत्यनया धिषणा बुद्धिः । धृष्णोतीति धिषणः
बृहस्पतिः, इत्वविधानादेव न गुणः ।

धृष् धातु से न प्रत्यय तथा धृष् के स्थान पर 'धिष' आदेश
होता है ।

धिषणा जि धृषा प्रागल्भ्ये (सु.१८) । प्रागल्भ्य=गर्व करना, बड़ा
मानना । धृष्णोति अनया (जिससे अपने को बड़ा मानता है) ।
धृष्+न, प्रकृत सूत्र से ही 'धृष्' के स्थान पर 'धिष' आदेश, इत्व
सहित (धिष) के विधान से गुणाभाव, नकार को णकार, स्त्री. में आ
प्रत्यय, विभक्तिकार्य, धिषणा । बुद्धि । धिषणः वृहस्पति ।
धिषणस्त्रिदशाचार्ये धिषणा धियि योषिति (मेदिनी.णान्त.५७) ।

९५. हनेर्जघश्च १२-३७।

अस्मात् नः प्रत्ययो भवति जघादेशश्च । 'हन
हिंसागत्योः' हन्ति चित्तमिति जघनं कटिप्रदेशः ।

हन् धातु से न प्रत्यय तथा हन् के स्थान में जघ आदेश
होता है ।

जघनम् 'हन हिंसागत्योः' (अ.४) । मारना, जाना । हन्ति चित्तमिति
(जो मन को दूषित=विकृत कर देता है) । हन्+न, हन् को जघ
आदेश, विभक्तिकार्य, जघनम् । स्त्री की जङ्घा । कटि का पूर्व

भाग । स्त्रीकट्याः क्लीबे तु जघनं पुरा (अ.को.२/६/७४) । जघनं स्त्रियाः श्रोणिपुरोभागे कटावपि (मेदिनी.नान्त.६७) ।

१६. दिवेः ऋन् १२-३८।

दिवेर्धातोः ऋन्प्रत्ययो भवति । नकार उच्चारणार्थः । 'दिवु क्रीडादिषु' दीव्यतीति देवा पत्युर्भाता ।

दिव् धातु से ऋन् प्रत्यय होता है । 'ऋन्' में न् उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

देवा दिवु क्रीडादिषु (दि.१) । खेलना आदि । दीव्यति । दिव्+ऋन्, न् अनुबन्ध का अप्रयोग, धातु की उपधा को गुण, लिङ्गसंज्ञा, सि, 'आ सौ सिलोपश्च' (कात.२/१/६४) ऋ को 'आ', सि का लोप, न् का लोप, देवा । पति का छोटा भाई । देवर । देवा देवरः (सरस्वती.२/१/१२९) ।

१७. नजि च नन्देः दीर्घश्च १२-३९।

अस्मात् नञ्युपपदे ऋन्प्रत्ययो भवति, अस्य स्वरस्य दीर्घश्च । 'दु नदि समृद्धौ' न नन्द(य)तीति भ्रातृजायां ननान्दा पत्युर्भगिनी ।

'नञ्' के उपपद में रहने पर नन्द धातु से ऋन् प्रत्यय होता है तथा धातुस्वर को दीर्घ होता है ।

ननान्दा दु नदि समृद्धौ (भू.२५) । प्रसन्न होना, समृद्ध होना । न नन्दयति भ्रातृजायाम् (जो अपने भाई की पत्नी को प्रसन्न नहीं रखती)

1. दिवेर्ऋः-दया.उ.को.२/१०१ ।

2. ऋदीर्घश्च म.सं. । यहाँ ऋ को दीर्घ कहना उचित प्रतीत नहीं होता । अतः केवल दीर्घश्च पाठ ही उचित है ।

न (पूर्वक) नन्द्+ऋन्, धातुस्वर को दीर्घ तथा ऋ के स्थान में आ, विभक्तिकार्य, ननान्दा । पति की बहिन । जनद । धेनुभेद । बाहुलकात् वृद्ध्यभावे ननन्दा (दया.उ.को.२-९९) । ननान्दा तु स्वसा पत्युर्ननन्दा नन्दिनी च सा, इति शब्दार्णवः (वै.सि.कौ.उ.२-२५२) ।

९८. यतेश्च । १२-४०।

अस्मात् ऋन्प्रत्ययो भवति, अस्य स्वरस्य दीर्घश्च । 'यती प्रयत्ने' यतत इति याता पतिभ्रातृभार्या ।

यत् धातु से ऋन् प्रत्यय होता है तथा धातुस्वर को दीर्घ होता है ।

याता यती प्रयत्ने (भू.३३४) । प्रयत्न करना, कोशिश करना । यतते । यत्+ऋन्, धातु की उपधा को दीर्घ, ऋ के स्थान में आ, विभक्तिकार्य, याता । पति के भाई की स्त्री । देवरानी । जिठानी । भार्यास्तु भ्रातृवर्गस्य यातरः स्युः परस्परम् (अ.को.२/६/३०) ।

९९. नियो डानुबन्धश्च । १२-४१।

अस्मात् ऋन्प्रत्ययो भवति स च डानुबन्ध इष्यते । अन्त्यस्वरादेर्लोपार्थम् । 'णीञ् प्रापणे' नयतीति ना पुरुषः ।

नी धातु से ऋन् प्रत्यय होता है तथा उसमें ङ् अनुबन्ध का अतिदेश होता है । इसके कारण धातु के अन्त्य स्वर का 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) इस सूत्र से लोप होता है ।

ना णीञ् प्रापणे (भू.६००) । पहुँचाना, ले जाना । 'णो नः' से ण् को न् । नयति । नी+ऋन्, प्रत्यय को डानुबन्धवद्भाव होने से 'नी' में ईकार का लोप, ऋ को आ, विभक्तिकार्य, ना । पुरुष ।

1. यतेर्वृद्धिश्च- (वै.सि.कौ.उ.२/२५४) ।

१००. स्वस्रादयः १२-४२।

स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षतृहोतृपोतृप्रशास्तृपितृमातृदुहितृजामातृभ्रातरः ।
 एते ऋन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'श्वस प्राणने' श्वसितीति^१
 स्वसा भगिनी । 'पल्ल पथे च गतौ' निपूर्वः । न पतति
 कुलमनेनेति नप्ता पौत्रः । 'णश अदर्शने' नश्यति पापमनेनेति
 नेष्टा ऋत्विग्विशेषः । 'तक्षु त्वक्षु तनूकरणे' त्वक्षतीति
 त्वष्टा । अथवा 'त्विष दीप्तौ' त्वेष्टि^२ (त्वेषति) लोचने
 काष्ठेषु त्वष्टा । सूत्रधारः । 'क्षुदिर् संपेषणे' क्षुदति (क्षुण्ति)
 पिनष्टि इति क्षत्ता प्रतीहारः । 'हु दाने' जुहोतीति होता
 याज्ञिकः । 'पूज् पवने' पुनातीति पोता ऋत्विक् । 'शासु
 अनुशिष्टौ' प्रशास्तीति प्रशास्ता उपाध्यायः । 'पा रक्षणे' पातीति
 पिता जनकः । 'मा माने' मातीति माता जननी । 'दुह
 प्रपूरणे' दोग्धि मातृकुलं दुहिता । 'जनीड् प्रादुभावे'
 पुत्रप्रतिनिधिः जायते जामाता दुहितुः पतिः । 'भ्राज् दीप्तौ'
 भ्राता ।

स्वसा, नप्ता, नेष्टा, त्वष्टा, क्षत्ता, होता, पोता, प्रशास्ता, पिता,
 माता, दुहिता, जामाता, भ्राता ये सभी ऋन्^३ प्रत्ययान्त शब्द निपातन से
 सिद्ध होते हैं ।

स्वसा श्वस प्राणने (अ.३३) । प्राणन=श्वँस लेना, जीना ।
 श्वसिति । श्वस्+ऋन्, 'आ सौ सिलोपश्च' (कात.२/१/६४) से ऋ को

१. श्वसति, म.सं. । वृत्ति में इकाररहित 'श्वसति' के स्थान पर 'श्वसिति' पाठ किया गया— रुदादेः सार्वधातुके (कातरूप.१०५) ।
२. 'त्विष दीप्तौ' (भू.६०७) धातु के भौवादिक होने से 'त्वेषति' रूप होता है । वृत्ति में 'त्वेष्टि' रूप असाधु प्रतीत होता है ।
३. पा.उ. में उपर्युक्त शब्दों में 'स्वसा' को छोड़कर अन्य सभी शब्द तृच् प्रत्ययान्त निष्पन्न होते हैं (द्र- वै.सि.कौ.उ.सू.२/२५२) ।

आ, निपातन से श् को स्, सि का लोप, विभक्तिकार्य, स्वसा¹ ।
बहिन ।

सु अस् (क्षेपणे)+ऋन्, उपधादीर्घः, स्वसा (वै.सि.कौ.-
उ.सू.२/२५३) ।

नप्ता पत्वृ गतौ (भू.५५४) । न पतति कुलमनेन (जिससे वंश की परम्परा नहीं रुकती) । नञ् (पूर्वक) पत्+ऋन् निपातन से नञ् लोप का अभाव, पकार घटक अकार का लोप, ऋ को आ, विभक्तिकार्य, नप्ता । पौत्र । दौहित्र । पितामह तथा मातामह के पुत्र का पुत्र । नाती ।

न पतन्ति अनेन पितरो नरके इति नप्ता न पत्+तृच्, नञ् का प्रकृतिभाव तथा अत् का लोप, नप्ता, (वै.सि.कौ.उ.सू.२/२५२) ।

नेष्टा णश अदर्शने (दि.४१) । लुप्त होना, नष्ट होना । णो नः से ण को न । नश्यति पापमनेन (जिससे पाप नष्ट होता है) नश्+ऋन्, त् आगम, धातु में उपधाभूत अकार को एकार, श् को ष, ऋ को आ और त् को ट, विभक्तिकार्य, नेष्टा । ऋत्विक् ।

तु.- नयतेः षुग् गुणश्च (वै.सि.कौ.उ.सू.२/२५२) ।

त्वष्टा त्वक्षू तनूकरणे (भू.२०६) । तनूकरण=छीलना, पतला करना । त्वक्षति । त्वक्ष्+ऋन्, निपातन से त् आगम, तकार को टकार, क्षकार को षकार, लिङ्गसंज्ञा, सि ऋ को आकार, सिलोप, त्वष्टा ।

अथवा त्विष् दीप्तौ (भू.६०७) । त्वेषति लोचने काष्ठेषु (नेत्र और लकड़ी में जो चमकता है) । त्विष्+ऋन्, त् आगम, इकार को

1. पा.उ.- सु.अस् ऋन् 'ऋदुशनसपुरुदंशोऽनेहसां च' (अ.७/१/९४) से ऋ को अनङ्, अप्पुनतृच्स्वसु (अ.६/४/११) इत्यादि सूत्र से उपधादीर्घ, सुलोप, न् लोप, स्वसा ।

अकार, त् को द्, लिङ्गसंज्ञा, सि, ऋ को आकार, त्वष्टा ।
सूत्रधार । विश्वकर्मा प्रजापति । त्वष्टा पुमान् देवशिल्पितक्ष्णोरादित्यभिद्यपि
(मेदिनी.टान्त.१६) ।

क्षत्ता क्षुदिर् संपेषणे (रु.६) । संपेषण=पीसना, कूटना । क्षुणत्ति ।
क्षुद्+ऋन्, त् आगम, धातुघटक उकार को अकार, ऋ को आकार, द्
को त्, विभक्तिकार्य, क्षत्ता । सारथि । द्वारपाल । शूद्रा का पुत्र ।
रुद्र । मुसल । क्षत्ता शूद्रात् क्षत्रियाजे प्रतीहारे च सारथौ
(मेदिनी.तान्त.७) । क्षत्ता स्यात्सारथौ द्वाःस्थे वैश्यायामपि शूद्रजे
(वै.सि.कौ.३०२/२५०) ।

क्षदिः सौत्रो धातुः शकलीकरणे भक्षणे च । क्षद्+तृच्
(वै.सि.कौ.उ.सू.२/२५०) ।

होता हु दाने (अ.६७) । जुहोति । हु+ऋन्, त् आगम, धातुघटक
उकार को ओकार गुण, ऋ को आ, विभक्तिकार्य, होता । याज्ञिक ।

पोता पूञ् पवने (क्री.८) । पवित्र करना । पुनाति । पू+ऋन्, त्
आगम, धातु को गुण, ऋ को आ, लिङ्गसंज्ञा, सि, सि लोप, पोता ।
ऋत्विक् । ऋत्विक्भेद ।

प्रशास्ता शासु अनुशिष्टौ (अ.३९) । अनुशासित करना, नियन्त्रण
करना । प्र पूर्वक, प्रयोग । प्रशास्ति । प्र शास्+ऋन्, त् आगम, ऋ
का आ, विभक्तिकार्य, प्रशास्ता । उपाध्याय ।

पिता पा रक्षणे (अ.२६४) । रक्षा करना । पाति । पा+ऋन्, त्
आगम, पा घटक आकार को इकार, लिङ्गसंज्ञा सि, 'आ सौ

सिलोपश्च' (कात.२/१/६४) इस सूत्र से ऋ को आ तथा सि का लोप, पिता^१ । जनक ।

माता मा माने (अ.२६) । माति । मा+ऋन्, त् आगम, 'आ सौ सिलोपश्च' (कात.२/१/६४) इस सूत्र से ऋ को आ तथा सि का लोप, विभक्तिकार्य, माता । जननी ।

मान पूजायाम्+तृन्, न् का लोप (वै.सि.कौ.उ.२/२५२) ।

दुहिता दुह प्रपूरणे (अ.६१) । प्रपूरण=दुहना, रिक्त करना । दोग्धि मातृकुलं (जो माता के परिवार का दोहन करती है) । दुह्+ऋन्, त् आगम, निपातन से इट् आगम, गुणाभाव, ऋ को आकार, विभक्तिकार्य, दुहिता । पुत्री ।

दोग्धि सर्वमर्थं पितुः सकाशात् (जो पिता के पास से सम्पूर्ण धन का दोहन करती है) ।

जामाता जनी प्रादुर्भावे (दि.१४) । पुत्रप्रतिनिधिः जायते (जो पुत्र के प्रतिनिधि के रूप में उत्पन्न होता है) । जन्+ऋन्, निपातन से 'मत्' भाव, जन् को जा आदेश ऋ को आकार तथा लिङ्गसंज्ञा सि, सि का लोप, विभक्तिकार्य, जामाता । पुत्री का पति (दामाद) ।

जायां माति, जाया को जा आदेश, जा मा+तृच्, जामाता (वै.सि.कौ.२-२५२) । जामाता दुहितुः पत्यौ सूर्यावर्त्ते धवे पुमान् (मेदिनी.तान्त.११) ।

भ्राता भाजू दीप्तौ (भू.५४०) । चमकना । भ्राजते । भ्राज्+ऋन्, त् आगम, जकार लोप, ऋ को आकार, विभक्तिकार्य, भ्राता ।

-
1. पा.व्या. में पितु शब्द से अनङ् आदेश, उपधादीर्घादि करने पर 'पिता' शब्द निष्पन्न होता है किन्तु कात.व्या. में पितु में ऋ को 'आ' करके पिता शब्द बनता है ।

भ्राजृ दीप्तौ, तृच्, जकारलोपः (वै.सि.कौ.उ.२/२५२) ।

१०१. ऋतृसृधृजृधम्यश्यविवृतिग्रहिभ्योऽनिः । २-४३।

एभ्योऽनिप्रत्ययो भवति । 'ऋ गतौ' इयतीति अरणिः
अग्निनिर्मन्थनकाष्ठम् । 'तृ प्लवनतरणयोः' तरत्यनेनेति तरणिः
नौः सूर्यो वा । 'सृ गतौ' सरतीति सरणिः मार्गः । 'धृजृ
धारणे' धरतीति धरणी पृथ्वी । धम इति सौत्रोऽयं धातुः ।
धमतीति धमनिः गलशिरा । 'अश भोजने' पर्वतादीनश्नातीति
अशनिः वज्रम् । 'अव रक्ष पालने' अवतीति अवनिः पृथ्वी ।
'वृतु वर्तने' वर्तते वर्तनिः वर्तनोपकरणद्रव्यम् । 'ग्रह उपादाने'
गृह्णातीति ग्रहणिः व्याधिविशेषः ।

ऋ, तृ, सृ, धृ, धम्, अश्, अव, वृत्, ग्रह इन सभी धातुओं
से अनि प्रत्यय होता है ।

अरणिः ऋ गतौ (अ.७४) । इयति । ऋ+अनि, ऋ को अर्, 'रषृवर्णेभ्यो' (कात.२/४/१८) से न् को ण्, लिङ्गसंज्ञा सि, विसर्ग, अरणिः । अग्नि प्राप्ति के लिए मथी जाने वाली विशेष लकड़ी । अग्नियोनि । यज्ञादि में अरणि से उत्पन्न अग्नि का प्रयोग । अरणिर्विहिमन्येऽपि ना द्वयोर्निर्मन्थ्यदारुणि (मेदिनी.णान्त.३४) ।

तरणिः तृ प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । तैरना, पार जाना । तरति अनेन (जिससे तैरता है) । तृ+अनि, ऋ को अर्, न् को ण्, विभक्तिकार्य, तरणिः । नौका तथा सूर्य । कुमारी नामक औषध । तरणिस्तरणे भानौ कुमार्यौषधिनौकयोः (वि.प्र.को.णान्त.७२) ।

सरणिः सृ गतौ (भू.२७४) । सरति । सृ+अनि, ऋ को अर् गुण, न् को ण्, विभक्तिकार्य, सरणिः । मार्ग । पंक्ति । सरणिः पंक्तौ मार्गे च सारणे राक्षसान्तरे (मेदिनी.णान्त.८३) ।

धरणिः धृञ् धारणे (भू.५९९) । धारण करना । धरति । धृ+अनि,
अर् गुण, न् को ण्, विभक्तिकार्य, धरणिः । पृथ्वी । स्त्री । भूमि ।

स्त्री. 'नदाद्यन्वि (कात.२/४/५०) इत्यादि सूत्र से ई, धरणी ।

धमनिः धम (सौत्र धातु) । धमति । धम्+अनि, विभक्तिकार्य,
धमनिः । गलशिरा । नाडी । स्त्री.-धमनी । नाडी तु धमनिः शिरा
(अ.को.२/६/६५) । धमनी तु शिराहट्टविलासिन्योश्च योषिति
(मेदिनी.नान्त.७९) ।

अशनिः अश भोजने (क्री.४३) । पर्वतादीनश्नाति (जो पर्वत आदि को
नष्ट करता है) । अश्+अनि, अशनिः । वज्र । विद्युत् । अशनिः
पविविद्युतोः (वि.प्र.को.नान्त.१२३) ।

अवनिः अव पालने (भू.२०२) । अवति । अव्+अनि, विभक्तिकार्य,
अवनिः । पृथ्वी ।

वर्तनिः वृत् वर्तने (भू.४८४) । वर्तते । वृत्+अनि, ऋ को अर्,
विभक्तिकार्य, वर्तनिः । वर्तनोपकरण द्रव्य । मार्ग । देश का नाम ।
स्याद् वर्तनी मलिने पथि (वि.प्र.को.नान्त.१२५) ।

ग्रहणिः ग्रह उपादाने (क्री.१४) । लेना, ग्रहण करना । गृह्णाति ।
ग्रह्+अनि, न् को ण्, विभक्तिकार्य, ग्रहणिः । व्याधिविशेष । ग्रहणी
रुक् प्रवाहिका (अ.को.२/६/५५) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

१०२. अर्चिशुचि(रुचि)हुसृपिछदिछर्दिभ्य इसिः १२-४४।

एभ्यो धातुभ्य इसिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः ।
 'अर्च पूजायाम्' अर्च्यते पूज्यते अर्चिः ज्वाला । 'शुच शोके'
 शोचति तमोऽत्र शोचिः दीप्तिः । 'रुच दीप्तौ' रोचते रोचिः
 सैव । 'हु दाने' हूयत इति हविः देवान्मम् । 'सृप्लु गतौ'
 सप्त धातवः सर्पन्त्यनेनेति सर्पिः आज्यम् । 'छद संवरणे'
 रुचादित्वादिन्^२ । छादयतीति छदिः कुड्मलम् । कुटीरकं
 वा । 'छर्द वमने' छर्दते छर्दिः वमनम् ।

अर्च, शुच, रुच, हु, सृप, छद, छर्द इन धातुओं से 'इसि'
 प्रत्यय होता है । इसि में अन्य इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है । 'इस्'
 प्रयुक्त होता है ।

अर्चिः अर्च पूजायाम् (भू.५१) । अर्च्यते पूज्यते (कर्म) । अर्च्+इसि,
 विभक्तिकार्य, अर्चिः । ज्वाला । अर्चिर्मयूखशिखयोर्न ना
 (मेदिनी.सान्त.१५) ।

शोचिः शुच शोके (भू.४४) । दुःख मानना, शोक करना ।
 शोचति तमोऽत्र (जहाँ अन्धकार संकुचित होता है) । शुच्+इसि,
 गुण, विभक्तिकार्य, शोचिः । दीप्ति ।

रोचिः रुच दीप्तौ (भू.४७३) । चमकना । रुचना, अच्छा लगना
 (अभिप्रीतौ.क्षी.त.भू.४९४) । रोचते । रुच्+इसि, इ अनुबन्ध का
 अप्रयोग, गुण, विभक्तिकार्य, रोचिः । दीप्ति । रोचिः शोचिरुभे क्लीबे
 (अ.को.१/३/३४) ।

1. सूत्र में 'रुचि' का ग्रहण अपेक्षित है यतः वृत्ति में 'रोचिः' शब्द निष्पादित है । अतः वृत्ति में 'रोचिः' के पठित होने से सूत्र में भी 'रुचि' पाठ आवश्यक है ।
2. चुरादित्वादिन् (कात.३/२/११) ।

हविः हु दाने (अ.६७) । देना, आहुति देना, यज्ञ करना । हूयते (अग्नौ) । हु+इस्, गुण, अच् आदेश, विभक्तिकार्य, हविः । देवान् । देवाज्य । हवन द्रव्य । घृत । हविर्होतव्यमात्रे च सर्पिष्यपि नपुंसकम् (मेदिनी.नान्त.४७) ।

सर्पिः सृप् (भू.२७९) । सप्त घातवः सर्पन्त्यनेन (जिससे अन्न रस, रुधिर, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा, वीर्य ये सात धातुएँ चिकनी हो जाती है) । सृप्+इस्, अर् गुण, विभक्तिकार्य, सर्पिः । आज्य । घृत ।

छदिः छद् संवरणे (चु.२३) । संवरण=ढकना, आच्छादित करना । छादयति (छद् का रुचादिगण में पाठ है तथा रुचादिगण, चुरादिगण का अन्तर्गण है, अतः 'चुरादेश्च' से 'इन्' होता है) छादि+इस्, इन् का लोप, 'छादेश्चस्मन्त्रनक्विप्सु' (कात.४/१/१९) से ह्रस्व, विभक्तिकार्य, छदिः । छादन । तृणादि से निर्मित कुटी । पटल । वर्षा तप का वारण करने वाला, (श्वेत.२-१०९) ।

छर्दिः छर्द वमने (चु.८४) । वमन=उल्टी करना, कय करना । छर्दयति । छर्द्+इस्, विभक्तिकार्य, छर्दिः । वमन । व्याधि ।

१०३. ज्योतिरादयः । २-४५।

ज्योतिस् बर्हिस् इत्येवमादयः शब्दा इसिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'द्युत शुभ रुच दीप्तौ' द्योतते ज्योतिः दीप्तिः । 'बृहि वृद्धौ' बृंहतीति बर्हिः कुशः । एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

ज्योतिस् बर्हिस् तथा इसी प्रकार के इसि प्रत्ययान्त अन्य शब्द भी निपातन से सिद्ध होते हैं ।

ज्योतिः द्युत दीप्तौ (भू.४७३) । दीप्ति=चमकना, प्रकाशित होना । द्योतते । द्युत्+इस्, दकार को निपातन से जकार तथा धातु को गुण से ओकार, विभक्तिकार्य, ज्योतिः । दीप्ति । अग्नि सूर्यादि

(दया.उ.को.२/११) । ज्योतिः प्रकाशे दृशि तारकासु ।
ज्योतिर्दिनेशानलयोरपि स्यात् (वि.प्र.को.सान्त.४०) ।

तु.- धुतेरिसिन्नादेशच जः (वै.सि.कौ.उ.२/२६७) ।

बर्हिः बृहि वृद्धौ (भू.२४७) । धातु के इदित् होने से न् आगम ।
बृंहति । बृह्+इस्, नकारलोप, ऋ को अद्, विभक्तिकार्य, बर्हिः ।
कुश । दर्भ । अग्नि । बर्हिस् पुंसि हुताशने न स्त्री कुशे
(मेदिनी.सान्त.३६) ।

तु.- बृहेर्नलोपश्च (वै.सि.कौ.उ.२/२६६) ।

इसी प्रकार के इसि प्रत्ययान्त शब्दों को निपातन से निष्पन्न
कर लेना चाहिए । यथा- वसुरोचिः यज्ञ । भुविः समुद्र । सधिः
अनङ्वान् । पाथिः चक्षु, समुद्र । (वै.सि.कौ.उ.सू.२-२६८-६९-७०-७१) ।

१०४. ऋपूर्वपिचक्षिजनितनिधनिभ्य उस् ।२-४६।

एभ्यः उसप्रत्ययो भवति । 'ऋ गतौ' इयतीति अरुः
व्रणम् । 'पृ पालनपूरणयोः' पृणातीति परुः पर्वतः । 'डु वपु
बीजसन्ताने' उप्यते पुरुषार्थोऽनेनेति वपुः शरीरम् । 'चक्षिङ्
व्यक्तायां वाचि' चष्टे हृदयाभिप्रायं चक्षुः । ख्यातेरनुपादानात्
'चक्षिङ् ख्याज्' इति न भवति । 'जन जनने' जजन्तीति
[जनुः] जर्जरिः^१ । 'तनु विस्तारे' तनोतीति तनुः कायः । 'धन
धान्ये' धन्यते धनुः शरासनम् ।

ऋ, पृ, वपु, चक्षु, जनु, तनु, धनु, इन सभी धातुओं से उस्
प्रत्यय होता है ।

१. जनुः जर्जरिः म.सं. । 'जर्जरि' अर्थ अन्य उणादि ग्रन्थों में
उपलब्ध नहीं होता । इसके जनन, जन्म आदि अर्थ उपलब्ध होते
हैं । जनुर्जननम् (वै.सि.कौ.उ.२/२७२) ।

अरुः ऋ गतौ (अ.७४) । इयति । ऋ+उस्, ऋ को अर् गुण,
विभक्तिकार्य, अरुः । व्रण (पु.नं.) फोड़ा । घाव । आदित्य ।

परुः पृ पालनपूरणयोः (क्री.१६) । रक्षा करना, पूर्ण करना ।
पूणाति । पृ+उस्, ऋ को अर् गुण, परुः । पर्वत । ग्रन्थि ।

वपुः डु वप बीजसन्ताने (भू.६९) । बीज बोना । रूप्यते पुरुषार्थोऽनेन
(जिसके द्वारा पुरुषार्थ किया जाता है) । वप्+उस्, विभक्तिकार्य,
वपुः । शरीर । वपुर्भव्याकृतौ देहे (वि.प्र.को.सान्त.३२) ।

चक्षुः चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि (अ.४१) । स्पष्ट बोलना । चष्टे
हृदयाभिप्रायम् (जो हृदय के अभिप्राय को स्पष्ट कर देता है) ।
चक्ष्+उस्, चक्षुः । नेत्र ।

ख्याति के अनुपादान (अग्रहण) से चक्षिङ् के स्थान पर ख्याज्
आदेश (कात.३/४/८९) नहीं होता ।

जनुः जन जनने (अ.८०) । जजन्ति । जन्+उस्, जनुः । जनन ।
जन्म । उत्पत्ति ।

तनुः तनु विस्तारे (त.१) । तनोति । तन्+उस्, विभक्तिकार्य, तनुः ।
शरीर । तनुः काये त्वचि स्त्री स्यात् त्रिष्वल्पे विरले कृशे
(मेदिनी.सान्त.९) ।

धनुः धन धान्ये (अ.७९) । धन्यते । धन्+उस्, विभक्तिकार्य, धनुः ।
शरासन । धनुष । धनुः प्रियालङ्घनराशिभेदयोः शरासने चापि धनुर्धनुर्धरि
(वि.प्र.को.सान्त.४०) ।

१०५. एतेरिज्वत् १२-४७।

अस्मादुस्प्रत्ययो भवति । स च इज्वत् । 'इण् गतौ'
एतीति आयुः जीवितम् ।

इण् धातु से उस् प्रत्यय होता है तथा 'उस्' को इज्वद्भाव भी होता है । इज्वद्भाव होने से उपधादीर्घादि कार्य होते हैं ।

आयुः इण् गतौ (अ.१३) । एति । इ+उस्, धातु को गुण, तथा अयादेश, अय्+उस्, इज्वद्भाव होने से 'अस्योपधाया' (कात.३/६/५) । इस सूत्र से धातु को उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, आयुः । जीवन । अवस्था ।

एतेर्णिच्च, इ+उस्, णित्व से आदि वृद्धि, आय् आदेश, आयुः । (वै.सि.कौ.उ.सू.२/२७५) । आयुर्जीवितकालो ना (अ.को.२/८/१२०) ।

तु.- छन्दसीणः (दया.उ.को.१/२ आयुः) ।

१०६. चतिकटशृवृज्भ्यष्ट्वरः । २-४८।

एभ्यष्ट्वरप्रत्ययो भवति । टकारो नदाद्यर्थः । 'चते चदे च' चतते चत्वरं चतुर्णां पथां समुदायः, प्राङ्गणम् । 'कट गतौ' कटतीति कट्वरः दधिविकारः^१ । 'शृ हिंसायाम्' शृणातीति शर्वरः । नदादित्वात् शर्वरी त्रियामा रात्रिः । 'वृज् वरणे' वृणाति वृणोति वा बर्बरः देशविशेषः मनुष्यश्च ।

चत्, कट्, शृ, वृज्, इन धातुओं से द्वर प्रत्यय होता है । 'द्वर' में ट् अनुबन्ध नदादि के लिए प्रयुक्त है । नदादिगण में पाठ होने से 'नदाद्यन्वि' (कात.२/४/५) इत्यादि सूत्र से स्त्री. में 'ई' होता है ।

चत्वरम् चते याचने (भू.५७६) । चतते । चत्+द्वर, ट् अनुबन्ध का अप्रयोग, विभक्तिकार्य, चत्वरम् । चार मार्गों का समुदाय ।

१. कट्वरम् उदरविकारः बं.सं. ।

चतुष्पथ । चौराहा । प्राङ्गण-आंगन । चबूतरा । चत्वरं स्थण्डिले गणे
(मेदिनी.रान्त.१५२) ।

कट्द्वरः कट गतौ (भू.१०२) । कटति । कट्+द्वर, द् अनुबन्ध का
अप्रयोग, 'घोषवत्योश्च कृति' (कात.४/६/८०) से इट् का निषेध,
विभक्तिकार्य, कट्द्वरः । दही का विकार, भोज्य या व्यञ्जन तथा द्रव
वस्तु ।

शर्वरः शृ हिंसायाम् (क्री.१५) । शृणाति । शृ+द्वर, धातुस्थ ऋ को
अर्, विभक्तिकार्य, शर्वरः । सायाह । चन्द्र ।

द्व अनुबन्ध के कारण स्त्री. में 'नदाद्यन्वि' (कात.२/४/५०) ।
इत्यादि सूत्र से ई प्रत्यय, विभक्तिकार्य, शर्वरी । रात्रि । त्रियामा ।

बर्वरः वृञ् वरणे (सु.८,क्री.१७) । वृणाति या वृणोति । वृ+द्वर, ऋ
को अर्, धातुषट्क व् को ब, विभक्तिकार्य, बर्वरः । देशविशेष ।
मनुष्य । मूर्ख । अनार्य । असभ्य । प्राकृत जन । बर्वरः पामरे
केशे चक्रले नीवृदन्तरे । फञ्जिकायां पुमान् शाकभेदपुष्पभिदोः स्त्रियाम्
(मेदिनी.रान्त.२०९) ।

१०७. नौ सदि १२-४९।

नावुपपदेऽस्मादद्वरप्रत्ययो भवति । 'षदलु विशरणे'
धात्वादेः षः सः । निपूर्वः । निषीदत्यस्मिन् लोको निषद्वरः
कर्दमः ।

'नि' के उपपद में रहने पर सद धातु से द्वर प्रत्यय होता
हे ।

निषद्वरः षदलु विशरणे (तु.६०) । विशरण=नष्ट होना, मुरझाना ।
निषीदति लोकः अस्मिन् (जिसमें व्यक्ति फंस जाता है) नि (पूर्वक)
षद् । 'धात्वादेः षः सः' (कात.३/८/२४) सूत्र से ष् को स् । नि

सद्+द्वर, निषद्वरः । कर्दम । कीचड़ । कन्दर्प (कामदेव) ।
निषद्वरस्तु जम्बालः (वै.सि.कौ.उ.सू.२/२८०) । निषद्वरः स्मरे पङ्के
निशायां तु निषद्वरी (मेदिनी.रान्त.२७३) ।

१०८. छित्वरादयः १२-५०।

छित्वरछित्वरधीवरतीवरपीवरगह्वरचीवरनीवराः । एते द्वर-
प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'छिदिर् द्वैधीकरणे' छिनत्तीति छित्वरः
धूर्तः । 'छद षट् संवरणे' छादयतीति छत्वरः स एव । 'डु
धाञ्' दधाति जालमिति धीवरः कैवर्तः । 'तुद व्यथने' तुदतीति
तीवरः प्राकृतजातिविशेषः । 'पीङ् पाने' पीयते पीवरः
स्थूलः । 'गुहू संवरणे' गूहतीति^१ गह्वरं गहनम् । 'चिञ्
चयने' चिनोतीति चीवरं भिक्षुपरिधानम् । 'णीञ् प्रापणे' नयतीति
नीवरः जलसम्भवः कश्चित् । एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

छित्वर, छत्वर, धीवर, तीवर, पीवर, गह्वर, चीवर, नीवर, ये
सभी द्वरप्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

छित्वरः छिदिर् द्वैधीकरणे (रु.३) । टुकड़े करना, काटना ।
छिनत्ति । छिद्+द्वर, द् को तु, गुणाभाव, विभक्तिकार्य, छित्वरः ।
धूर्त । दुष्ट । छित्वरो धूर्तवैरिणोः (वि.प्र.को.रान्त.१५२) । (छिदुरश्)
छित्वरश्छेदने द्रव्ये धूर्ते वैरिणि च त्रिषु (मेदिनी.रान्त.१५६) ।

छत्वरः छद संवरणे (चु.२३) । छादयति । छद्+द्वर, द् को तु,
विभक्तिकार्य, छत्वरः । धूर्त, दुष्ट । आवरण । निर्व्याधि तथा ग्रह
(श्वेत.वृ.३/१) । छत्वरो गृहकुञ्जयोः (वै.सि.कौ.उ.सू.३/१) ।

१. गूहतीति, म.सं. । गुहू धातु का गोहेरुदुपधायाः (कात.३/४/६३) सूत्र
से ऊत्वं होकर 'गूहति' रूप होता है । तदनुसार वृत्ति में गूहति
के स्थान पर 'गूहति' पाठ किया गया ।

धीवरः डु धाञ् धारणपोषणयोः (अ.८५) । दधाति जालमिति (जो जाल को धारण करता है) धा+द्वर, निपातन से आकार को ईकार, विभक्तिकार्य, धीवरः । कैवर्त । जुलाहा । मछली मारने वाला । धीवरो नाउम्बुधौ व्याधे (मेदिनी.रान्त.१६३) ।

तीवरः तुद व्यथने (तु.१) । दुःखी होना, व्यथित होना । तुदति । तुद+द्वर, धातुघटक उकार को ईकार, द् का लोप, विभक्तिकार्य, तीवरः । प्राकृत जाति विशेष । म्लेच्छ जाति । शिकारी । वर्णसङ्कर ।

तायु (पूजानिशासनयोः)+ध्वरच्, यलोप, ईकार, तीवरः (वे.सि.कौ.उ.सू.३/२८१) ।

पीवरः पीङ् पाने (दि.९) । पीयते । पी+द्वर, द् अनुबन्ध का अप्रयोग, अगुण, विभक्तिकार्य, पीवरः । स्थूल, मोटा । कच्छप । पीवरः कच्छपे स्थूले (मेदिनी.रान्त.१८६) ।

गह्वरम् गुह् संवरणे (भू.५९५) । छिपाना, वस्त्र आदि से ढकना । गूहति । गुह+द्वर, निपातन से उकार के स्थान में अकार, विभक्तिकार्य, गह्वरम् । गहन । सघन । गुफा । अथ गह्वरं । गुहागहनदम्बेषु निकुञ्जे तु पुमानयम् (मेदिनी.रान्त.१४८) ।

चीवरम् चिञ् चयने (सु.५) । चुनना, बटोरना । चिनोति । चि+द्वर, इकार को दीर्घ, विभक्तिकार्य, चीवरम् । भिक्षु का वस्त्र, परिवेश । भिक्षापात्र । प्रावरण ।

नीवरः नीञ् प्रापणे (भू.६००) । नयति । नी+द्वर, निपातन से गुणाभाव, विभक्तिकार्य, नीवरः । जल से उत्पन्न कोई जन्तु । गम्भीर । परिव्राट् । स्यान्नीवरो वाणिजके वास्तव्ये च पुमानयम् (मेदिनी.रान्त.१७५) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले द्वर- प्रत्ययान्त अन्य शब्दों को भी निपातन से निष्पन्न कर लेना चाहिए । यथा मीवरः हिंस्र । कर्वरः व्याघ्र । संयद्वरः नृप । गर्वरः अहङ्कारी (श्वेत.वृ.२-१२४) ।

१०९. इण्जिकृषिभ्यो नक् १२-५१।

एभ्यो नक्प्रत्ययो भवति । ककारो यण्वद्भावार्थस्तेना- गुणत्वम् । 'इण् गतौ' एतीति इनः सूर्यो धनेश्वरो वा । 'जि जये' जयतीति जिनः^१ तीर्थङ्करो विष्णुर्वा । 'कृष विलेखने' कर्षत्यरीन् कृष्णः वासुदेवः ।

इण्, जि, कृष, इन धातुओं से नक् प्रत्यय होता है । नक् में क् अनुबन्ध 'के यण्वच्च योक्तवर्जम्' (कात.४/१/७) इस सूत्र से यण्वद्भावार्थ होता है । जिससे धातु को गुण का निषेध होता है ।

इनः इण् गतौ (अ.१३) । एति । इण्+नक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण धातु का गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, इनः । सूर्य या धनेश्वर । स्वामी । इनः पत्यौ नृपार्कयोः (मेदिनी.नान्त.२) ।

जिनः जि जये (भू.१९१) । जीतना । जयति । जि+नक्, यण्वद्भाव से गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, जिनः । तीर्थङ्कर तथा विष्णु । बुद्ध । जयशील । नास्तिकभेद । जिनः स्यादतिवृद्धे च बुद्धे चार्हति जित्वरे (वि.प्र.को.नान्त.१) ।

कृष्णः कृष विलेखने (भू.२२३) । विलेखन=खींचना, जोतना । कर्षति अरीन् (जो शत्रुओं को खींचता है) । कृष्+नक्, यण्वद्भाव से ऋ को गुण का निषेध, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, कृष्णः । वासुदेव

-
१. जिन का 'बुद्ध' अर्थ भी होता है । अ.को. में बुद्ध के पर्यायों में जिन परिगणित है । (अ.को.१-१-१३) । जिनोऽर्हति च बुद्धे च पुंसि स्यात् जित्वरे त्रिषु (मेदिनी.नान्त.८) ।

(वसुदेवपुत्र) वर्णविशेष । कृष्णः सत्यवतीपुत्रे वायसे केशवेऽजुनि
(मेदिनी.नान्त.७) ।

११०. बन्धेर्ब्रधिश्च १२-५२।

अस्मान् नक् प्रत्ययो भवति ब्रध्यादेशश्च । इकार
उच्चारणार्थः । 'बन्ध बन्धने' बध्नाति जन्तुदृष्टीः^१ ब्रध्नः
सूर्यः ।

बन्ध् धातु से नक् प्रत्यय तथा बन्ध् के स्थान पर 'ब्रधि' (ब्रध्)
आदेश होता है । 'ब्रधि' में इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

ब्रध्नः बन्ध बन्धने (क्री.३२) । बध्नाति जन्तुदृष्टीः (जो प्राणियों की
दृष्टियों को संकुचित करता है) । बन्ध्+नक्, बन्ध् के स्थान पर ब्रध्
-आदेश, विभक्तिकार्य, ब्रध्नः । सूर्य । भास्कराहस्करब्रध्नप्रभाकरविभाकराः
(अ.को.१/३/२८) । बुध्नो ना मूलरुद्रयोः (मेदिनी.नान्त.२०) ।

बन्धेर्ब्रधिबुधी च-ब्रध्नः-बुध्नः (वै.सि.कौ.उ.सू.२९५) ।

१११. धावसिद्बुध्यो नः १२-५३।

एभ्यो न प्रत्ययो भवति । 'डु धाज्' धार्यन्ते धानाः
स्त्रीत्वं बहुत्वं च भ्रष्ट्यवाः । 'वस निवासे' वसतीति वस्नम्
अवक्रयणम् । 'डु गतौ' द्रवतीति द्रोणः परिमाणविशेषः
अश्वत्थश्च । आम्रः पीतो वा ।

धा, वस, डु, इन धातुओं से न प्रत्यय होता है ।

-
१. जन्तुदृष्टीन् म.सं. । क्तिन् प्रत्ययान्त शब्द 'दृष्टि' का द्वि. बहु. में
'दृष्टीः' शब्दरूप होता है । वृत्ति में 'दृष्टीन्' पाठ था जिसके
स्थान पर 'दृष्टीः' पाठ किया गया ।

धानाः डु धाञ् धारणपोषणयोः (अ.८५) । धार्यन्ते । धा+न्, स्त्री. बहु. में जस, विभक्तिकार्य, धानाः । भ्रष्टयव । दूटे हुए यव या धान्य । भ्रष्टतण्डुलविशेष ।

वस्नम् वस निवासे (भू.६१४) । वसति । वस्+न, विभक्तिकार्य, वस्नम् । मजदूरी । वेतन । मूल्य । द्रव्य, वस्त्र । ब.सं.—भ्रमण । वस्नं स्याद् वेतने मूल्ये वसनद्रव्ययोरपि (वि.प्र.को.नान्त.१२) ।

द्रोणः द्रु गतौ (भू.२७९) । द्रवति । द्रु+न, गुण, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, द्रोणः^१ । परिमाणविशेष तथा अश्वत्थ, द्रोणाचार्य । कृष्णकाक, मानविशेष । अर्जुनगुरु । आम्र या पीपल का पेड़ ।

११२. रास्नासास्नास्थूणावीणाः । २-५४।

एते नप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'राशु शब्दे' राश्यते प्राणी अनया रास्ना औषधविशेषः । 'शासु अनुशिष्टौ' शिष्यते^२ अनया सास्ना गलकम्बलः । 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' तिष्ठति पदार्थोऽस्यां स्थूणा स्तम्भः । 'वी प्रजने' सप्त स्वरान् वेति गच्छतीति वीणा परिवादिनी । आकारस्य ऊत्वं नस्य णत्वं भवति ।

रास्ना, सास्ना, स्थूणा, वीणा ये चारो न प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । निपातन से शब्दस्वरूप के अनुसार कार्यो का विधान होता है ।

रास्ना राशु शब्दे (भू.४४१) । राश्यते प्राणी अनया (जिसके द्वारा मनुष्य बोलने लगता है) । राश्+न, निपातन से श् को सु, स्त्री. में

१. द्रोणो मानविशेषश्च काकोऽर्जुनगुरुस्तथा ।

द्रोणः कृपीपतौ कृष्णकाके स्यादाटकेऽपि च (वि.प्र.को.नान्त.१) ।

२. शास्यते म.सं. । शासु धातु को कर्म में 'शासेरिदुपधाया अण्व्यञ्जनयोः' (कात.३/४/४८) सूत्र से इत्व होकर शिष्यते रूप होता है । अतः शास्यते के स्थान पर शिष्यते पाठ किया गया ।

आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, रास्ना । औषधविशेष । धेनु । गन्धद्रव्य ।
रास्ना च स्याद् भुजङ्गाक्ष्यामेलापण्यमपि स्त्रियाम् (मेदिनी.नान्त.१७) ।

रस (श्लेषणे) +न, निपातन से सुडागम, दीर्घादि (श्वेत.वृ.३/१५) ।

सास्ना शासु अनुशिष्टौ (अ.३९) । शासन करना, अनुशासन करना ।
शिष्यते अनया । शास्+न, निपातन से श् को सु, स्त्री. में आ प्रत्यय,
विभक्तिकार्य, सास्ना । गलकम्बल । गोगलकम्बल । गाय या बैल के
नीचे लटकने वाला मांसपिण्डविशेष । सास्ना तु गलकम्बलः
(अ.को.२/९/६३) ।

स्थूणा ष्ठा गतिनिवृत्तौ (भू.२६७) । रुकना, ठहरना । तिष्ठति
पदार्थोऽस्याम् (जिस पर कोई वस्तु आधारित रहती है या टिकी रहती
है) । स्था+न, निपातन से धातुघटक आकार के स्थान में ऊकार,
नकार को णकार, विभक्तिकार्य, स्थूणा । खम्भा । गृहस्तम्भ ।
स्थूणा स्यात् सूर्या स्तम्भे गृहस्य च (मेदिनी.नान्त.३२) ।

वीणा वी प्रजनकान्त्यसनखादनेषु च (अ.१४) । प्रजन=गर्भ धारण करना,
कान्ति=चाहना, असन=फेंकना, खादन=खाना, गति=जाना । सप्त स्वरां
वेति गच्छति जनयति वा (जो सात स्वरों को जन्म देती है या सात
स्वरों पर जाती है) । वी+न, धातु को गुणाभाव, निपातन से नकार
को णकार, स्त्री. में आ प्रत्यय, लिङ्गसंज्ञा, सि, सि का लोप, वीणा ।
परिवादिनी । सात तारों वाली वीणा । सितार ।

पा.उ.-अज्+न, अज् को वी भाव, अगुण, वीणा (श्वेत.वृ.३/१५) ।

वीणा वाद्यादिनोऽपायेऽप्येकदेशे गृहस्य च। (वि.प्र.को.नान्त.१०) ।
वीणा वल्लकिविद्युतोः (वि.प्र.को.नान्त.२७) । विपञ्ची सा तु तन्त्रीभिः
सप्तभिः परिवादिनी (अ.को.१/७/३) ।

११३. पातेः पः १२-५५।

अस्मात् पः प्रत्ययो भवति । 'पा रक्षणे' पायते पापं
दुरितम्

पा धातु से प प्रत्यय होता है ।

पापम् पा रक्षणे (अ.२१) । पायते (कर्म) (जिससे रक्षा की जाती
है । पा+प, विभक्तिकार्य, पापम् । दुरित । मल । पुरुष ।

पाति रक्षत्यस्मादात्मानमिति पापम् (वै.सि.कौ..सू.३/३०३) ।

११४. नीपादयः । २-५६।

नीपयूपसूपकूपतल्पशष्पवाष्पाः । एते पप्रत्ययान्ता
निपात्यन्ते । 'णीञ् प्रापणे' नयतीति नीपः वृक्षः । 'यु मिश्रणे'
यौतीति यूपः यज्ञकीलकः । 'षूङ् प्राणिप्रसवे' सूयते सूपः
व्यञ्जनविशेषः । 'कुङ् शब्दे' कवते कुवते वा कूपः
प्रथिः^१ (प्रहिः) । 'तल प्रतिष्ठायाम्' चुरादिः । तालयतीति
तल्पं शय्या । 'शसु हिंसायाम्' शस्यते भक्ष्यते इति शष्पं
बालतृणम् । 'वासु शब्दे' वास्यते वाष्पः अश्रु, ऊष्मोद्गमश्च ।
एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

नीप, यूप, सूप, कूप, तल्प, शष्प, वाष्प, ये सभी प प्रत्ययान्त
शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

1. 'कूपः' के पर्यायो में 'प्रहिः' हकारघटित पाठ उपलब्ध होता है ।
किन्तु म.सं. में 'प्रथिः' थकारघटित पाठ है । सम्भवतः हकार के
स्थान पर मुद्रण दोष से थकार हो गया हो । पुंस्येवान्शुः प्रहिः
कूपः (अ.कौ.१९१०.२६) ।

नीपः णीञ् प्रापणे (भू.६००) । पहुँचाना । णो नः (कात.३/८/२५) से ण् को न् । नयति । नी+प, विभक्तिकार्य, नीपः । कदम्ब का पेड़ । नीपः कदम्बबन्धूकनीलाशोकद्रुमेष्वपि (मेदिनी.पान्त.८) ।

यूपः यु मिश्रणे (अ.६) । जोड़ना । यौति । यु+प, निपातन से धातुघटक उकार को ऊकार दीर्घ, विभक्तिकार्य, यूपः । यज्ञ की लकड़ी, (जो बांस या खदिर की होती है) । युवन्ति बध्नन्ति अस्मिन् पशुमिति यूपो यज्ञस्तम्भः ।

सूपः षूङ् प्राणिप्रसवे (दि.१) । जन्म देना, उत्पन्न करना । 'धात्वादेः षः सः' से ष् को स् । सूयते । सू+प, सूपः । व्यञ्जनविशेष । द्विदल (दाल) । सूपो व्यञ्जनसूदयोः (मेदिनी. पान्त.१२) ।

कूपः कुङ् शब्दे (भू.४५८) । कवते । कु+प, निपातन से धातुघटक उकार को ऊकार दीर्घ, विभक्तिकार्य, कूपः । प्रहि । बंसं-गम्भीरजल का आश्रय । कुवन्ति मण्डूकाः अस्मिन् कूपः (वे.सि.कौ.उ.सू.३/३०७) ।

तल्पम् तल प्रतिष्ठायाम् (चु.३६) । स्थापना करना । तालयति । तालि+प, 'कारितस्यानामिङ्विकरणे' (कात.३/३/४४) से कारितसंज्ञक इन् का लोप, ह्रस्व, विभक्तिकार्य, तल्पम् । शय्या । तल्पन्तु शयनीये स्यात् तल्पमट्टकलत्रयोः (वि.प्र.को.पान्त.८) ।

शष्पम् शशु हिंसायाम् (भू.२४०) । मारना, दुःख देना । शस्यते भक्ष्यते (जिसे खाया जाता है) । शस्+प, निपातन से स् को ष्, विभक्तिकार्य, शष्पम् । छोटी नयी घास । शष्पं बालतृणे स्मृतम् । पुंसि स्यात् प्रतिभाहानौ (मेदिनी.पान्त) शष्पः स्तवे क्रियायोगे शष्पः क्रोधे बलात्कृतौ (वि.प्र.को.पान्त.१०) ।

वाष्पम् वासु शब्दे (दि.१०६) । वास्यते । वास्+प, निपातन से स् को ष्, विभक्तिकार्य, वाष्पम् । अश्रु । वाष्प (भाप) का उदगम । मुखनिःश्वास । वाष्पो नेत्रजलोष्मणोः (वि.प्र.को.पान्त.१) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अन्य शब्दों को भी निपातन से निष्पन्न कर लेना चाहिए । यथा— पूषम् पिष्टक (बं.सं.) । पर्षम् गृह घासं ग्रीवा । रूपं शुक्ल आदि । शिष्यः कालयोग । खष्पः बलात्कार । स्तूपः समुच्छ्राय । च्यूपः मुख । वेष्पः पानीय । शिल्पम् कौशल । (वै.सि.को.उ.सू.३/३०४,५,८) ।

११५. इण्भीकापाशल्यर्चिकृदाधाराभ्यः कः । १२-५७।

एभ्यः कप्रत्ययो भवति । 'इण् गतौ' एतीति एकः असहायः । 'जि भी भये' सर्पाद् बिभेति भेकः मण्डूकः । 'कै शब्दे' कायतीति काकः । ['पा पाने' पिबतीति पाकः] ['शल गतौ' शलतीति] शल्कः वल्कलम् । शल्यर्चिभ्याम् इट् न भवति औणादिकत्वात् । एवमन्यत्रापि उक्तवक्ष्यमाणविधौ [धिषु] प्रतिपत्तव्यम् । 'अर्च पूजायाम्' अर्चते । अर्कः रविः । 'डु कृञ् करणे' क्रियते कल्कः । कपिलिकादिदर्शनात् रेफस्य लत्वम् पिष्टपिण्डः । 'डु दाञ्' ददातीति दाकः दाता । 'डु धाञ्' धार्यते धाकः यज्ञः । 'रा ला दाने' रातीति राकः कर्णः । राका चन्द्रसम्पूर्णा पौर्णमासी ।

इण्, भी, कै, पा, शल, अर्च, कृ, दा, धा, रा, इन धातुओं से क प्रत्यय होता है । 'क' यह निरनुबन्ध प्रत्यय है ।

एकः इण् गतौ (अ.१३) । एति । इ+कं, धातु को गुण से एकार, विभक्तिकार्य, एकः । असहाय । केवल, श्रेष्ठ । संख्यावाची । एकन्तु केवलं श्रेष्ठ इतरस्मिंश्च वाच्यवत् (वि.प्र.को.कान्त.३७) ।

१. 'अर्च' धातु के परस्मैपद होने से अर्चति होता है । कर्म में 'अर्चति' होगा । सम्भवतः मुद्रण दोष से 'अर्चति' हो गया हो ।

भेकः जि भी भये (अ.६८) । डरना । सर्पाद् बिभेति (जो सर्प से डरता है) । भी+क, धातु को गुण एकार, विभक्तिकार्य, भेकः । मण्डूक । मेंढक । मेघ । भेको मण्डूकमेघयोः (मेषयोः) (मेदिनी.कान्त.३०) ।

काकः कै शब्दे (भू.२५६) । कायति । कै+क, सन्ध्यक्षरान्तानामाकारोऽविकरणे (कात.३/४/२०) इस सूत्र से ऐकार को आकार, विभक्तिकार्य, काकः । कौवा । काकः स्याद् वायसे वृक्षप्रभेदे पीठसर्पिणि । शिरोऽवक्षालने मानप्रभेदद्वीपभेदयोः । (मेदिनी.कान्त.२०) । काकं सुरतबन्धे स्यात् काकानामपि संहतौ (मेदिनी. कान्त.२२)

पाकः पा पाने (भू.२६४) । पिबति । पा+क, पाकः । पर्वतविशेष । श्वेत-गन्धर्वविशेष (३/४३) । बं.सं.-शिशु । पाकः शिशौ जरानिष्ठापचनक्लेदनेषु (वि.प्र.को.कान्त.३४) । पाकः परिणतौ शिशौ । केशस्य जरसा शौक्त्ये स्थाल्यादौ पचनेऽपि च (मेदिनी.कान्त.२९)

शल्कः शल गतौ (भू.४१५) । शलति । शल्+क, शल्कः । वल्कल । मधुर वाक्, मुद्गर । शल्कं तु शकले वल्के (मेदिनी.कान्त.३५) ।

शल् एवं अर्च् धातु को इडागम नहीं होता, औणादिक हेतु से । बाहुलक भाव से विधि सूत्र भी प्रवृत्त नहीं हो पाते । इसी तरह उपर्युक्त प्रकार की (आगे) कही जाने वाली विधियों में भी समझना चाहिए ।

अर्कः अर्च पूजायाम् (भू.५१) । अर्च्यते । अर्च्+क, चकार का लोप^१, विभक्तिकार्य अर्कः । रवि (सूर्य) अग्नि, स्फटिक, ताम्र (ताँबा)

1. ति.अनु.- 'चजोः कगौ धुङ्धानुबन्धयोः' इत्यनेन चकारस्य ककारः अर्कः ।

रविवार, आक (अकौवा का पौधा) । अर्कोऽर्कपर्णे स्फटिके रवौ ताम्रे दिवस्पतौ (वि.प्र.को.कान्त.३७) ।

कल्कः डु कृञ् करणे (त.७) । क्रियते । कृ+क, ऋ को अर् तथा 'कपिलिकादेर्लोकतः सिद्धिः' (कात.३/६/१९) इस नियम से र् को ल्, विभक्तिकार्य, कल्कः । पिष्टपिण्ड । तैलादिविशेष (खली) पाप, मैल, विष्टा, कपट, अहङ्कार । कल्कोऽस्त्री घृततैलादिशेषे दम्भे विभीतके । विटविट्टयोश्च पापे च त्रिषु पापाशये पुनः । (मेदिनी.कान्त.१९) ।

दाकः डु दाञ् दाने (अ.८४) । देना । ददाति । दा+क, विभक्तिकार्य, दाकः । दाता । यजमान ।

धाकः डु धाञ् धारणपोषणयोः (अ.८५) । धार्यते (कर्म) । धा+क, विभक्तिकार्य, धाकः । यज्ञ । बैल । आधार ।

राकः रा दाने (अ.२२) । लेना । राति । रा+क, विभक्तिकार्य, राकः । कर्ण । राका तु सरिदन्तरे कच्छूनवरजकन्यापूर्णन्दुपूर्णमासु च (वि.प्र.को.कान्त.४७) ।

स्त्री.- राका । पूर्ण चन्द्रमा से युक्त पूर्णिमा तिथि ।

११६. मूकादयः । २-५८।

मूकयूकार्भकपृथुकवृकसृकभूकाः । एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'मूङ् बन्धने' मूयते मूकः जडः । 'यु मिश्रणे' यूयते यूका क्षुद्रजन्तुः । 'अर्ह मह पूजायाम्' अर्हतीति अर्भकः शिशुः । 'प्रथ प्रख्याने' प्रथयतीति पृथुकः स एव । 'वृञ् आवरणे' वृणोतीति वृकः मृगविशेषः । 'सृ गतौ' सरतीति सृकम् उत्पलमूलम् । 'भू सत्तायाम्' भवतीति भूकं छिद्रम् ।

ह्रास मूक, यूक, अर्भक, पृथुक, वृक, सूक, भूक, ये सभी क प्रत्ययान्त शब्द निपातन से निष्पन्न होते हैं (१६) शब्दों की प्रकृति के अनुसार कार्यों की कल्पना कर ली जाती है ।

मूकः मूढ् बन्धने (भू. ४६६) (११) बौधनात् (कर्म) मूक, विभक्तिकार्य, मूकः । जोड़ना । वाणीरहित । मूकोऽप्यवाङ्मनसो दीने (वि. प्र. को. कान्त. ३६) मूकस्त्ववेचि जा दैत्ये (मेदिनी. कान्त. ३१) ।

यूका यु मिश्रणे (अ. ६) । जोड़ना, मिलना । यूयते । यु+क, निपातन से ऊकार, स्त्री में 'स्त्रियामादा' सूत्र से आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, यूका । क्षुद्रजन्तु । कृमि । लिक्ष (लीख, जुवा) ।

अर्भकः अर्ह पूजयाम् (भू. २५०) । अर्हति । अर्ह+क, ह को भ, तथा अकारागम, विभक्तिकार्य, अर्भकः । शिशु (बाल) । अर्भकः कथितो बाले मुखेऽपि च कृशेऽपि च (मेदिनी. कान्त. ४७) ।

पृथुकः प्रथ प्रख्याने (चु. ३३, भू. ४९) । प्रख्यान=प्रसिद्ध होना । प्रथयति । प्रथ+क, र को सम्प्रसारण तथा उकारागम, विभक्तिकार्य, पृथुकः । बाल । पृथुकः पुंसि चिपिटे शिशौ स्यादभिधेयवत् (मेदिनी. कान्त. १२६) ।

पा.उ. ऋधु वृद्धौ अतो वुन् भकारश्चान्तादेशः (वै.सि.को.उ.सू. ५/७३१) ।

वृकः वृज वरणे (सु. ८) । वृणोति । वृ+क, गुणाभाव, विभक्तिकार्य, वृकः । मृगविशेष । भेड़िया । काकविशेष । श्वापद । कुत्ते के आकार वाला व्याघ्रविशेष । सूर्य ।

सूकः सू गतौ (भू. २७४) । सरित् । सू+क, निपातन से गुणाभाव, विभक्तिकार्य, सूकः । कमल की जड़ । शर, निरामय, वाणी, वज्र वायु (दया.उ.को. ३-४१) ।

११७. शङ्खेरुन्युत्तौ १२-५९।

शकुनिः शक्ल शक्तौ (सु.१५) । समर्थ होना, जा सकना । नभसा
गन्तुं शक्नोति (जो आकाशमार्ग से जा सकता है) । शक्+उनि,
विभक्तिकार्य, शकुनिः । पक्षी । शक्+उन्त, शकुन्तः । मास । पक्षी ।

ब.सं.-शक्+उत्, शकुनः । शुभाशंसा (सगुन)
सक्+उत्ति, शकुजिः । शुभाशंसानिमित्ते शकुनः ।
(वि.प्र.को. नान्त.४६) ।

११८ ऋकतुवजयमिदारीर्जभ्य उनः १२-६०१

एभ्यः (अभ्यः) उनप्रत्ययो भवति । 'अ' यतो 'इयतीति' । अरुणः
सूर्यसारथिः । 'डु कृञ् करणे' क्रियते करुणा कृपा । 'तृ

1. शकेरुन्युन्युनोन्ताः, उनि-उन्ति-उन-उन्त प्रत्ययाः (त्रि.सं.सु.प्र.११९) ॥
शकेरुनोन्नोन्न्युनस्य (श्वेत.वृ.१/४८) ॥

प्लवनतरणयोः' क्रियां कर्तुं तरति शक्नोतीति तरुणः युवा ।
 'वृञ् वरणे' वृणोतीति वरुणः पश्चिमदिक्पतिः । 'यम उपरमे'
 यच्छतीति यमुना कालिन्दी नदी । 'दृ विदारणे' हेताविन् ।
 दारयतीति दारुणः रौद्रः । 'अर्ज सर्ज अर्जने' अर्जतीति अर्जुनः
 वृक्षः पाण्डवश्च ।

ऋ, कृ, तु, वृञ्, यम, दृ, अर्ज इन धातुओं से 'उन' प्रत्यय होता है ।

अरुणः 'ऋ गतौ' (अ.७४) । इयति । ऋ+उन, ऋ को अर्, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, अरुणः । सूर्य का सारथि । सूर्य, कुष्ठ, या रक्त, सन्ध्याकालीन लालिमा ।

अरुणो व्यरागेऽर्के सन्ध्यारागेऽर्कसारथौ । निःशब्दे कपिले कुष्ठे, द्रव्ये वाच्यवदिष्यते । (वि.प्र.को. णान्त.२८)

करुणा डु कृञ् करणे (त.७) । क्रियते । कृ+उन, ऋ को अर्, नकार को णकार, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, करुणा । कृपा । दया । करुणस्तु रसे वृक्षे कृपायां करुणा मता (वि.प्र.को. णान्त.३०) ।

तरुणः तु प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । पार जाना, तैरना । तरति । तृ+उन, ऋ को अर्, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, तरुणः । युवा । वृक्षभेद । तरुणः स्यान्नवे युनि कुब्जपुष्पोरुबूकयोः (वि.प्र.को.णान्त.३२) ।

वरुणः वृञ् वरणे (सु.८) । वृणोति । वृ+उन, गुण से अर्, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, वरुणः¹ । पश्चिम दिशा का स्वामी । वृक्ष । वरुणस्तरुभेदेऽप्यु पश्चिमाशापतावपि (मेदिनी.णान्त.६५) ।

1. वरुणः सम्मतो नीरे स्वर्लोके परमेष्ठिनि ।

वरुणस्तरुभेदेऽप्यु प्रतीचीपतिसूर्ययोः ॥ (वि.प्र.को.णान्त.३०-३१) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

151

यमुना यम उपरमे (भू.१५८) । उपरम=रोकना, अवरोध करना ।
यच्छति । यम्+उन, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, यमुना ।
कालिन्दी नदी । कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा
(अ.को.१/१०/३२) ।

दारुणः दृ विदारणे (क्री.१९) । काटना । दृ को 'धातोश्च हेतौ'
(कात.३/२/१०) से हेतु में इन् । दारयति । दारि+उन, 'कारितस्यानामिड्
विकरणे' (कात.३/६/४४) से इन् का लोप, नकार को णकार,
विभक्तिकार्य, दारुणः । रौद्र । निष्ठुर । क्रूरात्मा । दारुणो रसभेदे ना
त्रिषु तु स्याद् भयावहे (मेदिनी.णान्त.५२) ।

अर्जुनः अर्ज अजनि (भू.६५) । संग्रह करना, अर्जित करना ।
अर्जीति । अर्ज+उन, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, अर्जुनः^१ । वृक्ष
तथा पाण्डव ।

११९. पिशुनफाल्गुनौ । २-६१।

एतौ उनप्रत्ययान्तौ निपात्येते । 'पिप्लु संचूर्णनि'
पिनष्टीति । पिशुनः सूचको दुर्जनश्च 'फल निष्पत्तौ'
फलतीति फाल्गुनः मासविशेषः अर्जुनश्च ।

पिशुन, फाल्गुन ये दोनों उन प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध
होते हैं ।

पिशुनः पिप्लु संचूर्णनि (रु.१२) । संचूर्णन=पीसना । पिनष्टि ।
पिप्+उन, गुणाभाव, ष् को श, विभक्तिकार्य, पिशुनः^२ । सूचक
(निन्दक) । पिशुनौ खलसूचकौ (अ.को.३-१२७) ।

१. अर्जुनः ककुभे पार्थे, कार्तवीर्यमयूरयोः ।
मातुरेकसुते च स्यादर्जुनो धवलेऽन्यवत् ॥ (वि.प्र.को.नान्त.८४) ।
२. पिशुनः कपिवक्रे स्यात् स्पृक्कायां पिशुना मता ।
पिशुनं कुङ्कुमे क्रूरे, सूचके चाभिधेयवत् ॥ (वि.प्र.को.नान्त.४५-४६) ।

फाल्गुनः फल निष्पत्तौ (भू.१७६) । निष्पत्ति=फलना, उत्पन्न होना । फलति । फल्+उन, निपातन से ग् अन्तादेश, धातु को उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, फाल्गुनः^१ । १२वाँ मास । अर्जुन ।

१२०. कृधूवाभ्यःसरक् १२-६२।

एभ्यः सरक्प्रत्ययो भवति । को यण्वत् । तेनागुणत्वम् । 'डु कृञ् करणे' करोतीति कृसरा यवागूः । 'धू विधूनने' धुवतीति धूसरः अग्निस्निग्धः । 'वा गतिगन्धनयोः' वातीति वासरः दिवसः ।

कृ, धू, वा, इन धातुओं से सरक् प्रत्यय होता है । बं.सं. में मदी धातु से भी सरक् प्रत्यय विहित है । क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव तथा उससे गुण का निषेध होता है ।

कृसरा डु कृञ् करणे (त.७) । करोति । कृ+सरक्, क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, कृसरा । यवागू खिचड़ी (तिल तण्डुल तथा दाल का मिश्रित पाक) ।

धूसरः धू विधूनने (तु.१०५) । विधूनन=कम्पित करना, काँपना । धुवति । धू+सरक्, गुणाभाव, विभक्तिकार्य, धूसरः । धूल से लिपटा हुआ । अग्नि । धूसरः पाण्डुरे खरे (वि.प्र.को.रान्त.१३२) । ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः (अ.को.१-५-१३) ।

१. उत्तराभ्यां फाल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहं दिवा ।
जातो हिमवतः पृष्ठे, तेन मां फाल्गुनं विदुः॥ (महा.विराट.३९-१४) ।
२. पाठा.- कृधूवामदिभ्यः सरक् (बं.सं) कृधूमदिभ्यः कित्
(वै.सि.कौ.उ.३/३५३) ।

वासरः वा गतिगन्धनयोः (अ.१७) । जाना, गन्ध देना । वाति ।
वा+सरक्, वासरः । दिन । दिवसे रागप्रभेदेऽपि च वासरः
(वि.प्र.को.रान्त.१६४) ।

१२१. भीशीङ्भ्यामानकः । २-६३।

आभ्यामानकः प्रत्ययो भवति । 'जि भी भये'
भीयतेऽस्मिन्निति^१ (अस्मादिति) भयानकः भीष्मः । 'शीङ् स्वप्ने'
शेते शयानकः अजगरः ।

भयानकः 'जि भी भये' (अ.६८) । भीयते अस्मात् (जिससे डरता
है) । भी+आनक, गुण, अयादेश, विभक्तिकार्य, भयानकः । भीष्म ।
मयूर । भयानकः स्मृतो व्याघ्रे रसे राहौ भयङ्करे ।
(मेदिनी.कान्त.२०६) ।

शयानकः शीङ् स्वप्ने (अ.५५) । शेते । शी+आनक, गुण से एकार
तथा एकार को अय् आदेश, विभक्तिकार्य, शयानकः । अजगर ।

१२२. शिङ्घेराणकः । २-६४।

अस्मादाणकप्रत्ययो भवति । 'शिधि आघ्राणे'
इदनुबन्धत्वान्नागमः । शिङ्घाणकः नासामलः ।

शिङ्घ घातु से आणक प्रत्यय होता है ।

शिङ्घाणकः शिधि आघ्राणे (भू.४३) । सूँघना । इदनुबन्ध सहित
होने से न् आगम । शिङ्घति । शिङ्घ्+आणक, विभक्तिकार्य,

-
1. भी घातु से 'भीयते अस्मिन्' ऐसी अधिकरण व्युत्पत्ति असङ्गत है ।
यतः 'भीमादयोऽपादाने' (कात.४/६/५१) सूत्र से भी अपादान व्युत्पत्ति
का निर्देश है । अतः 'भीयते अस्मात्' ऐसी अपादान व्युत्पत्ति
अपेक्षित है ।

शिङ्घाणकः । नासामल । नाक के अन्दर रहने वाला मेल ।
श्लेष्मा ।

पृषोदरादित्वात् पक्षे कलोपः शिङ्घाणं नासिकामले
(वै.सि.कौ.उ.३६३) । शिङ्घाणं काचपात्रे स्याल्लोहनासिकयोर्मले ।
(वि.प्र.को.णान्त.५३) ।

वातेरायसः (बं.सं.सू.२-१२५)

अस्मादायसः परो भवति । 'वा गतिगन्धनयोः' वायसः
काकः ।

वाः धातु से आयस प्रत्यय होता है ।

वायसः वा गतिगन्धनयोः (अ.१७) । जाना, गन्ध देना । वाति ।
वा+आयस, वायसः । काक (कौवा) ।

वय गतौ; असच्, णित्, उपधावृद्धिश्च (श्वेत.वृ.३/११३)
वायसोऽगुरुवृक्षे च श्रीवासध्वाङ्क्षयोः पुमान् (मेदिनी.सान्त.३८) ।

सूतेश्चकः (बं.सं.सू.२-१२६)

अस्मात् चकपरो भवति । 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने'
सूचकः ।

सूच् धातु से चक प्रत्यय होता है ।

1. ये दोनों सूत्र मद्रास संस्करण में उपलब्ध नहीं हैं । बङ्ग संस्करण के आधार पर दिए गए हैं ।

सूचकः षुङ् प्राणिगर्भविमोचने (अ.५४) । सू+चक, विभक्तिकार्य,
सूचकः । निन्दक । सूचकः सीवनद्रव्ये बोधके पिशुने शुनि
(मेदिनी.कान्त.१६९) ।

१२३. इषेः किकः^१ (कीकः) १२-६५।

अस्मात् किक(कीक)प्रत्ययो भवति । को यण्वद्भावार्थः ।
'इषु इच्छायाम्' इच्छतीति इषिका (इषीका) विरुणी^२शलाका ।

इष् धातु से कीक प्रत्यय होता है । 'कीक्' में पूर्व ककार
अनुबन्ध है, जिससे यण्वद्भाव होता है ।

इषीका इषु इच्छायाम् (तु.७०) । इच्छति । इष्+कीक्, क् अनुबन्ध
से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य,
इषीका । वीरणशलाका । गौंडर घास । शलाका ।

इष्+ईकन्, इषीका, (वै.सि.कौ.उ.४/४६१) ।

१२४. तिन्तिडि(डी)कादयः^३ १२-६६।

तिन्तिडि(डी)का किङ्किणि(णी)का [जर्जरि(री)का]
पर्परि(री)का मृद्वि(द्वी)का एते कि(की)क^४प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।
तिम आर्द्रभावे तिम्प्यतीति तिन्तिडि(डी)का तिलवृक्षविशेषः ।

१. पाठा. कीक । बं.सं. में भी 'कीक' पाठ है । इससे ईकारघटित
'इषीका' उदाहरण होता है । पञ्चपादी में भी 'इषेः किद् ध्रस्वश्च'
(४/४६१) ऐसा पाठ है, इससे 'ईकन्' होता है ।
२. विरुणी मं.सं. । विरुणी शब्द के स्थान पर 'वीरणी' पाठ मिलता
है । स्याद् वीरणं वीरतरं (अ.को.२/४/१६४) ।
३. पाठा. तिन्तिडीकादयः बं.सं. । सरस्वती.२-२-२०, दया.उ.को.४-२० ।
४. 'कीकन्' पञ्चपादी उणादिवृत्तियों में 'कीकन्' प्रत्ययान्त सभी शब्द
तिन्तिडीका, जर्जरीका आदि प्राप्त होते हैं ।

'कण क्वण शब्दे' किम्पूर्वः । किङ्कणतीति किङ्किणि(णी)का ।
'जू वयोहानौ' जीर्यते इति जर्जरि(री)का बहुच्छिद्रा । 'पृ
पालनपूरणयोः' पुणातीति पर्परि(री)का मर्दलः । 'मृद क्षोदे'
मृदनातीति मृद्वि(द्वी)का । एवमन्येऽपि ।

तिन्तिडिका, किङ्किणिका, जर्जरिका, पर्परिका, मृद्विका ये सभी
किकप्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । ऐसा दुःवृ. में
प्रतिपादित है किन्तु यहाँ विशेष ध्यातव्य यह है कि अन्य उणादि ग्रन्थों
में 'कीकन्' प्रत्ययान्त घटित होने से तिन्तिडीका, किङ्किणीका, जर्जरीका,
पर्परीका मृद्वीका शब्द ईकार घटित निष्पादित होते हैं । यही पाठ
उचित भी है ।

तिन्तिडीका तिम आर्द्रभावे (दि.१४) । गीला करना, भिगाना ।
तिम्यति । तिम्+कीक, धातु को द्वित्व, तथा निपातन से मकार को
डकार^१, म् को अनुस्वार तथा तवर्गीय पञ्चम वर्ण, स्त्रीत्व विवक्षा में
आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, तिन्तिडीका । तिल का वृक्ष । आम्ल वृक्ष ।
वृक्षजाति । शाक जाति ।

तिम्+कीकन्, तिन्तिडीकः (वै.सि.कौ.उ.४/४६०) ।

किङ्किणीका कण शब्दे (भू.१४६) । किम् पूर्वक । किङ्कणति ।
किम् कण्+कीक, निपातन से कण में ककारघटक अकार को इकार,
स्त्रीत्व-विवक्षा में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, किङ्किणीका । क्षुद्रघण्टिका ।
घुंघरू । सूक्ष्मघण्टिका । किम् कण्+कीकन् किङ्किणीका ।

कङ्कणः कङ्कणश्च । कण शब्दे, अस्माद् यङ्लुगन्तात् ईकन्
धातोः कङ्कणादेशश्च । घण्टिकायां कङ्कणीका सैव प्रतिसराऽपि च
(वै.सि.कौ.उ.३०४/४५८) ।

1. तिमेस्तिडागमः ति.अनु. ।

जर्जरीका जृ वयोहानौ (क्री.२०) । जीर्ण होना, वृद्ध होना । जीर्यते । जृ+कीक, घातु को द्वित्व, अर्, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, जर्जरीका । बहुत छिद्रों वाली जीर्ण वस्तु । जर्जरीकं बहुच्छिद्रं जरतुरेऽपि वाच्यवत् (मेदिनी.कान्त.१९०) ।

पर्परीका पृ पालनपूरणयोः (क्री.१६) । पृणाति । पृ+कीक, द्वित्व, अर्, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, पर्परीका । मर्दल । वाद्य (एक प्रकार का ढोल) सूर्य, अग्नि, जलाशय (दश.वृ.३/३७) पर्परीको दिवाकरः (वै.सि.कौ.उ.४/४५९) ।

मृद्वीका मृद क्षोदे (क्री.३७) । क्षोद=कूटना, पीसना । मृदनाति । मृद+कीक, निपातन से वान्तादेश, स्त्री. में आ प्रत्यय, मृद्वीका । द्राक्षा (अंगूर की बेल या गुच्छा) । मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा स्वाद्वी मधुरसेति च (अ.को.२/४/१०७) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले किक या कीक प्रत्ययान्त शब्दों को निपातन से सिद्ध कर लेना चाहिए ।

यथा— कषीका पक्षिजाति । दूषीका नेत्रमल । अनीकम् विरुद्ध सैन्य । हृषीकम् ज्ञानेन्द्रिय । शर्शरीकः हिंसक । वर्वरीकः कुटिल केश जन । फर्फरीकम् पत्रादिसहित शाखा या ग्रन्थि । दर्दरीकम् वादित्र । कर्करीकम् शरीर । चञ्चरीकः भ्रमर । मर्मरीकः हीनजन । पुण्डरीकम् श्वेत कमल सितपत्र, व्याघ्र, अग्नि । मृडीकः सुखदाता, मृग । अलीकम् मिथ्या । व्यलीकम् अप्रिय, या खेद । वलीकम् गृहाच्छादनसामग्री । वल्मीकम् छिद्र या ऋषि भेद । तस्यापत्यं वाल्मीकिः । सुप्रतीकः अग्नि ।

१२५. घृसिदूभ्यः क्तः १२-६७।

एभ्यः क्तप्रत्ययो भवति । 'घृ क्षरणदीप्त्योः' घरतीति । घृतं सर्पिः । 'षिञ् बन्धने' सिनोतीति सितः शुक्लः । 'दूङ् परितापे' दूयते दूतः सङ्गमकारकः । ककारो यण्वद्भावार्थः । तेनागुणत्वम् ।

घृ, सि, दू इन धातुओं से क्त प्रत्यय होता है । 'क्त' में क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध होता है ।

घृतम् घृ क्षरणदीप्त्योः (अ.७२) । टपकना, चमकना । जिघर्ति । घृ+क्त, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव तथा गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, घृतम् । सर्पि । घी । घृतमाज्ये जले क्लीबं प्रदीप्ते त्वभिधेयवत् (मेदिनी.तान्त.१७) । त्रिष्वप्सु च घृतामृते (अ.को.३/३/७५) ।

सितः षिञ् बन्धने (सु.२) । बाँधना । सिनोति । 'धात्वादेः षः सः' से ष् को स् । सि+क्त, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, सितः । शुक्ल (सफेद) । सितमवसिते च बन्धे धवले त्रिषु शर्करायां स्त्री. । (मेदिनी.तान्त.७१) ।

दूतः दूङ् परितापे (दि.८२) । दुःख से जर्जर होना, दुःख सहना । दूयते । दू+क्त, गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, दूतः । सङ्गमकारक । राजभृत्य । स्यात् सन्देशहरो दूतः (अ.को.२/८/१६) ।

- वर्तमान उपलब्ध धातुपाठ के अनुसार घृ धातु क्षरण अर्थ में भौवादिक है । क्षरण एवं दीप्ति अर्थ में (अ.७२) आदादिक है । आदादिक होने से इसका जिघर्ति रूप होगा । भौवादिक 'घृ क्षरणे' से घर्ति रूप होगा । वृत्ति में आदादिक घृ पठित होने से घर्ति के स्थान पर 'जिघर्ति' पाठ होना चाहिए ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

159

१२६. जर्ततातपलितसुरतलोष्टाः । १२-६८।

एते क्तप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'जृषु झृषु' जीर्यते जर्तः दीर्घरोमा । 'दैङ् त्रैङ् पालने' सन्ध्यक्षरान्तानामात्वम् । त्रायते तातः पिता । 'डु पचष् पाके' पच्यते पलितं पक्वकेशाः । 'रमु क्रीडायाम्' सुपूर्वः । सुखाय रम्यते सुरतं मैथुनम् । 'लूष हिंसायाम्' चुरादिः । लूषयतीति लोष्टः मृत्पिण्डः ।

जर्त, तात, पलित, सुरत, लोष्ट ये सभी क्तप्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । क्त में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है ।

जर्तः जृष वयोहानौ (दि.१८) । जीर्ण होना, वृद्ध होना । जीर्यति । जृ+क्त, जृ घटक ऋ को यण्वद्भाव होने से गुणनिषेध होने पर भी निपातन बल से अर् गुण, विभक्तिकार्य, जर्तः । दीर्घरोमा । लम्बे रोमे वाला । योनि तथा रोम ।

तातः त्रैङ् पालने (भू.४६३) । रक्षा करना । त्रे में ऐकार को 'सन्ध्यक्षरान्तानामाकारोऽविकरणे' (कात.३/४/२०) । इस सूत्र से आकार । त्रायते । त्रा+क्त, निपातन से त्रा में र् का लोप, विभक्तिकार्य, तातः । पिता । तातोऽनुकम्प्ये ताते (वि.प्र.को.तान्त.१४) । तनोति निषेकादिक्रियाजातम् इति तातः (श्वेत.वृ.३-८६) ।

पलितम् डु पचष् पाके (भू.६३) । पकाना । पच्यते । पच्+क्त, निपातन से च् को ल, तथा इत्त्व, विभक्तिकार्य, पलितम् । पके हुए केश (सफेद बाल) । बं.सं.-पङ्कविशेषः । पलितं शैलजे तापे केशपाके च कर्दमे (मेदिनी.तान्त.१२३) ।

सुरतम् रमु क्रीडायाम् (भू.५६१) । क्रीडा करना, विहार करना । सुपूर्वक । सुखाय रम्यते (सुख के लिए रमण करता है) । सु

(पूर्वक) रम्+क्त, म् का लोप, विभक्तिकार्य, सुरतम् । मैथुन । बं.सं. सुखोपभोग । सुरतं स्यान्निधुवने देवत्वे सुरता स्मृता (मेदिनी.तान्त.१७२) ।

लोष्टः लूष हिंसायाम् (चु.५२) । लूषयति । लूषि+क्त, निपातन बल से गुण, कारितस्यानामिङ् विकरणे (कात.३/६/४४) से इन् का लोप, तथा त् को ट् विभक्तिकार्य, लोष्टः । मिट्टी का ढेला । बं.सं.-शुष्कमृत्पिण्ड ।

लूष्+ट, लोष्ट (सरस्वती.२/२/१४) । लूज्-छेदने, क्तः, सुट्, गुणः, लोष्टम् (वै.सि.कौ.उ.३७२) ।

१२७. स्पृहेराय्यः । २-६९।

अस्मादाय्यप्रत्ययो भवति । 'स्पृह ईप्सायाम्' चुरादित्वादिन् । स्पृहयतीति स्पृहयाय्यं गवीनं घृतं वा ।

॥ इति दौर्गसिंहा(सिम्हा)मुणादिवृत्तौ द्वितीयः पादः ॥

स्पृहयाय्यम् स्पृह ईप्सायाम् (चु.१८९) । ईप्सा=चाहना । स्पृहयति । स्पृह को 'चुरादेश्च' (कात.३/२/११) सूत्र से इन्, अय् । स्पृहि+आय्य, 'नाल्विष्णवाय्यान्तेत्पु' (कात.३/२/११) इस सूत्र से कारितसंज्ञक इन् के लोप का अभाव, गुण, अयादेश, विभक्तिकार्य, स्पृहयाय्यम् । गवीन या घृत । नक्षत्र तथा अग्नि (श्वेत.वृ.३-९०) । अभीप्सु ।

(दुर्गसिंह कृत उणादिवृत्ति के द्वितीय पाद की हिन्दी टीका समाप्त)

॥ अथ तृतीयः पादः ॥

१२८. वृज एण्यः । १३-१।

अस्मादेण्यप्रत्ययो भवति । 'वृज् वरणे' वृणोतीति वरेण्यः
श्रेष्ठः ।

वृज् धातु से एण्य प्रत्यय होता है । 'वृजः' यह पञ्चम्यन्त निर्देश है ।

वरेण्यः वृज् वरणे (सु.८) । वरण=पसन्द करना, वरण करना ।
वृणोति । वृ+एण्य, ऋ को अर् गुण, विभक्तिकार्य, वरेण्यः । श्रेष्ठ ।
प्रजापति । अग्नि । अन्न । प्रधान । परंब्रह्मधाम (दश.वृ.८/३) ।

१२९. अर्तेरन्यः । १३-२।

अस्मादन्यप्रत्ययो भवति । 'ऋ गतौ' अर्यते अरण्यं वनम् ।

ऋ धातु से अन्य प्रत्यय होता है ।

अरण्यम् ऋ गतौ (अ.७४) । अर्यति (कर्म) । ऋ+अन्य, ऋ को
अर् तथा न् को ण्, विभक्तिकार्य, अरण्यम् । वन ।

न गच्छति अस्मिन्निति अरण्यम् (प्र.सर्व.३-१०१) । अर्यते
तन्मृगश्वपदैरिति अरण्यम् निर्जनस्थानम् (दश.वृ.८/६) ।

१३०. हो हिरश्च । १३-३।

अस्मादन्यप्रत्ययो भवति हिरादेशश्च । 'ओ हाक् त्यागे'
हीयते हिरण्यं सुवर्णम् ।

हा धातु से अन्य प्रत्यय होता है, तथा हा के स्थान में 'हिर्' आदेश होता है ।

हिरण्यम् ओ हाक् त्यागे (अ.७१) । हीयते (कर्म) । हा+अन्य, हा के स्थान में हिर् आदेश, न् को ण्, विभक्तिकार्य, हिरण्यम् । सुवर्ण ।

पा.उ. हर्यते: कन्यन् हिर् च (दया.उ.को.५/४४) । हर्य+कन्यन्, हिर् आदेश, हिरण्यम् । हर्यति गच्छति इति हिरण्यम् (श्वेत.वृ.५/४९) । हिरण्यं रेतसि द्रव्ये शातकुम्भवराटयोः । अक्षये मानभेदे स्यादकुप्ये च नपुंसकम् । (मेदिनी.यान्त.११४) ।

१३१. पर्जन्यपुण्ये १३-४।

एतौ अन्यप्रत्ययान्तौ निपात्येते । 'पृची सम्पर्के' पृङ्क्ते पृणक्ति वा पर्जन्यः इन्द्रः । 'पुण' शोभे पुणतीति पुण्यं धर्मकर्म ।

पर्जन्य एवं पुण्य ये दोनों अन्य प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

पर्जन्यः पृची सम्पर्के (अ.५३, रु.२१) । सम्पर्क करना, स्पर्श करना, छूना । पृङ्क्ते या पृणक्ति । पृच्+अन्य, ऋ को अर् गुण, च् को ज्, विभक्तिकार्य, पर्जन्यः । इन्द्र । मेघशब्द । पर्जन्यो मेघशब्देऽपि ध्वनदम्बुदशक्रयोः (मेदिनी.यान्त.९१) ।

पृष्+अन्यः, निपातनात् षकारस्य जकारः (दया.उ.को.३/१०३) ।

1. पूणो णकारस्य अन्यस्य (प्रत्ययस्य) च अकारस्य लोपः गुणाभावो णत्वञ्च (बं.सं. ३-१३५) ।
2. शुभकर्म (ति.अनु.३-२) ।

पुण्यम् पुण शुभे (तु.४५) । पवित्र होना, शुद्ध होना । पुणति । पुण्+अन्य, प्रत्ययघटक अकार तथा नकार का निपातन से लोप, विभक्तिकार्य, पुण्यम् । धर्मकार्य । सुकृत । शुभ । पुण्यं शोभने त्रिषु । क्लीबं धर्मे च सुकृते (मेदिनी.यान्त.३७) ।

पूज् (पवने)+अन्य, ह्रस्व, अलोप, अगुण णत्व, (बं.सं.) पूज्+यत्, णुट् आगम, उपधा ह्रस्व, ह्रस्वकरण सामर्थ्य से अगुण, पुण्यम् । (श्वेत.वृ.५/११३) ।

१३२. अमिनक्षिकडिभ्योऽत्रः ।३-५।

एभ्योऽत्रप्रत्ययो भवति । 'अम रोगे' अमतीति **अमत्र** भाजनम् । 'णक्ष गतौ' नक्षतीति **नक्षत्रम्** अश्विन्यादि । 'कड मदे' कडतीति **कडत्रं** चर्मासनम् । 'लडयोः' इत्यैक्यात् **कलत्रं** भार्या नपुंसकलिङ्गे च ।

अम् नक्ष् कड् इन धातुओं से अत्र प्रत्यय होता है ।

अमत्रम् अम रोगे (चु.१४०) । बीमार होना, रुग्ण होना । अमति । अम्+अत्र, विभक्तिकार्य, अमत्रम् । पात्र (वर्तन) ।

अमति भक्षयति अस्मिन् अमत्रम् । (प्र.सर्व.३-१०४) । सर्वमावपन भाण्डं पात्रामत्रं च भाजनम् (अ.को.२/९/३३) ।

नक्षत्रम् णक्ष गतौ (भू.२०८) । नक्षति । 'णो नः' (कात.३/८/३५) से ण् को न् । नक्ष्+अत्र, विभक्तिकार्य, नक्षत्रम् । तारागण । अश्विनी आदि २७ नक्षत्र ।

कडत्रम् कड मदे (भू.१२९, तु.९५) । मद=दुःख या आनन्द में लीन होना । कडति । कड्+अत्र, विभक्तिकार्य, कडत्रम् । चर्मासन ।

इ तथा ल् के समान होने से कलत्रम् । भार्या । गङ्+अत्रन्,
गकारस्य ककारः डलयोरेकत्वस्मरणात् कलत्रम् (उज्ज्वल.३/१०६) । कलत्रं
श्रोणिभार्ययोः (अ.को.३/३/१७८) ।

१३३. भृजोऽतः । ३-६।

अस्मादतप्रत्ययो भवति । 'डु भृज्' बिभर्तीति भरतः
राजा प्रथमतीर्थङ्करपुत्रो नटो वा ।

भृज् धातु से अत प्रत्यय होता है ।

भरतः डु भृज् धारणपोषणयोः (अ.८५) । धारण करना, पोषण
करना । बिभर्ति । भृ+अत, ऋ को अर् गुण, विभक्तिकार्य, भरतः ।
राजा । जैनों के प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव का पुत्र (भरत) ।
नाट्यकला के प्रवर्तक । राम का अनुज । दुष्यन्त-पुत्र । पक्षिविशेष
(भरद्वाज पक्षी) क्षत्रियविशेष । भरतो वाद्यभेदेऽपि दौष्यन्तौ
सञ्चरे नटे । रामानुजे च भरतस्तनुवायेऽपि च क्वचित् ।
(वि.प्र.को.वान्त.११४) ।

१३४. पृषिरञ्जिभ्यां यण्वत् । ३-७।

आभ्यामतप्रत्ययो भवति, स च यण्वत् । 'पृषु वृषु'
पर्वतीति पृषतः कस्तूरीमृगः । 'रञ्ज रागे' जनं रञ्जयतीति
रजतं रौप्यम् । अगुणत्वमनुषङ्गलोपः ।

पृष, रञ्ज् इन दोनों धातुओं से अत प्रत्यय तथा उसको
यण्वद्भाव होता है । यण्वद्भाव करने से कात.व्या. में गुण का निषेध
होता है ।

1. पृष उक्ष सेचने (ति.अनु.३-७) ।

पृषतः पृषु सेचने (भू.२२६) । सेचन=सीचना । पृषति । पृष्+अत, अत को यण्वद्भाव करने से धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, पृषतः । कस्तूरीमृग (चिक्तीदार हरिण) । जलबिन्दु । पृषन्मृगे पुमान् बिन्दौ न द्वयोः पृषतोऽपि ना । अनयोश्च त्रिषु श्वेतबिन्दु-युक्तेऽप्युभाविमौ । (मेदिनी.तान्त.१३६) ।

रजतम् रज्ज रागे (भू.६०५) । राग=रंगना । रज्जयति । रज्ज्+अत, अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः (कात.३/६/१) इस सूत्र से अनुषङ्ग संज्ञक न् का लोप, विभक्तिकार्य, रजतम् । रौप्य (चाँदी) । रजतं त्रिषु शुक्ले स्यात् क्लीबं हारे च दुर्बणे (मेदिनी.तान्त.१४४) । रजतं विशदे दन्तिदन्तयोस्तारहारयोः (वि.प्र.को.तान्त.८६) ।

१३५. आङि वसेरथः^१ । ३-८।

आङि उपपदे वसेरथप्रत्ययो भवति । 'वस निवासे' आङ्पूर्वः । आवसति लोकोऽस्मिन्निति आवसथं गृहम्^२ ।

'आङ्' के उपपद में रहने पर वस् धातु से अथ प्रत्यय होता है ।

आवसथम् वस निवासे (भू.६१४) । रहना, निवास करना । आवसति लोकोऽस्मिन् (जहाँ मनुष्य निवास करते हैं) । आङ् (पूर्वक) वस्+अथ, विभक्तिकार्य, आवसथम् । गृह (घर) । आवसथः (पुं.) ।

कलापोणादि के बं.सं. में सम्, आङ्, परि. उप उपसर्ग पूर्वक तथा नञ् पूर्वक वस् धातु से अथ प्रत्यय होता है । पा.उ. में अन्य उपसर्गों के साथ वस् धातु से अथ प्रत्यय विहित है ।

१. समाङ्पर्युपनञ्सु वसतेरथः (बं.सं.३-१३९) ।

उपसर्गे वसेः (उज्ज्वल.३-११४) ।

२. यज्ञाग्निगृहम् (ति.अनु.३-८) ।

आ-आवसथम् । संवसथः ग्राम । परिवसथः गृहविशेष । उपवसथः समीपवासी । नञ्-अवसथः परिव्राट् ।

१३६. जृवृभ्यामूथः । ३-९।

आभ्यामूथप्रत्ययो भवति । 'जृ' वयोहानौ जीर्यते जरूथम् आर्द्रमांसम् । 'वृञ् वरणे' वृणोतीति वरूथम् रथगोपनम् ।

जृ तथा वृञ् धातु से ऊथ प्रत्यय होता है ।

जरूथम् जृष वयोहानौ (चु.२६५) । जीर्ण होना, अवस्थारहित होना । जीर्यते (कर्म) । जृ+ऊथ, ऋ को अर् गुण, विभक्तिकार्य, जरूथम् । गीला मांस । जरूथम् कलुषम् (सरस्वती.२/२/१६२) ।

वरूथम् 'वृञ् वरणे' (सु.८) । वृणोति । वृ+ऊथ, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, वरूथम् । (वरूथ) । रथगोपन (लड़ाई में शत्रु के प्रहार से बचने के लिए रथ में लगाये हुए लोहा आदि का परदा) । वरूथो रथगुप्तौ स्याद् वरूथं चर्मवेश्मनोः (मेदिनी.थान्त.२१) ।

१३७. अतिचमिरभियुभ्योऽसः । ३-१०।

एभ्योऽसः प्रत्ययो भवति । 'अत सातत्यगमने' अततीति अतसी क्षुमा । नदादित्वादीः । 'चमु क्षमु जमु [चम] तीति चमसं यज्ञोपकरणम् । 'रभ राभस्ये' रभते रभसः उत्साहः । 'यु मिश्रणे' यौतीति यवसः घासः ।

अत्, चम्, रभ, यु इन धातुओं से अस प्रत्यय होता है ।

अतसी अत सातत्यगमने (भू.३) । जाना, निरन्तर चलते रहना । अतति । अत्+अस, स्त्री. में 'नदाद्यन्वि' (कात.२/४/५०) इत्यादि सूत्र

१. जृष वयोहानौ (चु.२६५) ।

से ई प्रत्यय, विभक्तिकार्य, अतसी । क्षुमा । तीसी, (अलसी) ।
अतसः- वायु । आत्मा । अतसी स्यादुमा क्षुमा (अ.को.२/९/२०) ।

चमसः चमु अदने (भू.१५६) । खाना, भक्षण करना । चमति ।
चम्+अस, विभक्तिकार्य, चमसः । यज्ञोपकरण- विशेष । यज्ञपात्र (सोम
पान करने का चमचे के आकार का लकड़ी का यज्ञपात्र) । उड़द या
मसूर आदि का बेसन । स्त्री. चमसी, काष्ठनिर्मित यज्ञपात्र । चमसो
यज्ञपात्रस्य भेदेऽस्त्री पिष्टके स्त्रियाम् (मेदिनी.सान्त.२१) ।

रभसः रभ राभस्ये (भू.४७१) । राभस्य= आनन्दित होना, प्रसन्न
होना । रभते । रभ्+अस, विभक्तिकार्य, रभसः । उत्साह । तेज,
प्रचण्ड । वेग हर्ष । रभसो वेगहर्षयोः (मेदिनी.सान्त.३१) ।

यवसः यु मिश्रणे (अ.६) । मिलना । यौति । यु+अस, गुण,
अवादेश, विभक्तिकार्य, यवसः । घास । अश्वादि की घास । यावसः-
वहियुभ्यां णित्, यावसस्तृणसन्ततौ (उज्ज्वल.३/११९) । घासो यवसं
तृणमर्जुनम् (अ.को.२/४/१६७) ।

१३८. वेतसवाहसदिवसफ-(प) नसाः^१ । ३-११।

एते असप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'वि^२ (वी) प्रजने'
वेतीति वेतसः वानीरः । 'वह प्रापणे' वहतीति वाहसः
अजगरः । दिवु क्रीडादिषु दीव्यतीति दिवसः दिनम् । फण
गतौ फणते फनसः^३ (पनसः) वृक्षविशेषः ।

1. वेतसवाहसदिवसपनसाः (बं.सं.) ।

2. वी गतिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु (क्षी.त.अ.४१), (कात.धा.अ.१४) ।

3. पनसः (श्वेत.वृ.३-१११) पनसः कण्टकिफलम् (उज्ज्वल.३-११७) ।
मं.सं. में 'फणसः' पाठ है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता ।
'पनसः' ऐसा पकारघटक पाठ उणादि ग्रन्थों में प्राप्त होता है ।
अतः यहाँ पनसः पाठ अपेक्षित है ।

वेतस, वाहस, दिवस तथा पनस ये सभी अस प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

वेतसः वी प्रजनकान्त्यसनखादनेषु च (अ.१४) । गर्भवती होना, इच्छा करना, फेंकना, खाना । वेति । वी+अस, धातु को गुण से एकार, त् अन्तादेश, विभक्तिकार्य, वेतसः । वानीर (बैत) । विदुल । वृक्षभेद । काष्ठजाति ।

वाहसः वह प्रापणे (भू.६१०) । पहुँचना, भेजना । वहति । वह+अस, निपातन से धातु की उपधा को दीर्घ, विभक्तिकार्य, वाहसः । अजगर । सर्प । जरद्गव, अग्नि (श्वेत.वृ.३/११४) पा.उ. वहियुभ्यां णित् (वै.सि.कौ.उ.सू.३/३९९) । वाहसो जलनिर्यासेऽजगरे सुनिषण्णके (वि.प्र.को.सान्त.१७) ।

दिवसः दिवु क्रीडादिषु (दि.१) । खेलना आदि । दीव्यति । दिव्+अस, निपातन से गुणाभाव, विभक्तिकार्य, दिवसः (पु.नं.) दिन ।

पनसः पन च (भू.४०२) । पनायते । पन्+अस, पनसः । वृक्षविशेष । कटहल का वृक्ष । काँटा । (फण्+अस- फणसः) ।

१३९. कृशृशलिगर्दिरासिवलिवल्लिभ्योऽभः । १३-१२ ।

एन्योऽभप्रत्ययो भवति । 'डु कृञ् करणे' करोति वेगमिति करभः उष्ट्रः । कपिरिकादित्वाल्लत्वम् । कलभः बालहस्ती । 'शृ हिंसायाम्' शृणातीति शरभः अष्टापदजीवविशेषः । 'शल श्वल आशुगतौ' 'शल चलने वा' शलतीति शलभः पतङ्गः । 'नर्द गर्द शब्दे' गर्दतीति गर्दभः स्वरः । 'रस शब्दे' हेताविन् । रसतीति रासभः स एव ।

1. कृशृगर्दिरासिवल्लिभ्योऽभः (बं.सं.३-१४३) ।

'वल वल्ल च' वलतीति। वलभिः (वलभी) नदादित्वादीः ।
गृहाणामाच्छादनम् । 'वल वल्ल च' वल्लतीति (वल्लते)
वल्लभः हृदयम् ।

कृ, शृ, शल्, गर्द, रास्, वल्, वल्ल इन धातुओं से अभ
प्रत्यय होता है ।

करभः डु कृञ् करणे (त.७) । करोति वेगम् (जो वेग पूर्वक कार्य
करता है) । कृ+अभ, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, करभः । उष्ट्र
(ऊँट) । उष्ट्र का बालक ।

करभो मणिबन्धादिकनिष्ठान्ते तथोष्ट्रके (वि.प्र.को.भान्त.२३) ।
'कपिरिकादेर्लोकतः सिद्धिः' इस नियम से लत्व होने पर कलभः ।
बालहस्ती (हाथी का बच्चा) ।

शरभः शृ हिंसायाम् (क्री.१५) । शृणाति । शृ+अभ, ऋ को अर्,
विभक्तिकार्य, शरभः । आठ पैरों वाला विशेष प्रकार का पशु^२ ।
पशुराज । मृगविशेष । शरभस्त्वष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे
(वि.प्र.को.भान्त.२३) ।

शलभः शल आशुगतौ (भू.१८४) । शल चलने (भू.४१५, ५५४) ।
शलति । शल्+अभ, विभक्तिकार्य, शलभः । पतङ्ग (फतिङ्गा) ।
तितली । समौ पतङ्गशलभौ (अ.को.२/५/२८) ।

गर्दभः गर्द शब्दे (भू.१७) । शब्द करना, आवाज करना । गर्द+अभ,
विभक्तिकार्य, गर्दभः । स्वर विशेष वाला । गधा । गर्दभं श्वेतकुमुदे

1. 'वल वल्ल' धातु (भू.४१६) आत्मनेपदी है । अतः 'वलति' के
स्थान पर वलते पाठ होना चाहिए ।
2. अष्टपादूर्ध्वनयन ऊर्ध्वपादचतुष्टयः ।
सिंहं हन्तुं समायाति शरभो वनगोचरः । (महा. १२/११७/१२) ।

गर्दभो गन्धभिद्यपि । रासभे गर्दभी क्षुद्ररोगजन्तुविशेषयोः ।
(मेदिनी.भान्त.१५-१६) ।

रासभः रस शब्दे (भू.२३२) । धातोश्च हेतौ (कात.३/२/१०) सूत्र से इन्, रासि+अभ, 'कारितस्यानामिड्विकरणे' (कात.३/६/४४) से इन् का लोप, विभक्तिकार्य, रासभः । गर्दभः । गर्दभ स्वर ।

वलभी 'वल च' (भू.४१६) । वलते । वल्+अभ, नदादिगण में पाठ होने से 'नदाद्यन्चि' (कात.२/४/५०) इत्यादि सूत्र से ई प्रत्यय, विभक्तिकार्य, वलभी । घरों के छत ढकने का आवरण ।

वल्लभः वल्ल संवरणे (भू.४१६) । आच्छादित करना, ढकना । वल्लते । वल्ल्+अभ, विभक्तिकार्य, वल्लभः । हृदय । प्रिय । वल्लभो दयितेऽध्यक्षे सल्लक्षणतुरङ्गमे (मेदिनी.भान्त.१८) ।

१४०. ऋषिवृषिभ्यां यण्वत् ।३-१३।

आभ्यामभप्रत्ययो भवति । स च यण्वत् । 'ऋष्टि' (रि पि) ऋषि (ऋषी) गतौ' ऋषतीति ऋषभः नाभेयो^२ जिनः । गन्धर्वस्वरविशेषो वा । 'पृषु वृषु उक्ष सेचने' वर्षतीति वृषभः गौः^३ ।

1. 'ऋष्टि ऋषि' म.सं. । 'ऋष्टि' ऐसा पाठ धातुपाठ में उपलब्ध नहीं होता । 'रि पी ऋषी' ऐसा पाठ मिलता है । सम्भवतः रि पि के स्थान में प्रमाद से 'ऋष्टि' पाठ हो गया हो । रि पी ऋषी गतौ (तु.१५) ।
2. नाभिमूलाद् यदा वर्ण उत्थितः कुरुते ध्वनिम् । वृषभस्येव निर्याति हेलया ऋषभः स्मृतः (इति सङ्गीतदामोदरः, शब्दकल्पद्रुमः, पृ.२८७) ।
3. अनड्वान् (बं.सं.३/१४४) ।

ऋष्, वृष् इन धातुओं से अभ प्रत्यय होता है । अभ को यण्वद्भाव भी होता है । यण्वद्भाव होने से धातु को गुण का निषेध होता है ।

ऋषभः ऋषी गतौ (तु.१५) । ऋषति । ऋष्+अभ, यण्वद्भाव से ऋ को गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, ऋषभः । नरश्रेष्ठ । जिन । गन्धर्व का विशेष स्वर (वीणा आदि के तार तथा गन्धर्व के मुख से निकला हुआ स्वर) । संगीत के सात स्वरों में से दूसरा । बैल, पुच्छ, छिद्र, औषध, कर्ण । ऋषभः स्वरभेदे स्यादष्टवर्गौषधे वृषे । श्रेष्ठार्थे च वराहस्य पुच्छे रन्ध्रे च कर्णयोः । (वि.प्र.को.भान्त.२४)

वृषभः वृषु सेचने (भू.२२६) । सींचना, बरसा करना, बरसना । वर्षति । वृष्+अभ, यण्वद्भाव से गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, वृषभः । बैल । पुङ्गव, वृष । अनङ्वान् । वृषभः पुङ्गवे वृषे (वि.प्र.को.भान्त.२५) ।

१४१. इः सर्वधातुभ्यः। १३-१४।

सर्वधातुभ्यो यथासङ्ख्यम् (यथासम्भवम्) इः प्रत्ययो भवति । 'क्षु रु शब्दे' रौतीति रविः सूर्यः । [कु शब्दे] कौतीति कविः काव्यकर्ता शुक्रश्च । 'दृ विदारणे' दृणातीति दरिः गुहा । 'ध्वन शब्दे' ध्वनतीति ध्वनिः शब्दः । 'वल वल्ल च' वलतीति^१ वलिः दैत्यविशेषः । वल्लते वल्लिः लता । स्त्रियाम् ईः । वल्ली । 'अव रक्ष पालने' ऊर्णाभिरात्मानमवतीति अविः मेषः । 'सजि^२ छपि पथि गतौ'

1. सर्वधातुभ्य इः (बं.सं.) ।

2. वलतीति म.सं. । वल धातु आत्मनेपद पठित है । अतः 'वलते' पाठ होना चाहिए ।

3. धातुपाठ में 'ष्वर्त' पठित है । सर्जि के स्थान पर 'ष्वर्त' होना चाहिए । (कात.चु.२७) ।

चौरादिः । इदनुबन्धत्वान्नागमः । पन्थयतीति पन्थाः मार्गः ।
'मन्थ विलोडने' मन्थतीति मन्थाः मथनदण्डः । पथिमन्थ्यादीना-
मात्वम् । 'हृन् हरणे' हरतीति हरिः विष्णुः अक्कादिषु ।

सभी धातुओं से यथासम्भव इ प्रत्यय होता है । बं.सं. में
'इससे विपरीत 'सर्वधातुभ्य इः' ऐसा सूत्र पाठ है ।

रविः रु शब्दे (अ.१०) । रौति । रु+इ, गुण, अवादेश, विभक्तिकार्य,
रविः । सूर्य ।

कविः कु शब्दे (अ.१०) । कु+इ, गुण अवादेश, विभक्तिकार्य,
कविः । काव्यकर्ता, शुक्र । कविः काव्यकरे सूरौ कविर्वाल्मीकिशुक्रयोः
(वि.प्र.को.वान्त.२४) ।

दरिः दृ विदारणे (क्री.१९) । विदारण=चीरना, फाड़ना । दृणाति ।
दृ+इ, ऋ को अरु, विभक्तिकार्य, दरिः । गुहा । प्रपात । दरी तु
कन्दरो वा (अ.को.२/३/६) ।

ध्वनिः ध्वन शब्दे (भू.१४६, ५३०, चु.२०७) । शब्द करना ।
ध्वनति । ध्वन्+इ, विभक्तिकार्य, ध्वनिः । शब्द । आवाज ।

बलिः वल वल्ल च (भू.४१६) । आच्छादित करना, ढकना,
चलना । वलते । वल्+इ, वकार को बकार, विभक्तिकार्य, बलिः ।
दैत्यराट् । उपहार, आहार, पूजा, चंवर का दण्ड, एक प्रसिद्ध
राक्षस । बलिश्चामरदण्डे च जरया श्लथचर्मणि । उदरावयवे दैत्ये
करपूजोपहारयोः । गृहदारुविशेषे च, गन्धकेऽपि क्वचिन्मतः ।
(वि.प्र.को.लान्त.३६)

वल्लिः वल्लते । वल्ल्+इ, वल्लिः । लता । स्त्री. में 'नदाद्यन्वि'
इत्यादि सूत्र से ई, विभक्तिकार्य, वल्ली । वल्ली स्यादजमोदायां

व्रतत्यामपि योषिति (मेदिनी.लान्त.३८) । पुष्पभेदेऽपि वीरुधि
(वि.प्र.को.लान्त.५१) ।

अविः अव पालने (भू.२०२) । रक्षा करना । ऊर्णाभिरात्मानमवति (जो
ऊन से अपनी रक्षा करता है) । अव्+इ, विभक्तिकार्य, अविः ।
मेष । भेड । पर्वत । रवि । ऊनी कम्बल । चूहा । स्त्री. अविः
रजस्वला स्त्री । अविः शैले रवौ मेषे भवेन्मूषिककम्बले । ऋतुमत्यामविः
प्रोक्ता शिविर्भूर्ज्जे नृपान्तरे । (वि.प्र.को.वान्त.२६)

पन्थाः पथि गतौ (चु.२७) । पन्थयति । पथि में इदनुबन्ध के कारण
न आगम । पन्थ्+इ, लिङ्गसंज्ञा, सि, 'पन्थिमन्थ्यृभुक्षीणां सौ'
(कात.२/२/३५) इस सूत्र से पन्थि घटक इकार को आकार,
विभक्तिकार्य, पन्थाः । मार्ग ।

मन्थाः मन्थ विलोडने (भू.६) । विलोडन=मथना । मन्थति । मन्थ्+इ,
लिङ्गसंज्ञा, सि, पन्थिमन्थ्यृभुक्षीणां सौ' (कात.२/२/३५) इस सूत्र से मन्थि
घटक इकार को आकार, विभक्तिकार्य, मन्थाः । मथनदण्ड । (मथानी-
मथानी का दण्डा) ।

हरिः हव् हरणे (भू.५९६) । हरति । ह्+इ, ऋ को अद्,
विभक्तिकार्य, हरिः । विष्णु अक्का आदि । सिंह ।
हरिश्चन्द्रार्कवाताश्वशुकभेकयमाहिषु । कपौ सिंहे हरेऽजेऽशौ, शक्रे
लोकान्तरे पुमान् । वाच्यवत् पिङ्गहरितोर्हारो मुक्तावलौ युधि ।
(मेदिनी.रान्त.९९-१००)

ति.अनु.- ग्रन्थिः सर्वबन्धन । पविः वज्र ।

१४२. गृनाम्युपधात् क्विः। (किः) १३-१५।

गिरतेः नाम्युपधाच्च^२ धातोः क्विः प्रत्ययो भवति ।
नाम्नि उपधा यस्येति विग्रहः । 'गृ निगरणे' गिरतीति गिरिः
पर्वतः । 'रुच दीप्तौ' रोचते रुचिः अभिलाषः । 'दिपि^३
(दीपी) दीप्तौ' दीप्यत इति दीपिः । 'कृष विलेखने' कर्षतीति
कृषिः कर्षणम् । 'घृणु दीप्तौ' घृणोतीति घृणिः दीप्तिः ।
इत्यादयोऽप्यनुसर्तव्याः ।

गृ धातु तथा जिस धातु की उपधा में नामि संज्ञक वर्ण हो,
उससे कि प्रत्यय होता है । नामी उपधा यस्य (बहु.समा.) नाम्युपधः,
तस्मात् नाम्युपधात् ।

गिरिः गृ निगरणे (तु.२२) । निगलना, खाना गिरति । गृ+कि,
'ऋदन्तस्येरगुणे' से ऋ को इ, विभक्तिकार्य, गिरिः । पर्वत । गिरिर्गर्गिणौ
गिरियके क्रीडाकन्दुकशैलयोः । नेत्रामयविशेषेऽपि मत्स्ये तु गिरिरन्यवत् ।
(वि.प्र.को.रान्त.८०)

रुचिः रुच दीप्तौ (भू.४७३) । चमकना, रुचना, अच्छा लगना ।
रोचते । रुच्+कि, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुणाभाव,
विभक्तिकार्य, रुचिः । अभिलाषा । किरण । शोभा । रुचिर्मयूखे
शोभायामभिष्वङ्गाभिलाषयोः (वि.प्र.को.चान्त.७) ।

१. पाठा.- गृनाम्युपधाच्च किः । (क्वि म.सं.) । 'क्वि' में वकार का पाठ यहाँ व्यर्थ है । ति.अनु. में 'कि' पाठ है । अतः 'क्वि' के स्थान पर 'कि' पाठ होना चाहिए ।
२. नाम्युपधाच्च धातोः म.सं. । यहाँ नाम्युपधात् च धातोः' ऐसा विच्छेद होगा । इसमें (विसर्ग को श् होने पर) नाम्युपधाद्धातोश्च' ऐसा पाठ उचित होगा ।
३. प्रायः धातुपाठों में 'दीपी' पाठ उपलब्ध होता है । वृत्ति में 'दिपि' के स्थान पर 'दीपी' पाठ होना चाहिए । दीपी दीप्तौ (दि.९५) ।

दीपिः दीपी दीप्तौ (दि.१५) । चमकना, प्रकाशित होना । दीप्यते ।
दीप्+कि, विभक्तिकार्य, दीपिः । प्रकाश । प्रभा ।

कृषिः कृष विलेखने (भू.२२३) । विलेखन=खींचना, जोतना । कृष्यते ।
कृष्+कि, गुणाभाव, विभक्तिकार्य, कृषिः । कर्षण (जोतना) । धान्य
(बं.सं.) । खेती ।

घृणिः घृणु दीप्तौ (त.६) । घृणोति । घृण्+कि, विभक्तिकार्य, घृणिः ।
दीप्ति । प्रकाश ।

इसी प्रकार 'कि' प्रत्यय के द्वारा एतदतिरिक्त अन्य लोकप्रयुक्त
शब्दों को भी निष्पन्न कर लेना चाहिए ।

१४३. गण्डिमण्डिभ्यो (मण्डिभ्याम्) झः । १३-१६ ।

आभ्यां झप्रत्ययो भवति । 'गडि वदनैकदेशे'
इदनुबन्धत्वान्नागमः । हेताविन् । गण्डयतीति गण्डयन्तः^२
भूषणम् । 'मडि भूषायाम्' मण्डयतीति मण्डयन्तः ।

गण्डयन्तः गडि वदनैकदेशे (भू.१३१) । (गालो में रोग होना)
गण्डमाला होना, वदन के एक देश में होने वाली क्रिया । गडि
के इदनुबन्ध सहित होने से न् आगम । 'धातोश्च हेतौ' (कात.३/२/१०)
सूत्र से इन् । गण्डयति । गण्डि+झ, 'युवुझामनाकान्ताः' (कात.४/६/५४)
इस सूत्र से झ को अन्तादेश, गुण, अवादेश, विभक्तिकार्य, गण्डयन्तः ।
मेघ । दन्त । जाल । कपोल ।

- पाठा. गण्डिमण्डिभ्यां झच्, गण्डयन्तो दन्तः, मण्डयन्तः भूषणम्
(बं.सं.) ।
- 'गण्डयन्तः' शब्द का भूषण अर्थ उपयुक्त नहीं है । मण्डयन्तः का
भूषण अर्थ उपलब्ध होता है और संगत भी है । प्रतीत होता है
कि मुद्रण दोष से मण्डयन्तः का भूषण अर्थ गण्डयन्तः के साथ
जोड़ दिया जो कि मण्डयन्तः के बाद वृत्ति में देना चाहिए था ।

मण्डयन्तः मण्डि भूषायाम् (चु.१२) । अलङ्कृत करना, सजाना ।
मण्डयति । 'मण्डि+ङ्, 'युवुझामनाकान्ताः' (कात.४/६/५४) इस सूत्र से
ङ् को अन्तादेश, गुण अयादेश, विभक्तिकार्य, मण्डयन्तः । भूषण ।
अलङ्कार ।

१४४. जी(जि)विशिवसिभासिवहिनन्दिहिसाधिभ्यश्च । ३-१७।

एभ्यो झप्रत्ययो भवति । 'जि जये' जयतीति जयन्तः
इन्द्रपुत्रः । 'विश प्रवेशने' विशति लोकोऽस्मिन्निति वेशन्तः
पल्लवम् । 'वस निवासे' वसति लोकोऽस्मिन्निति वसन्तः
ऋतुराजः । 'भासु दीप्तौ' भासतीति (भासते) भासन्तः
शोभनम् । 'वह प्रापणे' वहतीति वहन्तः कालः । 'दु नदि
समृद्धौ' नन्दतीति नन्दन्तः बुद्धिमान् हृष्टो वा । 'हि गतौ'^२
हिनोतीति हेमन्तः ऋतुविशेषः । 'राध साध संसिद्धौ' साध्यतीति
साधन्तः भिक्षुः ।

जि, विश, वस, भास, वह, नन्द, हि, साध इन धातुओं से झ
प्रत्यय होता है । झ् को अन्तादेश होता है ।

जयन्तः जि जये (भू.१११) । जीतना । जयति । जि+ङ्, झ् को
अन्तादेश, गुण तथा अयादेश से जय् अन्त=जयन्त, लिङ्गसंज्ञा, सि,
विसर्ग जयन्तः । इन्द्र का पुत्र । शङ्कर । जयन्तः पाकशासनिः
(अ.को.१/१/४६) ।

वेशन्तः विश प्रवेशने (तु.५७) । प्रवेश करना, घुसना । विशति
लोकोऽस्मिन् । विश्+ङ्, झ् को अन्तादेश, गुण, विभक्तिकार्य, वेशन्तः ।

1. भासु दीप्तौ (पा.धा.भू.६६५) धातु आत्मनेपद पठित है । तदनुसार
वृत्ति में भासति के स्थान पर 'भासते' ऐसा आत्मनेपदरूप अपेक्षित
है ।

2. हिम इति सौत्रोऽयं धातुः, हेमन्तः (बं.सं.) ।

पल्वल । सरोवर । पोखरा । पानी का छोटा गड्ढा । वेशन्तः
पल्वलं चाल्पसरः (अ.को.१/१०/२८) ।

वसन्तः वस निवासे (भू.६१४) । वसति लोकोऽस्मिन् । वस्+झ, झ्
को अन्तादेश, वसन्तः । ऋतुराज ।

भासन्तः भासु दीप्तौ (भू.४४० भास दीप्तौ) । चमकना, प्रकाशित
होना । भासते । भास्+झ, झ् को अन्तादेश, विभक्तिकार्य, भासन्तः ।
सुन्दर । शोभन । पक्षी । भासन्तः सुन्दराकारे भासन्तो भासपक्षिणि
(वि.प्र.को.तान्त१३७) ।

वहन्तः वह प्रापणे (भू.६१०) । पहुँचाना, भेजना, ढोना । वहति ।
वह्+झ, झ् को अन्तादेश, विभक्तिकार्य, वहन्तः । काल । समय ।

नन्दन्तः नु नदि समृद्धौ (भू.२५) । वृद्धि होना, आनन्द पाना ।
इदित् होने से न् आगम । नन्दति । नन्द्+झ, झ् को अन्तादेश,
विभक्तिकार्य, नन्दन्तः । बुद्धिमान् या हृष्ट पुरुष । समृद्धिमान् (ति.अनु.)
नन्दयतीति नन्दयन्तः राजा हिरण्यञ्च (श्वेत.वृ.३-१२३) ।

हेमन्तः हि गतौ (सु.११) । हिनोति । हि+झ, झ् को अन्तादेश, तथा
म् आगम गुण, हेमन्तः । हन्ति प्राणिनः तुषारादिना इति हेमन्तः
ऋतुविशेषः (श्वेत.वृ.३-१२४) ।

साधन्तः साध संसिद्धौ (सु.१६) । संसिद्धि=सिद्ध करना, पूर्ण करना ।
साध्नोति (साध्यति) (कार्याणि) । साध्+झ, झ् को अन्तादेश, विभक्तिकार्य,
साधन्तः । भिक्षु । बं.सं.-साधयन्तः ।

१४५. कुडो ररक् । ३-१८।

अस्माद्ररकप्रत्ययो भवति । 'कुड' शब्दे कवते कुररः पक्षी । स्त्रियान्तु कुररी ।

कु धातु से ररक् प्रत्यय होता है । 'ररक्' में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है । इससे धातु को गुण का निषेध होता है ।

कुररः कुड् शब्दे (भू.४५८) । बोलना । कवते । कु+ररक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, कुररः । पक्षी । स्त्री-कुररी । चक्रन्द सीता कुररीव भूयः (रघु.१४-६८) ।

तु.- कुवः क्ररन्, कुररः (दया.उ.को.३-१३३) ।

१४६. अङ्गिमदिमन्दि^२कडिमृजिभ्य आरः । ३-१९।

एभ्य आरप्रत्ययो भवति । अगिः गत्यर्थः । अङ्गतीति अङ्गारः दग्धकाष्ठम् । 'मदी हर्षे' माद्यतीति^३ मदारः मत्तहस्ती । 'मदि स्तुत्यादौ' मन्दते मन्दारः वृक्षः । 'कड मदे' कडतीति कडारः पिङ्गलः । 'मृजू शुद्धौ' आख्वर्थं गृहं माष्टीति मार्जारः बिडालः । कनीनिका इत्यादौ । श्रकि गत्यर्थः । श्रङ्कते शृङ्गारः^४ रसविशेषः । कस्य गत्वं रेफस्य ऋत्वम् ।

1. कौतेरवक् (ति.अनु.३-१८) कुरवः ।

2. अङ्गिमदिमन्थि म.सं. । यहाँ 'मथि' के स्थान पर 'मन्दि' पाठ अपेक्षित है । यतः वृत्ति में मन्द् धातु से मन्दारः शब्द निष्पादित है । अतः 'मथि' के स्थान पर 'मदि' पाठ किया गया ।

3. मद्यते म.सं. । 'मदी हर्षे' धातु के दैवादिक परस्मैपद होने से 'माद्यति' रूप होना चाहिए । अतः वृत्ति में 'मद्यते' के स्थान पर 'माद्यति' पाठ किया गया ।

4. शृङ्गारभृङ्गारकुञ्जरः बं.सं. (३-१५१) (ति.अनु.) म.सं. में शृङ्गार, भृङ्गार तथा कुञ्जर ये तीनों शब्द इसी सूत्र की वृत्ति में तो

'भृज्' बिभर्ति जलमिति भृङ्गारः जलस्थानम् । न्वात्वागमो
(न्वागमो) गोन्तश्च (गोऽन्तश्च) 'कूज² अव्यक्ते शब्दे' कूजते
(कूजति) कुञ्जरः हस्ती । कूजेः परस्याकारस्य ह्रस्वत्वम्,
जकारात्पूर्वो नागमः ऊकारस्य उकारः ।

अग्, मदी, मदि, कड, मृज्, इन धातुओं से आर प्रत्यय होता है । इन धातुओं के अतिरिक्त श्रकि, भृ, एवं कूज् इन धातुओं से भी आर प्रत्ययान्त शृङ्गार, भृङ्गार तथा कुञ्जर इन तीन शब्दों का निर्देश किया है । ये तीनों शब्द सम्भवतः निपातन से सिद्ध होते हैं । अत एव इन तीनों के लिए देवनागरी में पृथक् सूत्र होना चाहिए । बं.सं. एवं ति.अनु. में 'शृङ्गारभृङ्गारकुञ्जराः' ऐसा पृथक् सूत्र पाठ उपलब्ध होता है, किन्तु म.सं. में इसी सूत्र की वृत्ति के अन्तर्गत ये तीनों शब्द संगृहीत हैं ।

अङ्गारः अगि गत्यर्थः (भू.३८) । इदनुबन्ध से न् आगम । अङ्गति । अङ्ग्+आर, अनुस्वार, तद् वर्गीय पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, अङ्गारः । जलती हुई लकड़ी । निर्धूम । अङ्गारम् (नपुं.) । अङ्गारोऽलातभौमयोः (वि.प्र.को.रान्त.१८२) ।

मदारः मदि स्तुत्यादौ (दि.४८) । प्रसन्न होना, तुष्ट होना । माद्यति । मद्+आर, मदारः । मतवाला हाथी । मदारो द्विरदे धूर्ते (वि.प्र.को.रान्त.१६९) ।

पठित है किन्तु इनका सूत्र में निर्देश नहीं है । इसीलिए बं.सं. एवं ति.अनु. में इनके संग्रहार्थ एक पृथक् सूत्र ही निर्दिष्ट है अतः म.सं. में भी ऐसा ही पृथक् सूत्र होना चाहिए ।

1. न्वात्वागमः म.सं. । इसके स्थान पर 'न्वागम' (नु आगम) पाठ तथा गोन्तः के स्थान पर 'गोऽन्तः' पाठ उचित एवं शुद्ध होगा ।
2. खजि गतिवैकल्ये (भू.६९) खजेः खकारस्य कुः, अनुस्वारः, वर्गान्तः ति.अनु. ।

मन्दारः मदी हर्षे (दि.४८) । मन्द्+रक्, विभक्तिकार्य, मन्दारः ।
वृक्ष । मन्दारः पारिभद्रार्कपर्णयोः सुरद्रुमेऽपि (वि.प्र.को.रान्त.१६६) ।

कडारः कड मदे (भू.१२९) । मद=दुःख या आनन्द में लीन होना ।
कडति । कड्+आर, विभक्तिकार्य, कडारः । पिङ्गल । पीला या
भूरा रंग । दास । कडारः पिङ्गले दासे (मेदिनी.रान्त.१३०) ।

तु.- गडेः कड च, गड्+आर, गड् को कड, कडारः
(दया.उ.को.३/१३५) ।

मार्जारः मृजु शुद्धौ (अ.२९) । धोना, स्वच्छ करना । आख्वर्थं गृहं
मार्ष्टि (जो चूहों को पकड़ने हेतु घर की सफाई करता है) ।
मृज्+आर, ऋ को आर् वृद्धि, विभक्तिकार्य, मार्जारः । बिडाल ।
बिलार । मार्जारः ओतौ खट्वांशे (मेदिनी.रान्त.२०४) । स्त्री. मार्जारी ।
बिल्ली । कनीनिका (आंख की पुतली) ।

शृङ्गारः श्रक् गत्यर्थः (भू.३३१) । श्रङ्गते । श्रङ्क्+आर, रकार को
ऋ, ककार को गकार विभक्तिकार्य, शृङ्गारः । रसविशेष । शृङ्गारः
सुरते नाट्यरसेऽपि गजमण्डने (वि.प्र.को.रान्त.१८३) । दम्पत्योरन्योन्यं
सम्भोगस्पृहा (दया.उ.को.३-१३६) ।

भृङ्गारः डु भृज् धारणपोषणयोः (अ.८५) । बिभर्ति जलम् (जो जल
को धारण करता है) । भृ+आर, ग् अन्तादेश, नु आगम, न् को

-
1. बं.सं. एवं ति.अनु. में 'शृङ्गारभृङ्गारकुञ्जराः' ऐसा पृथक् सूत्रपाठ
है । म.सं. में इन तीनों शब्दों को सूत्रान्तर्गत (३-१९) पढ़ा
गया । बं.सं. के अनुसार देवनागरी में इन तीनों शब्दों को पृथक्
सूत्र में उपदिष्ट होना चाहिए ।

अनुस्वार, तथा तद्वर्गीय पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, भृङ्गारः ।
जलस्थान । काञ्चनघट । भृङ्गारः कनकालुके (वि.प्र.को.रान्त.१८२) ।

कुञ्जरः कूज अव्यक्ते शब्दे (भू.७४) । अस्पष्ट बोलना । कूजति ।
कूज्+आर, कूज् से परवर्ती आर में ह्रस्व से अर, तथा जकार के पूर्व
न् आगम, एवं कूज घटक ऊकार को उकार, विभक्तिकार्य,
कुञ्जरः । हस्ती । कुञ्जरोऽनेकपे केशे स्त्री धातव्याञ्च पाटलौ
(मेदिनी.रान्त.१३८) ।

१४७. सर्तेरपष्पोऽन्तश्च । ३-२०।

अस्मादपप्रत्ययो भवति षोऽन्तश्च । 'सृ गतौ' सरतीति
सर्षपः सिद्धार्थः ।

सृ धातु से अप प्रत्यय तथा ष् अन्तादेश होता है ।

सर्षपः सृ गतौ (भू.२७४) । सरति । सृ+अप, ष् अन्तादेश, धातु में
ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, सर्षपः । सिद्धार्थः । सफेद सरसो ।
धान्यविशेष । सिद्धार्थस्त्वेष धवलः (अ.को.२/९/१७) ।

१४८. विटपादयः । ३-२१।

विटपकुणपकुटपदलपोलपाः । एते अपप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।
'विट शब्दे' । विटतीति विटपः स्तम्भः । 'कुण शब्दे' कुणतीति
कुणपः शवः । 'कुट कौटिल्ये' कुटतीति कुटपः मानविशेषः ।

1. विड आक्रोशे (भू.१०१) ति.अनु.-बं.सं. ।

'दल जि फला'। दलतीति दलपः प्रहरणम् । 'ऋ गतौ'
इयतीति उलपः तृणविशेषः । एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

विटप, कुणप, कुटप, दलप, उलप ये अप प्रत्ययान्त सभी शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

विटपः विट शब्दे (भू.१००) । शब्द करना, हास्य करना (हास्यशब्दे, का.कृ.धा.भू.१०९) वेदति । विट्+अप, विभक्तिकार्य, विटपः । स्तम्ब । तरु का अवयव विशेष । गुच्छा, विस्तार, शाखा (अ.को.३/३/१३१) । विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम् (अ.को.२/४/१४) ।

कुणपः कुण शब्दे (तु.४७) । कुणति । कुण्+अप, कुणपः । शव । मुर्दा । विट्शारिकाया कुणपः पूतिगन्धौ शवेऽपि च (वि.प्र.को.णान्त.२०) ।

कुटपः कुट कौटिल्ये (तु.८३) । टेढ़ा होना, ठगना । कुटति । कुट्+अप, विभक्तिकार्य, कुटपः । मानविशेष । नापने का पात्र । कुटपो मानभेदे स्यात् कुटपो निष्कुटे मुनौ (वि.प्र.को.पान्त.१३) ।

दलपः दल जि फला विशरणे (भू.१६५) । विशरण=कुम्हलाना, मुरझाना । दलति । दल्+अप, विभक्तिकार्य, दलपः । प्रहरण । शस्त्र ।

उलपः ऋ गतौ (अ.७४) । इयति । ऋ+अप, निपातन से ऋ को उ, ए को ल, विभक्तिकार्य, उलपः । तृणभेद । कोमल तृण । उलपस्तृणभेदे स्याद् गुल्मिन्यामुलपः स्मृतः (वि.प्र.को.पान्त.१४) ।

कलतेः सम्प्रसारणम्, उलपं कोमलं तृणम् (वै.सि.कौ.उ.सू.३/४२५) ।

-
1. दल विदारणे (चु.१६९) अथवा दल जि फला विशरणे (भू.१६५) ति.अनु. ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अप प्रत्ययान्त शब्दों को निपातन से निष्पन्न कर लेना चाहिए ।

यथा- उषपः वह्नि, सूर्य । कचपम् शाकपात्र । खण्डपम् घृत । पिष्टपम् भुवन । विशिपम् गृह, मन्दिर । (उज्ज्वल.३-१४३, १४५) ।

१४९. वृतेस्तिकः ।३-२२।

अस्मात् तिकप्रत्ययो भवति । 'वृतु वर्तने' वर्तत इति वर्तिका दीपाश्रयः । चटिका वा । स्त्रियामादा ।

वृत् धातु से तिक प्रत्यय होता है । बं.सं. में वृज् धातु से तिक प्रत्यय विहित है ।

वर्तिका वृतु वर्तने (भू.४८४) । व्यवहार करना, रहना । वर्तते । वृत्+तिक, ऋ को अर्, स्त्री. में 'स्त्रियामादा' (कात.२/४/४९) इस सूत्र से आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, वर्तिका । दीपाश्रय या चटिका (पक्षिविशेष) ।

वृतेः ण्वुलि गुणे 'वर्तका शकुनौ प्राचाम्' (पा.७/३/४५,९) उज्ज्वल.३-१४६) ।

१५०. कृतिभिदिलतिभ्यो यण्वत् ।३-२३।

एभ्यस्तिकप्रत्ययो भवति, स च यण्वत् तेनागुणत्वम् । 'कृती छेदने' शुभं कृन्ततीति कृत्तिकाः स्त्रीत्वं बहुत्वं च, बहुला । 'भिदिर् विदारणे' भिनत्तीति भित्तिका कुड्यम् । लत इति सौत्रोऽयं धातुः । लततीति लत्तिका गोधा ।

१. पाठा. कृतभिदिलभितुलिनतिभ्यो यण्वत् (बं.सं.सू.३-१५५) । कृतभिदिलतिभ्यः कित् (श्वेत.वृ.३-१४१) ।

कृत्, भिद्, लत् इन धातुओं से तिक प्रत्यय होता है तथा तिक को यण्वद्भाव होता है । यण्वद्भाव होने से धातु को गुण का निषेध होता है । बं.सं. में कृत् भिद्, लभ्, तुल, नत् इन धातुओं से तिक तथा यण्वद्भाव विहित है ।

कृत्तिका: कृती छेदने (तु.१२) । काटना, छेदना । शुभं कृन्तति (जो शुभ को काटती है) कृत्+तिक, यण्वद्भाव होने से धातु को गुण का निषेध, स्त्री. नित्य बहुवचन में जस्, विभक्तिकार्य, कृत्तिकाः । बहुला । नक्षत्र । अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में तीसरा नक्षत्र ।

भित्तिका भिदिर् विदारणे (रु.२) । विदारण=चीरना, तोड़ना । भिनत्ति । भिद्+तिक, 'अघोषे प्रथमः' (कात.२/३/६१) से द् को तु, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, भित्तिका । कुड्य । भीत, दीवाल ।

लत्तिका लत (सौत्र धातु) लतति । लत्+तिक, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, लत्तिका । गोधा (छिपकली) । बं.सं.-लभ्-लब्धिका । तुल-तोलिका । नत्तिका ।

१५१. इष्यसि। (शि)भ्यां तकः । ३-२४।

आभ्यां तकप्रत्ययो भवति । ('इषु इच्छायाम्' इच्छतीति इष्टका पक्वमृद्विशेषः । 'अश भोजने' अशनातीति अष्टका श्राद्धविशेषः²⁾ इष्टका । अष्टका ।

1. पाठा. इष्यशिभ्या तकः (बं.सं.सू.) इष् एवं अश् धातु से पञ्चपादी तथा बं.सं. में 'तक' प्रत्यय करके इष्टका, अष्टका शब्दों की निष्पत्ति की गई है । मद्रास संस्करण में दन्त्य के स्थान पर तालव्य 'अश्' घटित पाठ 'इष्यशिभ्याम्' ऐसा होना चाहिए ।
2. म.सं. में इष्टका तथा अष्टका शब्दों की प्रकृतिभूत धातु एवं व्युत्पत्ति तथा शब्दार्थ अनिर्दिष्ट हैं । एतदर्थ पूर्व सम्पादक ने.....१६ बिन्दुओं का निर्देश किया है । कलापोणादि के बं.सं. के आधार पर 'इषु इच्छायाम्' इच्छतीति तथा 'अश भोजने'

इष् एवं अश् धातुओं से तक प्रत्यय होता है । 'तक' यह निरनुबन्ध प्रत्यय है । वृत्ति में धातु एवं व्युत्पत्ति तथा उदाहरणार्थ अनिर्दिष्ट है । बं.सं. में उपलब्ध पाठ के आधार पर वृत्ति में कोष्ठक के अन्दर 'इषु इच्छायाम्' इत्यादि पाठ रखा गया है । इस पाठ की सङ्गति पञ्चपादी पाठ से भी होती है (द्र.उज्ज्वल.३-१४८) ।

इष्टका इषु इच्छायाम् (तु.७०) । चाहना । इच्छति । इष्+तक, षकार योग में तकार को टकार, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, इष्टका । ईट (पकी मिट्टी से बना हुआ, जो पक्के मकान आदि के निर्माण में लगता है) । इष्टका मृद्विकारविशेषः (मु.को.पृ.५१, पं.२८) ।

अष्टका अश भोजने (क्री.४३) । खाना, भोजन करना । अश्नाति । अश्+तक, 'छशोश्च' (कात.३/६/६०) से शकार को षकार, तथा 'तवर्गस्य षटवर्गाद्वर्गः' (कात.३/८/५) से तकार को टकार, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, अष्टका । श्राद्धविशेष (बं.सं.) ।

अष्टका पितृदेवत्ये सा च वैदिककर्मविशेषः (उज्ज्वल.३-१४८) । अष्टका श्राद्धभेदः, पौषादिमासत्रयाणां कृष्णाष्टम्यां श्राद्धक्रियाविशेषः (मु.को.लिङ्गानु.पृ.५३-पं.१९) ।

१५२. [दृगृभ्यां भः। १३-२५।]

'दृ विदारणे' दृणातीति दर्भः कुशः पवित्रकरणम् । 'गृ निगरणे' नाभिनालेन मातुराहारं गिलतीति गर्भः प्रसिद्ध-प्रसूतिकारणम्^२ ।

दृ एवं गृ इन दोनों धातुओं से भ प्रत्यय होता है ।

'अश्नाति' इत्यादि अश कोष्ठक में रख कर पाठ पूर्ति कर दी गई । इससे १६ बिन्दुओं की पूर्ति हो जाती है ।

1. This sutra is omitted in the Ms. (M.S.)
2. भ्रूणः (बं.सं.) ।

दर्भः दृ विदारणे (क्री.१९) । विदारण=चीरना, फाड़ना । दृणाति ।
 दृ+भ, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, दर्भः । कुश, पवित्रकरण । अस्त्री
 कुशं कुथो दर्भः पवित्रम् (अ.को.२/४/१६६) ।

गर्भः गृ निगरणे (तु.२२) । खाना, निगलना । नाभिनालेन मातुराहारं
 गिलति (जो नाभिगत नाल से माता को दिए गए आहार को खाता
 है) । गृ+भ, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, गर्भः । प्रसिद्ध प्रसूति का
 कारण । गर्भो भूणेऽर्भके कुक्षौ सन्धौ पनसकण्टके (वि.प्र.को.भान्त.२०) ।

१५३. इणो यण्वत् । ३-२६।

अस्माद् भप्रत्ययो भवति स च यण्वत् । 'इण् गतौ'
 एति गच्छतीति इभः हस्ती ।

इण् धातु से भ प्रत्यय होता है तथा उसको प्रकृत सूत्र से
 यण्वद्भाव (=गुण का निषेध) होता है ।

इभः इण् गतौ (अ.१३) । एति । इ+भ, विभक्तिकार्य, इभः ।
 हस्ती । हाथी ।

१५४. वीपतिभ्यां तनः । ३-२७।

आभ्यां तनप्रत्ययो भवति । 'वी प्रजने' वीयते अनया
 वेतना भृतकमूल्यम् । 'पत्लु' पतति लोकोऽस्मिन्निति पत्तनं
 नगरम् ।

बी तथा पत् धातु से तन प्रत्यय होता है ।

वेतना वी प्रजने (अ.१४) । प्रजन=उत्पन्न होना, गर्भ धारण करना ।
 वीयते । वी+तन, धातुगत ईकार को गुण से एकार, स्त्री. में आ
 प्रत्यय, विभक्तिकार्य, वेतना । भृतकमूल्य । नौकर का वेतन
 (मजदूरी) ।

पत्तनम् पत्तु गतौ (भू.५५४) । पतति लोकोऽस्मिन् (जहाँ मनुष्य रहते हैं) । पत्+तन, विभक्तिकार्य, पत्तनम् । नगर ।

पत्यते सर्वैरुपभोगार्थं गम्यत इति पत्तनम् (श्वेत.वृ.३/१४४) ।

१५५. सञ्ज्यसिभ्यां क्थिः^१ । ३-२८।

आभ्यां क्थिः प्रत्ययो भवति । ककारो यण्वद्भावार्थस्तेनागुणत्वम् । षञ्जेरनुषङ्गलोपः । 'षञ्ज सङ्गे' सज्जतीति^२ सक्थि ऊरुः । 'असु क्षेपणे' अस्यते क्षिप्यते, 'अन' मज्जादे वा नात्र(?) अस्थि शरीरावयवः ।

सञ्ज् एवं अस् धातुओं से क्थि प्रत्यय होता है । 'क्थि' में क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध होता है । षञ्ज् में अनुषङ्ग नकार का 'अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः' (कात.३/६/१) इस सूत्र से लोप होता है ।

सक्थि षञ्ज सङ्गे (भू.२८८) । सङ्ग=आलिङ्गन करना, गले लगाना । 'अनिदनुबन्धाना' सूत्र से नकारलोप । सजति । सज्+क्थि, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, 'अघोषे प्रथमः' से जकार को ककार, विभक्तिकार्य, सक्थि । उरु । हड्डी ।

अस्थि असु क्षेपणे (दि.४९) । फेंकना, प्रक्षेपण करना । अस्यते । अस्+क्थि, विभक्तिकार्य, अस्थि । शरीर का अवयवविशेष ।

१. थिक् (बं.सं.) ।

२. सज्जति म.सं. । षञ्ज् धातु (भू.२८८) का वर्तमानकालिक एक रूप 'सजति' होता है । वृत्ति में 'सज्जति' पाठ असमीचीन है ।

१५६. सारेरथिः । ३-२९।

अस्मादथिप्रत्ययो भवति । 'सृ गतौ' हेताविन् । अश्वान् सारयतीति सारथिः रथवाहः ।

इनन्त सारि धातु से अथि प्रत्यय होता है ।

सारथिः सृ गतौ (भू.२७४) । 'धातोश्च हेतौ' (कात.३/२/१०) सूत्र से सृ को इन् । सारि+अथि, इन् का लोप, विभक्तिकार्य, सारथिः । रथवाह । रथ चलाने वाला । नियन्ता । सूत । सूतः क्षत्ता च सारथिः (अ.को.२/८/५९) ।

१५७. अङ्गचतिभ्यामुलिथिः।(उलीथी) । ३-३०।

इदित्वान्नागमः । अगि गत्यर्थः । अङ्गतीति अङ्गुलिः करावयवः । 'अत सातत्यगमने' अततीति अतिथिः अञ्चुरः [आगन्तुकः] ।

अगि तथा अत् धातुओं से क्रमशः उलि एवं इथि प्रत्यय होते हैं ।

अङ्गुलिः^२ अगि गत्यर्थः (भू.३८) । इदनुबन्ध के कारण न् आगम । अङ्गति । अङ्ग+उलि, विभक्तिकार्य, अङ्गुलिः । हाथ का अवयव । करशाखा । अङ्गुली करशाखायां कर्णिकायां गजस्य च (वि.प्र.को.लान्त.१२९) ।

अतिथिः अत सातत्यगमने (भू.३) । निरन्तर चलना । अतति । अत्+इथि, विभक्तिकार्य, अतिथिः । आगन्तुक । अभ्यागत । अतिथिः

१. उलि एवं इथि इन दोनों प्रत्ययों के विहित होने से द्विवचनान्त 'उलीथी' ऐसा पाठ होना चाहिए (द्र.बं.सं.-उरीथी) ।
२. र श्रवणात् ल भवति अङ्गुरिः-अङ्गुलिः (ति.अनु.) ।

कुशपुत्रे स्यात् पुमानगन्तुके त्रिषु (मेदिनी.थान्त.१४) । कोपे प्राघुणिकेऽपि च (थान्त.१६) ।

१५८. नि(नी)दलिभ्यां मिः । ३-३१।

आभ्याम् मिप्रत्ययो भवति । 'णीङ् प्रापणे' नयति शकटं नेमिः चक्रधारा । 'दल जिफला' दलत्यरीन् इति दल्मिः शक्रायुधम् ।

नी तथा दल् धातु से मि प्रत्यय होता है ।

नेमिः णीङ् प्रापणे (भू.६००) । पहुँचाना । 'णो नः' से ण को न । नयति शकटम् (जो गाड़ी को खींचता है या पहुँचाता है) । नी+मि, धातुघटक ईकार को गुण से एकार, विभक्तिकार्य, नेमिः । चक्रधारा । चक्र का अवयव । नेमिर्ना तिनिशे कूपत्रिकाचक्रान्तयोः स्त्रियाम् (मेदिनी.मान्त.१७) ।

दल्मिः दल जिफला विशरणे (भू.१६५) । दलत्यरीन् (जो शत्रुओं को नष्ट करता है) । दल्+मि, विभक्तिकार्य, दल्मिः । इन्द्र का शस्त्र=वज्र ।

१५९. ऊर्मिभूमिरश्मयः । ३-३२।

एते मिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'ऋ गतौ' इयतीति ऊर्मिः भङ्गः । 'भू सत्तायाम्' भवति सर्वत्र भूमिः पृथ्वी । 'राशु शब्दे' राशतीति। रश्मिः किरणः ।

1. धातु पाठ में राशु धातु आत्मनेपद पठित है । अतः वृत्ति में राशति के स्थान पर 'राशते' पाठ होना चाहिए । पा.धा. में दन्त्य 'रासु' पठित है ।

ऊर्मि, भूमि, रश्मि ये मि प्रत्ययान्त शब्द निपातन से निष्पन्न होते हैं ।

ऊर्मिः ऋ गतौ (अ.७४) । इयर्ति । ऋ+मि, ऋ को ऊर्, विभक्तिकार्य, ऊर्मिः । भङ्ग । तरङ्ग ।

ऊर्मिः स्त्रीपुंसयोर्वीच्यां प्रकाशे वेगभङ्गयोः । वस्त्रसङ्कोचरेखायां वेदनापीडयोरपि ॥ (मेदिनी.मान्त.३) ।

भूमिः भू सत्तायाम् (भू.१) । भवति सर्वत्र (जो सभी जगह रहती है) । भू+मि, विभक्तिकार्य, भूमिः । पृथ्वी । भूमिर्वसुन्धरायां स्यात् स्थानमात्रेऽपि च स्त्रियाम् । (मेदिनी.मान्त.२२) ।

रश्मिः राशु शब्दे (भू.४४१) । राशते । राश्+मि, धातुघटक आकार को ह्रस्व, विभक्तिकार्य, रश्मिः । किरण । रज्जु । रश्मिः पुमान् दीधितौ स्यात् पद्मप्रग्रहयोरपि (मेदिनी.मान्त.२५) ।

१६०. इषेः सुक् । ३-३३।

इषेर्धातोः सुक्प्रत्ययो भवति । 'इषु इच्छायाम्' इष्यते इक्षुः मधुरद्रव्यविशेषः ।

इष् धातु से सुक् प्रत्यय होता है । 'सुक्' में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । इससे धातु को गुण का निषेध होता है ।

इक्षुः इषु इच्छायाम् (तु.७०) । चाहना । इष्यते । इष्+सुक्, ष् को क्, स् को ष्, क् ष् के संयोग से क्ष, विभक्तिकार्य, इक्षुः । विशेष मधुर द्रव्य । ईख (गन्ना, ऊख) रसाल । दन्तरसाल (बं.सं.) ।

१६१. अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः । ३-३४।

एभ्य ईप्रत्ययो भवति । 'अव रक्ष पालने' पुत्रार्थ रजोऽवतीति अवीः रजस्वला । 'तृ प्लवनतरणयोः' तीर्यतेऽनया

तरीः नौः । 'स्तृञ् आच्छादने' स्तृणातीति स्तरीः आच्छादन-
विशेषः । 'तन्त्रि कुटुम्बधारणे' तन्त्रयतीति तन्त्रीः वीणा ।

अव्, तृ, स्तृञ्, तन्त्र् इन सभी धातुओं से ई प्रत्यय होता है ।

अवीः अव पालने (भू.२०२) । रक्षा करना । पुत्रार्थं रजोऽवति (जो
पुत्र के लिए रज की रक्षा करती है) । अव्+ई, विभक्तिकार्य,
अवीः । रजस्वला ।

अवीर्नारी रजस्वला (वै.सि.कौ.उ.सू.३/४३८) । ऋतुमत्यामविः प्रोक्ता
(वि.प्र.को.वान्त.२३) ।

तरीः तृ प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । पार जाना, तैरना । तीर्यति
अनया । तृ+ई, 'ऋवर्णे अर्' (कात.१/२/४) से ऋ को अर्,
विभक्तिकार्य, तरीः । नौका । तरिर्नौवि दशायाञ्च वस्त्रादीनाञ्च पेटके
(वि.प्र.को.रान्त.८६) ।

स्तरीः स्तृञ् आच्छादने (क्री.१०) । ढाँकना । स्तृणाति । स्तृ+ई, ऋ
को अर्, विभक्तिकार्य, स्तरीः । आच्छादनविशेष । धूम ।

तन्त्रीः तन्त्रि कुटुम्बधारणे (चु.१०१) । फैलाना, कुटुम्ब का पोषण
करना । तन्त्रयति । तन्त्र्+ई, विभक्तिकार्य, तन्त्रीः । वीणा । वीणादि
का गुण । तन्त्री वीणागुणे स्मृता (मेदिनी.रान्त.४२) ।

१६२. लक्षेर्मोऽन्तश्च । ३-३५ ।

अस्मादीप्रत्ययो भवति, मोऽन्तश्च । 'लक्ष दर्शनाङ्कनयोः'
लक्षयति दर्शयति पुण्यकर्माणं लक्ष्मीः ।

लक्ष् धातु से ई प्रत्यय तथा म् अन्तादेश होता है ।

लक्ष्मीः लक्ष दर्शनाङ्कनयोः (चु.५) । १. देखना, २. चिह्न करना, सङ्केत लगाना । लक्षयति दर्शयति पुण्यकर्माणम् (जो पुण्य कर्म करने वाले को देखती है) । लक्षि+ई, लक्ष् को म् अन्तादेश, इन् का लोप, विभक्तिकार्य, लक्ष्मीः । श्रीः । लक्षेर्मुट् च (वै.सि.कौ.उ.सू.३-४४०) । लक्ष्मीः श्रीशिवसम्पत्तिपद्माशोभाप्रियङ्गुषु (वि.प्र.को.मान्त.३०) ।

१६३. वातप्रमीः । ३-३६ ।

अयमीप्रत्ययान्तो निपात्यते । वातप्रपूर्वो 'मा माने' वातं प्रमातीति वातप्रमीः वातवाहनो मृगः ।

'वातप्रमीः' यह ई प्रत्ययान्त शब्द निपातन^२ से सिद्ध होता है ।

वातप्रमीः मा माने (अ.२६) । मान=नापना । वातं प्रमाति (जो हवा का मापन करता है) । वात प्र पूर्वक । वात प्र मा+ई, निपातन से आकार का लोप, विभक्तिकार्य, वातप्रमीः (स्त्री.पुं.) । हवा के समान

1. पाठा. लक्षेर्मोऽन्तश्च (बं.सं.३-१६७) इसमें 'ई' का पुनः पाठ अनुचित है यतः पूर्व सूत्र (३-३४) से 'ई' की अनुवृत्ति यहाँ हो जाती है इसीलिए 'लक्षेर्मुट्' (वै.सि.कौ.उ.सू.३/४४०) ऐसा सूत्रपाठ उपलब्ध होता है ।
2. निपातन, द्र०-(१-९) ।

तेज चलने वाला मृग । अतिशीघ्रगामी मृग । वातप्रमीर्वातमृगः
(अ.को.२/५/७) ।

१६४. कृगृजागृभ्यः क्विः ।३-३७।

एभ्यः क्विप्रत्ययो भवति । को यण्वत् । 'डु कृञ्
करणे'^१ करोतीति कुर्विः^२ (कृविः) 'गृ निगरणे' गिरतीति गिर्विः^३
(गृविः) छान्दसावेतौ रविचन्द्रौ । 'जागृ निद्राक्षये' जागृतीति
जागृविः अग्निः ।

कृ, गृ, जागृ इन धातुओं से क्वि प्रत्यय होता है । क्वि में
क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध होता है
।

कृविः डु कृञ् करणे (त.७) । करोति । कृ+क्वि, क् अनुबन्ध के
यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, कृविः ।
तन्तुवायद्रव्य । तन्तुवायभाण्ड ।

गृविः गृ निगरणे (तु.२२) । गिरति । गृ+क्वि, क् अनुबन्ध के
यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, गृविः ।

वृत्ति में कुर्विः एवं गिर्विः इन दोनों को छान्दस् कहकर इनके
क्रमशः रवि एवं चन्द्र अर्थ भी किए गए हैं ।

१. कृञ् हिंसायाम्- कृविः तन्तुवायभाण्डम् (बं.सं.) ।
२. वृत्ति में 'कुर्विः' शब्द असाधु है । कृ धातु से क्वि प्रत्यय होने पर क् अनुबन्ध के कारण धातु को गुण नहीं हो सकता । अतः 'कृविः' शब्द ही साधु होगा । पञ्चपादी एवं बं.सं. में भी 'कृविः' पठित है । द्र०-(सरस्वती.२/१/२३५) (वै.सि.कौ.३०४-४९६) ।
३. वृत्ति में 'गिर्विः' शब्द भी असाधु है । गुण निषेध के कारण 'गृविः' शब्द ही साधु होगा । ति.अनु. में उल्लेख है कि दुर्गसिंह को दो वृत्तियाँ प्राप्त हुईं । उनमें दीर्घान्त कीर्विः गीर्विः पाठ होना चाहिए किन्तु ह्रस्वान्त है । ति.अनु. ।

जागृविः जागृ निद्राक्षये (अ.३६) । नीद दूटना, जागना । जागर्ति ।
जागृ+क्वि, गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, जागृविः । अग्नि । राजा ।
सुखी ।

१६५. छव्यादयः । ३-३८ ।

छविदर्विस्थविदीदिविकिकिदीवयः । एते क्विप्रत्ययान्ता
निपात्यन्ते । 'छो छेदने' छचतीति । छविः कान्तिः । 'दृ
विदारणे' दृणातीति दर्विः तर्दूः । 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' तिष्ठतीति
स्थविः तन्तुवायद्रव्यम् । 'दिवु क्रीडादिषु' दीव्यतीति दीदिविः
स्वर्गः, द्विर्वचनम् । [दिवु क्रीडादिषु किकिपूर्वः किकिदीविः] ।
पक्षिविशेषः ।

छवि, दर्वि, स्थवि, दीदिवि, किकिदीवि ये सभी क्वि प्रत्ययान्त
शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

छविः छो छेदने (दि.२०) । छेदन=काटना, छेदना । छचति ।
'सन्ध्यक्षरान्तानामाकारोऽविकरणे' (कात.३/४/२०) सूत्र से 'ओकार को
आकार । छा+क्वि, आकार को ह्रस्व, विभक्तिकार्य, छविः । कान्ति ।
छविः शोभारुचोर्मता (वि.प्र.को.वान्त.२४) ।

दर्विः दृ विदारणे (क्री.१९) । काटना । दृणाति । दृ+क्वि, निपातन
से दृ में ऋ को अर् गुण, विभक्तिकार्य, दर्विः । तर्दू । चम्मच,
चमची । दारुहस्त । दर्विः स्त्रियां खजाकायां फणायामुरगस्य च
(मेदिनी.वान्त.५) ।

1. छव्यति म.सं. । छो छेदने धातु का देवादिक 'छ्यति' रूप होता
है । म.सं. में छव्यति पाठ था, जिसके स्थान पर 'छ्यति' पाठ
किया गया ।

स्थविः ष्ठा गतिनिवृत्तौ (भू.२६७) । रुकना, ठहरना । तिष्ठति ।
स्था+क्वि, धातुघटक आकार को ह्रस्व, विभक्तिकार्य, स्थविः ।
तनुवायद्रव्य ।

दीदिविः दिवु क्रीडादिषु (दि.१) । दीव्यति । दिव्+क्वि, धातु को
द्वित्व तथा पूर्व अभ्यास के इकार को दीर्घ, वकार का लोप,
विभक्तिकार्य, दीदिविः । स्वर्ग । मोक्ष । दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य ।
दीदिविः स्वर्गमोक्षयोः (वै.सि.कौ.उ.सू.४/४९५) । पुंसि स्वर्गे दीदिविर्ना
धिषणेऽन्ते तदस्त्रियाम् (मेदिनी.वान्त.३७) ।

किकिदीविः किकि(पूर्वक) दिव्+क्वि, दिव् घटक इकार को दीर्घ, व्
का लोप, विभक्तिकार्य, किकिदीविः । पक्षिविशेष । नीलकण्ठ ।
चाष । स्यादथ चाषः किकीदिविः (अ.को.२/५/१६) ।

१६६. खज्जेराकः^१ । ३-३९।

अस्मादाकप्रत्ययो भवति । 'खजि मन्ये' खज्जतीति
खजाकः^२ पक्षी ।

खज्ज् धातु से आक प्रत्यय होता है ।

खजाकः खजि मन्ये (भू.६९) । मथना । इदनुबन्ध के कारण न्
आगम । खज्जति । खज्ज्+आक, नकार का लोप, विभक्तिकार्य,

१. खज्जेराकः म.सं. । खज्ज् धातु से आक प्रत्ययान्त 'खजाकः' शब्द प्राप्त होता है । वृत्ति में खज्जेराकः से अक प्रत्ययान्त खज्जकः' शब्द का निर्देश है । 'खज्जकः' शब्द उपलब्ध नहीं होता । अतः खज्जेराकः के स्थान पर 'खज्जेराकः' ऐसा सूत्रपाठ किया गया ।
द्र.दया.उ.को.-खजेराकः (४-१३) (उज्ज्वल.४-१३) । 'सरस्वती.-
खजिबलिपतिभ्य आकः (२/२/१२) । (अ.को.२/९/३४) ।
२. खज्जकः के स्थान पर 'खजाकः' शब्द रखा गया ।

खजाकः । पक्षी । खजाका दर्वि (कलछुल) । खजाकः पक्षिणि ख्यातः
खजाका दर्विरुच्यते (उज्ज्वल.४/१३) ।

१६७. बलाकादयः^१ । ३-४०।

बलाकपिनाकपताकश्यामाकशलाकाः । एते आकप्रत्ययान्ता
निपात्यन्ते । 'वल संवरणे' वलते बलाका पक्षिणि । 'पिष्टु
'संचूर्णने' पिनष्टीति पिनाकं हरधनुः । पत्तु गतौ' पततीति
पताका ध्वजः । 'श्यैङ्' गतौ' श्यायते श्यामाकः धान्यं
व्रीहिविशेषः । 'पल शल'^२ शलतीति शलाका अञ्जन-
लेखनिका । नेत्राञ्जनीति ।

बलाक, पिनाक, पताक, श्यामाक, शलाक ये सभी आक
प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

बलाका वल संवरणे (भू.४१६) । आच्छादन करना, ढकना ।
वलते । वल्+आक, वकार को निपातन से बकार, स्त्री. में 'स्त्रियामादा'
(कात.२/४/४९) सूत्र से आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, बलाका । पक्षी
(बगुला) । बकपङ्क्तिः । कामुकी । विसकण्ठिका । बलाकः बक ।

पिनाकम् पिष्टु संचूर्णने (रु.१२) । पीसना, कूटना । पिनष्टि ।
पिष्+आक, ष् को निपातन से नकार, विभक्तिकार्य, पिनाकम् ।
हरधनु । शङ्कर का धनुष । पिनाकोऽस्त्री रुद्रचापे पांशुवर्षत्रिशूलयोः
(मेदिनी.कान्त.१२०) ।

पा रक्षणे+आक, इत्व, नुम्, पिनाकः (वै.सि.कौ.४/४५५) ।

१. बलाकपिनाकपताकाश्यामाकशलाकाः (बं.सं.३/१७२) ।

२. पल शल गतौ (भू.५५४) ति.अनु. ।

पताका पल् गतौ (भू.५५४) । पतति । पत्+आक, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, पताका । ध्वज । सौभाग्य । अङ्क । पताका वैजयन्त्यां च सौभाग्येऽङ्के ध्वजेऽपि च (वि.प्र.को.कान्त.१७३) ।

श्यामाकः श्यैङ् गतौ (भू.४५९) । श्यायते । सन्ध्यक्षर ऐकार को आकार । श्या+आक, निपातन से म् अन्तादेश, विभक्तिकार्य, श्यामाकः । धान्य । समा । ब्रीहिविशेष (कोदों सांवा) ।

शलाका शल गतौ (भू.५५४) । शलति । शल्+आक, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, शलाका । अञ्जनयष्टि । (आँख में अञ्जन लगाने की सलाई) । शलाका शल्यमदनशारिकाशल्लकीषु च । छत्रादि-काष्ठीशरयोः । (मेदिनी.कान्त.१६१) ।

१६८. अर्तेरत्निः । ३-४१।

अस्मादत्निप्रत्ययो भवति । 'ऋ गतौ' इयतीति [अरत्निः] कनिष्ठिकाङ्गुलिः ।

ऋ धातु से अत्नि प्रत्यय होता है ।

अरत्निः ऋ गतौ (अ.७४) । इयति । ऋ+अत्नि, ऋ को अर, विभक्तिकार्य, अरत्निः । कनिष्ठिका अङ्गुलि । सबसे छोटी अङ्गुली । विस्तृत छोटी अङ्गुलि वाला हाथ । अरत्निः कफणौ हस्ते सप्रकोष्ठतताङ्गुलौ (वि.प्र.को.तान्त.१२३) ।

१६९. अञ्जेरलिः । ३-४२।

अस्मादलिप्रत्ययो भवति । 'अञ्जू व्यक्त्यादौ' अनक्तीति अञ्जलिः करसङ्घट्टः ।

अञ्ज् धातु से अलि प्रत्यय होता है ।

अञ्जलिः अञ्जू व्यक्तिप्रक्षणगतिषु (रु.१७) । (कान्ति-क्षी.त.रु.२७) साफ करना, सराहना, तैलमर्दन करना, अभ्यञ्जन करना, जाना । अनक्ति । अञ्ज+अलि, विभक्तिकार्य, अञ्जलिः । करसम्पुट । दोनों हाथों को मिलाना । पुष्पाञ्जलि । अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे कुडवेऽपि (मेदिनी.लान्त.६०) ।

१७०. मृकणिभ्यामीचिः ।३-४३।

आभ्यामीचिप्रत्ययो भवति । 'मृङ् प्राणत्यागे' प्रियते तमोऽनेन मरीचिः किरणः । 'कण' गतौ^१ कणते^२ कणीचिः कलाविशेषः^३ (लताविशेषः) ।

मृ तथा कण् धातु से ईचि प्रत्यय होता है ।

मरीचिः मृङ् प्राणत्यागे (तु.१११) । मरना, प्राण छोड़ना । प्रियते तमोऽनेन (जिससे अन्धकार नष्ट होता है) । मृ+ईचि, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, मरीचिः । किरण । कृपण । मरीचिः कृपणे दीप्तावृषिभेदेऽपि दृश्यते (वि.प्र.को.चान्त.१५) । मरीचिर्मुनिभेदे ना गभस्तावनपुंसकम् (मेदिनी.चान्त.१६) ।

कणीचिः कण गतौ (भू.१४६) । कणति । कण्+ईचि, कणीचिः । लताविशेष । पत्रादियुक्तशाखा । पुष्पितलता । गुञ्ज । शकट । निनाद । कणीची पुष्पितलतागुञ्जयोः शकटे स्त्रियाम् (मेदिनी.चान्त.१३) ।

1. कण रण इति दण्डको धातुः (ति.अनु.) ।

2. कणते । कण् धातु वर्तमान उपलब्ध धातुपाठ के अनुसार परस्मैपद है (भू.१४६, ५१४) । अतः वृत्ति में कणते के स्थान पर 'कणति' पाठ होना चाहिए ।

3. कलाविशेष म.सं. । कणीचि का अर्थ लता होता है । वृत्ति में 'कला' यह लता का ही भ्रष्ट पाठ है । अतः 'कलाविशेषः' के स्थान पर 'लताविशेषः' पाठ समझना चाहिए ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

199

१७१. रातेस्त्रिः १३-४४।

अस्मात्त्रिप्रत्ययो भवति । 'रा ला दाने' रात्रिचराणां
प्रतीतिं ददातीति रात्रिः क्षपा ।

रा धातु से त्रि प्रत्यय होता है ।

रात्रिः रा दाने ((अ.२२) । देना । रात्रिचराणां प्रतीतिं ददाति (जो
रात्रि में घूमने वालों का आभास देती है) । रा+त्रि, विभक्तिकार्य,
रात्रिः । क्षपा । वैकल्पिक ई प्रत्यय, रात्री ।

रा+त्रिप्, रात्रिः (श्वेत.वृ.४-६९) ।

१७२. दूषेरिकः १३-४५।

अस्मादिकप्रत्ययो भवति । 'दुष वैकृत्ये' हेताविन् ।
दूषयतीति दूषिका नेत्रमलम् । 'दुषे कारिते' इत्युपधाया
ऊत्वम् ।

दूषि धातु से इक प्रत्यय होता है ।

दूषिका दुष वैकृत्ये (दि.२८) । वैकृत्य=दूषित होना, दूषित करना ।
धातोश्च हेतौ (कात.३/२/१०) इस सूत्र से हेतु में इन्, दूषयति ।
दुषि+इक, 'दुषे कारिते' (कात.३/४/६४) । सूत्र से उपधाभूत उकार
को दीर्घ ऊकार, इन् का लोप, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य,
दूषिका । नेत्रमल । आँख का कीचड़ । दूषिका तुलिकायाञ्च
दूषिका नेत्रयोर्मले (वि.प्र.को.कान्त.१७६) । दूषि+ईकन्, दूषीका
(वै.सि.कौ.४/४५६) ।

१७३. कृतृभ्यामीषः । ३-४६।

आभ्यामीषप्रत्ययो भवति । 'डु कृञ् करणे'। गृहशोभां करोतीति करीषः शुष्कगोमयम् । 'तृ प्लवनतरणयोः' तरतीति तरीषः शोभनम् ।

कृ एवं तृ धातु से ईष प्रत्यय होता है ।

करीषः डु कृञ् करणे (त.७) । गृहशोभां करोति (जो घर की शोभा बनाता है) । कृ+ईष, ऋ को अर् गुण, विभक्तिकार्य, करीषः । सूखा गोबर । तनु शुष्कं करीषोऽस्त्री (अ.को.२/९/५१) ।

कीर्यते विक्षिप्यते करीषः (दया.उ.को.४/२७) ।

तरीषः तृ प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । तरति । तृ+ईष, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, तरीषः । शोभन । सुन्दर । तरीषः शोभनाकारे भेलेऽब्धिव्यवसाययोः (मेदिनी.षान्त.३७) ।

१७४. शिरीषादयः^२ । ३-४७।

शिरीषपुरीषर्जीषाम्बरीषाः । एते ईषप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'शृ हिंसायाम्' शृणातीति शिरीषः वृक्षः । 'पृ पालनपूरणयोः' पालयति प्राणान् परिणामनिष्कासेन पुरीषं विष्टा । 'ऋजि भृजी भर्जने' ऋज्यते ऋजीषं पशुवचनम्, वृथापाको वा । 'वृञ् वरणे' अपूर्वः । अं आकाशं वृणोतीति अम्बरीषः भ्राष्ट्रः । एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

शिरीष, पुरीष, ऋजीष, अम्बरीष ये सभी ईष प्रत्ययान्त शब्द निपातन से निष्पन्न होते हैं ।

1. कृ विक्षेपे बं.सं. ति.अनु. ।

2. शिरीषादयश्च बं.सं. ।

शिरीषः शृ हिंसायाम् (क्री.१५) । शृणाति । शृ+ईष, 'ऋदन्तस्येरगुणे' सूत्र से ऋ को इर, विभक्तिकार्य, शिरीषः । वृक्ष । सिरस का पेड़, फूल । शिरीषस्तु कपीतनः (अ.को.२/४/६३) ।

पुरीषम् पृ पालनपूरणयोः (अ.७०, क्री.१६) । पिपर्ति प्राणान् परिणामनिष्कासेन (जो अन्तस्थ मल के निष्कासन से प्राणों की रक्षा करता है) । पृ+ईष, ऋ को उर, विभक्तिकार्य, पुरीषम् । विष्टा । मल ।

ऋजीषम् ऋजि भर्जने (भू.३४६) । भर्जन=भूजना, पकाना । ऋज्यते । ऋज्+ईष, निपातन से गुणाभाव, विभक्तिकार्य, ऋजीषम् । पशुवचन या वृथापाक । तवा । मैथुन, अपवाद (बं.सं.) । ऋजीषं पिष्टपचनम् (अ.को.२/९/३२) ।

अम्बरीषः वृज् वरणे (सु.८) । अं आकाशं वृणोति (जो आकाश का वरण करता है) । अं वृ+ईष, ऋ को अर, व् को ब, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, अम्बरीषः^१ । भ्राष्ट्र । आकाश । भौंड ।

१७५. कृशृशौण्डभ्य ईरः^२ ।३-४८।

एभ्य ईरप्रत्ययो भवति । 'कृ विक्षेपणे' किरतीति करीरः वृक्षः । 'शृ हिंसायाम्' शीर्यति शरीरं कायः । 'शौण्ड' (शौट्) गर्वे शौण्डतीति (शौटति) शौण्डीरः (शौटीरः) सत्यवान् दाता ।

कृ शृ एवं शौण्ड धातुओं से ईर प्रत्यय होता है ।

१. अम्बरीषं रणे भ्राष्ट्रे क्लीबं पुंसि नृपान्तरे ।
नरकस्य प्रभेदे च, किशोरे भास्करेऽपि च ॥ (मेदिनी.षान्त.४८-४९)
२. कृशृशौटिभ्य ईरः (बं.सं. ३-१८०) ।

करीरः कृ विक्षेपे (तु.२१) । फेंकना । किरति । कृ+ईर, ऋ को ईर, विभक्तिकार्य, करीरः । वृक्ष । वंशाङ्गुरे करीरोऽस्त्री वृक्षभिदघटयोः पुमान् । (मेदिनी.रान्त.१२५) ।

शरीरम् शृ हिंसायाम् (क्री.१५) । नष्ट करना, मारना । शीर्यते । शृ+ईर, ऋ को अर, विभक्तिकार्य शरीरम् । काय ।

शौटीरः शौट् गर्वे (शौट् भू.८०) । गर्व करना, घमण्ड करना । शौटति । शौट्+ईर, शौटीरः । सत्यवान् । दाता । गर्वी । गर्वत्याग, वीर (बं.सं.) । शौटीरः ।

१७६. क्षीरोशीरगम्भीराः । ३-४९।

एते ईरप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'क्षणु हिंसायाम्' क्षणोतीति क्षीरं पयः । 'वश कान्तौ वष्टीति उशीरम् । सम्प्रसारणं निपातनात् । अथवा उश्यते काम्यते उशीरं गन्धद्रव्यम् । 'गम्लु गतौ' गच्छतीति गभीरः अगाधः । गम्भीरः स एव ।

क्षीर, उशीर, गभीर, गम्भीर ये सभी ईर प्रत्ययान्त शब्द निपातन से निष्पन्न होते हैं ।

क्षीरम् क्षणु हिंसायाम् (त.३) । क्षणोति । क्षण्+ईर, निपातन से ण् का लोप तथा धातुघटक अकार का लोप, विभक्तिकार्य, क्षीरम् । पय । दूध ।

तु.- घसेः किच्च, घस्लृ अदने, चकारात् किच्च । कित्वात् 'गमहन्' इत्यादिना लोपः । 'शासिवसि' इति षत्वम् । क्षीरम् (श्वेत.वृ.४/३५) । क्षीरं दुग्धे जले (मेदिनी.रान्त.१६) ।

उशीरम् वश कान्तौ (अ.३) । चाहना, इच्छा करना । वष्टि । वश्+ईर, निपातन से वकार को सम्प्रसारण से उकार, विभक्तिकार्य, उशीरम् । गन्धद्रव्य । वीरणमूल (खस खस) अथवा उश्यते, काम्यते

(कर्म) उशीरम् । स्याद् वीरणं वीरतरं मूलेऽस्योशीरमस्त्रियाम्
(अ.को.२/४/१६४) ।

गभीरः गम्लु गतौ (भू.२७९) । गच्छति । गम्+ईर, निपातन से भ
अन्तादेश तथा विकल्प से म् का लोप^१, विभक्तिकार्य, गभीरः ।
अगाध । अथाह ।

म् लोप के अभाव में अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, गम्भीरः ।
अगाध । शान्त, जलाशय ।

१७७. अगिश्रुश्रियुवह्निभ्यो निः १३-५०।

एभ्यो धातुभ्यो निःप्रत्ययो भवति । 'अक अग कुटिलायां
गतौ' अगति वायुवशादूर्ध्वं गच्छतीति अग्निः अनलः । 'श्रु
श्रवणे' श्रूयते श्रोणिः कटिप्रदेशः । 'श्रिज् सेवायाम्' श्रयतीति
श्रेणिः पङ्क्तिः । 'यु मिश्रणे' यौतीति योनिः गुणोत्पत्ति-
स्थानम् । 'वह प्रापणे' उहचत इति वह्निः दहनः ।

अग, श्रु, श्रिज् यु, वह इन धातुओं से नि प्रत्यय होता है ।

अग्निः अग कुटिलायां गतौ (भू.५१३) । घूमना, टेढ़ा होना । अगति
वायुवशादूर्ध्वं गच्छति (जो हवा के द्वारा ऊपर की ओर जाता है) ।
अग्+नि, विभक्तिकार्य, अग्निः । अनल । अङ्गति गच्छति देवानामग्रे
हविरादानाय इति अग्निः (श्वेत.वृ.४/५२) । अग्निर्वैश्वानरेऽपि
स्याच्चित्रकाख्यौषधौ पुमान् (मेदिनी.नान्त.१) ।

श्रोणिः श्रु श्रवणे (भू.२७८) । सुनना । श्रूयते । श्रु+नि, श्रु मे
उकार को गुण से ओकार, तथा नकार को णकार, विभक्तिकार्य,
श्रोणिः । कटिप्रदेश । कमर । जघनप्रदेश (श्वेत.वृ.४/५३) ।

१. पक्षे मकारलोपः, अन्यत्र तु अनुस्वारः (ति.अनु.) ।

श्रेणिः श्रिञ् सेवायाम् (भू.२६८) । सेवा करना । श्रयति । श्रि+नि, इकार को एकार गुण, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, श्रेणिः । पङ्क्ति । श्रेणिः पङ्क्तौ सेकपात्रे श्रेणिः स्यात् कारुसंहतौ (वि.प्र.को.णान्त.२४) ।

योनिः यु मिश्रणे (अ.६) । मिलना, जुड़ना । यौति । यु+नि, धातुघटक उकार को ओकार गुण, विभक्तिकार्य, योनिः । गुणोत्पत्तिस्थान । उपस्थेन्द्रिय । भग । योनिः स्यादाकरे भगे (वि.प्र.को.नान्त.२१) । योनिः स्त्रीपुंसयोश्च स्यादाकरे स्मरमन्दिरे (भेदिनी.नान्त.१६) ।

वह्निः वह प्रापणे (भू.६१०) । पहुँचाना, ढोना । उह्यते । वह्+नि, वह्निः । दहन । आग ।

१७८. सृणिवेणिवृष्णिधृष्णिपार्ष्णिचूर्णयः ।३-५१।

एते निप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'सृ गतौ' सरतीति सृणिः अङ्कुशः । 'वी प्रजने' वेतीति वेणिः केशबन्धः । 'वृषु सेचने' वर्षतीति वृष्णिः यादवविशेषः । 'जि धृषा प्रागल्भ्ये' धृष्णोतीति धृष्णिः वशविशेषः^२ (?) 'पृषु सेचने' पृष्यत इति पार्ष्णिः पादग्रन्थिः पादपश्चादवस्थानम् । 'चर गत्यर्थः' चरतीति चूर्णिः ग्रन्थविशेषः ।

सृणि, वेणि, वृष्णि, धृष्णि, पार्ष्णि, चूर्णि ये सभी नि प्रत्ययान्त शब्द निपातने से सिद्ध होते हैं ।

1. 'धृष्णिः' शब्द ब.सं. (३/१८३) ति.अनु. में असंगृहीत है । पा.उ. में 'धृष्णिः' पठित है ।
2. यहाँ 'वशविशेषः' (?) ऐसा सन्दिग्ध पाठ है । 'धृष्णिः' का गभस्तिधृणिधृष्णयः' (अ.को.१/४/३३) के अनुसार किरण अर्थ होता है । सम्भव है 'धृष्णि' नामक कोई वंश रहा हो अतः यहाँ अनुस्वार घटित पाठ होना चाहिए ।

सृणिः सृ गतौ (भू.२७४) । सरति । सृ+नि, निपातन से गुण का अभाव, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, सृणिः । अङ्कुश ।

वेणिः वी प्रजनकान्तिगतिषु च (अ.१४) । वेति । वी+नि, धातुघटक ईकार को गुण से एकार, निपातन से नकार को णकार, विभक्तिकार्य, वेणिः । केशबन्ध । केशविन्यास । बालों की गुथी हुई चोटी । जननी ।

स्त्री.— वेणी । वेणी कचस्य बन्धे स्यान्नदीनां मेलकेऽपि च (वि.प्र.को.णान्त.२५) । वेणिः प्रवेणिः (अ.को.२/६/९८) ।

वृष्णिः वृषु सेचने (भू.२२६) । सीचना, बरसना । वर्षति । वृष्+नि, निपातन से गुण का अभाव, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, वृष्णिः । यादवविशेष । भेड ।

वृष्णिः क्षत्रियमेषयोः (वै.सि.कौ.उ.सू.४/४८९) । वृष्णिः पाखण्ड-चन्द्रयोः । त्रिषु ना यादवे मेषे (मेदिनी.णान्त.२८) ।

धृष्णिः जि धृषा प्रागल्भ्ये (सु.१८) । प्रागल्भ्य= गर्व करना, अपने को बड़ा मानना । धृष्णोति । धृष्+नि, गुणाभाव, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, धृष्णिः । किरण । गभस्तिधृष्णिधृष्णयः (अ.को.१/३/३३) ।

पाष्णिः पृषु सेचने (भू.२२६) । पृष्यते । पृष्+नि, निपातन से ऋ को आर् वृद्धि, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, पाष्णिः । पादग्रन्थि । पादतल । चरण का अधोभाग । पाष्णिः स्यादुन्मदस्त्रियाम् । स्त्रियां द्वयोः सैन्यपृष्ठे पादग्रन्थ्यधरेऽपि च (मेदिनी.णान्त.२०) ।

चूर्णिः चर गत्यर्थः (भू.१८९) । चरति । चर्+नि निपातन से उपधाभूत अकार को ऊकार, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, चूर्णिः । ग्रन्थविशेष । गद्य । पतञ्जलि कृत महाभाष्य । कपर्दकशत । चूर्णिः शाणी हुणी दरत (अ.को.३/५/९) ।

१७९. पातेर्दतिः¹ । ३-५२।

अस्माद्धृतिः प्रत्ययो भवति । 'पा रक्षणे' पातीति पतिः स्वामी ।

पा धातु से डति प्रत्यय होता है । डति में ड् अनुबन्ध है । ड् अनुबन्ध के कारण धातुस्वरादि का लोप होता है ।

पतिः पा रक्षणे (अ.२१) । पाति (पत्नीम्) (जो पत्नी की रक्षा करता है) । पा+डति, ड् अनुबन्ध के कारण 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) इस सूत्र से धातुघटक आकार का लोप, विभक्तिकार्य, पतिः । स्वामी । भर्ता । पतिः प्रभौ गतौ मूले (वि.प्र.को.तान्त.४८) । पतिर्धवे ना त्रिष्वीशे प्राप्तं लब्धे समञ्जसे (मेदिनी.तान्त.३२) ।

१८०. भूस्वदिभ्यः² क्रिः । ३-५३।

एभ्यः क्रिः प्रत्ययो भवति । को यण्वद्भावार्थः । 'भू सत्तायाम्' भवतीति भूरि प्रभूतम् । 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' सूते बुद्धिं सूरिः पण्डितः । 'अद प्सा भक्षणे' खमतीति अद्रिः पर्वतः ।

भू, सु, अद् इन धातुओं से क्रि प्रत्यय होता है । 'क्रि' में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है । 'रि' शेष रहता है ।

1. पातेर्दतिः ति.अनु. । तिब्बती में 'डति' पाठ होना चाहिए ।

2. भूस्वद्यङिग्रभ्यः (बं.सं.३-१८०) बं.सं. में 'अङिग्रः' (=चरण) शब्द अतिरिक्त पठित है । म.सं. में आगे 'अहे रिः' (५-३१) सूत्र से यह शब्द निष्पादित है ।

भूरि भू सत्तायाम् (भू.१) । होना । भवति । भू+क्रि, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, तथा उससे यण्वद्भाव के कारण 'भू' में ऊ को गुणनिषेध, नपुं. सि, सि का लोप, भूरि' । प्रभूत ।

सूरिः षूङ् प्राणिगर्भविमोचने (अ.५४) । गर्भ उत्पन्न करना । जनना । 'धात्वादेः षः सः' से ष् को स् । सूते बुद्धिम् (जो बुद्धि का सृजन करता है) । सू+क्रि, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, सूरिः । पण्डित । विद्वान् । धीमान् सूरिः कृती (अ.को.२/७/६) ।

अद्रिः अद भक्षणे (अ.१) । खाना । खम् अत्ति (जो आकाश को घेर लेता है) । अद+क्रि, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, विभक्तिकार्य, अद्रिः । पर्वत । अद्रिः शैलद्रुमार्केषु (वि.प्र.को.रान्त.८३) ।

१८१. पृणातेः कुषः । ३-५४।

अस्मात् कुषप्रत्ययो भवति । कोऽनुबन्धः । 'पृ पालनपूरणयोः' पृणाति पूरयति स्त्रीणामुदरं गर्भेणेति पुरुषः । पुमान् ।

पृ धातु से कुष प्रत्यय होता है । 'कुष' में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । 'उष' शेष रहता है ।

पुरुषः पृ पालनपूरणयोः (क्री.१६) । पालन करना, भरना, पूर्ण करना । पृणाति=पूरयति स्त्रीणाम् उदरं गर्भेण (जो गर्भ से स्त्री के उदर की पूर्ति करता है) । पृ+कुष, क् अनुबन्ध के कारण धातु को गुण का निषेध, 'उरोष्ठचोपधस्य च' (कात.३/५/४३) सूत्र से ऋ को उरु,

1. भूरिर्ना वासुदेवे च हरे च परमेष्ठिनि ।
नपुंसकं सुवर्णे च, प्राज्ये स्याद् वाच्यलिङ्गकः ॥
(मेदिनी.रान्त.७३-७४)

विभक्तिकार्य, पुरुषः । मनुष्य । पुरुषः पुरुषे साख्यज्ञे च पुंनागपादपे
(वि.प्र.को.षान्त.१६) ।

पुरः कुषन् (वै.सि.कौ.४/५/१४) । पुर अग्रगमने, पुरुषः ।
अन्येषामपि दृश्यते (पा.सू.६/३/१३७) इति दीर्घः पुरुषः ।

१८२. हन्तेरूषः । १३-५५।

हन्तेर्धातोः ऊषप्रत्ययो भवति । 'हन हिंसागत्योः' हन्तीति
हनूषः राक्षसविशेषः ।

हन् धातु से ऊष प्रत्यय होता है ।

हनूषः हन हिंसागत्योः (अ.४) । मारना, हिंसा करना, जाना ।
हन्+ऊष, विभक्तिकार्य, हनूषः । राक्षसविशेष । दस्यु ।

१८३. मञ्जूषादयः । १३-५६।

मञ्जूषगण्डूषपीयूषाटरूपाः । एते ऊषप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।
'मचि धारणोच्छ्रायपूजनेषु' मञ्चते मञ्जूषा पेटा । 'गडि
वदनैकदेशे' गण्डतीति गण्डूषं कर-[मुख] वारि । 'पीड् पाने'
पीयते इति पीयूषम् अमृतम् । 'ऋ गतौ' आटपूर्वः । आटम्
इयतीति आटरूषः वासा ।

मञ्जूषा, गण्डूष, पीयूष, आटरूष ये सभी ऊष प्रत्ययान्त शब्द
निपातन से सिद्ध होते हैं ।

-
1. हतेरूषः म.सं. । ब.सं. तथा ति.अनु. में (५३५५) 'हन्तेरूषः' पाठ
है । म.सं. में 'हतेरूषः' पाठ असङ्गत है । हन् धातु का श्रितप्
प्रत्ययान्त 'हन्ति' ही होगा । अतः 'हतेरूषः' के स्थान पर
'हन्तेरूषः' पाठ किया गया ।

मञ्जूषा मचि धारणोच्छ्रायपूजनेषु (भू.३४२) । १. धारण करना, २. ऊँचा उठाना, ३. पूजा करना । मञ्चते । मञ्च्+ऊष, निपातन से चकार को जकार, नकार को अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, मञ्जूषा । पेटी । पिटकः पेटकः पेटा मञ्जूषा (अ.को.२/१०/२९) ।

गण्डूषम् गडि वदनैकदेशे (भू.१३१) । गालों में रोग होना, मुख का एकदेश । गण्डति । गण्ड्+ऊष, विभक्तिकार्य, गण्डूषम् । पानी से मुख भरना (कुल्ला) । मुखपूरण ।

गण्डूषो मुखपूर्तिभपुष्करप्रसृतोन्मिते (मेदिनी.षान्त.३५) । उन्नतनाभिस्तु गण्डूषा (अ.को.रामाश्रमी.३/५/१०) ।

पीयूषम् पीड् पाने (दि.९०) । पीना । पीयते । पी+ऊष, निपातन से य् आगम^१, विभक्तिकार्य, पीयूषम् । अमृत । पीयूषं सप्तदिवसावधि क्षीरे तथाऽमृते (मेदिनी.षान्त.४१) ।

पीय इति सौत्रो धातुः अस्मादूषन्, पीयूषम् (उज्ज्वल.४/७६) । (पेयूषो) पीयूषोऽभिनवं पयः (अ.को.२/९/५४) ।

आटरूषः ऋ गतौ (अ.७४) । आटम् इयति । आट ऋ+ऊष, निपातन से ऋ को र्, विभक्तिकार्य, आटरूषः । वासा । निवासस्थान । वस्त्र । पाश ।

१८४. शकादिभ्योऽटः । ३-५७।

एवमादिभ्योऽटः प्रत्ययो भवति । 'शक्लु शक्तौ' शक्नोति गन्तुमनेन शकटः स्यन्दनः । 'अव रक्ष पालने' अवतीति अवटः गर्तः । 'सृ गतौ' सरतीति सरटः कृकलासः । 'डु

१. यान्तादेशः (ति.अनु.३-१८३) ।

कृञ् करणे' करोति मदं करटः¹ गजकपोलः ।
एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

शक् आदि धातुओं से अट प्रत्यय होता है ।

शकटः शक्लृ शक्तौ (सु.१५) । समर्थ होना, शक्तिमान् होना ।
शक्नोति गन्तुमनेन (जिससे जाया जा सकता है) । शक्+अट,
विभक्तिकार्य, शकटः । गाड़ी । स्यन्दन । रथ । ऋषि ।
शकटोऽस्त्रियाम् (अ.को.२/८/५२) ।

अवटः अव पालने (भू.२०२) । अवति । अव्+अट, अवटः ।
गर्त । गड्ढा । अवटः स्यात् खिले गर्ते कूपे कुहकजीविनि
(वि.प्र.को.टान्त.३०) ।

सरटः सृ गतौ (भू.२७४) । सरति । सृ+अट, ऋ को अर्,
विभक्तिकार्य, सरटः । कृकलास (छिपकली) गिरगिट । सरटः कृकलासः
स्यात् (अ.को.२/५/१२) ।

करटः कृ कृञ् करणे (त.७) । करोति मदम् (जो मद करता है) ।
कृ+अट, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, करटः² । गजकपोल ।

इसी प्रकार के शब्दों को अट प्रत्यय से निष्पन्न कर लेना चाहिए ।

यथा-वरटः कीटभेद । देवटः शिल्पी । कपटः माया ।
चप सान्त्वने, पृषोदरादि- नियमानुसार एत्व, चपेटचपेटौ तले । मयटः
प्रासाद । (उज्ज्वल.४-८१) ।

-
1. उपर्युक्त शब्द ति.अनु. में अप्राप्त है ।
 2. करटो गजगण्डे स्यात् कुसुम्भे निन्द्यजीवने ।
एकादशाहादिश्राद्धे दुर्दुर्बुद्धेऽपि वायसे ॥
करटो वाद्यभेदेऽथ (मेदिनी.टान्त.३६-३७) ।

१८५. जटामर्कटौ १३-५८।

एतावटप्रत्ययान्तौ निपात्येते । 'जनी प्रादुर्भावे' केशेषु जायन्ते जटा केशसमूहः । 'मृड्' प्राणत्यागे म्रियते मर्कटः कपिः । अथवा मर्क इति सौत्रोऽयं धातुः । मर्कतीति मर्कटः ।

जटा, मर्कट ये दोनों अट प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

जटा जनी प्रादुर्भावे (दि.१४) । पैदा होना । केशेषु जायन्ते (जो केशों में उत्पन्न होते हैं) जन्+अट, निपातन से धातुघटक अन् का लोप, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, जटा । केशसमूह । जटा लग्नकचे मूले प्लक्षमाक्षिकयोर्जटी (वि.प्र.को.टान्त.२५) ।

तु.- जनेष्टन्नलोपश्च (वै.सि.कौ.उ.सू.५/७०८) ।

मर्कटः मृड् प्राणत्यागे (तु.१११) । मरना, प्राण छोड़ना । म्रियते । मृ+अट, ऋ को अर्, क् आगम्, विभक्तिकार्य, मर्कटः । कपि । बन्दर । मर्कटस्तूर्णनाभेऽपि कपौ स्त्रीकरणेऽपि च (वि.प्र.को.रान्त.५३) ।

मर्क् (सौत्र धातु) + अट, मर्कटः ।

१८६. वहलादिभ्य इत्रोत्रौ १३-५९।

एवमादिभ्यो यथासङ्ख्यम् इत्र उत्र इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । 'वह प्रापणे' वहतीति वहित्रम् पोतः । 'रा ला दाने' लातीति लोत्रम् अपहृतं द्रव्यम् । एवमादयोऽप्यनुसर्तव्याः ।

1. मृडो गुणः कान्तश्च (ति.अनु.३-१८५) ।

वह एवं ला आदि धातुओं से क्रमशः इत्र तथा उत्र प्रत्यय होते हैं ।

वहित्रम् वह प्रापणे (भू.६१०) । पहुँचाना, ढोना । वह+इत्र, विभक्तिकार्य, वहित्रम् । पोत । जहाज ।

लोत्रम् ला दाने (अ.२२) । देना, ग्रहण करना । लाति । ला+इत्र, गुण से ओकार, विभक्तिकार्य, लोत्रम् । अपहृत द्रव्य । चोर का चिह्न ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अन्य शब्दों को भी इत्र अथवा उत्र प्रत्यय के द्वारा सिद्ध कर लेना चाहिए । यथा-अशित्रम् चरु । कटित्रम् कवचभेद । वधित्रम् मन्मथ । वरुत्रम् प्रावरण । अमित्रः शत्रु । (उज्ज्वल.४-१७२,१७३) ।

१८७. खर्जिकृपिमसिपिञ्जादिभ्यः ऊरोलौ ।३-६०।

एवमादिभ्य ऊर-ऊल इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । 'खर्ज मार्जने' खर्जतीति खर्जूरः वृक्षविशेषः । 'कृपू सामर्थ्ये' कल्पते कर्पूरः गन्धद्रव्यम् । 'मसी परिणामे' मस्यतीति मसूरः धान्यविशेषः^२ । पिञ्ज इति सौत्रोऽयं धातुः । पिञ्जतीति पिञ्जूरः अक्षिरोगः । 'लगिः गत्यर्थः' लङ्गयतीति लाङ्गूलं पुच्छम् । उणादित्वाल्लङ्गेर्दीर्घत्वम् । इत्यादयोऽप्यनुसर्तव्याः ।

खर्ज, कृप, मस, धातुओं से ऊर तथा पिञ्ज आदि से ऊल प्रत्यय होते हैं ।

1. खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलौ (बं.सं.३-१९२), (ति.अनु.३/१८७) । बं.सं. एवं ति.अनु. में कृपि एवं मसि असंगृहीत हैं ।
2. ग्रीहिविशेषः बं.सं. ।

खर्जूरः खर्जं मार्जने (भू.६७, व्यथने) । साफ करना, दुःखित होना ।
 खर्जति । खर्ज्+ऊर, विभक्तिकार्य, खर्जूरः । वृक्षविशेष । खर्जूरं
 रुप्यफलयोः वृश्चिके ना द्रुमे द्वयोः (मेदिनी.रान्त.१४६) । खर्जूरः
 वनस्पतिविशेषः (श्वेत.वृ.४-९६) ।

कर्पूरः कृपू सामर्थ्ये (भू.४८८) । शक्तिमान् होना, समर्थ होना ।
 कल्पते । कृप्+ऊर, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, कर्पूरः । गन्धद्रव्य ।
 घनसारश्चन्द्रसंज्ञः सिताश्रो हिमवालुका । कर्पूरमस्त्रियाम् ।
 (अ.को.२/६/१२९,१३०) ।

मसूरः मसी परिणामे (दि.६०) । आकार बदलना, रूपान्तर करना ।
 मस्यति । मस्+ऊर, मसूरः । धान्यविशेष । मसूरा मसुरा व्रीहिप्रभेदे
 पण्ययोषिति (वि.प्र.को.सान्त.२१५) ।

पिञ्जूरः पिञ्ज् (सौत्रधातु.-पिजि हिसादाननिकेतनेषु चु.२५) ।
 पिञ्ज्+ऊर, पिञ्जूरः । अक्षिरोग । पिञ्जूलं कुशवर्तिः
 (वै.सि.कौ.उ.सू.५३०) ।

लाङ्गूलम् लङि गत्यर्थः (भू.३८) । इदनुबन्ध से न् आगम ।
 लङ्गति । लङ्ग+ऊल, उणादि होने से धातु को दीर्घ,
 विभक्तिकार्य, लाङ्गूलम् । पुच्छ । पूछ । पुच्छोऽस्त्री लूमलाङ्गूले
 (अ.को.२/८/५०) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अन्य शब्दों को भी ऊर-ऊल
 प्रत्ययों के द्वारा निम्न कर लेना चाहिए ।

यथा- धुस्तूरः धतूर । वल्लूरम् शुष्कमांस ! शालूरः मण्डूक,
कस्तूरः सुगन्ध । शार्दूलः व्याघ्र । दुकूलम् स्त्रियो का अधोवस्त्र ।
कुसूलः धान्यपात्र ।

१८८. सर्वेर्वः । ३-६१।

अस्माद् वप्रत्ययो भवति । 'सृ गतौ' सरतीति सर्व
कृत्स्नम् ।

सृ धातु से व प्रत्यय होता है ।

सर्वम् सृ गतौ (भू.२७४) । सरति । सृ+व, ऋ को अद्,
विभक्तिकार्य, सर्वम् । कृत्स्न । सम्पूर्ण ।

१८९. उल्बादयः । ३-६२।

उल्बनिम्बविम्बशुल्बाः । एते ब२- (व) प्रत्ययान्ता
निपात्यन्ते । 'ऋ गतौ' इयतीति उल्बं जरायुः । 'णीङ् प्रापणे'
नयते निम्बः वृक्षः । 'वी प्रजने' वेतीति बिम्बं प्रतिरूपम् ।
'शल गतौ' शलतीति शुल्बं ताम्रम् । एवमन्येऽप्यनुसर्तव्याः ।

1. उल्बनिम्बशुल्बविम्बाः (बं.स.३-१९४) ति.अनु. में उक्त शब्द संगृहीत नहीं है ।
2. म.सं. में व प्रत्यय का निर्देश है । पूर्व सूत्र (१८८) से व प्रत्यय होता है । तदनुसार यहाँ 'व' की ही अनुवृत्ति होगी । अतः प्रकृत सूत्र से भी 'व' प्रत्यय कहना चाहिए । वै.सि.कौ. में भी शमेर्बन् (४/५३४) से 'उल्बादयः' (४/५३५) सूत्र में 'बन्' की अनुवृत्ति होती है । तदनुसार यहाँ भी 'व' प्रत्यय ही कहना चाहिए । 'उल्ब' आदि की सिद्धि हेतु निपातन से व को ब कर लेना चाहिए ।

उल्ब, निम्ब, विम्ब, शुल्ब ये सभी व प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं । जो शब्द सूत्रों के अनुसार सिद्ध नहीं होते हैं उन्हें निपातन से सिद्ध कर लिया जाता है ।

उल्बम् ऋ गतौ (अ.७४) । इयति । ऋ+व, निपातन से व को ब, ऋ को उल्, विभक्तिकार्य, उल्बम् । जरायु । गर्भाशयो जरायुः स्यादुल्बं च कललोऽस्त्रियाम् (अ.को.२/६/३८) ।

निम्बः णीञ् प्रापणे (भू.६००) । णो नः से ण को न । नयति । नी+व, निपातन से व को ब, उपधाभूत ईकार को ह्रस्व, तथा न् आगम, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, निम्बः । वृक्ष (नीम) । निम्बः स्यात् पिचुमर्दे च तिक्तके च चिरायते (वि.प्र.को.बान्त.१) ।

विम्बः वी प्रजने (अ.१४) । गर्भ धारण करना । वेति । वी+व, निपातन से व को ब, धातुघटक ईकार को ह्रस्व, न् आगम, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, बिम्बः । प्रतिरूप । बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु (अ.को.१/३/१५) । बिम्बं फले बिम्बिकायां प्रतिबिम्बे च मण्डले (वि.प्र.को.बान्त.२) ।

शुल्बम् शल गतौ (भू.५५४) । शलति । शल्+व, धातुस्थ अकार को उकार, व को ब, विभक्तिकार्य, शुल्बम् । ताम्र (ताँबा) । शुल्बं ताम्रे यज्ञकर्मण्याचारे जलसन्निधौ (मेदिनी.बान्त.२७) ।

शुच (शोके) बन, चकार को लकार, गुणाभाव, शुल्बम् । (वै.सि.कौ.बाल.उ.सू.५३५) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अन्य शब्दों को भी व प्रत्यय तथा निपातन से अपेक्षित कार्य करके निष्पन्न कर लेना चाहिए ।

यथा-नितम्बः श्रोणि । शम्बः वज्र । डिम्बः व्यसन । हिडिम्बः राक्षस । स्तम्बः गोट । साम्बः जाम्बवतेय । कदम्बः पक्वान्निविशेष । करम्बः दध्योदन । निकुरुम्बम् समूह । कुटुम्बम् दारादि ।

१९०. शविकमिभ्यां दः । ३-६३।

आभ्यां दप्रत्ययो भवति । 'शव गतौ' शवतीति शब्दः ध्वनिः । 'कमु कान्तौ' कमतीति (कामयते) कन्दः सूरणः ।

शव् एवं कम् धातु से द प्रत्यय होता है ।

शब्दः शव गतौ (भू.२३८) । शवति । शव्+द, वकार को बकार, विभक्तिकार्य, शब्दः । ध्वनि । निनाद । इन्द्रियविषय । अक्षरसमूह ।

शप् (आक्रोशे)+दन्, जश्त्व, शब्दः (वै.सि.कौ.उ.सू.५३७) । शप्यते आहूयते अनेन स शब्दः (दया.उ.को.४/९७) । शास्त्रे शब्दस्तु वाचकः (अ.को.१/६/२) ।

कन्दः कमु कान्तौ (भू.४०५) । कामयते । कम्+द, म् को अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, कन्दः । सूरण । ओल, सूरन । बण्डा । कन्दोऽस्त्री सूरणे शस्यमूले जलधरे पुमान् (मेदिनी.दान्त.३) ।

१९१. कुन्दादयः । ३-६४।

कुन्दवृन्दमन्दाब्दाः । एते दप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।..... तीति^१ ('कुण शब्दे' कुण-तीति) कुन्दः पुष्परसविशेषः । 'वृञ्

१. वृत्ति में 'कुन्दः' शब्द की प्रकृतिभूत धातु एवं व्युत्पत्ति का पूर्व सम्पादक ने निर्देश नहीं किया बल्कि तदर्थ सात रिक्त बिन्दुओं का निर्देश किया । कलापोणादि बंग संस्करण में कुन्द की धातु-'कुण शब्दे' का पाठ है । अतः रिक्त स्थान में 'कुण शब्दे' कुण-तीति' ऐसा पाठ रखा जा सकता है । पञ्चपादी में 'कु शब्दे' से निष्पत्ति की गई । ति.अनु. में भी यही धातु निर्दिष्ट है ।

वरणे' वृणोतीति वृन्दः समूहः । 'मन ज्ञाने' मन्यते मन्दः
स्थिरगतिः¹ । 'अव रक्ष पालने' अवतीति अब्दः संवत्सरः ।

कुन्द, वृन्द, मन्द, अब्द ये चारो द प्रत्ययान्त शब्द निपातन से
सिद्ध होते हैं ।

कुन्दः कुण शब्दे (तु.५ उपकरणेऽपि) । शब्द करना, दानादि से
संरक्षण करना । कुणति । कुण्+द, ण् को न्, गुणाभाव, विभक्तिकार्य,
कुन्दः । पुष्परस । कुन्दो माध्येऽस्त्री मुकुन्दभ्रमिनिध्यन्तरेषु ना
(मेदिनी.दान्त.३) ।

कु शब्दे, दन्, नुम्, कुन्दः (वै.सि.कौ.उ.सू.५३८) ।

वृन्दः वृज् वरणे (सु.८) । वरण करना, पसन्द करना । वृणोति ।
वृ+द, निपातन से न् आगम, गुण का अभाव, विभक्तिकार्य, वृन्दः ।
समूह । वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम् (अ.को.२/५/४०) ।

मन्दः मन ज्ञाने (दि.११३) । मन्यते । मन्+द, विभक्तिकार्य, मन्दः ।
स्थिरगति वाला । मूर्ख ।

मन्दः खले मन्दरते मूर्खे स्वैरेऽल्परागिणोः । अभाग्येऽपि च
मातङ्गे गजजातिप्रभेदयोः ॥ (वि.प्र.को.दान्त.१०) ।

अब्दः अव पालने (भू.१०२) । रक्षा करना । अवति । अव+द,
निपातन से वकार को बकार, विभक्तिकार्य, अब्दः । संवत्सर । अब्दः
संवत्सरे वारिवाहमुस्तकयोः पुमान् (मेदिनी.दान्त.२) ।

1. अविद्वान् (ति.अनु.) स्वल्पम् (बं.सं.) ।

१९२. पीम्यो रुः। १३-६५।

अनयोः रुप्रत्ययो भवति । 'पीङ् पाने' पीयते पेरुः
भास्करः । 'मीङ् हिंसायाम्' मीयते मेरुः सुरशैलः । सुपूर्वः ।
सुमेरुः स एव ।

पी एवं मी धातु से रु प्रत्यय होता है ।

पेरुः पीङ् पाने (दि.१०) । पीना । पीयते (रसान्) । पी+रु,
धातुघटक ईकार को गुण से एकार, विभक्तिकार्य, पेरुः । भास्कर ।
सूर्य ।

मिपीम्यां रुः पीयते रसानिति पेरुः (वै.सि.कौ.तत्त्व.उ.सू.५४१) ।

मेरुः मीङ् हिंसायाम् (दि.८५) । हिंसा करना, नष्ट करना । मीयते ।
मी+रु, धातुघटक ईकार को एकार गुण, विभक्तिकार्य, मेरुः ।
सुवर्णीगिरि । राजा । सुमेरु । मेरुः सुमेरुः हेमाद्रिः (अ.को.१-१-५२) ।

१९३. जत्र्वादयः । १३-६६।

जत्रुश्मश्रुशिग्रुशत्रवः । एते रुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'जनी
प्रादुर्भावे' जायते जत्रु ग्रीवाया अस्थि, ग्रीवावयवो वा । 'शो
तनूकरणे' श्यति श्मश्रु मुखशोभा । 'शीङ्^२ (शिञ्) निशामने'
शिनोतीति शिग्रुः शोभाञ्जनः । 'शदलु शातने' शीयत इति
शत्रुः वैरी । एवमन्येऽपि ।

1. पीमीम्यां रुः (बं.सं.३-१९५) ।

2. शीङ् निशामने म.सं. । निशामन या निशान अर्थ में 'शिञ्' धातु
पठित है । म.सं. शीङ् पाठ असाधु है । पा.धातु. में 'शिञ्
निशाने' (सु.१३२९) पठित है । कात.धातु में भी शिञ् निशाने
(सु.३) पठित है । अतः 'शिञ्' पाठ उचित है ।

जत्रु, श्मश्रु, शिगु, शत्रु ये सभी रु प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं ।

जत्रु जनी प्रादुर्भावे (दि.१४) । जायते । जन्+रु, निपातन से नकार को तकार, विभक्तिकार्य, जत्रु (नपुं.) । ग्रीवा की हड्डी या ग्रीवा (गर्दन) का अङ्गा स्कन्धसन्धिः (कन्धों का जोड़) । स्कन्धो भुजशिरोऽसोऽस्त्री सन्धी तस्यैव जत्रुणी (अ.को.२/६/७८) ।

श्मश्रु शो तनूकरणे (दि.१९) । तनूकरण=छीलना, पतला करना । श्यति । सन्ध्यक्षर ओकार को आकार । शा+रु, निपातन से आकार का लोप तथा मश् आगम, विभक्तिकार्य, श्मश्रु (नपुं.) मुखशोभा । मुखरोम । तद्वृद्धौ श्मश्रु पुमुंखे (अ.को.२/६/९९) ।

श्मन् (पूर्वक) श्रिञ्+ङु, नकार लोप, डित्व के कारण इकार लोप, श्मश्रु । श्मनि श्रयतेर्ङुन् (वै.सि.कौ.उ.सू.७०६) । श्मनि शीङो डित् (सरस्वती.२/१/९८) ।

शिगुः शिञ् निशाने (सु.३) । निशान=तीक्ष्ण करना, पैना करना । शिनोति । शि+रु, निपातन से ग् आगम, गुणाभाव, विभक्तिकार्य, शिगुः । शोभाञ्जन । तरु । सहिजन । शाक । भाजी ।

शिगुः शोभाञ्जने शाके (वि.प्र.को.रान्त.७२) । शिगुर्ना शाकमात्रे च शोभाञ्जनमहीरुहे (मेदिनी.रान्त.९०) ।

शेतेऽसौ शिगुः, शोभाञ्जनस्तरुः 'सहिजना' इति प्रसिद्धः शाकं वा (दया.उ.को.४-१०३ व्याख्यानार्गत) ।

शत्रुः शदलु शातने (भू.५६३) । जीर्ण होना, मुरझाना । शीयते शद्+रु, दकार को तकार, विभक्तिकार्य, शत्रुः । वैरी ।

तु.- रुशातिभ्यां कृन्, शाति+कृन्, शत्रुः (वै.सि.कौ.उ.सू.५४३) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अन्य शब्दों को भी निपातन से सिद्ध कर लेना चाहिए । यथा-रुरुः मृगभेद । अश्रु आँसू । कटुः वर्णभेद । वितट्टः नदी (उज्ज्वल.४-१०२) ।

१९४. योरागूः^१ ।३-६७।

अस्मादागूप्रत्ययो भवति । 'यु मिश्रणे' यौतीति यवागूः^२ अश्वपद्मं वरणञ्च ।

॥ इति दौर्गासिंहा(सिम्हा)मुणादिवृत्तौ तृतीयः पादः ॥

यु धातु से आगू प्रत्यय होता है ।

यवागूः यु मिश्रणे (अ.६) । जुड़ना, मिलना । यौति । यु+आगू, धातुघटक उकार को ओकार गुण 'ओ अव्' (कात.१/२/१४) से ओकार के स्थान में अव् आदेश, विभक्तिकार्य, यवागूः । दूध से पका हुआ यवचूर्ण । चावलों का माँड़ (लप्सी, हलुआ) ।

यवागूरुष्णिका श्राणा विलेपी तरला च सा (अ.को.२/९/४९) । यवागूः षड्गुणजलपक्वधनद्रवद्रव्यविशेषः यज्ञद्रव्यविशेषश्च (मु.को.लिङ्गानु.टि.-पृ.९३) ।

(दुर्गासिंह कृत उणादिवृत्ति के तृतीय पाद की हिन्दी टीका समाप्त)

1. कलापोणादि के बं.सं. में प्रथम पाद से तृतीय पाद तक १९९ सूत्र हैं । मं.सं. में १९४ सूत्र हैं । अर्थात् इसमें ५ सूत्र कम हैं ।
2. यवागूः तण्डुलकणान्मम् (बं.सं.४-१९९) ।

॥ अथ चतुर्थः पादः ॥

१९५. जनिमनिदसिभ्यो युः ।४-१।

एभ्यो युप्रत्ययो भवति । उणादित्वाद् योरनादेशो न भवति । 'जनी प्रादुर्भावे' जायते जन्युः प्राणी । 'मन ज्ञाने' मन्यते मन्युः कोपः । 'तसु दसु उपक्षये' दस्यति अन्यमुपक्षिणोतीति दस्युः चौरः

जन्, मन्, दस् इन धातुओं से यु प्रत्यय होता है । 'उणादित्वात्' इस हेतु से प्रत्यय यु के स्थान में 'युवुझामनाकान्ताः' (कात.४/६/५४) इस सूत्र से 'अन' आदेश नहीं होता । जब कि इस सूत्र से यु, वु, झ को क्रमशः अन, अक, अन्त आदेश होते हैं ।

जन्युः जनी प्रादुर्भावे (दि.९४) । प्रादुर्भाव=उत्पन्न होना, जन्म लेना । जायते । जन्+यु, उणादित्वात् हेतु से यु को अन का निषेध, 'धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्' (कात.२/१/१) इस सूत्र से लिङ्गसंज्ञा 'तस्मात् परा विभक्तयः' (कात.२/१/२) सूत्र से सि, 'रेफसोर्विसर्जनीयः' (कात.२/३/६३) सूत्र से स् को विसर्ग, जन्युः । प्राणी । शरीरी । अथ जन्युः स्यात् पुंसि प्राण्यग्निधातुषु (मेदिनी.यान्त.२७) ।

तु.- जन्+युच्, जन्युः (वै.सि.कौ.उ.सू.३/३००) ।

मन्युः मन ज्ञाने (दि.११३) । जानना, ज्ञान करना । मन्यते । मन्+यु, यु को अन का निषेध, विभक्तिकार्य, मन्युः । कोप । मन्युः पुमान् क्रुधि । दैन्ये शोके च यज्ञे च (मेदिनी.यान्त.४५) ।

दस्युः दसु उपक्षये (दि.५२) । उपक्षय=दबाना, क्षति पहुँचाना । दस्यति अन्यम् उपक्षिणोति (जो दूसरे को दबाता है या क्षति पहुँचाता है) ।

दस्+यु, विभक्तिकार्य, दस्युः । चोर । शत्रु । दस्युश्चोरे रिपौ पुंसि
(मेदिनी.यान्त.३०) ।

१९६. हीकृशिभ्यां कुगानुकौ । १४-२।

आभ्यां 'कुक्' 'आनुक्' इत्येतौ प्रत्ययौ भवतो
यथासङ्ख्यम् । ककारो यण्वद्भावार्थस्तेनागुणत्वम् । 'ही
लज्जायाम्' जिहेतीति हीकुः सलज्जः । 'कृश तनूकरणे'
कृशतीति २(कृश्यतीति) कृशानुः वहिः ।

ही एवं कृश् इन दोनों धातुओं से क्रमशः कुक् तथा आनुक्
प्रत्यय होते हैं । प्रत्ययस्थ अन्त्य क् अनुबन्ध के 'के यण्वच्च
योक्तवर्जम्' (कात.४/१/७) इस नियम से यण्वद्भावार्थ होने से धातु को
गुण का निषेध होता है । कात.व्या. में अनुबन्ध प्रयोगार्ह नहीं होते ।

हीकुः ही लज्जायाम् (अ.६९) । लज्जित होना, झुकना । जिहेति ।
ही+कुक्, क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का
निषेध, विभक्तिकार्य, हीकुः । लज्जायुक्त । धृष्णु ।

रेफस्य च लत्वादेशः हलीकुर्जतुत्रपुणी लाक्षादिश्च (उज्ज्वल.३-८५) ।

तु.- हियः कुग्रश्च लो वा (वै.सि.कौ.३/३६५) ।

कृशानुः कृश तनूकरणे (दि.६५) । तनूकरण=कृश होना, सूक्ष्म होना ।
कृश्यति । कृश्+आनुक्, क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को
गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, कृशानुः । वहिः । अग्नि ।

1. णुकानुकौ (बं.सं.४-२०१) ।

2. कृश् धातु वर्तमान उपलब्ध कातन्त्र धातुपाठ में दिवादिगण में
(दि.६५) पठित है । अतः वृत्ति में 'कृशति' पाठ असमीचीन है ।
देवादिक पाठ के अनुसार 'कृश्यति' होना चाहिए ।

१९७. मन्यतेः किरत उच्च १४-३।

अस्मात् किः प्रत्ययो भवति, अत उत्त्वम् । 'मन ज्ञाने' मन्यते मुनिः यतिः ।

मन् धातु से 'कि' प्रत्यय होता है तथा मन्-घटक अकार को उकार होता है । 'कि' में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । इससे धातु को गुण का निषेध होता है ।

मुनिः मन ज्ञाने (दि.११३) । जानना, ज्ञान करना । मन्यते । मन्+कि, मन् में मकार घटक अकार को प्रकृत सूत्र से उकार, यण्वद्भाव होने से गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, मुनिः । यति । मुनिर्यमीङ्गुदीबुद्धपियालागस्तिकिंशुके (वि.प्र.को.नान्त.२१) ।

धर्मादिमननात् मुनिः वसिष्ठः ज्ञानी (बं.सं.सू.४-२०१) ।

१९८. अहिकम्प्योर्नलोपश्च १४-४।

आभ्यां किः प्रत्ययो भवति, नलोपश्च । 'अहि प्लिहि गतौ' अंहते वेगेन गच्छतीति अहिः सर्पः । 'कपि चलने' कम्पते कपिः वानरः ।

अंह, कम्पि इन धातुओं से कि प्रत्यय होता है तथा अंह-घटक नकार का लोप होता है । 'अहि' के इदित् होने से न् आगम^१ तथा अनुस्वार होकर 'अंह' रूप होता है ।

अहिः अहि गतौ (भू.४४८) । इदनुबन्ध से न् आगम । अंहति । अंह+कि, नकार लोप, विभक्तिकार्य, अहिः । सर्प । सौंप । अहिः वृत्रासुरे सर्पे (वि.प्र.को.हान्त.८) ।

१. इदनुबन्धत्वान्नागमः (ति.अनु.४-१९८) ।

आङ् हन्+इण्, ह्रस्व, अहिः (वै.सि.कौ.उ.सू.४/५७७) ।

कपिः कपि चलने (भू.३८१) । चलना, कँपना । इदनुबन्ध से न् आगम । कम्पते । कम्प्+कि, नकारलोपः, विभक्तिकार्य, कपिः । बन्दर । वर्णभेद ।

कपिर्ना सिंहलके शाखामृगे च मधूसूदने (मेदिनी.पान्त.२) ।

१९९. शृवसिवपिराजिवृहनिनभिभ्य इज् १४-५।

एभ्य इज्प्रत्ययो भवति । जकार इज्ज्वद्भावार्थः । 'शृ सृ हिंसायाम्' शृणोतीति (शृणाति) शारिः गजप्रावरणम् । 'वस निवासे' वसतीति वासिः काष्ठकुदालः । 'डु वपु' उप्यते वापी जलाधारः । 'राजृ दीप्तौ' राजत इति राजिः श्रेणिः । 'वृज् वरणे' वृणोतीति वारि जलम् । 'हन हिंसागत्योः' हन्तीति घातिः प्रहरणम् । 'णभ तुभ हिंसायाम्' नभ्यतीति नाभिः शरीरमध्यम् ।

शृ, वस, वप, राज, वृज, हन्, नभ इन धातुओं से इज् प्रत्यय होता है । इज् में ज् अनुबन्ध से 'सिद्धिरिज्ज्वद् ञ्णानुबन्धे' (कात.४/१/१) इस सूत्र से इज्ज्वद्भाव होता है । इज्ज्वद्भाव के कारण उपधावृद्धि, दीर्घादि कार्य होते हैं ।

शारिः शृ हिंसायाम् (क्री.१५) । हिंसा करना, नष्ट करना । शृणाति । शृ+इज्, ज् अनुबन्ध के इज्ज्वद्भावार्थ होने से ऋ को आर् वृद्धि, विभक्तिकार्य, शारिः । हाथी की झुल (हाथी की पीठ पर जो वस्त्र झूलता रहता है, जिस पर महावत भी बैठता है) । पक्षिविशेष । शारिर्नाऽक्षोपकरणे स्त्रियां शकुनिकान्तरे । युद्धार्थगजपर्याणे व्यवहारान्तरेऽपि च (मेदिनी.रान्त.८८-८९) ।

1. तक्षकारभाण्डम् (दश.वृ.१/५३), छेदनवस्तुनि (वै.सि.कौ.उ.५६४) ।

कपिलिकादित्वाल्लत्वम्, शालिः (वै.सि.कौ.-तत्त्व.उ.सू.५६७) ।
शालिस्तु कलमादौ च गन्धमार्जारके पुमान् (मेदिनी.लान्त.५०) ।

वासिः वस निवासे (भू.६१४) । निवास करना, रहना । वसति ।
वस्+इञ्, ज् अनुबन्ध के इज्वद्भावार्थ होने से उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य,
वासिः । लकड़ी की कुल्हाड़ी । कुद्दाल । कुठार भेद । वसूली ।
औजार ।

वापी डु वपु बीजसन्ताने (भू.६०९) । पैदा होना, उगना । उप्यते ।
वप्+इञ्, इज्वद्भाव से वृद्धि, स्त्री. में 'नदाद्यन्वि.' इत्यादि सूत्र से ई,
लिङ्गसंज्ञा सि, सिलोप, वापी । बावड़ी । बड़ा कुआँ । जलाशय ।
जीवजन्तुओं का जलाधार (ति.अनु.) ।

उप्यन्ते निधीयन्ते जलान्यस्यामिति वापी (श्वेत.वृ.४/१३४) ।

राजिः राज् दीप्तौ (भू.५३९) । चमकना, प्रकाशित होना । राजते ।
राज्+इञ्, राजिः । श्रेणि, पङ्क्ति । रेखा । राजिः स्त्री पङ्क्तिरेखयोः
(वि.प्र.को.जान्त.९) ।

वारि वृज् वरणे (सु.८) । पसन्द करना, स्वीकार करना । वृणोति ।
वृ+इञ्, इज्वद्भाव के कारण 'अस्योपधाया.' (कात.३/६/५) इत्यादि सूत्र
से आर् वृद्धि, नपुंसक में सि, सि का लोप, वारि । जल । वारिः
स्मृत्यां सरस्वत्यां वारि हलीबेरनीरयोः । वारी घटीभबन्धन्योः
(वि.प्र.को.रान्त.८१) । वारिः पथिकसंहतौ (वै.सि.कौ.उ.सू.४/५६४) ।

घातिः हन हिंसागत्योः (अ.४) । मारना, जाना । हन्ति । हन्+इञ्,
हकार को घकारादेश, तथा त् अन्तादेश, इज्वद्भाव से वृद्धि ।
विभक्तिकार्य, घातिः । प्रहरण शस्त्र । निघातिर्लोहघातिनी
(वै.सि.कौ.उ.सू.४/५६४) ।

नाभिः णभ हिंसायाम् (नभ.दि.७५) । हिंसा करना । नघ्यति । 'णो नः' से ण् को न् । नभ्+इञ्, इज्वद्भाव से उपधावृद्धि, विभक्तिकार्य, नाभिः । शरीर के मध्य में स्थित अङ्गविशेष । क्षत्रिय । उदरकूपिका ।

नाभिर्मुख्यनूपे चक्रमध्यक्षत्रिययोः पुमान् । द्वयोः प्राणिप्रतीके स्यात् स्त्रियां कस्तूरिकामदे (मेदिनी.भान्त.५-६) ।

२००. अजिजन्यतिरशिपणिभ्यः ।४-६।

एभ्य इज्प्रत्ययो भवति । पृथग्योगः स्पष्टार्थः । अत एव निर्देशादजेर्वी न स्यात् । 'अज क्षेपणे' अज्यते लोकोऽस्मिन्निति आजिः^१ । 'जन जनने' जजन्तीति जनिः माता । 'अत सातत्यगमने' अततीति आतिः गमनम् । 'रश' इति सौत्रोऽयं धातुः । रशतीति राशिः । 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' पणायते व्यवहरत्यनेन पाणिः करः ।

अज्, जन्, अत्, रश्, पण् इन धातुओं से 'इज्' प्रत्यय होता है । 'इज्' में 'ज्' अनुबन्ध के इज्वद्भावार्थ होने से उपधा-वृद्धि होती है । पूर्ववर्ती (४-५) सूत्र से इस सूत्र का पृथक् पाठ स्पष्टता के लिए विहित है । पृथक् योग होने से 'अजेर्वी' (कात.३/४/९१) इस सूत्र से अज् के स्थान में 'वी' आदेश नहीं होता ।

आजिः अज क्षेपणे (भू.६४) । जाना, फेंकना । अज्यते लोकोऽस्मिन् (जिसमें व्यक्ति फेंके जाते हैं) । अज्+इज्, इज्वद्भाव से वृद्धि, अज् के स्थान में वी का निषेध, विभक्तिकार्य, आजिः । युद्ध । आजिः समावनौ युद्धे (वि.प्र.को.जान्त.९) ।

१. आजिः युद्धभूमिः (ति.अनु.४-२००) । ।

जनिः जन जनने (अं.८०) । उत्पन्न होना । जजन्ति । जन्+इञ्, ज् अनुबन्ध से इज्वद्भाव के कारण प्राप्त वृद्धि का 'जनिवध्योश्च' (कात.३/४/६७) सूत्र से निषेध, विभक्तिकार्य, जनिः । माता । उत्पत्ति । जनी सीमन्तिनीवध्वोरुत्पत्तावौषधीभिदि (मेदिनी.नान्त.६) ।

जायतेऽस्यां गर्भ इति जनिः अभिनवपाणिग्रहणा (श्वेत.वृ.४-१३९) ।

आतिः अत सातत्यगमने (भू.३) । निरन्तर चलना । अतति । अत्+इञ्, उपधा-वृद्धि, विभक्तिकार्य, आतिः । गमन । स्वर्ग । तित्तिर- भेद । पक्षी ।

राशिः रश (सौत्र धातु) रश्+इञ्, वृद्धि, विभक्तिकार्य राशिः । समूह । मेषादि राशि । राशिर्मेषादिपुञ्जयोः (मेदिनी.शान्त.१२) ।

तु- अशेरुट्, राशिः (वै.सि.कौ.उ.सू.५७२) ।

पाणिः पण व्यवहारे स्तुतौ च (भू.४०१) । उद्योग करना, व्यापार करना । पणायते । पण्+इञ्, उपधावृद्धि, विभक्तिकार्य, पाणिः । हाथ ।

२०१. वे [जो डिः] १४-७।

अस्मात् डिप्रत्ययो भवति । डोऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । 'वेज् तन्तुसन्ताने' वयतीति विः पक्षी ।

वेज् धातु से डि प्रत्यय होता है । 'डि' में इ अनुबन्ध 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) सूत्र से धातु में अन्त्य स्वरादि के लोपार्थ प्रयुक्त है ।

विः वेज् तन्तुसन्ताने (भू.६११) । बुनना, सिलना । वयति । वे+डि, इ अनुबन्ध के कारण 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) इस सूत्र से

धातुस्वर एकार का लोप, विभक्तिकार्य, विः । पक्षी । वि श्रेष्ठेऽतीते
नानार्थे पक्षिवाचि त्वनव्ययम् (अने.सं.परि.पृ.१४७- श्लोक-२०) ।

२०२. नीविः। १४-८।

अयं डिप्रत्ययान्तो निपात्यते । निपूर्वः । 'वेज्
तन्तुसन्ताने' वयतीति नीविः मूलबन्धनम्^२ [मूलधनम्] ।

'नीवि' यह डिप्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होता है ।

नीविः नि(पूर्वक) वै+डि, ड् अनुबन्ध से 'वे' घटक एकार का लोप,
नि-घटक इकार को निपातन से दीर्घ, विभक्तिकार्य, नीविः ।
मूलधन । दुकूलबन्धन । नीवी परिपणे स्त्रीणां कटीवसनबन्धने
(मेदिनी.वान्त.१५) । नीवी परिपणं मूलधनम् (अ.को.२/१/८०) ।

तु.- नौ व्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः, (वै.सि.कौ.उ.४/५७५) ।

२०३. सख्यादयः १४-९।

सखि-अश्रि-प्रहि- इत्यादयो डिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।
'ख्या प्रकथने' समा[नि] ख्यातीति सखि^३ मित्रम् । 'श्रा पाके'
नजपूर्वः । न श्रातीति अश्रिः अग्रभागः^४ । 'ओ हाक् त्यागे'
प्रपूर्वः । प्रजहातीति प्रहिः कूपः त्यागकर्ता वा ।
इत्यादयोऽप्यनुसर्तव्याः ।

सखि, अश्रि, प्रहि इत्यादि डि प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध
होते हैं ।

1. नौ च (बं.सं.४/२०७) ।

2. मूलधनम् (ति.अनु.) ।

3. समान इत्यस्य 'स' आदेशः (ति.अनु.) ।

4. तणांशः (ति.अनु.) ।

सखि ख्या प्रकथने (अ.२४) । प्रकथन=प्रसिद्ध करना, प्रख्यात करना । समानं ख्याति (जो समान रूप से प्रसिद्ध होता है) । समान+ख्या+ङि, इ अनुबन्ध से या का लोप, समान के स्थान पर 'स' आदेश, विभक्तिकार्य, सखि । मित्र । सखा मित्रे सहाये ना वयस्यायां सखी मता (मेदिनी.खान्त.७) ।

तु.- समानं ख्यायते जनैरिति सखा, समाने ख्यः स चोदात्तः (वै.सि.कौ.उ.सू.४/५७६) ।

अश्रिः श्रा पाके (अ.२९) । पकाना, उबालना । न श्राति । न+श्रा+ङि, इ अनुबन्ध से धातुघटक आकार का लोप, 'नस्य तत्पुरुषे लोप्यः' (कात.२/५/२२) सूत्र से नञ्-घटक न् का लोप, विभक्तिकार्य, अश्रिः । अग्रभाग । कोटि ।

आङ्(पूर्वक) श्रिञ्+इण्, ह्रस्व (वै.सि.कौ.उ.सू.४/५७७) ।

प्रहिः ओ हाक् त्यागे (अ.७१) । छोड़ना । प्रजहाति । प्र+हा+ङि, इ अनुबन्ध से धातुघटक आकार का लोप, विभक्तिकार्य, प्रहिः । कूप या त्यागकर्ता ।

तु.- प्रे हरतेः कूपे (वै.सि.कौ.उ.सू.४/५७४) ।

२०४. धृज् (दृज्)वसिभ्यां क्तिः । ४-१०।

आभ्यां क्तिप्रत्ययो भवति । ककारो यण्वद्भावार्थः । तेनागुणत्वम् । 'दृज् आदरे' द्रियते दृतिः चर्मप्रसेवकः । 'वस आच्छादने' वस्यतेऽनयां वस्तिः पूर्वशिरा ।

1. वृत्ति में 'दृज् आदरे' तथा उससे निष्पन्न 'दृति' में दकार होने से सूत्र में 'धृज्' के स्थान पर 'दृज्' पाठ होना चाहिए । पा.उ. दृणातेर्ह्रस्वश्च (वै.सि.कौ.उ.४/६२३) ।

दृज् तथा वस् धातु से क्ति प्रत्यय होता है । 'क्ति' में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । इससे धातु को गुण का निषेध होता है ।

दृतिः दृङ् आदरे (तु.११२) । सत्कार करना । द्रियते । दृ+क्ति, यण्वद्भाव से ऋ को गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, दृतिः । चमड़े को सिलने वाला । चमार । चर्ममय पात्र । दृतिश्चर्मपुटे झषे (वि.प्र.को.तान्त.४८) । दृतिश्चर्मपुटे मत्स्ये ना (मेदिनी.तान्त.२६) ।

तु.- दृ+ति, ह्रस्व (वै.सि.कौ.उ.सू.४/६२३) ।

वस्तिः वस निवासे (भू.६१४) । वस्यते अनया । वस्+क्ति, विभक्तिकार्य, वस्तिः । पूर्वीशिरा । नाभि का निचला प्रदेश । वस्तिर्द्वयोर्निरूहे नाभ्यधो भूमि दशासु च (मेदिनी. तान्त.५५) ।

२०५. वहिवस्यमिभ्योऽतिः । ४-११ ।

एभ्योऽतिप्रत्ययो भवति । 'वह प्रापणे' वहतीति वहतिः नौः^१ (गौः) । 'वस निवासे' वसति लोकोऽस्यामिति वसतिः गृहम् । 'अम गतौ' अमतीति अमतिः कालः^२ ।

वह, वस्, अम् इन तीनों धातुओं से अति प्रत्यय होता है ।

वहतिः वह प्रापणे (भू.६१०) । वहति । वह+अति, विभक्तिकार्य, वहतिः । बैल । सचिव, परामर्शदाता । वायु, मित्र । वहतिर्गीवि सचिवे पुंसि (मेदिनी.तान्त.१४९) ।

1. 'वहतिः' का नौका अर्थ उपलब्ध नहीं होता । 'गौ' अर्थ उपलब्ध होता है । अतः 'नौः' के स्थान पर 'गौः' पाठ ही उचित होगा ।

2. रोगः (बं.सं.४/२०५) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

231

वसतिः वस निवासे (भू.६१४) । वसति लोकोऽस्मिन् (जिसमें लोग निवास करते हैं) । वस्+अति, विभक्तिकार्य, वसतिः । गृह । घर । ग्राम । वसतिः स्यात् स्त्रियां वासे यामिन्यां च निकेतने (मेदिनी.तान्त.१५१) ।

अमतिः अम गतौ (भू.१६०) । अमति । अम्+अति, विभक्तिकार्य, अमतिः । काल । चन्द्र । अमतिः कालचन्द्रयोः (वि.प्र.को.तान्त.१५४) ।

हन्तेरंहश्च । ब.सं.४-२११।

हन्तेरतिःपरो भवति । अंहादेशश्च । अंहतिरपवर्जनम्, रोगश्च ।

हन् धातु से अति प्रत्यय तथा हन् को अंह आदेश होता है ।

अंहतिः हन हिंसागत्योः (अ.४) । मारना, जाना । हन्ति । हन्+अति, हन् के स्थान में अंह आदेश, विभक्तिकार्य, अंहतिः । अपवर्जन । रोग । दान । अंहतिस्त्यागे रोगेऽप्युभे स्त्रियौ (मेदिनी.तान्त.८७) ।

तु.- हन्तेरंह च, अंहतिः (दया.उ.को.४/६०) ।

1. यह सूत्र मद्रास संस्करण में संगृहीत नहीं है । बङ्ग संस्करण के आधार पर यहाँ दिया गया है । ति.अनु. में भी असंगृहीत है ।

२०६. क्षिपिध्रुविलिखिलङ्घि^१दमिभ्यो ऋक्^२ (वुक्) १४-१२।

एभ्यो ऋक् (वुक्) प्रत्ययो भवति । 'क्षिप प्रेरणे' क्षिपतीति क्षिपकः योद्धा । 'ध्रुव गतिस्थैर्ययोः' ध्रुवति निश्चलीभवत्यनेन ध्रुवकः शङ्कुः । 'लिख लिखने' लिखतीति लिखकः चित्रकरः । इदनुबन्धत्वान्नागमः । 'लधिर्गत्यर्थः' लङ्घत इति लङ्घकः अशमी कामीत्यर्थः । तम (धम) इति सौत्रः । दमतीति दमकः (धमकः) कर्मकारी ।

क्षिप्, ध्रुव, लिख, लङ्घ, दम् (धम्) इन धातुओं से वुक् प्रत्यय होता है । 'वुक्' में वु के स्थान में 'युवुझामनाकान्ताः' (कात.४/६/५४) सूत्र से 'अक' आदेश होता है । म.सं. में 'ऋक्' पाठ है । ऋ के स्थान पर अक-आदेशार्थ युवुझामनाकान्ताः (४-१४) सूत्र पाठ भी प्राप्त है । कात.सू.पा. में यु के बाद 'वु' का पाठ मिलता है, 'ऋ' नहीं मिलता । पा.व्या. में भी 'युवोरनाकौ' (अ.सू.७/१/१) से वु के स्थान में अक होता है । अतः 'ऋक्' के स्थान में 'वुक्' पाठ ही शुद्ध एवं समुचित होगा । क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है ।

क्षिपकः क्षिप प्रेरणे (तु.५) । प्रेरित करना । क्षिपति । क्षिप्+वुक्, वु के स्थान में 'युवुझामनाकान्ताः' (कात.४/६/५४) सूत्र से अक आदेश, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, क्षिपकः । योद्धा । आयुध ।

1. लिङ्ग बं.सं. । लिङ्गकः कपित्थवृक्षः ।
2. बं.सं., ति. अनु. तथा अन्य उणादिग्रन्थों में 'वुक्' पाठ मिलता है । कात.व्या. में 'वु' के स्थान पर अक आदेश का विधान होता है । ऋ के स्थान पर अक आदेश की व्यवस्था होती तो 'ऋक्' पाठ भी हो सकता था । अतः ऋक् के स्थान पर वुक् पाठ होना चाहिए । म.सं. में 'युवुझामनाकान्ताः' (उ.सू.४-१४) यह पाठ असङ्गत है । शुद्ध पाठ-युवुझामनाकान्ताः (कात.४/६/२४) होता है ।

ध्रुवकः ध्रुव गतिस्वर्ययोः (तु.१०७) । जाना, ठहरना । ध्रुवति निश्चलीभवति अनेन (जिससे स्थिर होता है) । ध्रुव्+वुक्, वु को अकादेश, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, ध्रुवकः । शङ्कु । कीला, खूँटा । आवपनविशेष ।

लिखकः लिख लेखने (तु.८२) । लिखना । लिख्+वुक्, वु को अकादेश, गुणाभाव, लिखकः । चित्रकार ।

लङ्घकः लघि गत्यर्थः (भू.३३१) । इदनुबन्ध से न् आगम । लङ्घते । लङ्घ्+वुक्, वु के स्थान में अक आदेश, विभक्तिकार्य, लङ्घकः । अशमी । कामी ।

धमकः धम (सौत्र धातु) । धम्+वुक्, वु को अकादेश, विभक्तिकार्य, धमकः । कर्मकार ।

तु.- ध्मो धम च, धमकः (दया.उ.को.२/३६) ।

२०७. हो द्वे च १४-१३।

अस्माद् ऋक् (वुक्) प्रत्ययो भवति । अस्य च द्वे रूपे भवतः । 'ओ हाक् त्यागे' जहातीति जहकः कमलः। (कालः) ।

हा धातु से वुक् प्रत्यय होता है । धातु को प्रकृत सूत्र से द्वित्व भी होता है ।

जहकः ओ हाक् त्यागे (अ.७१) । छोड़ना, त्यागना । जहाति । हा+वुक्, वु को अकादेश, हा को द्वित्व, अभ्यासघटक को ह्रस्व, प्रथम

1. जहकः का वृत्ति में 'कमल' अर्थ निर्दिष्ट है । अन्य उणादिग्रन्थों में 'काल' अर्थ निर्दिष्ट है । प्रतीत होता है मुद्रण दोष से कालः का 'कमलः' पाठ हो गया ।

हकार को जकार, 'आलोपोऽसार्वधातुके' (कात.३/४/२७) इस सूत्र से आकार का लोप, विभक्तिकार्य, जहकः । काल । त्यागी । जहकः त्यागी कालो वा (दया.उ.को.२/३५) । जहकः कालः (सरस्वती.२/२/११) ।

२०८. कृषेवृद्धिर्वा १४-१४।

अस्माद् ऋक् (वुक्) प्रत्ययो भवति वृद्धिर्वा । 'कृष विलेखने' कर्षतीति कर्षकः कार्षकः कृषीवलः । 'युक्' (वु) ज्ञामनाकान्ताः' इति ऋक् (वुक्) स्थाने अकादेशो भवति ।

कृष् धातु से वुक् प्रत्यय होता है तथा विकल्प से वृद्धि होती है ।

कृषकः-कार्षकः कृष विलेखने (भू.२२३) । विलेखन=खींचना, जोतना । कर्षति । कृष्+वुक्, वु को 'युवुज्ञामनाकान्ताः' सूत्र से अक आदेश, गुणाभाव, विभक्तिकार्य, कृषकः । कर्षकः शूद्रः निम्नः (ति.अनु.) ।

कृ में ऋ को आर् वृद्धि, कार्षकः । कृषीवल । किसान ।

२०९. कृजादिभ्यो ऋः^२ (वुः) १४-१५।

'डु कृज् करणे' 'सु गतौ' 'मृङ् प्राणत्यागे' 'फल निष्पत्तौ' एवमादिभ्य ऋ(वु)प्रत्ययो भवति । करोति भयं करकं

1. कात.व्या. में ऋ का पाठ नहीं है । 'युवुज्ञामनाकान्ताः' (कात.४/६/५४) ऐसा सूत्र पाठ उपलब्ध होता है ।
2. कृजादिभ्योऽकः (बं.सं.पा.) उक्त सूत्र में 'वुः' पाठ होना चाहिए । द्र०-कृजादिभ्यो 'वुः' (ति.अनु.) । पा.उ.-कृजादिभ्यः संज्ञायां वुन् (श्वेत.वृ.५/३५) ।

घनोपलः । सरत्यनेन सरकः सुरापानपात्रम् । म्रियतेऽनेन मरकः
जनोपसर्गः । फलकः अक्षक्रीडादिः । एवमन्येऽपि ।

कृ, सृ, मृड्, फल इत्यादि धातुओं से वु प्रत्यय होता है ।

करकम् डु कृञ् करणे (त.७) । करोति भयम् (जो भय पैदा करता है) । कृ+वु, वु को अकादेश, अर् गुण, विभक्तिकार्य, करकम् । घनोपल । ओला । पत्थर । वृष्टिपाषाण ।

करकस्तु करङ्गे स्याद्वाडिमे च कमण्डलौ । पक्षिभेदे करे चापि,
करका च घनोपले (वि.प्र.को.कान्त.२९) । द्वयोर्मैघोपले न स्त्री करके च
कमण्डलौ (मेदिनी.कान्त.५४-५५) ।

सरकः सृ गतौ (भू.२७४) । सरत्यनेन । सृ+वु, वु को अकादेश,
अर् गुण, विभक्तिकार्य, सरकः । सुरापान का पात्र । प्याला ।
सरकोऽस्त्री शीधुपात्रे शीधुपानेक्षुशीधुनोः (मेदिनी.कान्त.१६८) ।

मरकः मृड् प्राणत्यागे (तु.१११) । मरना । म्रियते अनेन । मृ+वु, वु
को अकादेश, अर् गुण, मरकः । जनोपसर्ग । जनक्षय । महामारी ।
(एक संक्रामक रोग) ।

फलकः फल निष्पत्तौ (भू.१७६) । फलति । फल्+वु, वु को
अकादेश, विभक्तिकार्य, फलकः । अक्षक्रीडा आदि । द्यूत-क्रीडा ।
चर्म (बं.सं.) ।

इसी प्रकार की आकृति वाले अन्य शब्दों को भी इसी प्रक्रिया
से निष्पन्न कर लेना चाहिए ।

यथा-अलकम् (शीत) । कोरकः कलिका । कटकः बाहुभूषण ।
कीचकः वंश-भेद । पेचकः उलूकपक्षी । मेचकः कृष्णवर्ण मयूर ।
प्रक्षचिह्न । (श्वेत.वृ.५/३५) ।

स्तवकः पुष्पगुच्छ । कवकम् अभक्ष्य द्रव्यविशेष । (ग्रासमात्र)
 क्षवकः राजसर्षप । चरकः मुनि । चटकः पक्षी । चणकः मुनि ।
 तमकः व्याधि । अमका शैल । देवका अप्सराः । मेनका अप्सराः ।
 मशकः क्षुद्रजन्तु । क्षारकः बालमुकुल । कोरकम् प्रौढमुकुल । मल्लकः
 शराव । अलकः केशविन्यास । अलका पुरी । सरस्वती. (२/२/७)

२१०. शमेः खः । ४-१६।

अस्मात् खप्रत्ययो भवति । 'शमु दमु उपशमने' जलं
 विना शाम्यति शङ्खः कम्बुः ।

शम् धातु से ख प्रत्यय होता है ।

शङ्खः शमु उपशमने (दि.४२) । शान्त होना । जलं विना शाम्यति
 (जो जल के अभाव में शान्त (नष्ट) होता है) शम्+ख, अनुस्वार,
 पञ्चम वर्ण, शङ्खः कम्बु । ध्वनि (ति.अनु.) ।

शङ्खः कम्बौ न योषिन्ना भालास्थिनिधिभिन्नखे (मेदिनी.खान्त.५) ।

२११. मुहेमूर् च। ४-१७।

अस्मात् खप्रत्ययो भवति मूरादेशश्च । 'मुह वैचित्ये'
 मुहति कार्येषु मूर्खः जडः ।

मुह धातु से ख प्रत्यय तथा मुह के स्थान में 'मूर्' आदेश
 होता है ।

मूर्खः मुह वैचित्ये (दि.३७) । वैचित्य=पागल होना, विक्षिप्त होना ।
 मुहति कार्येषु (जो कार्य में मोहित होता है) । मुह+ख, मुह को मूर्

1. मुहेमूरादेशश्च (बं.सं.सू.४/२१७) ।

मुहेः खो मूर्च (वै.सि.कौ.उ.सू.७००) ।

आदेश, विभक्तिकार्य, मूर्खः । जड । अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशः
(अ.को.३/१/४८) ।

२१२. शिखा १४-१८।

अयं शब्दः खप्रत्ययान्तो निपात्यते । 'शीङ् (शिज्)
निशामने' (निशाने) शिनोति जनः शिखा चूडा ।

'शिखा' यह ख प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होता है ।

शिखा शिज् निशामने (शिज् निशाने सु.२) । निशामन=तीक्ष्ण करना,
पैना करना । शिनोति जनः (जो अपना चिह्न करता है) । शि+ख,
स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, शिखा । चूडा ।

२१३. गमेर्गः १४-१९।

अस्माद् गप्रत्ययो भवति । 'गम्लृ गतौ' गम्यते
पुण्यार्थिभिः गङ्गा जाहनवी ।

गम् धातु से ग प्रत्यय होता है ।

गङ्गा गम्लृ गतौ (भू.२७९) । गम्यते पुण्यार्थिभिः (जहाँ पुण्यजनों के
द्वारा जाया जाता है) । गम्+ग, म् को अनुस्वार तथा पञ्चम वर्ण
(ङ) स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, गङ्गा । जाहनवी ।

२१४. जनेर्घः १४-२०।

अस्माद् घप्रत्ययो भवति । 'जनीङ् प्रादुर्भावे' जायते
अनया वेगो जङ्घा प्राण्यङ्गविशेषः ।

जन् धातु से घ प्रत्यय होता है ।

१. शिखा शाखा बर्हिचूडालाङ्गलिक्यग्रमात्रके । चूडामन्त्रे शिखायां च
ज्वालायां प्रपदेऽपि च (मेदिनी.खान्त.६-७) ।

जङ्घा जनी प्रादुर्भावे (दि.१४) । उत्पन्न होना । जायते अनया वेगः (जिससे वेग बढ़ता है) । जन्+घ, नकार को अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, जङ्घा । प्राणी का विशेष अङ्ग । जानु और गुल्फ का मध्यभाग ।

२१५. कचेश्छः । ४-२१।

अस्मात् छप्रत्ययो भवति । 'कच बन्धने' कचते बध्नाति जलम् । जलेन कच्यते वा । कच्छः नदीपार्श्वः ।

कच् धातु से छ प्रत्यय होता है ।

कच्छः कच बन्धने (भू.३४०) । बाँधना । कचते बध्नाति जलम् (जो जल को बाँधता है या रोकता है) । कच्+छ, विभक्तिकार्य, कच्छः । नदीपार्श्व । नदीतट । किनारा । जल का अवरोधक । सेतु । शाकमूल । कछार ।

कच्छः स्यादनूपे तुन्नकट्टुमे । नौकान्ते परिधानस्य पश्चादञ्चलपल्लवे । (वि.प्र.को.छान्त.२०) ।

२१६. कृतृकृपिभ्यः कीटः। ४-२२।

एभ्यः कीटप्रत्ययो भवति । 'कृ विक्षेपे' शिरसि कीर्यते क्षिप्यते कीरीटः मुकुटः । 'तृ प्लवनतरणयोः' तरतीति तिरीटं वेष्टनम् । 'कृपू सामर्थ्ये' कल्पत इति कृपीटः कर्पूरकुटी जलं वा ।

-
1. कलापोणादि के बङ्ग-संस्करण का चतुर्थ पाद इसी सूत्र पर समाप्त हो जाता है जब कि मद्रास-संस्करण में चतुर्थपाद के अन्तर्गत अभी ४८ सूत्र और अवशिष्ट है । ये सभी सूत्र बङ्ग-संस्करण में पञ्चम पाद के अन्तर्गत परिगणित हैं ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

239

कृ, तृ, कृप् इन धातुओं से कीट प्रत्यय होता है । कृ अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है ।

किरीटः कृ विक्षेपे (तु.२१) । फेंकना । शिरसि कीर्यति (जो सिर पर धारण किया जाता है) । कृ+कीट, ऋदन्तस्येरगुणे (कात.३/५/४२) से ऋ को इरु, विभक्तिकार्य, किरीटः । मुकुट । शिरोवेष्टन । किरीटं मुकुटे न स्त्री. इति चन्द्रगोमी (वै.सि.कौ.उ.सू.६२४) ।

तिरीटम् तृ प्लवनत्तरणयोः (भू.२८३) । तैरना, पार जाना । तरति । तृ+कीट, कृ+कीट, ऋदन्तस्येरगुणे (कात.३/५/४२) से ऋ को इरु, विभक्तिकार्य, तिरीटम् । वेष्टन । सुवर्ण । वृक्षविशेष (बं.सं.) ।

कृपीटः कृपू सामर्थ्ये (भू.४८८) । शक्तिसम्पन्न होना । कल्पते । कृप्+कीट, कृपीटः । पेट । जल । वन । कृपीटमुदरे नीरे (वि.प्र.को.टान्त.३७) ।

२१७. शमेर्डः। १४-२३।

अस्माडुप्रत्ययो भवति । 'शमु दमु उपशमे' शाम्यतीति शण्डः महिषः चौरा वा ।

शम् धातु से ड प्रत्यय होता है । (प्रथम पाद में भी 'शमेर्डः' ३६ सूत्र पठित है । वहाँ शमेर्डः पाठ शुद्ध होगा । द्र०-१/३६) ।

शण्डः शमु उपशमे (दि.४२) । शाम्यति । शम्+ड, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, शण्डः । भैंस या चोर ।

शण्डः महिषाकारजन्तुविशेषः (बं.सं.) ।

1. बङ्ग-संस्करण में इस सूत्र से आगे के सभी सूत्र पञ्चम पाद के अन्तर्गत पठित हैं । जब कि मद्रास-संस्करण एवं तिब्बती-अनुवाद में ये सभी सूत्र चतुर्थ पाद के अन्तर्गत ही पठित हैं ।

गमेर्धः¹ (बं.सं.५-२२४) ।

गमेर्धः प्रत्ययो भवति । गन्धः ।

गम् धातु से घ प्रत्यय होता है ।

गन्धः गम्लृ गतौ (भू.२७९) । गम्+घ, म् को 'मनोरनुस्वारो धुटि' (कात.२/४/४४) सूत्र से अनुस्वार, अनुस्वार को पञ्चम वर्ण नकार, विभक्तिकार्य, गन्धः । गन्ध । बू । सम्बन्ध । गर्व । न्यायशास्त्र के २४ गुणों में से एक गुण ।

२१८. सूचः स्मः १४-२४।

अस्मात् स्मः प्रत्ययो भवति । 'सूच पैशुन्ये' सूचयतीति सूक्ष्मं परमाणुमात्रम् ।

सूच् धातु से स्म प्रत्यय होता है ।

सूक्ष्मम् सूच पैशुन्ये (चु.१९१) । अपकार की भावना से कहना । निन्दा करना । सूचना करना । सूचयति । सूचि+स्म, इन् का लोप 'चजोः कगौ धुङ्घानुबन्धयोः' (कात.४/६/५४) सूत्र से चकार को ककार, स् को ष, क्-ष् के संयोग से क्ष, विभक्तिकार्य सूक्ष्मम् । परमाणुमात्र । सूक्ष्मं स्यात् कण्टकेऽध्यात्मे पुंस्यणौ त्रिषु चाल्पके (मेदिनी.मान्त.३६) ।

1. यह सूत्र मद्रास-संस्करण में अप्राप्त है । यहाँ बङ्ग-संस्करण के आधार पर दिया गया है । तिब्बती-अनुवाद तथा पा.उ. में भी अनुपलब्ध है ।

२१९. अदि भुवो डुतः १४-२५।

अद्युपपदे अस्मात् डुतप्रत्ययो भवति । 'भू सत्तायाम्' अदपूर्वः । विस्मितं भवत्यत्र अदभुतम् आश्चर्यम् ।

'अद्' के उपपद में रहने पर भू धातु से डुत प्रत्यय होता है । डुत में ड् अनुबन्ध से धातुस्वर का लोप होता है ।

अदभुतम् भू सत्तायाम् (भू.१) । रहना, होना । भवत्यत्र विस्मितम् (जहाँ विस्मित होता है) अदपूर्वक भू+डुत, ड् अनुबन्ध के कारण 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) सूत्र से भू-घटक ऊकार का लोप, विभक्तिकार्य, अदभुतम् । आश्चर्य । अचम्भा ।

२२०. रुहिहृष्याभ्य इतः १४-२६।

एभ्य इतः प्रत्ययो भवति । 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे' रोहतीति रोहित् (रोहितः) मत्स्यविशेषः । कपिलिकादित्वात् लोहितं रक्तम् । 'हृज् हरणे' हरति शोभानी^२(मि)ति हरितः वर्णविशेषः । 'श्यैङ् गतौ' श्यायते श्येतः कुमुदवर्णाभः^३ ।

रुह, हृ, श्या इन धातुओं से इत प्रत्यय होता है ।

रोहितः रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे (भू.५६७) । बीज उगना, पैदा होना । रोहति । रुह+इत, धातुघटक उकार को ओकार गुण, विभक्तिकार्य, रोहितः । विशेष मछली ।

1. रुह धातु से इत-प्रत्ययान्त 'रोहितः' होता है । म.सं. में हलन्त 'रोहित्' शब्द पठित है । जबकि अन्य उदाहरण अजन्त पठित है । अतः रोहित् के स्थान पर 'रोहितः' पाठ होना चाहिए । हलन्त 'रोहित्' शब्द की प्रथम पाद (१-३५) में निष्पत्ति की जा चुकी है ।

2. शोभानीति म.सं. ।

3. शुक्लवर्णः (ति.अनु., वं.सं.) ।

रोहितं कुङ्कुमे रक्ते ऋजुशक्रशरासने । पुंसि स्यान्मीनमृगयोर्भेदे
रोहितकङ्कुते । (मेदिनी.तान्त.१४६) ।

'कपिरिकादेर्लोकतः सिद्धिः' इस नियम से रकार को लकार,
लोहितम् । रक्त ।

लोहितं रक्तगोशीर्षे कुङ्कुमे रक्तचन्दने । पुमान् नदान्तरे भौमे
कर्णे च त्रिषु तद्वति । (मेदिनी.तान्त.१४८)

हरितः ह्रज् हरणे (भू.५९६) । हरति शोभाम् । ह्र+इत, ऋ को अद्,
विभक्तिकार्य, हरितः । वर्णविशेष ।

हरिद्विशि स्त्रियां पुंसि हयवर्णविशेषयोः । अस्त्रियां स्यात्तृणे
(मेदिनी.यान्त.१७४-७५) ।

श्येतः श्येङ् गतौ (भू.४५९) । श्यायते । 'सन्ध्यक्षरान्ताना-
माकारोऽविकरणे' इस नियम से ऐकार को आकार । श्या+इत, आकार
को एकार गुण, तथा इकार का लोप, विभक्तिकार्य, श्येतः । शुभ्र ।
शुक्ल । शुक्लशुभ्रशुचिश्चेतविशदश्येतपाण्डराः (अ.को.१/५/१२) ।

२२१. मृगृवाहस्यमिदमिलूपूभ्यस्तः । ४-२७ ।

एभ्यस्तप्रत्ययो भवति । 'मृङ् प्राणत्यागे' म्रियते मर्तः
भूलोकः । 'गृ निगरणे' गिरतीति गर्तः बिलम् । 'वा
गतिगन्धनयोः' वातीति वातः वायुः । 'हसे हसने' हस्तः
करः । 'अम गतौ' अमतीति अन्तः अवसानम् । 'शमु दमु'
दम्यते भक्ष्यतेऽनेन दन्तः दशनः । 'लूज् छेदने' लूयते लोतः
नेत्रवारि । 'पूज् पवने' अर्थदानेन आत्मस्थं जनं पुनातीति पोतः
प्रवहणम् ।

1. अम रोगे (चु.१४०) ति.अनु. ।

मृ, गृ, वा, हस्, अम्, दम्, लू, पू इन सभी धातुओं से त प्रत्यय होता है ।

मर्तः मृङ् प्राणत्यागे (तु.१११) । मरना, प्राण छोड़ना । म्रियते अस्मिन् (जहाँ लोग मरते हैं) । मृ+त, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, मर्तः । भूलोक । पृथ्वीलोक । लोक (ति.अनु.) । मर्तो मरणधर्मा मनुष्यः (श्वेत.वृ.३-८२) ।

गर्तः गृ निगरणे (तु.२२) । खाना, निगलना । गिरति । गृ+त, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, गर्तः । बिल । विवर । गर्तस्त्रिगर्तभेदे स्यादवटे च कुकुन्दरे (मेदिनी.तान्त.१३) ।

वातः वा गतिगन्धनयोः (अ.१७) । जाना, गन्ध देना । वाति । वा+त, विभक्तिकार्य, वातः । वायु । वातो वायुव्याधिश्च (उज्ज्वल.३/८६) ।

हस्तः हसे हसने (भू.२३५) । हसना । हस्+त, हस्तः । हाथ । ज्योतिष् में २७ नक्षत्रों में एक हस्त नामक नक्षत्र । प्रमाणविशेष । हस्तः करे करिकरे सप्रकोष्ठकरेऽपि च (मेदिनी.तान्त.७५) ।

अन्तः अम् गतौ (भू.१६०) । अमति । अम्+त, म् को अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, अन्तः । अवसान । समाप्ति । नाश । समीप । तत्त्वस्वरूप । मनोहर । अन्तः प्रान्तेऽन्तिके नाशे स्वरूपेऽतिमनोहरे (वि.प्र.को.तान्त.३१) ।

दन्तः दम् उपशमने (दि.४२) । दम्यते भक्ष्यते अनेन (जिससे खाया जाता है) । दम्+त, म् को अनुस्वार, तथा पञ्चम वर्ण दन्तः । दाँत । दन्तोऽद्रिकटके कुञ्जे दशने चौषधौ स्त्रियाम् (मेदिनी.तान्त.२३) ।

लोतः लूञ् छेदने (क्री.९) । काटना, छेदना । लूयते (कर्म) । लू+त, ऊकार को ओकार गुण, विभक्तिकार्य, लोतः । नेत्रों का जल ।

औंसु । मुख का जल (लार) ति.अनु. । लोटः स्यादश्रुचिह्नयोः
(उज्ज्वल.३-८६) । लोटम् अपहृतधनम् (बं.सं.) ।

पोतः पूज् पवने (क्री.८) । पवित्र करना । अर्थदानेन आत्मस्थं जनं
पुनाति (जो अर्थ देकर अपने आपको पवित्र करता है) । पू+त,
ऊकार को ओकार गुण, विभक्तिकार्य, पोतः । प्रवहण । नौका ।
जहाज । पोतो बालवहित्रयोः (उज्ज्वल.३-८६) । पोतः शिशौ वहित्रे च
गृहस्थाने च वाससि (मेदिनी.तान्त.३८) ।

२२२. सर्वधातुभ्यो मन् । १४-२८।

सर्वेभ्यो धातुभ्यो मन्प्रत्ययो भवति । 'भस् भर्त्सनदीप्त्योः'
भसितं तदिति भस्म रक्षा । 'वृत् वर्त्तन्' वृत्तं तदिति वर्त्म
मार्गः । 'उणादयो भूतेऽपि' इति वचनादतीते अत्र मन् ।

सभी धातुओं से मन् प्रत्यय भूतकाल में होता है ।

भस्म भस् भर्त्सनदीप्त्योः (अ.७५) । दोष लगाना, निन्दा करना,
चमकना । भसितं तद् । (जली हुई) । 'उणादयो भूतेऽपि'
(कात.४/४/६७) इस सूत्र से भूतकाल में प्रत्यय । भस्+मन्, भस्मन्,
नकारलोप, भस्म । रक्षा । राख ।

वर्त्म वृत् वर्त्तन् (भू.४८४) । वर्ताव करना, होना । वृत्तं तदिति ।
वृत्+मन्, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, वर्त्म । मार्ग । रास्ता । वर्त्म
नेत्रच्छदे मार्गे । (मेदिनी.मान्त.२६) ।

मनिन्-प्रत्ययान्त अन्य शब्द-कर्म । चर्म । जन्म । शर्म
सुख । हेम सुवर्ण । श्लेष्मा कफ । तर्म यूपाग्र । स्थाम बल ।
छद्म माया । सुत्रामा इन्द्र । ऊष्मा वाष्प । (उज्ज्वल.वृ.४/१४४) ।

1. यह सूत्र ति.अनु. तथा बं.सं. में असंगृहीत है ।

२२३. मायाछायासस्यादयः। ४-२९ (माच्छाशसिभ्यो यः) ।

मायादयो यप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते (एभ्यः यप्रत्ययो भवति) 'माङ् माने' मातीति माया प्रपञ्चः परवञ्चनं वा । 'छो छेदने' छ्यति आतपमिति छाया प्रतिबिम्बम् । 'शसु हिंसायाम्' शसति हिनस्ति क्षुधामिति सस्यं धान्यम् । निपातनात् शस्य सत्वम् ।

मा, छा, शस् इन धातुओं से य प्रत्यय होता है । मद्रास-संस्करण में माया, छाया आदि शब्दों को निपातन से सिद्ध किया गया है । पञ्चपादी (दया.उ.को.४/११०) एवं अन्य ग्रन्थों में निपातन से सिद्धि न करके य प्रत्यय के विधान से सिद्धि की गई । निपातन से सिद्धि करना असङ्गत है, यतः य प्रत्यय की अनुवृत्ति भी पूर्व सूत्र से नहीं हो सकती ।

माया मा माने (अ.२६) । नापना । माति । मा+य, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, माया । प्रपञ्च । परवञ्चन (दूसरे को ठगना) । माया स्यात् शाम्बरीबुद्ध्योर्मायः पीताम्बरेऽसुरे (मेदिनी.यान्त.४६) ।

छाया छो छेदने (दि.२०) । काटना । छ्यति आतपम् (जो धूप को हटाता है) । सन्ध्यक्षर ओकार को आकार । छा+य, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, छाया । प्रतिबिम्ब । अनातप । छाया

1. मायाछायासस्यादयः (म.सं.) । यह सूत्रपाठ असङ्गत है । बं.सं. एवं ति.अनु. में 'माच्छाशसिभ्यो यः' (बं.सं. ५-२२९)- ऐसा सूत्रपाठ प्राप्त होता है । माया, छाया आदि य प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध नहीं किए जा सकते । पूर्व सूत्र से य की अनुवृत्ति भी यहाँ नहीं हो सकती, क्योंकि उससे (४-२८) मन् प्रत्यय होता है । अतः इस सूत्र से य प्रत्यय का विधान करना ही उचित होगा । इसे निपातन से सिद्ध न करके य प्रत्यय के विधान से सिद्ध करना चाहिए ।

स्यादातपाभावे प्रतिबिम्बार्कयोषितोः । पालनोत्कोचयोः कान्ति
सच्छोभापङ्क्तिषु स्मृता (वि.प्र.को.यान्त.५९) ।

सस्यम् शसु हिंसायाम् (भू.२४०) । मारना, नष्ट करना । शसति
हिनस्ति । शस्+य, निपातन से शकार को सकार, स्त्री. में आ प्रत्यय,
विभक्तिकार्य, सस्यम् । धान्य ।

पाठा.-शस्यम् ।

२२४. सन्ध्यादयः १४-३०।

सन्ध्या-बन्ध्या- जाया इत्यादयः शब्दाः यप्रत्ययान्ता
निपात्यन्ते । संपूर्वो धाञ् । संदधातीति सन्ध्या^१
दिवावसानम् । संपूर्वः 'ध्ये चिन्तायाम् वा । विप्राः सम्यक्
ध्यायन्ति अस्यां वा सन्ध्या रात्रिदिनावसानम् । 'बन्ध बन्धने'
बध्यते इति बन्ध्या^२ निष्फला । 'ज्या वयोहानौ' जिनातीति
जाया । 'जनी^३ प्रादुर्भावे' सुखाय जायते आत्मा अत्र जाया
पत्नी ।

सन्ध्या, बन्ध्या, जाया इत्यादि य- प्रत्ययान्त शब्द निपातन से
सिद्ध होते हैं ।

सन्ध्या ध्ये चिन्तायाम् (भू.२६२) । ध्यान करना, चिन्तन करना ।
विप्राः सम्यक् ध्यायन्ति अस्याम् (जिस समय ब्राह्मण सम्यक् रूप से ध्यान
करते हैं) । सम्-पूर्वक प्रयोग । सम् ध्ये+य, सन्ध्यक्षर को आकार,
यकारलोप स्त्री. में आ प्रत्यय, अनुस्वार, पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य,
सन्ध्या । दिन तथा रात्रि की समाप्ति-वेला ।

१. सन्ध्या रात्रिदिवसयोः सीमा ति.अनु. । कालविशेषः बं.सं. ।
२. बन्ध्या अनपत्या बं.सं. ।
३. जनेजदिशः- (ति.अनु.) जा जनेर्विकरणे (कात.३/६/८१) ।

सन्ध्या नदीकालभिदोश्चिन्तामर्यादयोरपि । प्रतिज्ञायाञ्च सन्धाने
सन्ध्या तु कुसुमान्तरे । (वि.प्र.को.यान्त.५८-५९)

बन्ध्या बन्ध बन्धने (क्री.३२) । बाँधना । बध्यते । बन्ध्+य, स्त्री. में
आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, बन्ध्या । निष्फला । अनपत्या ।
सन्तानरहित । बन्ध्या त्वप्रजातस्त्रियामपि (वि.प्र.को.यान्त.२८) ।

जाया ज्या वयोहानौ (क्री.२३) । जीर्ण होना, वृद्ध होना । जिनाति ।
ज्या+य, निपातन से य का लोप, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य,
जाया । पत्नी ।

सुखाय जायते आत्मा अत्र (जिसमें आत्मा सुख के लिए जन्म
लेती है) । जनेर्यक् (वै.सि.कौ.उ.सू.४/५५०) ।

२२५. रुचिभुजिभ्यां किष्यः । ४-३१।

आभ्यां किष्यप्रत्ययो भवति । ककारो यण्वद्भावार्थः ।
तेनागुणत्वम् । रुच दीप्तौ' रोचते इति रुचिष्यः प्रियः । 'भुज
पालने' स्वाम्युच्छिष्टं भुङ्क्ते भुजिष्यः दासः ।

रुच् एवं भुज् धातु से किष्य प्रत्यय होता है । किष्य में क्
अनुबन्ध से यण्वद्भाव होकर धातु को गुण का निषेध होता है ।
'इष्य' अवशिष्ट रहता है ।

रुचिष्यः रुच दीप्तौ (भू.४७३) । चमकना । रुचना । रोचते ।
रुच्+किष्य, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण 'रुच्' को गुण का
निषेध, विभक्तिकार्य, रुचिष्यः । प्रिय । इष्ट । रुचिष्यमिष्टम्
(उज्ज्वल.४-१७८) ।

भुजिष्यः भुज पालने (रु.१४-अभ्यवहारेऽपि) । संरक्षण करना ।
खाना । स्वाम्युच्छिष्टं भुङ्क्ते (जो स्वामी का जूठा खाता है) ।
भुज्+किष्य, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, यण्वद्भाव से गुणनिषेध,

विभक्तिकार्य, भुजिष्यः । दास । सेवक । भुजिष्यस्तु स्वतन्त्रे च
हस्तसूत्रकदासयोः । स्त्रियां दासीगणिकयोः ॥ (मेदिनी.यान्त.९८) ।

२२६. मदेः स्यः १४-३२।

अस्मात् स्यप्रत्ययो भवति । मदी हर्षे' माद्यति हृष्यति
नवोदकेन मत्स्यः मीनः ।

मदी धातु से स्य प्रत्यय होता है ।

मत्स्यः मदी हर्षे (दि.४८) । प्रसन्न होना । माद्यति नवोदकेन (जो
नवीन जल के आगमन से प्रसन्न होता है) । मद्+स्य, 'अघोषेष्वशिष्टां
प्रथमः' (कात.३/८/९) से द् को तु, विभक्तिकार्य, मत्स्यः । मछली ।
मत्स्यो मीनेऽथ पुंभूमि देशे (मेदिनी.यान्त.४५) ।

२२७. मद्यसि(शि)वसि[वासि]भ्यः सरः। १४-३३।

एभ्यः सरप्रत्ययो भवति । 'मदी हर्षे' माद्यतीति मत्सरः
पैशुन्यम्^१ । 'अश भोजने' अशनातीति अक्षरं^२ वर्णः । 'वस
आच्छादने' वसन्ति ऋतवोऽत्र वत्सरः वर्षः । संपूर्वः संवत्सरः
स एव । 'वास उपसेवायाम्' चौरादित्वादिन् । वासयतीति
वासरः दिवसः ।

मदी, अश, वस, वास् इन धातुओं से सर प्रत्यय होता है ।

१. सरन् (बं.सं.५/२२६) ।
२. मत्सरः का म.सं. में 'पैशुन्यम्' अर्थ प्रदत्त है । इसका 'पिशुनः'
अर्थ होना चाहिए । पैशुन्य भाववाचक है ।
३. अशनोतेर्वा सरोऽक्षरम् । अक्षरं न क्षरं विद्यात् (बं.सं.५/२२६) ।
(द्र०-म.भा.आ.-२)

मत्सरः मदी हर्षे (दि.४८) । प्रसन्न होना, हर्षित होना । माद्यति ।
मद्+सर, द् को त्, विभक्तिकार्य, मत्सरः । ईर्ष्यालु । चुगलखोर ।
निन्दक । कृपण । क्रुद्ध ।

मत्सरः । असह्यपरसम्पत्तौ मात्सर्ये कृपणे क्रुधि
(वि.प्र.को.रान्त.११७-११८) ।

अक्षरम् अश भोजने (क्री.४३) । खाना । अश्नाति । अश्+सर,
'छशोश्च' (कात.३/६/६०) सूत्र से शकार को षकार, 'रष्वर्णेष्यो.'
(कात.२/४/१८) इत्यादि सूत्र से सकार को षकार, 'षढोः कः से'
(कात.३/८/४) सूत्र से षकार को ककार, 'कषयोगे क्षः' (कात.रूप.२५६)
सूत्र से क्-ष् के संयोग से क्षकार, विभक्तिकार्य, अक्षरम् । वर्ण ।
अक्षरं स्यादपवर्गे परमब्रह्मवर्णयोः । गगने धर्मतपसोरध्वरे मूलकारणे ।
(हेम.अने.तु.का.५-४९) ।

अशेः सरः (वै.सि.कौ.उ.सू.३/३५१) । अक्षरं न क्षरं
विद्यादश्नोतेर्वा सरोऽक्षरमिति स्मृतिः (उज्ज्वल.३-७०) ।

वत्सरः वस निवासे (भू.६१४) । वसन्ति ऋतवः अत्र (जहाँ ऋतुएँ वास
करती हैं) । वस्+सर, 'सस्य सेऽसार्वधातुके' (कात.३/६/९३) इस सूत्र
से सकार को तकार, विभक्तिकार्य, वत्सरः । वर्ष ।

सम् पूर्वक वस्+सर, संवत्सरः ।

वासरः वास उपसेवायाम् (चु.२०२) । सुगन्धित करना, धूपित करना ।
धातु के चौरादिक होने से 'चुरादेश्च' (कात.३/२/११) सूत्र से इन् ।
वासि+सर, इन् तथा स् का लोप, विभक्तिकार्य, वासरः । दिन ।
वासरो दिवसे रागप्रभेदेऽपि च वासरः (वि.प्र.को.रान्त.१६४) । वासरं
पुनपुंसकम् (उज्ज्वल.३/१३२) ।

देविवठिभ्रमिवासिभ्योऽरः। (बं.सं.सू.५/२३४) ।

एभ्योऽरो भवति । 'देवृ देवने' देवरः पत्युः कनिष्ठ-
भ्राता । 'वठ स्थौल्ये' वठरो जडः । शब्दकारो वस्त्रञ्च ।
'भ्रमु चलने' भ्रमरोऽलिः । 'वास उपसेवायाम्' वासरो दिवसः ।

देव्, वठ्, भ्रम्, एवं वास् इन धातुओं से अर प्रत्यय होता है ।

देवरः देवृ देवने (भू.४२१) । देवते । देव्+अर्, विभक्तिकार्य, देवरः ।
पति का छोटा भाई ।

वठरः वठ स्थौल्ये (भू.११२) । मोटा होना । वठति । वठ्+अर्,
विभक्तिकार्य, वठरः । जड । मूर्ख ।

भ्रमरः भ्रमु चलने (भू.५५८) । भ्रमति । भ्रम्+अर्, भ्रमरः । भौरा ।

वासरः वास उपसेवायाम् (चु.२०२) । वासयति । वासि+अर्, इन् का
लोप वासरः । दिन ।

२२८. शृणातेः करः ।४-३४।

अस्मात् करप्रत्ययो भवति । 'शृ हिंसायाम्' शृणाति
पित्तमिति शर्करा मत्स्यण्डी, गुडविकारः ।

1. यह सूत्र मद्रास-संस्करण में उपलब्ध नहीं है । कलापोणादि के बङ्ग-संस्करण एवं तिब्बती-अनुवाद में प्राप्त है । ति.अनु. में उपर्युक्त पाठ से कुछ अतिरिक्त पाठ भी प्राप्त होता है-
चुरादित्वादिन् । अतो लोपः । कारितलोपः । शेष पाठ उपर्युक्त ही है । ति.अनु. में वठरः के स्थान पर पठरः ऐसा भ्रष्ट पाठ है । पञ्चपादी में भी वठरः (दया.उ.को.५/३९) ही पठित है ।

शृ धातु से कर प्रत्यय होता है ।

शर्करा शृ हिंसायाम् (क्री.१५) । शृणाति पित्तम् (जो पित्त को नष्ट करता है) । शृ+कर, ऋ को अर्, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, शर्करा । मोटी या विना साफ की हुई चीनी ।

शर्करा खण्डविकृतावुपलाकर्परांशयोः । शर्करान्वितदेशे च रुग्भेदे शकलेऽपि च । (वि.प्र.को.रान्त.२१६) ।

२२९. पुषो यण्वत् १४-३५।

अस्मात् करप्रत्ययो भवति । स च यण्वत् । [पुष पुष्टौ] पुष्यति शोभामिति पुष्करं पद्मम् । लत्वम् । पुष्कलं भूरि ।

पुष् धातु से कर प्रत्यय होता है । कर को यण्वद्भाव भी होता है । यण्वद्भाव होने से धातु को गुण का निषेध होता है ।

पुष्करम् पुष पुष्टौ (दि.२६) । पुष्ट करना । पुष्यति शोभाम् (जो शोभा को बढ़ाता है) । पुष्+कर, विभक्तिकार्य, पुष्करम् । कमल । पुष्कर क्षेत्र । (राजस्थान में अजमेर के समीप) ।

'कपिरिकादेर्लोकतः सिद्धिः' इस नियम से र् को ल् पुष्कलम् । भूरि । प्रचुर ।

1. पुष्करं खेऽम्बुपद्मयोः ।

तुर्यवक्त्रे खड्गे हस्तिहस्ताग्रकाण्डयोः ।

कुष्ठौषधे द्वीपतीर्थभेदयोश्च, नपुंसकम् ॥ (मेदिनी.रान्त.१८६-१८७) ।

२३०. स्तृणातेष्टत् (ड्रट्) १४-३६।

अस्मात् टत्प्रत्ययो भवति । अकारमात्रः । रमृवर्णः ।
अथवा डट् [ड्रट्] डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः । टकारो
नदाद्यर्थः । ऋकारमात्र एव । स्तृञ् आच्छादने स्तृणाति
आच्छादयति लज्जया आत्मानम् इति स्त्री महिला ।

स्तृञ् धातु से टत् प्रत्यय होता है । टत् में अकारमात्र शेष रहता है । कात.व्या. में ऋवर्ण र-वर्ण को प्राप्त होता है (रमृवर्णः कात.१/२/१०) । पाठान्तर में 'ड्रट्' प्रत्यय भी विहित है । 'ड्रट्' में ड् अनुबन्ध से 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) इस सूत्र से धातु के अन्त्य स्वर का लोप होता है । ड्रट् या टत् में टकार अनुबन्ध के कारण 'नदाद्यन्वि.' (कात.२/४/५०) इत्यादि सूत्र से स्त्री में ई प्रत्यय होता है ।

स्त्री स्तृञ् आच्छादने (क्री.१०) । ढकना । स्तृणाति आच्छादयति लज्जया आत्मानम् (जो लज्जा से अपने को आच्छादित करती है) । स्तृ+टत् (अकार शेष) ट-त् अनुबन्ध का अप्रयोग, 'रमृवर्णः' (कात.१/२/१०) सूत्र से स्तृ में ऋ को रकार, ट् अनुबन्ध के कारण 'नदाद्यन्वि' (कात.२/४/५०) इत्यादि सूत्र से स्त्री. में ई प्रत्यय, 'ईकारान्तात् सिः' (कात.२/१/४८) सूत्र से सि प्रत्यय, सि का लोप स्त्री । महिला । स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः (अ.को.२/६/२) ।

अथवा स्तृ+ड्रट्, ड् अनुबन्ध के कारण धातुस्वर ऋ का लोप, ऋ को रकार, विभक्तिकार्य, स्त्री । स्त्यायतेर्ड्रट् (वै.सि.कौ.उ.सू.५/६०५) ।

1. स्तृणातेर्ड्रट् (बं.सं., ति.अनु.) ।

२३१. कठिचकिभ्यामोरः^१ १४-३७।

आभ्यामोरप्रत्ययो भवति । 'कठ कृच्छ्रजीवने' कठति
कृच्छ्रेण [जीवति] कठोरः कर्कशः । 'चक् २दीप्तौ' (तृप्तौ)
चकतीति चकोरः पक्षिविशेषः ।

कठोरः कठ कृच्छ्रजीवने (भू.११४) । कष्ट से जीवन बिताना ।
कृच्छ्रेण जीवति (जो कष्ट पूर्वक दिन बिताता है) । कठ्+ओर,
कठोरः । कर्कश ।

चकोरः चक् तृप्तौ (भू.५०७) । तृप्त होना । चकति ।
चक्+ओर, चकोरः । विशेष पक्षी । चकोरः पक्षिविशेषः पर्वतश्च
(श्वेत.वृ.१-६१) ।

२३२. घुणेर्डोरः^३ १४-३८।

अस्मात् डोरप्रत्ययो भवति । 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः'
'घुण घूर्ण भ्रमणे' घोणते घोरं रौद्रम् ।

घुण् धातु से डोर प्रत्यय होता है । 'डोर' में ड् अनुबन्ध के
कारण 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' इस नियम से घुण् धातु में 'उण्' का
लोप होता है ।

घोरम् घुण भ्रमणे (भू.३९९) । घोणते । घुण् +डोर, ड् अनुबन्ध से
धातु-घटक 'उण्' का लोप, विभक्तिकार्य, घोरम् । रौद्र । भयानक,

1. ति.अनु.- एरः । ति.सूत्रपाठ में 'ओर' पठित है । वृत्ति में 'एर'
पाठ के स्थान पर 'ओर' अपेक्षित है ।
2. दीप्तौ म.सं. । चक् धातु धातुपाठ में तृप्ति अर्थ में पठित है ।
'दीप्ति' पाठ प्रामादिक है । द्र.- चक् तृप्तौ प्रतिधाते च (भू.३३०,
भू.५०७) ।
3. घुणघूर्णोर्डोरः । (बं.सं.सू.५/२३९) ।

दारुण । दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम् (अ.को.१/७/२०) ।
घोरं भीमे हरे घोरष्टारे लङ्गतुरङ्गयोः (वि.प्र.को.रान्त.३१) ।

तु.- हन्तेरच् घुर च (वै.सि.कौ.उ.५/७४२) ।

२३३. सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् । १४-३९।

सर्वेभ्यो धातुभ्यो यथासम्भव ष्ट्रन्प्रत्ययो भवति । षकारो नदाद्यर्थः । निमित्ताभावादृकारः । नकार उच्चारणार्थः । 'भस भर्त्सनदीप्त्योः' बभस्तीति भस्त्री कांसादिधमनिश्चर्ममयी । अस्य नदादित्वमाकृतिगणत्वात् । 'धेट पा पाने' पीयतेऽत्र पात्रं पात्री वा । 'मा माने' मातीति मात्रा उपकरणं स्तोकं वा । 'अम रोगे' अमतीति अमत्रम् अन्तर्नाडी गुणश्च । 'वी प्रजनादिषु' वेतीति वेत्रं विटपप्रदेशः । 'वश कान्तौ' वष्टीति उष्ट्रं करभः । अस्य ष्ट्रन्प्रत्ययस्य सम्प्रसारणं निपातनात् षत्वञ्च ।

सभी धातुओं से यथासम्भव ष्ट्रन् प्रत्यय होता है । ष्ट्रन् में ष नदाद्यर्थ है, इससे स्त्री. में 'नदाद्यन्चि' (कात.२/४/५०) इत्यादि सूत्र से ई प्रत्यय होता है । निमित्त का अभाव होने से ऋकार पठित है । न् अनुबन्ध उच्चारणार्थ पठित है ।

भस्त्री भस भर्त्सनदीप्त्योः (अ.७५) । दोष लगाना, निन्दा करना, चमकना । बभस्ति । भस्+ष्ट्रन्, (ष्-न् अनुबन्ध का अप्रयोग) स्त्री. की विवक्षा में 'नदादिगण में भस के पठित होने से 'नदाद्यन्चि' इत्यादि सूत्र से ई प्रत्यय, विभक्तिकार्य, भस्त्री । कांस आदि से निर्मित धौकनी (अग्नि को तेज करने में हवा देने वाली मशीन) । अथवा जल भरने के लिए चमड़े का पात्र, चमड़े का थैला । लोहकार का उपकरण ।

भस्+त्रन् भस्त्रा, चर्मप्रसेविका (उज्ज्वल.४/१६७) ।

१. ष्ट्रन् (ति.अनु.४/३९) ति.अनु. में 'सर्वधातुभ्यः' पद अपठित है किन्तु बङ्ग-संस्करण में पठित है ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

पात्रम् पा पाने (भू.२६४) । पीयते अत्र । पा+ष्ट्रन्, विभक्तिकार्य,
पात्रम् । स्त्री.-पात्री । पात्रञ्च भाजने योग्ये पात्रं तीरद्वयान्तरे । पात्रं
सुवादौ (वि.प्र.को.रान्त.३५-३६) ।

मात्रा मा माने (अ.२६) । माति । मा+ष्ट्रन् (ष्-न् अनुबन्ध का
अप्रयोग) । स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, मात्रा । (नापने का)
उपकरण या थोड़ा परिमाण । मात्रा कर्णविभूषणे । अक्षरावयवे वृत्ते
मानेऽल्पे च परिच्छदे (वि.प्र.को.रान्त.४१) ।

अमत्रम् अम रोगे (चु.१४०) । अमति । अम्+ष्ट्रन्, अमत्रम् ।
आभ्यन्तर नाडी तथा गुण । पात्र ।

वेत्रम् वी प्रजनादिषु (अ.१४) । वेति । वी+ष्ट्रन्, धातुघटक इकार
को एकार गुण, विभक्तिकार्य, वेत्रम् । विटपप्रदेश । लताविशेष ।
बेत ।

उष्ट्रम् वश कान्तौ (अ.३) चाहना । वष्टि । वश्+ष्ट्रन्, निपातन से
वकार को उकार सम्प्रसारण तथा शकार को 'छशोश्च' (कात.३/६/६०)
से षकार, विभक्तिकार्य, उष्ट्रम् । करभ । ऊँट ।

उष्ट्रः। (बं.सं.५/२४१) ।

अयं ष्ट्रन्प्रत्ययान्तो निपात्यते । उष्ट्रः ।

बङ्ग-संस्करण में ष्ट्रन् प्रत्ययान्त 'उष्ट्र' शब्द की निपातन से
निष्पत्ति निर्दिष्ट है ।

1. मद्रास-संस्करण में 'सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्' सूत्र के अन्तर्गत 'उष्ट्र' शब्द
की निष्पत्ति की गई है जबकि बङ्ग-संस्करण में 'उष्ट्रः' ऐसा पृथक्
सूत्र पठित है । ति.अनु. में भी 'उष्ट्रः' ऐसा पृथक् सूत्र पठित है ।

२३४. चिमिदिभ्यां त्रक् । १४-४०।

आभ्यां त्रक्प्रत्ययो भवति । ककारो यण्वद्भावार्थस्तेना-
गुणत्वम् । 'चिञ् चयने' चिनोतीति चित्रं लेख्यम् आश्चर्यं
वा । 'जि मिदा स्नेहने'^२ मिनोति (मेदते) स्नेहयुक्तो भवति
इति मित्रम् सुहृत् । अघोषेष्वशिटां प्रथमः ।

चि एवं मिद् धातु से त्रक् प्रत्यय होता है । त्रक् में क्
अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध होता है ।

चित्रम् चिञ् चयने (सु.५) चुनना, बटोरना । चिनोति । चि+त्रक्, क्
अनुबन्ध के कारण यण्वद्भाव होने से चि में इकार को गुण का
निषेध, विभक्तिकार्य, चित्रम् । लेख्य या आश्चर्य । चित्रं
स्यादद्भुतालेख्यतिलकेषु विहायसि (वि.प्र.को.रान्त.३७) ।

मित्रम् जि मिदा स्नेहने (भू.४७५, दि.७७) । प्रेम या स्नेह करना ।
मेदते स्नेहयुक्तो भवति (जो स्नेह से युक्त होता है) । मिद्+त्रक्,
अघोषेष्वशिटां प्रथमः (कात.३/८/९) इस सूत्र से दकार को
तकार, विभक्तिकार्य, मित्रम् । सुहृत् । मित्रं सुहृदि मित्रोऽर्के
(वि.प्र.को.रान्त.४०) ।

२३५. पूजो ह्रस्वश्च । १४-४१।

अस्मात् त्रक्प्रत्ययो भवति । धातोः ह्रस्वश्च ।
कोऽगुणार्थः । [पूज् पवने] पुनातीति पुत्रः ।

पू धातु से त्रक् प्रत्यय होता है । धातु को ह्रस्व भी होता
है । त्रक् में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है ।

१. पाठा.- मिचिभ्यां त्रक् (बं.सं.५/२४२) ।

२. डु मिञ् प्रक्षेपणे (बं.सं.५/२४२) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

पुत्रः पूज् पवने (क्री.८) । पवित्र करना । पुनाति । पू+त्रक्,
धातुघटक ऊकार को ह्रस्व, विभक्तिकार्य, पुत्रः । आत्मज ।

पुन्यान्तो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः । तस्मात् पुत्र इति
ख्यातः स्वयमेव स्वयम्भुवा । इति स्मृतिः (अ.को.-रघु.टी.पृ.३३७-३३८) ।

२३६. सिर्मनन्तश्च । १४-४२।

'पूज् पवने' अस्मात् सिप्रत्ययो भवति । अस्य च मन्
अन्तश्च । चकाराद् ह्रस्वत्वञ्च । इकार उच्चारणार्थः ।
पुनातीति पुमान् पुरुषः ।

'पूज् पवने' इस धातु से सि प्रत्यय होता है तथा पूज् को
'मन्' यह अन्तादेश होता है । 'सि' में इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

पुमान् पूज् पवने (क्री.८) । पवन=पवित्र करना । पुनाति । पू+सि,
प्रकृत सूत्र से 'मन्' अन्तादेश, 'पू मन् स्' 'पू' में ऊ को ह्रस्व,
'सान्तमहतोर्नोपधायाः' (कात.२/२/१८) सूत्र से उपधादीर्घ, संयोगान्त सकार
का लोप, विभक्तिकार्य, पुमान् । पुरुष । पातेर्दुमसुन्
(वै.सि.कौ.उ.सू.६१७) ।

२३७. कुटेर्मलः । १४-४३।

अस्मान्मलप्रत्ययो भवति । कुटादित्वाद् अगुणत्वम् ।
'कुट कौटिल्ये' कुटति पानीयं कुटिलं भवति इति
कुड्मलम् । निपातनात् टस्य डत्वम् । ईषद्विकसितम् ।

कुट् धातु से मल प्रत्यय होता है । कुटादिगण के अन्तर्गत
पठित होने से 'कुटादेरनिनिचट्सु' (कात.३/५/२७) इस सूत्र से गुण का
निषेध होता है ।

1. पाठा. पृडो मन्स ह्रस्वश्च, (बं.सं.५/२४४) ।

कुड्मलम् कुट कौटिल्ये (तु.८३) । टेढ़ा चलना, टेढ़ा होना । कुटति पानीयं कुटिलं भवति (जिसमें पानी भी टेढ़ा, मेढ़ा सा होता है) । कुट्+मल 'कुटादेरनिनिचट्सु' (कात.३/५/२७) इस सूत्र से धातु को गुण का निषेध, निपातन से ट् को ड्, विभक्तिकार्य, कुड्मलम् । थोड़ा विकसित । अर्धखिला हुआ । मुकुल (फूलती हुई कली) । कुड्मलो मुकुले पुंसि न द्वयोर्नरकान्तरे (मेदिनी.लान्त.७८) ।

२३८. व्रश्चैः सक् १४-४४।

अस्मात् सक्प्रत्ययो भवति । ककारो यण्वद्भावार्थः । तेन 'ग्रहिज्या इत्यादिना सम्प्रसारणम् । 'व्रश्चू छेदने' व्रश्चत्यातपं वृक्षः पादपः ।

व्रश्च् धातु से सक् प्रत्यय होता है । सक् में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । यण्वद्भाव के कारण 'ग्रहिज्यावयिव्यधि' (कात.३/४/२) इत्यादि सूत्र से सम्प्रसारण होता है ।

वृक्षः व्रश्चू छेदने (तु.१९) । काटना, छेदना । व्रश्चति आतपम् (जो धूप को नष्ट करता है) । व्रश्च्+सक्, 'वृश्चिमस्जोर्धुटि.' (कात.३/६/३५) से श का लोप । 'चजोः कगौ' (कात.४/६/५६) इत्यादि सूत्र से चकार को ककार, 'रषृवर्णेभ्यो.' (कात.२/४/१८) इत्यादि सूत्र से सकार को षकार, क् एवं ष् के संयोग से क्षकार, 'ग्रहिज्या' (कात.३/४/२) इत्यादि सूत्र से र् को ऋ सम्प्रसारण, विभक्तिकार्य, वृक्षः । पेड़ । वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तः (अ.को.२/४/५) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

२३९. सुवः चिक् १४-४५।

अस्मात् चिक्प्रत्ययो भवति । इकारोऽनुबन्धः ।
कोऽगुणार्थः । 'सु गतौ' स्रवतीति सुक् यज्ञोपकरणम् ।

सु धातु से चिक् प्रत्यय होता है । 'चिक्' में इ एवं क् अनुबन्ध अप्रयोगार्ह है । क् अनुबन्ध के होने से यण्वद्भाव तथा अगुण होता है ।

सुक् सु गतौ (भू.२/७९) । स्रवति । सु+चिक् (इ-क् अनुबन्ध) क् अनुबन्ध के कारण धातु को गुण का निषेध, 'चवर्गदृगादीनां च' (कात.२/३/४८) से चकार को गकार तथा 'वा विरामे' (कात.२/३/६२) से गकार को ककार, विभक्तिकार्य, सुक् । यज्ञ का उपकरण । यज्ञाग्नि में घी डालने का पात्र (सुवा) । सुवा द्वयोर्यज्ञपात्रे शल्लकीमूर्वयोः स्त्रियाम् (मेदिनी.वान्त.२९) ।

२४०. चतेर्वारः २ १४-४६।

अस्माद् वारप्रत्ययो भवति । अकार उच्चारणार्थः ।
'चते चदे याचने' चतन्ति, चतते चत्वारः चतुस्सङ्ख्या ।

चत् धातु से वार प्रत्यय होता है । 'वार' में रकारस्थ अकार उच्चारण- हेतु प्रयुक्त है । 'वार्' अवशिष्ट रहता है ।

1. सुवः चिक्, (२३९) तथा इससे आगे क्रमशः चतेर्वारः (२४०) गमेरिनिः (२४१) आङि णिनिः (२४२) भूस्थाभ्यां णिनिः (२४३) परमेष्ठी (२४४) ये सभी सूत्र तिब्बती-अनुवाद में उपर्युक्त क्रम से पठित नहीं हैं । ये सभी सूत्र कृजः पासः (२४७) के बाद ति.अनु. में पठित हैं ।
2. चतेर्वारः (बं.सं.५/२५०) ।

चत्वारः चते याचने (भू.५७६) । माँगना । चतते । चत्+वार, अकार अनुबन्ध का अप्रयोग, जस्, विभक्तिकार्य, चत्वारः । चार संख्या ।

२४१. गमेरिनिः १४-४७।

अस्मादिनिप्रत्ययो भवति । 'गम्लु गतौ' गमिष्यतीति। गमी गन्ता ।

गम् धातु से इनि प्रत्यय भविष्यत् अर्थ में होता है ।

गमी गम्लु गतौ (भू.२७९) । 'भविष्यति गम्यादयः' (कात.४/४/६८) सूत्र से भविष्यत् अर्थ में प्रत्यय । गम्+इनि, उपधादीर्घ, नकारलोप, गमी । गन्ता ।

२४२. आङि णिनिः १४-४८।

आङि उपपदे गमेरेव णिनिः प्रत्ययो भवति । णकार इज्वद्भावार्थः । इकार उच्चारणार्थः । 'गम्लु गतौ' आङ्पूर्वः । आगमिष्यतीति आगामी आगन्तुः ।

आङ् के उपपद में रहने पर गम् धातु से ही णिनि प्रत्यय भविष्यत् अर्थ में होता है । णिनि में ण् अनुबन्ध इज्वद्भावार्थ है । 'सिद्धिरिज्वद् ञानुबन्धे' (कात.४/१/१) इत्यादि सूत्र से इज्वद्भाव होता है । इसके कारण उपधादीर्घ, वृद्धि आदि अनेक कार्य होते हैं । णिनि में अन्त्य इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है । 'इन्' अवशिष्ट रहता है ।

1. तिब्बती-अनुवाद में औणादिक शब्दों की व्युत्पत्ति का निर्देश नहीं किया गया है, किन्तु केवल 'गमी' शब्द की 'गमिष्यति' ऐसी व्युत्पत्ति वहाँ निर्दिष्ट है ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

आगामी आङ्पूर्वक गम्+णिनि, (भविष्यत् अर्थ में) ण् अनुबन्ध के इज्जद्भाव होने से धातु को उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, आगामी । आगन्तु । आने वाला ।

२४३. भूस्थाभ्यां णिनिः। १४-४९।

आभ्यां णिनिप्रत्ययो भवति । णकार इज्जद्भावार्थः । भाव इश्च । 'भू सत्तायाम्' भविष्यतीति भावी भविष्यन् । 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' स्थास्यतीति स्थायी स्थास्यन् ।

भू एवं स्था धातु से भविष्यत् अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है । ण् इज्जद्भावार्थ है । इज्जद्भाव होने से उपधादीर्घ आदि अनेक कार्य हो जाते हैं । इस सूत्र में 'णिनि' पद के ग्रहण में गौरव है । पूर्वसूत्रस्थ णिनि की अनुवृत्ति यहाँ की जा सकती है ।

भावी भू सत्तायाम् (भू.१) । सत्ता=होना । भविष्यति । भू+णिनि, ण् अनुबन्ध के कारण इज्जद्भाव होने से धातुघटक ऊकार को औकार वृद्धि, 'औ आव्' (कात.१/२/१५) सूत्र से औ को आव् आदेश=भाविन्, नान्त होने के कारण 'नान्तस्य चोपधायाः' (कात.२/२/१६) सूत्र से उपधादीर्घ, लिङ्गसंज्ञा, सि, सि का लोप, न् का लोप, भावी । होने वाला ।

स्थायी ष्ठा गतिनिवृत्तौ (भू.२६७) । रुकना, ठहरना । स्थास्यति । स्था+णिनि, 'आयिरिच्यादन्तानाम्' (कात.३/६/२०) सूत्र से आय् आदेश,

1. 'णिनि' का ग्रहण सूत्र में अनावश्यक है । यतः पूर्वसूत्र (४-४८) से णिनि की अनुवृत्ति हो सकती है । अतः पुनः 'णिनि' पद का ग्रहण व्यर्थ है । अत एव बङ्ग संस्करण में 'भूस्थाभ्याञ्च' (बं.सं.५/२५३) ऐसा निर्दिष्ट है । चकार निर्देश घटित ऐसा ही पाठ ति.अनु. में भी पठित है ।

'नान्तस्य चोपधायाः' (कात.२/२/१६) सूत्र से उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, स्थायी ।

२४४. परमेष्ठी १४-५०।

अयं णिनिप्रत्ययान्तो निपात्यते । 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'
परमपूर्वः । सप्तम्या अलुक् । परमे पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी ।
ब्रह्मा ।

'परमेष्ठी' यह णिनि प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध होता है ।

परमेष्ठी परमे पदे तिष्ठति (जो सर्वोच्च पद पर रहता है) ।
परमपूर्वक । स्था+णिनि, निपातन से आकार का लोप, सकार को
षकार, तथा थकार को ठकार, सि प्रत्यय, उपधादीर्घ, सि का लोप, न्
का लोप, सप्तमी का अलुक्, परमेष्ठी । ब्रह्मा । परमेष्ठी पितामहः
(अ.को.१/१/१६) ।

२४५. भृवमिकुभ्यः शक् १४-५१।

एभ्यः शक्प्रत्ययो भवति । ककारः पूर्ववत् । 'डु भृज्'
बिभर्तीति भृशम् अत्यर्थम् । 'डु वमु उद्गिरणे' वमति शब्दमिति
वंशः वेणुः । 'कु शब्दे' कौति पवित्रतामिति कुशः दर्भः ।

भृ, वमु, कु इन धातुओं से शक् प्रत्यय होता है । शक् में
क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध होता
है ।

भृशम् डु भृज् धारणपोषणयोः (अ.८५) । बिभर्ति । भृ+शक्, क्
अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध,
विभक्तिकार्य, भृशम् । अत्यर्थ । अत्यधिक ।

वंशः डु वमु उदगिरणे (भू.५५७) । उदगिरण=कै करना, उगलना ।
वमति शब्दम् । वम्+शक्, म् को अनुस्वार तथा पञ्चम वर्ण
विभक्तिकार्य, वंशः । वेणु । बांस । कुल । वंशो वेणौ कुले वर्गे
पृष्ठस्यावयवेऽपि च (वि.प्र.को.शान्त.१०) ।

कुशः कु शब्दे (अ.१०) । शब्द करना । पवित्रतां कौति (जो
पवित्रता को कहता है=सूचित करता है) । कु+शक्, कुशः । दर्भ ।
राम के ज्येष्ठ पुत्र । कुशो रामसुते दर्भे योक्त्रे द्वीपे कुशं जले ।
कुशो वाच्यवदाख्यातः । (वि.प्र.को.शान्त.२-३) ।

२४६. कीनाशाङ्कुशौ । ४-५२।

एतौ शक्प्रत्ययान्तौ निपात्येते । 'कित' ज्ञाने'
चेकेतीति (चिकेतीति) कीनाशः यमः^२ । 'अकि लक्षणे'
इदनुबन्धत्वान्नागमः । अनुस्वारो वर्गान्तः । अङ्कतीति अङ्कुशः
करिवारणम् ।

कीनाश, अङ्कुश ये दोनों शक् प्रत्ययान्त शब्द निपातन से सिद्ध
होते हैं ।

कीनाशः कित ज्ञाने (अ.७६) । जानना । चिकेति । कित्+शक्,
निपातन से धातु की उपधा को दीर्घ ईकार, तकार को निपातन से
ना-अन्तादेश, विभक्तिकार्य, कीनाशः । यम । यमराज । कीनाशः
कर्षकक्षुद्रोपांशुघातिषु वाच्यवत्, यमे ना (मेदिनी.शान्त.१९) ।

क्लिश्+कन, उपधा को ईकार, लकार लोप, नाक् आगम,
कीनाशः (वै.सि.कौ.उ.सू.५/७३४) ।

1. कि ज्ञाने (पा.धा.जु.११७६) ।

2. 'दरिद्रः' ति.अनु. ।

अङ्कुशः अकि लक्षणे (भू.३२६) । चिह्न करना । इदनुबन्ध सहित होने से न् आगम । अङ्कति । अङ्क्+शक्, धातु के अन्त में निपातन से उकार, विभक्तिकार्य, अङ्कुशः । हाथी को अनुशासित करने का अस्त्र । सृणि ।

२४७. वृत्तुवदिहनिमनिकस्यशिकषेभ्यः सः । ४-५३।

एभ्यः सप्रत्ययो भवति । 'वृञ् वरणे' वृणोति सर्वं छादयतीति वर्षम् मधुपानम् । 'तृ प्लवनतरणयोः'। [तर्षः सूर्यः^२] । 'वद व्यक्तायां वाचि' मातरमभ्येत्य वदतीति वत्सः शकृत्करिः । 'हन हिंसागत्योः' बिस हन्तीति हंसः । अथवा चारुगत्या हन्ति गच्छति इति हंसः पक्षी । उणादित्वात् क्वचिद् दीर्घत्वमपि दृश्यते । 'मन ज्ञाने' मन्यते सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेन मांसं पिशितम् । 'कसि गतौ'^३ इदनुबन्धत्वान्नागमः । कंसतीति^४ (कंस्ते) कासः^५ (कंसः) धातुविशेषः । 'अशू व्याप्तौ'^६ अश्नोतीति अक्षः शकटैकदेशः । 'कष निष्कर्षे'^७ (गतौ) कषतीति कक्षा प्रसिद्धा ।

वृ, तृ, वद, हन, मन, कसि, अश, कष् इन सभी धातुओं से स प्रत्यय होता है ।

1. 'तृ प्लवनतरणयोः' यह ति.अनु. में पठित है जब कि म.सं. में अपठित है । ।
2. 'सागरः' ति.अनु. ।
3. 'कमु कान्तौ (बं.सं., ति.अनु.) ।
4. इदनुबन्ध सहित कसि धातु का आदादिक रूप 'कंस्ते' होता है । म.सं. में 'कंसति' रूप असाधु है ।
5. 'कासः' यह भ्रष्ट पाठ है । बं.सं. तथा पा.उ. में 'कंसः' शब्द मिलता है । धातु विशेष 'कांस्य' अर्थ में 'कंसः' पाठ उपलब्ध होता है ।
6. अश भोजने ति.अनु. (क्री.४३) ।
7. कष् हिंसायाम् ति.अनु. (भू.२२४) ।

पादः]

कातन्त्राणादिसूत्रवृत्तिः

वर्षम् वृज् वरणे (सु.८) । वरण करना । वृणोति सर्व छादयति (जो सब पर छा जाता है) । वृ+स, ऋ को अर्, तथा सकार को षकार, विभक्तिकार्य, वर्षम् । मधुपान । भौरा, मेघादि । वर्षोऽस्त्री भारतादौ च जम्बूद्वीपाब्दवृष्टिषु । प्रावृट्काले स्त्रियां भूमि, विट् स्त्री व्यापनविष्टयोः । (मेदिनी.षान्त.२४) ।

तर्षः तृ प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । तरति । तृ+स, ऋ को अर्, सकार को षकार, विभक्तिकार्य, तर्षः । सूर्य । तर्षो लिप्सापिपासयोः (वि.प्र.को.षान्त.३) । तर्सः प्लवसमुद्रयोः (वै.सि.कौ.उ.३/३४२) ।

वत्सः वद व्यक्तायां वाचि (भू.६१५) । स्पष्ट बोलना । मातरमध्येत्य वदति (माता के पास पहुँचकर बोलता है) । वद्+स, द् को तु, विभक्तिकार्य, वत्सः । गाय का बछड़ा । शकृत्करिस्तु वत्सः (अ.को.२/९/६२) ।

हंसः हन हिंसागत्योः (अ.४) । मारना, हिंसा करना, जाना । बिसं हन्ति (जो कमल नाल को नष्ट करता है) । हन्+स, नकार को अनुस्वार, विभक्तिकार्य, हंसः । पक्षी ।

अथवा चारुगत्या हन्ति गच्छति (जो सुन्दर गति से जाता है) । हंसः ।

हंसो विहङ्गभेदे स्यादर्के विष्णौ हयान्तरे । योगिमन्त्रादिभेदेषु परमात्मनि मत्सरे । निर्लोभनृपतौ हंसः शारीरमरुदन्तरे । (वि.प्र.को.सान्त.८-९) ।

मांसम् मन ज्ञाने (दि.११३) । मन्यते सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेन (जिससे शरीर की वृद्धि समझी जाती है) । मन्+स, 'उणादित्वात्' हेतु से उपधादीर्घ, अनुस्वार, विभक्तिकार्य, मांसम् । आमिष । मांसं स्यादामिषे क्लीबं कक्कोलीजटयोः स्त्रियाम् (मेदिनी.सान्त.८) ।

तु.- मनेर्दीर्घश्च मांसम् (वै.सि.कौ.उ.सू.३४४) ।

कंसः कसि गतौ (अ.४८) । इदनुबन्ध से न् आगम । कंस्ते ।
कंस+स, पूर्व सकार का लोप, विभक्तिकार्य, कंसः । धातुविशेषः
(काँसा) कंसो दैत्यान्तरे स्मृतः । कांस्ये च कांस्यपात्रे च मानभेदेऽपि
कीर्तितः (वि.प्र.को.शान्त.९) । कंसोऽस्त्री पानभाजनम् (अ.को.२/९/३२) ।

अक्षः अशू व्याप्तौ (सु.२२) । व्याप्त होना । अश्नोति । अश्+स,
'छशोश्च' (कात.३/६/६०) सूत्र से शकार को षकार, 'षढोः कः से'
(कात.३/८/४) सूत्र से षकार को ककार, 'नामिकरपरः' (कात.२/४/४७)
इत्यादि सूत्र से स् को ष, क्-ष् के संयोग से क्ष, विभक्तिकार्य,
अक्षः । गाड़ी का धुरा ।

कक्षा कष गतौ (भू.२२४) । जाना । कषति । कष्+स, 'षढोः कः
से' (कात.३/८/४) से षकार को ककार, 'नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः'
(कात.२/४/४७) इस नियम से सकार को षकार, क् एवं ष के संयोग
से क्ष, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, कक्षा । प्रसिद्ध ।

कक्षा स्यादन्तरीपस्य पश्चादञ्चलपल्लवे । स्पर्धास्पदे ना दोर्मूले
कच्छवीरुत्तृणेषु च । (मेदिनी.शान्त.७-८) । रथभागेऽपि कक्षा स्यात्
(वि.प्र.को.शान्त.११) ।

-
1. अक्षो ज्ञातार्थशकटव्यवहारेषु पाशके ।
रुद्राक्षेन्द्राक्षयोः सर्पे बिभीतकतरावपि ।
चक्रे कर्षे पुमान् क्लीबं तुत्ये सौवर्चलेन्द्रिये
उषा बाणसुतारात्र्योरुषः कामिनि गुग्गुलौ ॥
रात्रिशेषे उषायान्तु केचिदाहुस्तदव्ययम् । (मेदिनी.शान्त.२-३-४) ।

२४८. कृजः पासः। १४-५४।

'डु कृज् करणे' अस्मात् पासप्रत्ययो भवति । करोति शोभां कर्पासः ।

कृ धातु से पास प्रत्यय होता है ।

कर्पासः 'डु कृज् करणे (त.७) । (जो शोभा को बढ़ाता है) । कृ+पास, ऋ को अर् गुण, विभक्तिकार्य, कर्पासः । बादर । कपास, रुई । कन्दकर्पासम् (अ.को.३/५/३५) ।

२४९. वसेः(शेः) कनसिः² १४-५५।

अस्मात् कनसिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । ककारो यण्वत् । तेनागुणत्वम्, सम्प्रसारणञ्च । 'उशनस्' इत्यादिना अन् । 'वश कान्तौ' वष्टि वाञ्छति दानवोदयमिति उशना शुक्रः ।

वश् धातु से कनसि प्रत्यय होता है । 'कनसि' में इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है । ककार यण्वद्भावार्थ है । इससे धातु को गुणनिषेध होता है तथा सम्प्रसारण भी होता है ।

उशना वश कान्तौ (अ.३) । चाहना । वष्टि वाञ्छति दानवोदयम् (जो दानवों का उदय चाहता है) । वश्+कनसि, (क्-इ. अनुबन्धों का अप्रयोग) वश्+अनस् वकार को सम्प्रसारण से उकार, उश् अन् अस, उशनस्, लिङ्गसंज्ञा, सि, 'घुटि चासम्बुद्धौ' (कात.२/२/१७) इस सूत्र से दीर्घ 'उशनःपुरुदंशोऽनेहसां सावनन्तः' (कात.२/२/२२) इस सूत्र से अन्,

1. यह सूत्र बङ्ग-संस्करण में संगृहीत नहीं है । तिब्बती-अनुवाद में संगृहीत है ।
2. कनस् (बं.सं.) ।

व्यञ्जनाच्च से सि का लोप तथा लिङ्गान्तनकारस्य से न् का लोप,
उशना । शुक्र, शुक्रवार । उशना भार्गवः कविः (अ.को.१/३/२५) ।

२५०. सर्वधातुभ्योऽसुन् । १४-५६।

सर्वधातुभ्यो यथाभिधानम् असुन्प्रत्ययो भवति ।
नकारोकारौ उच्चारणार्थौ । 'विध विधाने' विधति सृजति इति
वेधाः स्रष्टा । 'इण् गतौ' एति सर्व विकारम् अयः लोहम् ।
'पीङ् पाने' पीयते पयः पानीयम् । 'तप धूप सन्तापे'
तपतीति तपः धर्मार्जनम् । 'मन ज्ञाने' मन्यते बुध्यते अनेनेति
मनः अन्तःकरणम् । 'चिती संज्ञाने' चेतति जन आत्मानमितिचेतः
चित्तम् । 'रह त्यागे' रहति त्यजति संसर्गमिति रहः
एकान्तम् । 'वी प्रजने' वेति इति वयः शरीरावस्था ।
यथासम्भवं गुणः । अत्वसन्तस्य इति दीर्घत्वम् । 'डु धाज्'
पुरो धीयते पुरोधाः पुरोहितः ।

सभी धातुओं से अभिधान के अनुसार असुन् प्रत्यय होता है ।
'असुन्' में नकार तथा उकार दोनों अनुबन्ध उच्चारणार्थ प्रयुक्त हैं ।
'अस्' मात्र शेष रहता है ।

वेधाः विध विधाने (तु.३८) । विधान करना, रचना करना ।
विधति । विध्+असुन्, न् एवं उ का अप्रयोग, धातुघटक इकार को
एकार, 'अत्वसन्तस्य चाधातोः सौ' (कात.२/२/२०) इस सूत्र से दीर्घ,
विभक्तिकार्य, वेधाः । स्रष्टा । ब्रह्मा । विष्णु (बं.सं.) । वेधाः पुंसि
हृषीकेशे बुधे च परमेष्ठिनि (मेदिनी.सान्त.४१) ।

1. भिक्षु आकाशभद्र (नम् खा. सङ्गपो) द्वारा अनूदित 'कलापोणादिसूत्र'
में 'असुन्' प्रत्यय निर्दिष्ट नहीं है, किन्तु वज्रध्वज (दोर्जे ग्यलछन)
कृत उणादिवृत्ति के तिब्बती अनुवाद में 'असुन्' प्रत्यय पठित है ।

तु.- विदधातीति वेधाः विधा+असि, वेधादेशश्च
(वै.सि.कौ.उ.६६४) ।

अयः इण् गतौ (अ.१३) । एति सर्व विकारम् (जो सम्पूर्ण विकार को प्राप्त होता है) । इ+असुन्, धातुघटक इकार को एकार गुण, 'ए अय्' (कात.१/२/१२) सूत्र से अय् आदेश, अयस् की लिङ्गसंज्ञा, विभक्तिकार्य, अयः । लोह ।

पयः पीङ् पाने (दि.९०) । पीना । पीयते । पी+असुन् (अस्) ईकार को एकार गुण, 'ए अय' सूत्र से अयादेश, विभक्तिकार्य, पयः । जल । दूध । पयः स्यात् क्षीरनीरयोः (मेदिनी.सान्त.२८) ।

तपः तप सन्तापे (भू.१३३) । तपना, तपस्या करना । तपति । तप्+असुन्, तपस् विभक्तिकार्य, तपः । धर्म का संग्रह । चान्द्रायणादि ब.सं. । तपो लोकान्तरेऽपि च (मेदिनी.सान्त.२३) ।

मनः मन ज्ञाने (दि.११३) । ज्ञान करना । मन्यते बुध्यते अनेन (जिसके द्वारा जाना जाता है) । मन्+असुन् (अस्) मनस्, विभक्तिकार्य, मनः । अन्तःकरण । हृदय । बुद्धि । मनश्चित्ते मनीषायाम् (मेदिनी.सान्त.३०) ।

चेतः चिती संज्ञाने (भू.२) । विचार करना, चिन्तन करना । चेतति जनः आत्मानम् (जो अपने विषय में सोचता है) । चित्+असुन्, धातुघटक इकार को एकार गुण, विभक्तिकार्य, चेतः । चित्त ।

रहः रह त्यागे (भू.२४५) । छोड़ना । रहति त्यजति संसर्गम् (जो सङ्ग को छोड़ता है) । रह्+असुन्, रहः । एकान्त । अकेलापन । रहस् तत्त्वे रते गुह्ये रहोऽर्थे च (मेदिनी.सान्त.३१) ।

वयः वी प्रजने (अ.१४) । वेति । वी+असुन्, धातुघटक ईकार को एकार गुण, अयादेश, विभक्तिकार्य, वयः । शरीर की अवस्था । वयः पक्षिणि बाल्यादौ यौवने च नपुसकम् (मेदिनी.सान्त.३५) ।

पुरोधाः डु धाज् धारणपोषणयोः (अ.८५) । । पुरो धीयते । पुरस्+धा+असुन्, आकारलोप, सि प्रत्यय, 'अत्वसन्तस्य चाधातोः सौ' (कात.२/२/२०) सूत्र से दीर्घ, पुरोधाः । पुरोहित ।

पुरोवयःपयस्सुधाजोऽगुणः । । (बं.सं.५-२५७) ।

डु धाज् पुरोधाः पुरोहितः । वयोधाः ब्रह्मा । पयोधाः समुद्रो मेघश्च ।

पुरस्, वयस्, पयस् पूर्वक धाज् धातु से असुन्, प्रत्यय होता है ।

पुरोधाः पुरस् पूर्वक धा+असुन्, पुरोधाः । पुरोहित ।

वयोधाः वयस् धा+असुन्, वयोधाः । ब्रह्मा ।

पयोधाः पयस् धा+असुन्, पयोधाः । समुद्र, मेघ ।

२५१. चन्द्रे मातेः । ४-५७ ।

चन्द्रे उपपदे अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति । अगुणवद्भावादाकारलोपः । (मा माने) भिन्नयोगः स्पष्टार्थ एव । चन्द्रं मातीति चन्द्रमाश्चन्द्रः ।

1. यह सूत्र मद्रास-संस्करण में संगृहीत नहीं है । बङ्ग-संस्करण के आधार पर यहाँ दिया गया है । 'पुरसि धाजोऽगुणवत्' ऐसा सूत्र तिब्बती-अनुवाद में प्राप्त होता है । इस तरह इस ग्रन्थ में ति.अनु. एवं बङ्ग-संस्करण के पाठों में पर्याप्त समानता देखने को मिलती है । म.सं. इससे भिन्न है ।

पादः]

कातन्त्राणादिसूत्रवृत्तिः

चन्द्र के उपपद में रहने पर मा धातु से असुन् प्रत्यय होता है । इसमें अगुण की पूर्वसूत्र से अनुवृत्ति करनी पड़ेगी, तभी असुन् को अगुणवद्भाव करके धातुघटक आकार का लोप हो सकता है ।

चन्द्रमाः चन्द्रं माति । चन्द्र+मा+असुन्, धातुघटक आकार का 'आलोपोऽसार्वधातुके' (कात.३/४/२७) सूत्र से लोप, विभक्तिकार्य, चन्द्रमाः । चन्द्र । चन्द्रं रजतममृतं च, तदिव मीयतेऽसौ चन्द्रमाः इति हरदत्तः (वै.सि.कौ.तत्त्व.बो.उ.६७७) ।

२५२. अनेहसोऽप्सरसोऽङ्गिरसः १४-५८।

एते असुन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । 'ईह चेष्टायाम्' नञ्पूर्वः । न ईहते चेष्टते अनेहा कालः । 'सृ गतौ' अप्पूर्वः । अप्सरन्तीति अप्सरसः देवयोषितः । 'गृ निगरणे' गिरतीति अङ्गिराः । निपातनादपूर्वः । अनुस्वारो वर्गान्तिः इरादेशश्च । मुनिविशेषः ।

अनेहस् अप्सरस् तथा अङ्गिरस् ये सभी असुन् प्रत्ययान्त शब्द निपातन से निष्पन्न होते हैं ।

अनेहा ईह चेष्टायाम् (भू.४४६) । चेष्टा करना, प्रयत्न करना । नञ् पूर्वक प्रयोग । न ईहते । नञ् पूर्वक ईह+असुन्, निपातन से नञ् के पूर्व अकारागम, अन् ईह+अस्, अनेहस्, लिङ्गसंज्ञा, सि प्रत्यय, 'उशनः पुरुदंशोऽनेहसां०' से अन् अन्तादेश, 'घुटि चासंबुद्धौ' (कात.२/२/१७) से दीर्घ 'व्यञ्जनाच्च' से सिलोप तथा 'लिङ्गान्तनकारस्य' से नलोप, अनेहा । काल ।

१. देवयोनिविशेषः (बं.सं.) । देवपत्नी (ति.अनु.) ।

अप्सरसः सु गतौ भू.२७४) । अप्सु सरन्ति । अप् सु+असुन्, ऋ को अर्, अप्सरस्, बहु.-अप्सरसः । देवों की सामान्य स्त्रियाँ । विशेष देवयोनि ।

अङ्गिराः गृ निगरणे (तु.२२) । निगलना, खाना । गिरति । अम् पूर्वक । गृ+असुन्, 'ऋदन्तस्येरगुणे' (कात.३/५/४२) से गृ में ऋ को इरादेश, म् को अनुस्वार, तथा पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, अङ्गिराः । मुनिविशेष । ऋषिभेद ।

२५३. उषिरञ्जिशृभ्यो यण्वत् १४-५९।

एभ्योऽसुन्प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । तेनागुणत्वम् अनुषङ्गलोपः । ऋदन्तस्येरगुणे । 'उष दाहे' तनु उषति^१ दहति इति उष^२ अहर्मुखम् । 'रञ्ज रागे' रक्षत्यनेनेति (रज्यतेऽनेनेति) रजः धूलिः । 'शृ सू हिंसायाम्' शीर्यते हिंस्यते शिरः मूर्धा ।

उष, रञ्ज, शृ इन धातुओं से असुन् प्रत्यय होता है । असुन् को यण्वद्भाव भी होता है । यण्वद्भाव होने से गुणनिषेध होता है । 'अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः' (कात.३/६/१) इस सूत्र से अनुषङ्गसंज्ञक नकार का लोप होता है । 'ऋदन्तस्येरगुणे' (कात.३/५/४२) इस सूत्र से ऋदन्त धातु को अगुण प्रत्यय पर में रहने पर 'इर्' होता है ।

उषः उष दाहे (भू.२२९) । जलाना । ओषति । तनु ओषति (जो अंशतः या अल्प ही सन्ताप देता है) । उष्+असुन्, असुन् को यण्वद्भाव होने से धातुघटक उकार को गुण का निषेध, लिङ्गसंज्ञा, सि,

-
१. उष दाहे (भू.२२९) इस धातु के भौवादिक होने से 'ओषति' रूप होता है । अतः उषति पाठ चिन्त्य है ।
 २. उषस् का प्रभात अर्थ में 'उषः' तथा रात्रि अर्थ में उषा रूप होता है । प्रभात अर्थ के अनुसार वृत्ति में 'उषः' पाठ अपेक्षित है ।

पादः]

कातन्त्राणादिसूत्रवृत्तिः

स् का विसर्ग उषः । अहर्मुख । प्रातःकाल । सूर्य (ति.अनु.) उषस्
प्रत्युषसि (मेदिनी.सान्त.१९) ।

रजः रज्ज रागे (भू.६०५) । रंगना । रज्यते अनेन ।
रज्ज्+असुन्, 'अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः' (कात.३/६/१) सूत्र से
अनुषङ्गसंज्ञक नकार का लोप, विभक्तिकार्य, रजः । घूलि । रजस्
क्लीबं गुणान्तरे । आर्तवे च परागे च रेणुमात्रे च दृश्यते
(मेदिनी.सान्त.३१-३२) ।

शिरः शृ हिसायाम् (क्री.१५) । नष्ट करना । शीर्यते । शृ+असुन्,
'ऋदन्तस्येरगुणे' (कात.३/५/४२) सूत्र से ऋ को इर् आदेश, 'शिरस्'
विभक्तिकार्य, शिरः । मूर्धा । शिरस् प्रधाने सेनाग्रे शिखरे मस्तकेऽपि
च (मेदिनी.सान्त.४१) ।

२५४. यजेः शिश्च १४-६०।

अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति । स च यण्वत् । जस्य
शिरादेशः । इकार उच्चारणार्थः । 'यज देवपूजासङ्गतिकरण-
दानेषु' इज्यते। यशः कीर्तिः ।

यज् धातु से असुन् प्रत्यय होता है । असुन् को यण्वद्भाव
होता है । यज् में ज् के स्थान में शि आदेश होता है ।

यशः यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु (भू.६०८) । यज करना, हवन
करना, देवपूजा करना, अर्पण करना, सङ्गति करना । यज्यते ।
यज्+असुन्, ज् को शि आदेश, इ अनुबन्ध का अप्रयोग, यशस्,
विभक्तिकार्य, यशः । कीर्ति ।

-
1. यज्यते म.सं. । य् को इ सम्प्रसारण होने से इज्यते पाठ किया गया है ।

२५५. उषेर्जश्च १४-६१।

अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति । अस्य जकारोऽन्तस्य ।
अकार उच्चारणार्थः । 'उष दाहे' उषतीति (ओषतीति)
ओजः । बलम् ।

उष् धातु से असुन् प्रत्यय होता है । धातु को ज अन्तादेश भी होता है । जकार में अन्त्य अकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

ओजः उष दाहे (भू.२२९) । जलाना । ओषति । उष्+असुन्, ष् को ज् अन्तादेश, धातुघटक उकार को ओकार गुण, विभक्तिकार्य, ओजः । बल । प्रकाश । ओजस् दीप्ताववष्टम्भे प्रकाशबलयोरपि (मेदिनी.सान्त.२०) ।

२५६. वाचः(वचेः) सोऽन्तश्च १४-६२।

अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति, सोऽन्तश्च । अकार उच्चारणार्थः । चवर्गस्य किः । नामि इत्यादिना षत्वम् । 'वच परिभाषणे' वक्ति वाणीमिति वक्षः भुजमध्यम् ।

वच् धातु से असुन् प्रत्यय तथा स अन्तादेश होता है । स में अकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

वक्षः वच परिभाषणे (अ.३०) । कहना, बोलना । वक्ति वाणीमिति (जो वाणी को कहता है) । वच्+असुन्, स अन्तादेश, 'वच् स् अस्' 'चवर्गस्य किरसवर्णे' (कात.३/६/५५) इस सूत्र से चकार को ककार, 'नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरोऽपि' (कात.२/४/४७) इस सूत्र से सकार को षकार, क्-ष् के संयोग से क्ष, विभक्तिकार्य, वक्षः । भुजाओं के बीच का भाग । छाती । वक्षोऽलङ्करणे हेमपात्रे हेमपलेऽपि च (मेदिनी.कान्त.२८) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

२५७. स्रु(री)भ्यां तोऽन्तश्च १४-६३।

आभ्यामसुन्प्रत्ययो भवति, अनयोस्तोऽन्तश्च । शु सु दु
दु (गतौ) स्रवति जलं स्रोतः प्रवाहः । 'रि (री) रेषणे च'।
(रीङ् स्रवणे) रीयते स्रवते (स्रवति) योनौ रेतः शुक्लम्^२ ।
(शुक्रम्) ।

स्रु, री, इन दोनों धातुओं से असुन् प्रत्यय होता है, तथा इन दोनों धातुओं को त अन्तादेश भी होता है ।

स्रोतः सु गतौ (भू.२७९) । स्रवति जलम् (जिसमें जल बहता है) ।
स्रु+असुन्, स्रु को त् अन्तादेश, स्रु में उकार को ओकार गुण, 'स्रोतस्'
विभक्तिकार्य, स्रोतः । प्रवाह । स्रोतोऽम्बुवेग इन्द्रिये (मेदिनी.सान्त.४६) ।

रेतः री रेषणे च (क्री.८) । स्रवित होना, चूना, पीड़ित होना ।
रीयते स्रवते (जो योनि में स्रवित होता है) । री+असुन्, त् अन्तादेश,
ईकार को एकार, रेतस्, विभक्तिकार्य, रेतः । शुक्र । वीर्य ।
शुक्ल । रेतस् शुक्रे पारदे च (मेदिनी.सान्त.३३) ।

२५८. शीङः फोऽन्तश्च १४-६४।

अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति फोऽन्तश्च । अकार
उच्चारणार्थः । 'शीङ् स्वप्ने' शेते योनौ शेफः मेढ्रम् ।

1. वृत्ति में उल्लिखित 'री रेषणे' धातु के क्रयादिगणीय होने से 'रीयते' व्युत्पत्ति असङ्गत है । 'रीङ् स्रवणे' इस दिवादिगणीय आत्मने पद धातु से 'रीयते' व्युत्पत्ति की सङ्गति हो जाती है । अतः वृत्ति में 'रीङ् स्रवणे' (दि.८६) ऐसा धातुपाठ अपेक्षित है ।
2. रेतः का अर्थ वृत्ति में 'शुक्लम्' ऐसा निर्दिष्ट है । शुक्लम् के स्थान पर 'शुक्रम्' पाठ शुद्ध होगा ।

शीङ् धातु से असुन् प्रत्यय होता है तथा धातु को फ अन्तादेश होता है । 'फ' में अकार उच्चारणार्थ है । 'फ' प्रयुक्त होता है ।

शेफः शीङ् स्वप्ने (अ.५५) । सोना, नींद लेना । योनौ शेते (जो योनि में सोता है) । शी+असुन्, 'शी' को फ अन्तादेश, शी-घटक ईकार को एकार गुण, विभक्तिकार्य, शेफः । मेढ्र । लिङ्ग । योनि । गुह्य । शेषः लिङ्गेन्द्रियं वा (दया.उ.को.४/२०२) । शिशनः मेढ्रो मेहनशेफसी (अ.को.२/६/४६) ।

२५९. छादेर्नश्च । ४-६५ ।

अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति धातोश्छस्य नोऽन्तश्च । 'छद् षधृ' चौरादित्वादिन् । अस्योपधाया दीर्घः । उणादित्वात् ह्रस्वत्वम् । छादयति पापं छन्दः वेदः ।

छद् धातु से असुन् प्रत्यय तथा धातुघटक छ को न् अन्तादेश होता है । धातु के चौरादिक होने से 'इन्' प्रत्यय तथा उणादित्वात् इस हेतु से धातु को ह्रस्व होता है । 'अस्योपधाया दीर्घो वृद्धिर्नामिनामिनिचट्सु' (कात.३/६/५) सूत्र से उपधा को दीर्घ होता है ।

छन्दः छद् अपवारणे (चु.२३) । अपवारण=ढाँकना, समाप्त करना । 'चुरादेश्च' (कात.३/२/११) सूत्र से इन् । 'अस्योपधाया' सूत्र से धातु की उपधा को दीर्घ, छादि+असुन्, छ् को न् अन्तादेश, उणादित्वात् हेतु से धातु को ह्रस्व, 'छन्दस्', विभक्तिकार्य, छन्दः । वेद । पद्य । छन्दस् पद्ये च वेदे च स्वैराचाराभिलाषयोः (मेदिनी.सान्त.२२) । छन्दो वशेऽप्यभिप्राये हृदाख्याचित्तबुक्कयोः (वि.प्र.को.४/२२०) ।

1. छादेर्नश्च दात्पूर्वः (बं.सं.५-२६६) छादेर्नादीर्घश्च (ति.अनु.) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

चन्देरादेशच छः, छन्दः (वै.सि.कौ.उ.सू.४/६५८) ।

२६०. अमेर्भोऽन्तश्च । १४-६६।

अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति भोऽन्तश्च । अकार उच्चारणार्थः
'अम रोगे' अमति स्वादुत्वं गच्छति इति अम्भः पानीयम् ।

अम् धातु से असुन् प्रत्यय होता है तथा धातु को 'भ'
अन्तादेश होता है । भ में अकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

अम्भः अम रोगे (चु.१४०, भू.१६०-गत्यर्थः) । अमति स्वादुत्वं गच्छति
(जो स्वाद को प्राप्त होता है) अम्+असुन्, भ् अन्तादेश, अम्भस्,
विभक्तिकार्य, अम्भः । पानीय । जल । अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बु-
शम्बरम् (अ.को.१-१०-४) ।

तु.- उदके नुम्भौ च, अम्भः (वै.सि.कौ.उ.४/६४९) ।

२६१. अर्तेरुश्च । १४-६७।

अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति । अस्य च उकारादेशो
भवति । (ऋ गतौ) अर्यति गम्यते उरः वक्षः ।

ऋ धातु से असुन् प्रत्यय तथा ऋ को उकारादेश होता है ।

1. कलापोणादि का बङ्ग संस्करण इसी सूत्र के बाद समाप्त है ।
बङ्ग-संस्करण में 5 पाद एवं २६३ सूत्र हैं । देवनागरी-
मद्रास-संस्करण में ६ पाद एवं ३९९ सूत्र हैं । बङ्ग-संस्करण में
चतुर्थ पाद के अन्तिम ४ सूत्र तथा पञ्चम पाद के ६७ सूत्र एवं
षष्ठ पाद के ६८ सूत्र इस तरह कुल १३९ सूत्र (म.सं. के)
उपलब्ध नहीं होते । तिब्बती-अनुवाद में इस पाद के अन्तिम
४ सूत्र तो अनूदित हैं, किन्तु उसमें भी पञ्चम एवं षष्ठ पाद
(म.सं.) के सभी १३५ सूत्र अनुपलब्ध हैं ।

उरः ऋ गतौ (अ.७४) । ऋ+असुन्, ऋ को उर् आदेश, 'उरस्' विभक्तिकार्य, उरः । वक्ष । हृदय । उरः श्रेष्ठे च वक्षसि (वि.प्र.को.सान्त.३६) ।

तु.- अर्तेरुच्च (वै.सि.कौ.उ.४/६३४) ।

२६२. कृतेः स्नक् १४-६८।

अस्मात् स्नक्प्रत्ययो भवति । ककारो यण्वद्भावार्थः । तेनागुणत्वम् । 'कृती छेदने' कृन्तति वेष्टयति व्याप्नोति इति कृत्स्नं सम्पूर्णम् ।

कृत् धातु से स्नक् प्रत्यय होता है । स्नक् में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है, जिससे गुण का निषेध होता है ।

कृत्स्नम् कृती छेदने (तु.१२) । काटना, छेदना । कृन्तति वेष्टयति । कृत्+स्नक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, कृत्स्नम् । विश्व । संसार । सम्पूर्ण । कृत्स्नं कष्टे समस्ते च (वि.प्र.को.नान्त.१२) । विश्वमशेषं कृत्स्नम् (अ.को.३/१/६५) ।

तु.- कृत्यशूभ्यां क्सनः (वै.सि.कौ.उ.३/२९७) ।

२६३. शिलषेरितोऽच्च १४-६९।

अस्मात् स्नक्प्रत्ययो भवति । अस्येकारस्याद् भवति । 'शिलष आलिङ्गने' शिलष्यते श्लक्ष्णं सुन्दरम् । 'षढोः कः से' निमित्ताण्णत्वं षवर्णेभ्यो णम् ।

शिल् धातु से स्नक् प्रत्यय होता है । 'शिल्' में इकार के स्थान में अकार होता है । क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

श्लक्ष्णम् श्लिष आलिङ्गने (दि.२९) । आलिङ्गन करना । श्लिष्यते । श्लिष्+स्नक्, श्लिष् में इकार के स्थान में अकार, श्लिष्+स्न, 'षटोः कः से' (कात.३/८/४) सूत्र से ष् को क्, स् को ष्, क्-ष् के संयोग से क्ष, 'रष्वर्णेभ्यो णम्' (कात.२/४/१८) सूत्र से नकार को णकार, विभक्तिकार्य, श्लक्ष्णम् । सुन्दर । सुकुमार । सूक्ष्म ।

तु.- श्लिषेरच्चोपधायाः (दया.उ.को.३/१९) ।

२६४. तिजेर्दीर्घश्च। १४-७०।

अस्मात् स्नक्प्रत्ययो भवति । अस्य च इकारो दीर्घो भवति । 'चजोः कगौ' चस्य गत्वम् । अघोषेषु कत्वं षत्वं णत्वञ्च । 'तिज निशाने क्षमायां च' तितिक्षते सर्व सहते तीक्ष्णं खरम् ।

(इति दौर्गसिंहा(सिंम्हा)मुणादिवृत्तौ चतुर्थः पादः)

तिज् धातु से स्नक् प्रत्यय होता है तथा तिज् घटक इकार को दीर्घ होता है । 'चजोः कगौ धुङ्घानुबन्धयोः' (कात.४/६/५६) इस सूत्र से जकार को गकार होता है । अघोषेष्वशिटां प्रथमः (कात.३/८/९) इस सूत्र से गकार को ककार होता है ।

1. तिजेरितश्च ति.अनु.४-२६७

भिक्षु आकाशभद्र (नम् ख. सङ्पो) द्वारा कृत कलापोणादि सूत्र का तिब्बती-अनुवाद इसी सूत्र तक प्राप्त है । प्रायः इतना ही अंश बङ्ग-संस्करण में भी प्राप्त होता है । मद्रास-संस्करण में इससे १३५ सूत्र अधिक निर्दिष्ट है, जिनका अनुवाद बं.सं. एवं ति.अनु. में प्राप्त नहीं होता । ति.अनु. की न्यूनता को देखकर उन १३५ सूत्रों का अनुवाद मद्रास-संस्करण के आधार पर संस्कृत से तिब्बती भाषा में कर दिया गया है । जो ति.अनु. वाले खण्ड में द्रष्टव्य है ।

तीक्ष्णम् तिज निशाने क्षमायां च (भू.३४८) । तीक्ष्ण करना, पैना करना, चमकाना । तितिक्षते सर्व सहते (जो सब कुछ सहन करता है) । तिज्+स्नक्, तिज् में इकार को दीर्घ ईकार, 'चजोः, कगौ' धुङ्घानुबन्धयोः' (कात.४/६/५६) इस सूत्र से जकार को गकार, 'अघोषेष्वशिटां प्रथमः' (कात.३/८/९) इस सूत्र से गकार को ककार, स्नक् में स् को ष्, क्-ष् संयोग से क्ष, 'रष्ववर्णेभ्यो णम्' (कात.२/४/१८) सूत्र से नकार को णकार, विभक्तिकार्य, तीक्ष्णम् । खर ।

तीक्ष्णं सामुद्रलवणे विषलोहाजिमुष्कके । यवाग्रजे पुंसि तिग्मात्मत्यागिनोस्त्रिषु ॥ (मेदिनी.णान्त.१५) ।

(श्रीदुर्गीसिंह कृत उणादिवृत्ति के चतुर्थ पाद की हिन्दी टीका समाप्त)

॥ अथ पञ्चमः पादः ॥

शब्दात्मिका या त्रिजगद् बिभर्ति
स्फुरद् विचित्रार्थसुधां स्रवन्ती ।
या ऋद्धिरी (इया हृदये सदैव)
मुखे च सा मे वशमस्तु नित्यम् ॥

स्फुरित होने वाले विचित्र अर्थामृत का क्षरण करती हुई जो शब्दरूपिणी (वह) तीनों लोकों को धारण करती है । जो ऋद्धिरूपिणी स्तुत्य है, वह सदैव मेरे हृदय तथा मुख में विराजमान हो ।

उणादिविषये प्रसिद्धं पञ्चमं पादं प्रकाशयन्नाह—

उणादि के सभी पादों में सर्वाधिक प्रसिद्ध पञ्चम पाद है । पाणिनि या शाकटायन प्रोक्त पञ्चपादी उणादिसूत्र प्राप्त होते हैं । कात.व्या. में षट्पादी उणादिसूत्र प्राप्त है । इनमें षष्ठ पाद अधिक है । पञ्चम पाद में प्रकीर्ण एवं प्रसिद्ध शब्द व्युत्पादित हैं । इसीलिए वृत्तिकार ने 'पञ्चमं पादं प्रकाशयन्नाह' ऐसा कहा है ।

1. कात.व्या. में उणादि के जो तीन संस्करण प्राप्त हैं, उनमें पाद-संख्या एवं सूत्र-संख्या में पर्याप्त वैषम्य है । बङ्ग-संस्करण में ५ पाद, २६३ सूत्र हैं । तिब्बती में भिक्षु (नम्-खा सङ्पो) आकाशभद्र द्वारा अनूदित ४ पाद एवं २६७ सूत्र हैं । मद्रास से प्रकाशित इस देवनागरी-संस्करण में ६ पाद, ३९९ सूत्र हैं ।
2. मद्रास-संस्करण में उक्त पद्य अपूर्ण है । उसमें ऋद्धिरी..... मुखे च इस प्रकार अपूर्ण पठित है । गुरुपद हालदार के 'व्याकरणदर्शनेर इतिहास' ग्रन्थ में उपर्युक्त पद्य पूर्णतया पठित है । वहाँ प्राप्त 'ऋद्धिरीइया हृदये सदैव' इस अंश से पूर्ति की गई है । (द्र.-कात.व्या.वि. प०२०) ।

२६५. अभावीशेः कुः १५-१।

अभावुपपदे ईशेः कुप्रत्ययो भवति । 'ईश ऐश्वर्ये' अभिपूर्वः । अभीष्टे तमो नाशयति अभीषुः रश्मिः ।

'अभि' के उपपद में रहने पर ईश् धातु से कु प्रत्यय होता है । 'कु' प्रत्ययस्थ क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध होता है ।

अभीषुः ईश ऐश्वर्ये (अ.४४) । ऐश्वर्य=समृद्धियुक्त होना, शक्तिशाली होना । अभीष्टे तमो नाशयति (जो अन्धकार को नष्ट करता है) । अभि ईश्+कु, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव होने के कारण धातु को गुण का निषेध, सवर्णदीर्घ 'धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम्' (कात.२/१/१) इस सूत्र से लिङ्गसज्ञा, सि, 'रेफसोर्विसर्जनीयः' (कात.२/३/६३) इस सूत्र से स् का विसर्ग, अभीषुः । रश्मि । किरण । घोड़े की लगाम । अभीषुः प्रग्रहे रश्मौ (अ.को.३/३/२१९) । अभीषुः प्रग्रहे रश्मौ (मेदिनी.षान्त.३०) ।

२६६. वौ धाजश्च १५-२।

वावुपपदे दधातेः कुः प्रत्ययो भवति । 'डु धाज्' विपूर्वः । विदधात्यमृतमिति विधुः चन्द्रः । कोऽनुबन्धो यण्वदर्थः । तेनानुषङ्गलोपः । असार्वधातुक^१ इति ।

'वि' के उपपद में रहने पर धा धातु से कु प्रत्यय होता है । यहाँ वि- उपसर्ग- पूर्वक धा धातु का प्रयोग है । कु में क्- अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है । इससे गुण का निषेध तथा 'अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः' (कात.३/६/१) इस सूत्र से अनुषङ्गलोप होता है ।

१. आलोपोऽसार्वधातुके (कात.३/४/२७) ।

पादः]

कातन्त्राणादिसूत्रवृत्तिः

विधुः डु धाञ् धारणपोषणयोः (अ.८५) । विदधाति अमृतम् (जो अमृत को धारण करता है) । वि (पूर्वक) धा+कु क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव होने से धातु को गुण का निषेध, 'आलोपोऽसार्वधातुके' (कात.३/४/२७) इस सूत्र से धातुघटक आकार का लोप, विभक्तिकार्य, विधुः । चन्द्रमा । वायु, अग्नि । विधुः शशाङ्के कपूरे हृषीकेशेऽपि राक्षसे (वि.प्र.को.धान्त.१२) ।

तु.- विरहिणं विध्यति विधुः (वे.सि.कौ.उ.सू.१-२३) ।

२६७. दंशेः कनिः । ५-३।

दंशेः कनिप्रत्ययो भवति । कानुबन्धत्वादनुषङ्गलोपः । 'दंश दशने' दंशतीति दश सङ्ख्या ।

दश् धातु से कनि प्रत्यय होता है । कनि में इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है । क् अनुबन्ध से धातुस्थ अनुषङ्गसंज्ञक नकार का 'अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः' (कात.३/६/१) इस सूत्र से लोप होता है ।

दश दंश दशने (भू.२९०) । काटना, डसना । दंशति । दंश्+कनि (=अन्) क् अनुबन्ध के कारण 'के यण्वच्च योक्तवर्जम्' (कात.४/१/७) इस सूत्र से यण्वद्भाव होने से 'अनिदनुबन्धाना.' इस पूर्वोक्त सूत्र से अनुषङ्गसंज्ञक नकार का लोप, विभक्तिकार्य, दश । १० संख्या ।

२६८. मङ्घेर्नलुगवन्तश्च । ५-४।

मङ्घेः कनिप्रत्ययो भवति नलुगवन्तश्च । 'मङ्घि कैतवे च' इदनुबन्धत्वान्नागमः । मङ्घत इति मघवा इन्द्रः ।

मङ्घ् धातु से कनि प्रत्यय होता है । मङ्घ् में नलोप तथा 'अव्' अन्तादेश होता है । मघि में इकार अनुबन्ध होने से न् आगम होता है ।

मघवा मघि कैतवे च (भ.३३४) । जाना, दोष लगाना, ठगना, जुआ खेलना । इदनुबन्ध के कारण न् आगम । मङ्घ्+कनि, (अन् शेष) क्-इ, अनुबन्धों का अप्रयोग, प्रकृत सूत्र से नकार का लोप तथा 'अव्' अन्तादेश 'मघ् अव् अन्' लिङ्गसंज्ञा, सि, 'नान्तस्य चोपधायाः' (कात.२/२/१६) इस सूत्र से उपधादीर्घ, सिलोप, नलोप, मघवा । इन्द्र ।

तु.- मह पूजायाम् । हस्य घो वुगागमश्च मघवा (वै.सि.कौ.उ.सू.१-१५७) ।

२६९. सहेः षष् कनेर्लुक् च ।५-५।

सहेः कनिः प्रत्ययो भवति, सहेः षषादेशश्च । कनेर्लुक् भवति । 'षह मर्षणे' 'धात्वादेः षः सः' सहत इति षट् ।

सह धातु से कनि प्रत्यय होता है तथा सह को षष् आदेश होता है । कनि प्रत्यय का प्रकृत सूत्र से लोप भी होता है ।

षट् षह मर्षणे (भू.५६०) । सहना, सहन करना । धात्वादेः षः सः (कात.३/८/२४) इस सूत्र से ष् को स् । सहते । सह्+कनि, सह के स्थान में षष् आदेश तथा कनि प्रत्यय का लुक्, लिङ्गसंज्ञा, जस् प्रत्यय, जस् का लुक्, डकार को टकार, विभक्तिकार्य, षट् । ६ संख्या ।

२७०. बृहेः क्मानच्च हात्पूर्वः ।५-६।

बृहेः क्मान्प्रत्ययो भवति । अच्च हकारात्पूर्वः । 'बृह बृहि वृद्धौ' इदनुबन्धत्वान्नागमः । बृहति व्रतानि इति ब्रह्मा ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

अथ वा बृंहति वर्धति। (वर्धन्ते) चराचराणि भूतान्यत्र ब्रह्मा ।
इदं ब्रह्म । अयं ब्रह्मा उभयम् । विशेषानिर्दिष्टः² प्रकृतं न
बाधते¹ इति न लुक् । ब्रह्मा धाता ।

बृह् धातु से क्मान् प्रत्यय होता है । 'बृह्' में हकार से पूर्व
अकार भी होता है ।

ब्रह्मा बृहि वृद्धौ (भू.२४७) । बढ़ना, वृद्धि होना । इदनुबन्ध के
कारण न् आगम । बृंहन्ति व्रतानि अत्र (जिसमें व्रत बढ़ते हैं) ।
अथवा बृंहन्ति=वर्धन्ते चराचराणि भूतान्यत्र (जिसमें चर एवं अचर बढ़ते
हैं) । बृह्+क्मान्, हकार के पूर्व अकार, ऋ को रेफ, ब्रह् मान्
लिङ्गसंज्ञा, सि, सिलोप, नकार (अनुनासिक) लोप, ब्रह्मा । -वेदस्तत्त्वं
तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः (अ.को.३/३/११४) ।

बृहि+मनिन्, नकार को अकार, यण् (वै.सि.कौ.उ.४/५८५) ।

यहाँ 'क्मान्' प्रत्यय का लोप नहीं होता । यद्यपि पूर्वसूत्र
(५-५) से औणादिक 'कनि' प्रत्यय का लुक् किया गया है, किन्तु इस
सूत्र से विहित 'क्मान्' प्रत्यय का लुक् नहीं हो सकता, क्योंकि-
विशेषातिदिष्टः प्रकृतं न बाधते (विशेष रूप से अतिदिष्ट प्रकृत का
बाध नहीं करता) इस न्यायवचन से क्मान् प्रत्यय के लुक् का निषेध
होता है । 'ब्रह्मन्' तीनों लिङ्गों में होता है ।

1. वर्धति म.सं. । वृध् धातु के आत्मनेपदमात्र में पठित होने से
'वर्धते' रूप होगा । जबकि वृत्ति में 'वर्धति' ऐसा परस्मैपद- पाठ
है । 'चराचराणि भूतानि' इस बहुवचनान्त का 'वर्धन्ते' के साथ
अन्वय उचित है ।
2. विशेषातिदिष्टः प्रकृतं न बाधते (परि.सं.२८, कलापव्याकरणम्,
पृ.२३०) ।

२७१. सृपिकपिललिभ्य आटक् १५-७।

एभ्य आटक्प्रत्ययो भवति । कोऽनुबन्धोऽगुणार्थः । 'सृ
पृ' (सृप्लृ) गतौ' सृप्यत इति सृपाटः परिमाणविशेषः । 'कपि
चलने' इदनुबन्धत्वान्नागमः । निरनुषङ्गनिर्देशादेव नलोपः ।
कम्पत इति कपाटं द्वारपिधानम् । 'लल ईप्सायाम्'
चुरादाविन् । लाल्यकरणादेव ह्रस्वः । लालयतीति ललाटं
प्रसिद्धम् । अथवा ? विकल्पेनन्ताश्चुरादयः^२ अथवा चित्रितं
लभ्यते ईप्स्यते इति ललाटम् ।

सृप, कपि, लल् इन धातुओं से आटक् प्रत्यय होता है ।
आटक् में क् अनुबन्ध गुणनिषेध- हेतु प्रयुक्त है ।

सृपाटः सृप्लृ गतौ (भू.२७९) । सृप्यते । सृप्+आटक्, क् अनुबन्ध के
कारण धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, सृपाटः । परिमाण-
विशेष । एक विशेष माप । परिमाण-भेद । मूषा सृपाटी
(अ.को.३/५/३८) ।

कपाटम् कपि चलने (भू.३८१) । इदनुबन्ध के कारण न् आगम ।
कम्पते । कम्प्+आटक्, सूत्रस्थ 'कपि' में अनुषङ्गसंज्ञक नकार के
अनिर्देश के बल पर नकारलोप, विभक्तिकार्य, कपाटम् । द्वारपिधान ।
फाटक । दरवाजा । कपाटः अररम् (सरस्वती.२/२/१००) । कपाटमररं
तुल्ये (अ.को.२/३/१७) ।

१. म.सं. में 'सृ पृ गतौ' ऐसा पाठ है जबकि धातुपाठ में 'सृप्लृ
गतौ' ऐसा पाठ प्राप्त है । पा.धा. में भी 'सृप्लृ' पठित है ।
२. वृत्ति में विकल्पेनन्ताश्चुरादयः ? ऐसा सन्दिग्ध पाठ अङ्कित है ।
कात.व्या. में विकल्पेनन्ताश्चुरादयः (चु.कात.धातु) ऐसा पाठ मिलता
है । यही शुद्ध पाठ होगा ।

ललाटम् लल ईप्सायाम् (चु.१०६) । इच्छा करना, चाहना ।
लालयति । लालि+आटक्, सूत्रपाठ में 'लालि' ऐसा इनन्त उल्लेख न
किये जाने से ह्रस्व, विभक्तिकार्य, ललाटम् ।

लालि धातु को 'विकल्पेनन्ताश्चुरादयः' इस नियम से 'इन्' के
वैकल्पिक विधान से ह्रस्व विधान की आवश्यकता ही नहीं होती ।

चित्रितं लभ्यते ईप्स्यते (जो चित्रित प्राप्त होता है) इति
ललाटम् ।

२७२. तरतेरसुट् १५-८।

'तृ प्लवनतरणयोः' अस्मादसुट्प्रत्ययो भवति । तरतीति
तिरः अन्तर्धानम् । 'ऋदन्तस्येरगुणे' इति इर् ।

तृ धातु से असुट् प्रत्यय होता है । असुट् में 'उ-ट्' अनुबन्ध
अप्रयोगार्ह हैं ।

तिरः तृ प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । तरति । तृ+असुट्, 'ऋदन्तस्येरगुणे'
(कात.३/५/४२) इस सूत्र से ऋ को इर्, तिर् अस् विभक्तिकार्य,
तिरः । अन्तर्धान । तिरछा । अदृश्य होना । तिरोऽन्तर्धौ तिर्यगर्थे
(अ.को.३/४/२५५) ।

२७३. मिथिलसिभ्यां कुनः १५-९।

आभ्यां कुनप्रत्ययो भवति । 'मिथृ सङ्गमे च' मतान्तरेण
सौत्रः । मेथति मेथते वा मिथुनं स्त्रीपुंसयोर्युग्मम् । 'लस
श्लेषक्रीडनयोः' लसतीति लसु(शु)नं कन्दविशेषः ।

मिथ् एवं लस् धातुओं से कुन प्रत्यय होता है । कुन में क्
अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुणनिषेध होता है ।

मिथुनम् मिथु सङ्गमे च (भू.५७८) । समझना, जानना, पीडा करना, जोड़ना, मिलना । मेथति । मिथ्+कुन, यण्वद्भाव से गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, मिथुनम् । स्त्री और पुरुष । मिथुन राशि । मिथुनो राशिभेदे स्यात् मिथुनं दम्पतीयुगे (वि.प्र.को.नान्त.४७) ।

लशुनम् लस श्लेषक्रीडनयोः (भू.२३३) । आलिङ्गन करना, गले लगाना, खेलना । लसति । लस्+कुन, सकार को शकार, विभक्तिकार्य, लशुनम् । कन्द विशेष । लहसुन । औषध । लशुनं गृञ्जनारिष्टमहाकन्दरसोनकाः (अ.को.२/४/१४८) ।

तु.-अशेलशश्च, अश्+उनन्, लशादेश, लशुनम् ।
(वै.सि.कौ.उ.सू.३/३३४)

२७४. वदेरान्यः प्रशंसायाम् १५-१०१

वदेः प्रशंसायामान्यः प्रत्ययो भवति । 'वद व्यक्तायां वाचि' संसदि निःशङ्कं वदतीति वदान्यः प्रियवाक् दानशीलश्च ।

वद् धातु से प्रशंसा अर्थ होने पर 'आन्य' प्रत्यय होता है । 'आन्य' यह निरनुबन्ध प्रत्यय है ।

वदान्यः वद व्यक्तायां वाचि (भू.६१५) । स्पष्ट बोलना । संसदि निःशङ्कं वदति (जो सभा में निस्सङ्कोच बोलता है) । वद्+आन्य, विभक्तिकार्य, वदान्यः । प्रिय बोलने वाला । दानशील । त्यागी । वदान्यस्त्यागिवाग्मिनोः (उज्ज्वल.३/१०४) । वदान्यो दानशौण्डे स्याद् वदान्यश्चारुभाषिणि (वि.प्र.को.यान्त.८३) ।

-
1. मिथुन शब्द पा.व्या. में मिथ् से उनन् तथा पुनः उसे गुणाभावार्थ कित् का विधान किया गया है जबकि कात.व्या. में सीधे कानुबन्धविशिष्ट कुन् प्रत्यय से ही गुणाभाव एवं कुन् प्रत्यय होकर शब्द-निष्पत्ति हो जाती है ।

२७५. वचेर्मिनिञ् चस्य गः । ५-११।

वचेर्मिनिञ्प्रत्ययो भवति । चस्य गो भवति प्रशंसायां
गम्यमानायाम् । 'वच परिभाषणे' वक्तीति वाग्मी चारुवक्ता ।

वच् धातु से मिनिञ् प्रत्यय होता है । वच् में चकार को
गकार प्रशंसा अर्थ रहने पर होता है । ज् अनुबन्ध से इज्वद्भाव
होता है ।

वाग्मी वच परिभाषणे (अ.३०) । कहना, बोलना । वक्ति ।
वच्+मिनिञ् (इ-ज् अनुबन्धों का अप्रयोग) । वच्+मिन्, चकार को
गकार, ज् अनुबन्ध से उपधादीर्घ, नान्तत्वात् 'नान्तस्य चोपधायाः'
(कात.२/२/१६) इस सूत्र से इकार को दीर्घ, विभक्तिकार्य, वाग्मी ।
सीमित एवं सार वचन बोलने वाला । वाग्मी पटौ सुराचार्ये
(मेदिनी.नान्त.२८) ।

२७६. प्रीजोऽङ्गुक् । ५-१२।

प्रीणातेरङ्गुक्प्रत्ययो भवति । नात्र प्रशंसानुवर्तते । 'प्रीञ्
तर्पणे' प्रीणातीति प्रियङ्गुः धान्यविशेषः । 'स्वरादित्वात्' इत्यादिना
इयादेशः' ।

प्री धातु से अङ्गुक् प्रत्यय होता है । पूर्व सूत्र से यहाँ प्रशंसा
अर्थ की अनुवृत्ति नहीं होती ।

प्रियङ्गुः प्रीञ् तर्पणे (क्री.२) । प्रीति करना, तृप्त करना, कामना
करना । प्रीणाति । प्री+अङ्गुक्, 'स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ'
(कात.३/४/५५) इस सूत्र से ईकार के स्थान में इय् आदेश, क्
अनुबन्ध से गुणाभाव, विभक्तिकार्य, प्रियङ्गुः । धान्यविशेष ।

प्रियङ्गुः फलिनीकङ्कुपिप्पलीराजिकासु च (वि.प्र.को.गान्त.५०) ।
प्रियङ्गुः स्त्री राजिकाकणयोरपि । (मेदिनी.गान्त.४३) ।

२७७. पञ्चेरालः । ५-१३।

'पचि विस्तारे' चौरादित्वाद् इन् । इदनुबन्धत्वान्नागमः ।
पञ्चेरालप्रत्ययो भवति । पञ्चयति विस्तारयति पञ्चालः
देशविशेषः ।

पचि धातु से आल प्रत्यय होता है । पचि के चौरादिक धातु होने से 'चुरादेश्च' (कात.३/२/११) इस सूत्र से इन् प्रत्यय होता है । 'पचि' में इदनुबन्ध होने से न् आगम होता है ।

पञ्चालः पचि विस्तारे (चु.७२) । विस्तार करना, फैलाना । पञ्चयति विस्तारयति । इदनुबन्ध से न् आगम । पञ्च्+आल, इन् का लोप, विभक्तिकार्य, पञ्चालः । देशविशेष ।

जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् (पा.अ.४/१/१६८) पाञ्चाली (द्रौपदी) ।

२७८. [त्रियो हिः दीर्घश्च । ५-१४।]

त्रि ('त्री!') वरणे' व्रीयत इति व्रीहिः धान्यम् ।

व्री धातु से हि प्रत्यय तथा धातु को दीर्घ होता है । 'व्री' धातु को स्वयं दीर्घान्त मान लेने पर सूत्र में दीर्घश्च पद अनावश्यक है ।

व्रीहिः व्री वरणे (क्री.२८) । व्रीयते । व्री+हि, विभक्तिकार्य, व्रीहिः । धान्य । व्रीहिः सामान्यधान्ये स्यादाशुधान्ये तु पुंस्यम् (मेदिनी.हान्त.९) ।

-
1. त्रि म.सं. । वर्तमान धातुपाठ में 'व्री' दीर्घ ईकारान्त पाठ मिलता है । अतः सूत्र में 'दीर्घश्च' शब्द का सन्निवेश अनावश्यक है । प्रतीत होता है कि सूत्रकार ने ह्रस्व इकारान्त पाठ को ही प्रामाणिक मानकर 'दीर्घश्च' पाठ दिया है ।

२७९. आशौ शुषेः सनिक् १५-१५।

'शुष शोषणे' अन्तर्भूतकारितार्थोऽयम् । आशुपूर्वः ।
आशवुपपदे शुषेः सनिक् प्रत्ययो भवति । आशु शोषयति
रसानिति, आशु शुष्यत्यस्मादिति वा आशुशुक्षणिः अग्निः ।

आशु उपपदपूर्वक शुष् धातु से सनिक् प्रत्यय होता है । सनिक्
में क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से गुण का निषेध होता है ।

आशुशुक्षणिः शुष शोषणे (दि.२७) । सूखना । आशु शोषयति
रसानिति (जो रसों को शीघ्र सुखा देती है) । आशु शुष्यति अस्मात्
(या जिससे कोई वस्तु सूख जाती है) । आशु शुष्+सनिक्, 'षढोः कः
से' (कात.३/८/४) इस सूत्र से षकार को ककार, नामिकरपरः०
(कात.२/४/७) इत्यादि सूत्र से सकार को षकार, क्-ष् के संयोग से
क्ष्, नकार को णकार (कात.२/४/४८) विभक्तिकार्य, आशुशुक्षणिः ।
अग्नि । शिखावानाशुशुक्षणिः (अ.को.१/१/५८) ।

आङ् शुशुक्ष (सन्नन्त)+अनि (वै.सि.कौ.उ.२/२६०) ।

२८०. विशेः। (विषेः) कानः १५-१६।

अस्मात् कानप्रत्ययो भवति । 'विष्लु व्याप्तौ' वेवेष्टि
व्याप्नोति शिर इति विषाणम् । अङ्गं हस्तिदन्तो वा ।
काऽनुबन्धोऽगुणार्थः ।

विष् धातु से कान प्रत्यय होता है ।

१. विशेः के स्थान पर 'विषेः' ऐसा पाठ सूत्र में होना चाहिए ।
क्योंकि वृत्ति में 'विष्लु' धातु निर्दिष्ट है । अतः विश् (तालव्य) के
स्थान पर सूत्रपाठ में 'विषेः' (मूर्धन्य) पाठ होना चाहिए ।

विषाणम् विष्णु व्याप्तौ (अ.८३) । वेवेष्टि । विष्+कान, क् अनुबन्ध के कारण धातु को गुण का निषेध, 'रष्वर्णेभ्यो०' (कात.२/४/१८) इत्यादि सूत्र से नकार को णकार, विभक्तिकार्य, विषाणम् । अङ्ग या हाथी दाँत । सींग । विषाणन्तु क्रोडद्विरददन्तयोः (वि.प्र.को.णान्त.६४) । पशोः शृङ्गे विषाणा तु मेषशृङ्ग्यां प्रकीर्तिता (वि.प्र.को.णान्त.६५) ।

२८१. कृपेः कणश्च । ५-१७।

कृपेः कणप्रत्ययो भवति । चकारात् कानश्च । 'कृपू सामर्थ्ये' कल्पते रक्षितुमात्मानमिति कृपणः अदाता । कल्पते शत्रून् हन्तुं कृपाणः खड्गः ।

कृप् धातु से कण प्रत्यय होता है । चकार-बल से कान प्रत्यय भी होता है ।

कृपणः कृपू सामर्थ्ये (भू.४८) । शक्तिमान् होना, समर्थ होना । कल्पते रक्षितुमात्मानमिति (जो अपनी रक्षा करने में समर्थ होता है) । कृप्+कण, क् अनुबन्ध से यणवद्भाव के कारण गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, कृपणः । अदाता । कन्जूस । कृपणस्तु कृमौ पुंसि मन्दकुत्सितयोस्त्रिषु (मेदिनी.णान्त.४४) ।

कृपाणः कृप्+कान, कल्पते शत्रून् हन्तुम्, (जो शत्रुओं को मारने में समर्थ होती है) । क् अनुबन्ध से कृ में ऋ को गुण का निषेध, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, कृपाणः । खड्ग । तलवार । कृपाणः खड्गे छुरिकाकर्तार्योरपि योषिति (वि.प्र.को.णान्त.४४) ।

२८२. गमेश्छो मलुक् च । ५-१८।

गमेश्छो भवति मलुक् च । 'गम्लृ गतौ' गच्छतीति गच्छः गणविशेषः ।

गम् धातु से छ प्रत्यय तथा म् का लोप होता है ।

गच्छः गम्लु गतौ (भू.२.७९) । गच्छति । गम्+छ, म् का लोप, त् आगम, त् को च्, विभक्तिकार्य, गच्छः । गणविशेष । गच्छः क्षुद्रवृक्षः (सरस्वती.२/२/८३) ।

२८३. कपितमिमृणपलिकुलिकि (की) लिभ्यः। कालः । ५-१९।

एभ्यः कालप्रत्ययो भवति । 'कपि चलने' इदनु-
बन्धत्वान्नागमः । कम्पत इति कपालम् । अगुणत्वादनुषङ्गलोपः,
कपीति स्वरूपनिर्देशाद् वा । 'तमु काङ्क्षायाम्' ताम्यतीति
तमालः वृक्षः । 'मृण हिसायाम्' मृणति मृण्यते वा मृणालं
पदमकन्दः । 'पल गतौ' पलति पल्यते वा पलालम्
अणुव्रीह्यादि । 'कुल संस्त्याने' कोलयति संस्त्यायति कर्दममिति
कुलालः कुम्भकारः । 'कील बन्धने' कीलते कील्यते वा
कीलालं रुधिरं मद्यं जलं वा मलं वा ।

कपि, तम्, मृण, पल्, कुल्, कील् इन सभी धातुओ से काल प्रत्यय होता है । काल में क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से अनुषङ्ग का लोप होता है ।

कपालम् कपि चलने (भू.३.८१) । इदनुबन्ध से न् आगम । कम्पते । कम्+काल, 'कपि' इस स्वरूप निर्देश से या अगुणत्व के कारण अनुषङ्गसंज्ञक नकारलोप, विभक्तिकार्य, कपालम् । शिर की हड्डी । कपालोऽस्त्री शिरोऽस्थि स्याद् घटादेः शकले व्रजे (मेदिनी.लान्त.७२) ।

1. 'कील बन्धने' धातु से 'कीलाल' शब्द निष्पन्न होता है । वृत्ति में भी 'कील बन्धने' धातु पठित है । अतः सूत्र में 'किलिभ्यः' के स्थान पर दीर्घ ईकार घटित 'कीलिभ्यः' पाठ अपेक्षित है ।

तमालः तमु काङ्क्षायाम् (दि.४३) । चाहना । ताम्यति । तम्+काल, क् अनुबन्ध से गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, तमालः । वृक्ष । तम्बाकू । तमालस्तिलके खड्गे तापिच्छे वरुणद्वये (मेदिनी.लान्त.१७) ।

मृणालम् मृण हिंसायाम् (तु.४२) । हिंसा करना । मृणति । मृण्+काल, गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, मृणालम् । पद्मकन्द । कमल का मूल भेद । 'मृणालं नलदे क्लीबं पुंनपुंसकयोर्बिसे' (मेदिनी.लान्त.१२५) ।

पलालम् पल गतौ (भू.५५४) । पलति । पल्+काल, विभक्तिकार्य, पलालम् । अणुव्रीहि आदि । भूसी । पुआल, पयार ।

कुलालः कुल संस्त्याने (संख्याने भू.५५२) । बटोरना । कोलयति संस्त्यायति कर्दममिति (जो कीचड़ को बटोरता है) । कुल्+काल, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, विभक्तिकार्य, कुलालः । कुम्भकार । कुम्हार । कुलालः कुक्कुभे कुम्भकारे स्त्री त्वञ्जनान्तरे (मेदिनी.लान्त.८०) ।

कीलालम् कील बन्धने (भू.१७०) । कीलते । कील्+काल, विभक्तिकार्य, कीलालम् । रुधिर । मद्य । जल या मल । कीलालं रुधिरे तोये (मेदिनी.लान्त.७७) ।

२८४. सर्तेर्गोऽन्तश्च ।५-२०।

सर्तेः कालः प्रत्ययो भवति गोऽन्तश्च । 'सृ गतौ' सरति भयादिति सृगालः प्रसिद्ध एव ।

सृ धातु से काल प्रत्यय तथा धातु को 'ग' अन्तादेश होता है ।

सृगालः सृ गतौ (भू.२७४) । सरति भयात् (जो डर से भाग जाता है) । सृ+काल, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, क् अनुबन्ध से गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, सृगालः । गीदड़ । जम्बूक । शृगालो वञ्चके दैत्यभेदे ना डमरे स्त्रियाम् (मेदिनी.लान्त.१४०) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

295

२८५. पलेराशः १५-२१।

'पल गतौ' अस्मादाशप्रत्ययो भवति । पलति विस्तारं
पलाशः वृक्षविशेषः ।

पल् धातु से आश प्रत्यय होता है ।

पलाशः पल गतौ (भू.५५४) । पलति विस्तारम् (जो विस्तार को प्राप्त होता है) । पल्+आश, विभक्तिकार्य, पलाशः । वृक्षविशेष । पत्ता । आमा हल्दी । पलाशं छदने मतम् (मेदिनी.शान्त.२३) । पलाशः किंशुके शट्यां हरिते राक्षसेऽपि च (वि.प्र.को.शान्त.२३) ।

२८६. तृपनि(ति)भ्यामङ्गः १५-२२।

आभ्यामङ्गप्रत्ययो भवति । 'तृ प्लवनतरणयोः' तरतीति तरङ्गः वीचिः । 'पल्लु गतौ' पततीति पतङ्गः आदित्यः पक्षी वा ।

तृ एवं पत् धातु से अङ्ग प्रत्यय होता है ।

तरङ्गः तृ प्लवनतरणयोः (भू.२८३) । तरति । तृ+अङ्ग, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, तरङ्गः । वीचि । लहर । वस्त्र ।

पतङ्गः पल्लु गतौ (भू.५५४) । पतति । पत्+अङ्ग, विभक्तिकार्य, पतङ्गः । सूर्य । पक्षी । फतिङ्गा । धान्य जाति । पतङ्गः शलभे शालिप्रभेदे पक्षिसूर्ययोः (मेदिनी.गान्त.४२) ।

तु- पतेरङ्गच पक्षिणि (दया.उ.को.१-११९) ।

२८७. मृदिकुरिभ्यां कवत् १५-२३।

आभ्यामङ्गप्रत्ययो भवति । स च कवत् । कानुबन्धः ।
'मृद क्षोदे' मृद्यते मृदङ्गः वाद्यविशेषः [कुर शब्दे] कुरतीति
कुरङ्गः हरिणः ।

मृद् एवं कुर् धातु से अङ्ग प्रत्यय होता है । अङ्ग को
कवद्भाव होता है । कवद्भाव से तात्पर्य यहाँ यण्वद्भाव से है ।
इसके कारण धातु को गुण का निषेध होता है ।

मृदङ्गः मृद क्षोदे (क्री.३७) । पीसना, चूर्ण करना । मृद्यते ।
मृद्+अङ्ग, कवद्भाव से मृद् में ऋ को गुणनिषेध, विभक्तिकार्य,
मृदङ्गः । विशेष वाद्य । बाजा । मृदङ्गः पटहे घोषे (मेदिनी.गान्त.४५)।

कुरङ्गः कुर शब्दे (तु.६२) । शब्द करना । कुरति । कुर्+अङ्ग,
विभक्तिकार्य, कुरङ्गः । हरिण ।

तु.- कृ विक्षेपे, अङ्गच्, बाहुलकादुत्वञ्च (वै.सि.कौ.उ.११८) ।

२८८. रौते रुक् १५-२४।

रौतेर्धातोः रुक्प्रत्ययो भवति । काऽनुबन्धोऽगुणार्थः । 'रु
शब्दे' रौतीति रुरुः मृगविशेषः ।

रु धातु से रुक् प्रत्यय होता है । रुक् में क् अनुबन्ध से
यण्वद्भाव होकर धातु को गुण का निषेध होता है ।

रुरुः रु शब्दे (अ.१०) । रौति । रु+रुक्, यण्वद्भाव से गुणनिषेध,
विभक्तिकार्य, रुरुः । मृगविशेष । 'रुरुर्ना मृगदैत्ययोः' (मेदिनी.रान्त.७९) ।

तु.- रुशातिभ्यां क्नु, (वै.सि.कौ.उ.सू.४-५४३) ।

२८९. उषितृषिभ्यां क्नः १५-२५।

आभ्यां क्नप्रत्ययो भवति । 'उष दाहे' उषतीति।
(ओषति) उष्णः घर्मः । 'जि तृषा पिपासायाम्' तृषतीति
(तृष्यति) तृष्णा लोभः ।

उष् एवं तृष् धातु से क्न प्रत्यय होता है । क्न में क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुण का निषेध होता है ।

उष्णः उष दाहे (भू.२२९) । उषति । उष्+क्न, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुण का निषेध, रष्वर्णोभ्यो० (कात.२/४/१८) इत्यादि से नकार को णकार, विभक्तिकार्य, उष्णः । घर्म । ताप । उष्णो ग्रीष्मे पुमान् दक्षाशीतयोरन्यलिङ्गकः (मेदिनी.णान्त.३) ।

तु.- उष्+नक् (वै.सि.कौ.उ.३/२८२) ।

तृष्णा जि तृषा पिपासायाम् (दि.६६) । प्यास लगना, चाहना । तृष्यति । तृष्+क्न, नकार को णकार, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, तृष्णा । लोभ । तृष्णा स्यात्तर्षिलिप्सयोः (मेदिनी.णान्त.१६) ।

तु.- तृष्+न, कित्, तृष्णा (वै.सि.कौ.उ.२/२९२) ।

२९०. पणिकितिभ्यामवक् १५-२६।

आभ्यामवक्प्रत्ययो भवति । 'पण व्यवहारे च' पणायते

-
1. उष् धातु के भौवादिक होने से धातु को गुण होकर 'ओषति' रूप होगा । यदि उष् का तुदादि में पाठ होता तो गुणनिषेध के कारण 'उषति' होता । भौवादिक पाठ होने से वृत्ति में 'ओषति' होना चाहिए ।

पण्यते वा पणवः तन्तुवायः । 'कित कैतवे'। चिकेतीति कितवः
द्यूतकारः ।

पण् एवं कित् धातुओं से अवक् प्रत्यय होता है । अवक् में
क् अनुबन्ध यणवद्भावार्थ है ।

पणवः पण व्यवहारे च (भू.४०२) । उद्योग करना, व्यापार करना,
स्तुति करना । पणायते । पण्यते । पण्+अवक्, विभक्तिकार्य, पणवः ।
तन्तुवाय । मकड़ी । जुलाहा । वाद्य । मर्दलः पणवोऽन्ये च
(अ.को.१-७-८) ।

कितवः कित कैतवे (कित ज्ञाने अ.७६) । जुआ खेलना । चिकेति ।
कित्+अवक्, क् अनुबन्ध-से गुणनिषेध, कितवः । द्यूतकार । जुआड़ी ।
कितवस्तु पुमान् मत्ते वञ्चके कनकाह्वये (मेदिनी.वान्त.३३) ।

२९१. चरेरमः । ५-२७।

चरेरमप्रत्ययो भवति । चरिः गत्यर्थः । चरतीति चरमः
पाश्चात्यः ।

चर् धातु से अम प्रत्यय होता है ।

चरमः चर गत्यर्थः (भू.१८९) । चरति । चर्+अम, विभक्तिकार्य,
चरमः । पाश्चात्य । अन्तिम । अन्तो जघन्यं चरममन्त्यपाश्चात्यपश्चिमाः
(अ.को.३/१/८९) ।

1. कित धातु कात. धातु. तथा पा. धातु. में कैतव अर्थ में पठित नहीं है । यह धातु भ्वादिगण में 'कित निवासे रोगापनयने च' (भू.२९१) तथा जुहो. में कित ज्ञाने पठित है । वृत्ति में 'चिकेति' रूप अदादि (ह्वादि) में होता है । अतः धातुपाठ के अनुसार 'कित ज्ञाने' पाठ होना चाहिए ।

२९२. सिनोतेर्मोऽन्तो हक् १५-२८।

सिनोतेर्हक्प्रत्ययो भवति मोऽन्तश्च । 'षिञ् बन्धने' सिनोति हिनस्ति जीवानिति सिहः! (सिंहः) मृगपतिः । यद्यपि बन्धने तथापि हिंसार्थोऽनेकार्थत्वाद् धातूनामिति ।

सि धातु से हक् प्रत्यय होता है तथा धातु को म् अन्तादेश होता है । यहाँ बन्धनार्थक षिञ् धातु 'धातूनामनेकार्थत्वात्' इस सिद्धान्त के अनुसार हिंसा अर्थ में प्रयुक्त है ।

सिंहः(सिम्ह) षिञ् बन्धने (सु.४) । बाँधना । सिनोति हिनस्ति जीवान् (जो जीवों की हिंसा करता है) । धात्वादेः षः सः । सि+हक्, म् अन्तादेश, गुणनिषेध, म् को अनुस्वार, विभक्तिकार्य, सिंहः । म् को अनुस्वार के अभाव में सिम्हः । मृगपति । सिंह । सिंहः कण्ठीरवे राशौ सत्तमे चोत्तरस्थितः (वि.प्र.को.हान्त.७) ।

तु.- सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च (वे.सि.कौ.उ.सू.५-७४०) ।

२९३. तो दीर्घश्च १५-२९।

सिनोतेस्तप्रत्ययो भवति दीर्घश्च धातोः । 'षिञ् बन्धने' सिनोति रामं स्नेहेन सीता वैदेही । सिनोति कर्षणं धान्येन इति सीता लाङ्गलपद्धतिर्वा ।

सि धातु से त प्रत्यय होता है तथा धातु को दीर्घ होता है ।

1. सिहः म.सं. इस ग्रन्थ में 'सिह' ऐसा पाठ सर्वत्र उल्लिखित है । यह मान्त पाठ तभी सम्भव है जब 'म' प्रत्यय विहित हो, किन्तु उपर्युक्त सूत्र से तो हक् प्रत्यय तथा धातु से म् अन्तादेश के विहित होने तथा म् को अनुस्वार होने से 'सिंह' होना चाहिए, अथवा अनुस्वार के अभाव में 'सिम्ह' ऐसा पाठ होना चाहिए ।

सीता षिञ् बन्धने (सु.४) । सिनोति राम स्नेहेन (जो राम को स्नेह से बाँध लेती है) धात्वादेः षः सः से ष् को स् । सि+त, सि-घटक इकार को दीर्घदिश, स्त्रीत्वविवक्षा में 'स्त्रियामादा' (कात.२/४/४९) इस सूत्र से आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, सीता । विदेह (जनक) की पुत्री । सीता लाङ्गलपद्धतिवैदेहीस्वर्गङ्गासु (मेदिनी.तान्त.७१) ।

सिनोति कर्षणं धान्येन (जो धान्य से हल की रेखा को बाँधती है) । सीता लाङ्गलपद्धतिः । (अ.को.२/९/१४) ।

२९४. यसिपनिभ्यां कः । ५-३०।

आभ्यां कप्रत्ययो भवति । 'यसु प्रयत्ने' यस्यति प्रयत्नेन जपति इति यस्कः ऋषिः । 'पन च' पनायते पन्यते वा पङ्कः कर्दमः ।

यस् तथा पन् धातुओं से क प्रत्यय होता है ।

यस्कः यसु प्रयत्ने (दि.५०) । कोशिश करना, यत्न करना । यस्यति प्रयत्नेन जपति (जो प्रयत्नपूर्वक जप करता है) । यस्+क, यस्कः । ऋषि ।

(यस्क+अण्, (यस्कस्यापत्यम्) यास्कः । निरुक्तकार । यस्कादिभ्यो गोत्रे (पा.अ.सू.२/४/६३) ।)

पङ्कः पन व्यवहारे स्तुतौ (भू.४०२) । उद्योग करना, प्रशंसा करना । पन्+क, नकार को अनुस्वार 'वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा' (कात.२/४/१६) इस सूत्र से अनुस्वार को पञ्चम वर्ण, पङ्कः । कर्दम । कीचड़ । पङ्कोऽस्त्री कर्दमे पापे (मेदिनी.कान्त.२९) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

301

२९५. अहे रिः १५-३१।

अहेर्धातोः रिः प्रत्ययो भवति । 'अहि गतौ'
इदनुबन्धत्वान्नागमः । अंहत्यनेन अङ्घ्रिः । पादः ।

अहं धातु से रि प्रत्यय होता है ।

अङ्घ्रिः अहि गतौ (भू.४४८) । इदनुबन्ध से न् आगम । अंहत्यनेन
(जिससे व्यक्ति चलता है) । अहं+रि, धातुघटक हकार को घकार,
विभक्तिकार्य, अङ्घ्रिः । पाद । पैर । अङ्घ्रिर्ना पादमूलयोः
(मेदिनी.रान्त.६) ।

२९६. तनोतेर्डवत् १५-३२।

तनोतेः रिप्रत्ययो भवति । स च डवत् ।
डानुबन्धोऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । 'तनु विस्तारे' संख्याविशेषं
तन्वन्तीति त्रयः संख्या बहुवचनान्तः ।

तन् धातु से रि प्रत्यय होता है । रि डवत् (ड तुल्य) होता
है तथा उससे धातु के अन्त्यस्वरादि का लोप होता है ।

त्रयः तनु विस्तारे (त.१) । बढ़ाना, फैलाना । तन्+रि, रि को
डवद्भाव, डवद्भाव के कारण 'डानुबन्धोऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२)
इस सूत्र से धातुघटक अन् का लोप, पु.बहु. में जस्, विभक्तिकार्य,
त्रयः । तीन संख्या ।

तु.- तरतेर्ङिः (वै.सि.कौ.उ.सू.५-७४४) ।

२९७. सृणातेः पक् ऊर् च १५-३३।

सृणातेः धातोः पक्प्रत्ययो भवति । अतश्च ऊरादेशश्च ।

'सृ' हिंसायाम्' सृणाति धान्यस्य तुषादीनि सूर्पः। (शूर्पः)
गृहोपकरणम् ।

सृ धातु से पक् प्रत्यय होता है । धातुघटक ऋ को ऊर् होता है ।

सूर्पः सृ हिंसायाम्. (क्री.१५) । हिंसा करना । सृणाति धान्यस्य तुषादीनि (जो धान्य या गेहूँ आदि में मिले हुए तृण भूसी आदि को नष्ट करता है) । सृ+पक्, क् अनुबन्ध से यणवद्भाव के कारण गुणाभाव, प्रकृत सूत्र से ऋ को ऊर्, विभक्तिकार्य, सूर्पः । छाज । अन्न-शोधक पात्र । प्रस्फोटनं शूर्पमस्त्री (अ.को.२/९/२६) ।

तु.- सुशृभ्यां निच्च शूर्पम् (दया.उ.को.३/२६) । मान-भेद ।

२९८. कलेरङ्कः । ५-३४।

कलेरङ्कः प्रत्ययो भवति । 'कल गतौ संख्याने च' कलयतीति कलङ्कः लाञ्छनं दोषो वा ।

कल् धातु से अङ्क प्रत्यय होता है ।

कलङ्कः कल गतौ संख्याने च (चु.१८५) । जाना, गिनना । कलयति । कल्+अङ्क, विभक्तिकार्य, कलङ्कः । लाञ्छन या दोष । (आरोप) । कलङ्कोऽङ्केऽपवादे च कालायसमलेऽपि च (मेदिनी.कान्त.५९) ।

-
1. हिंसा अर्थ में 'सृ' धातु (दन्त्य सकारादि) अन्य धातुपाठों में पठित नहीं है किन्तु कात.धातु में यह धातु संगृहीत है । अतः सूत्र तथा वृत्ति में दन्त्यादि पाठ सङ्गत है । व्यवहार में तालव्यशकारादि पाठ अधिक प्रचलित है तदनुसार 'शृ' धातु से 'शूर्पः' निष्पन्न होगा ।

२९९. अविकम्बिभ्यामुः । ५-३५।

आभ्यामुः प्रत्ययो भवति । 'अवि शब्दे' अम्ब इति सौत्रोऽयं धातुः [वा]। अम्ब्यते तृष्णार्तैरिति अम्बु जलम् । कम्बः सौत्रः । कम्ब्यते वर्ण्यते कम्बुः शङ्खः । अथवा 'कवृ वर्णे' उणादित्वाद् अस्मादेव नकारागमश्च ।

अम्ब तथा कम्ब इन दोनों धातुओं से उ प्रत्यय होता है ।

अम्बु अवि शब्दे (भू.३८४) । धातु में इकार अनुबन्ध होने से न् आगम । अथवा अम्ब सौत्र धातु । अम्ब्यते तृष्णार्तैरिति (पिपासुओं के द्वारा जिसे चाहा जाता है) । अम्बु+उ, विभक्तिकार्य, अम्बु । जल ।

कम्बुः कम्ब (सौत्र धातु) । कम्बु+उ कम्बुः । शङ्ख । अथवा कवृ वर्णे, उणादित्वात् इस हेतु से न् आगम कम्बुः । कम्बुः शङ्खेऽस्त्रियां पुंसि शम्बूके वलये गजे (मेदिनी बान्त.२) ।

३००. मुरेर्धनिः । ५-३६।

मुरेः धनिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । 'मुर संचूर्णनि' मूर्यत इति मूर्धा शिरः । नामिनो र्वोः इति दीर्घः ।

मुर धातु से धनि प्रत्यय होता है । धनि प्रत्ययस्थ इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

मूर्धा मुर संचूर्णनि (-वेष्टने तु.६४, मुट संचूर्णनि चु.२०) । मूर्यति । मुर+धनि (धन्) 'नामिनो र्वोःकुर्छुरोर्व्यञ्जने' (कात.३/८/४) इस सूत्र से धातु की उपधा को दीर्घ, 'नान्तस्य चोपधायाः' (कात.२/२/१६) सूत्र से उपधादीर्घ, लिङ्गसंज्ञा, सि, सिलोप, न्-लोप, मूर्धा । शिर ।

मुह्यन्ति अस्मिन् हताः प्राणिन इति मूर्द्धा उत्तमाङ्गम्
(दश.वृ.६-५५) ।

३०१. नौतेरत्यनौ १५-३७।

नौतेरत्यनौ प्रत्ययौ भवतः । 'णु स्तुतौ' नौतीति नवतिः
नव सङ्ख्याशब्दौ ।

नु धातु से अति तथा अन् प्रत्यय होते हैं ।

नवतिः णु स्तुतौ (अ.७) । णो नः (कात.३/८/२५) से ण् को न् ।
नौति । नु+अति, नु में उकार को ओकार गुण, 'ओ अव्'
(कात.१/२/१४) से ओ को अव् आदेश, विभक्तिकार्य, नवतिः । ९०
संख्या का वाचक ।

नव नु +अन्, गुण, आदेश, विभक्तिकार्य, नव । ९ संख्या ।

३०२. सपेस्तिततितनः १५-३८।

सपेर्धातोः तिततितन्प्रत्यया भवन्ति । 'षप समवाये'
सपत्यध्वानं गच्छतीति सप्तिः अश्वः । सप्ततिः, सप्त
सङ्ख्याशब्दौ ।

सप् धातु से ति, तति, तन् प्रत्यय होते हैं ।

सप्तिः षप समवाये (भू.१३७) । पूर्ण ज्ञान होना, संलग्न होना ।
'धात्वादेः षः सः' से षकार को सकार । सपति अध्वानं गच्छति (जो
रास्ते में चलता है) । सप्+ति, विभक्तिकार्य, सप्तिः । अश्व ।
घोड़ा । गन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः (अ.को.२/८/४४) ।

सप्ततिः सप्+तति, सप्ततिः । ७० संख्या का वाचक शब्द ।

सप्त सप्+तन् सप्तन्, नकारलोप, सप्त । ७ संख्या का वाचक शब्द ।

३०३. **वित्र्योः श्यतेर्डीतिडतौ नः शात्पूर्वः** । ५-३९।

वित्रिरित्येतयोः श्यतेः डतिडतौ प्रत्ययौ भवतो यथासङ्ख्यम् शात्पूर्वो नकारः । 'शो तनूकरणे' विपूर्वः । विश्यतीति विंशतिः । त्रिपूर्वः त्रिश्यतीति त्रिंशत् । उभौ सङ्ख्याशब्दौ ।

वि- त्रि- पूर्वक शो धातु से क्रमशः डति एवं डत् प्रत्यय होते हैं तथा धातु में शकार के पूर्व नकार भी होता है । प्रत्ययस्थ ड् अनुबन्ध के कारण धातुस्थ अन्त्यस्वरादि का लोप होता है ।

विंशतिः शो तनूकरणे (दि.१९) । पतला करना, छीलना । विपूर्वक प्रयोग । विश्यति । वि शो+डति, 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) इस सूत्र से अन्त्य स्वर ओकार का लोप, शकार के पूर्व में नकार, 'मनोरनुस्वारो घुटि' (कात.२/६/४२) इस सूत्र से नकार को अनुस्वार तथा 'वर्गे वर्गान्तः' (कात.२/६/४२) इस सूत्र से पञ्चम वर्ण, विभक्तिकार्य, विंशतिः । २० संख्या का वाचक ।

त्रिंशत् त्रिश्यति । त्रि पूर्वक प्रयोग । त्रि शो+डत्, शकार के पूर्व में नकार, ड् अनुबन्ध से अन्त्य ओकार का लोप, अनुस्वार, म् वर्ण, त्रिंशत् । ३० संख्या का वाचक शब्द ।

३०४. **अशेरीतिः** । ५-४०।

अशेरीतिः प्रत्ययो भवति । 'अशू व्याप्तौ' अश्नुत इति **अशीतिः** सङ्ख्या ।

अश् धातु से ईति प्रत्यय होता है ।

अशीतिः अशू व्याप्तौ (सु.२२) । व्याप्त होना । अश्नुते ।
अश्+ईति, विभक्तिकार्य, अशीतिः । ८० संख्या का वाचक शब्द ।

३०५. सहेरस्रम् । ५-४१।

षहेर्धातोः अस्रम् प्रत्ययो भवति । 'षह मर्षणे' ।
'धात्वादेः षः सः' । सहत इति सहस्रं संख्या ।

षह धातु से अस्रम् प्रत्यय होता है । षह में षकार को
'धात्वादेः षः सः' (कात.३/८/२४) इस सूत्र से सकार होता है ।

सहस्रम् षह मर्षणे (भू.५६०) । सहन करना, सन्तुष्ट होना ।
'धात्वादेः षः सः' (कात.३/८/२४) से ष् को स् । सहते ।
सह+अस्रम्, विभक्तिकार्य, सहस्रम् । हजार संख्या का वाचक शब्द ।

३०६. शमेर्दतः । ५-४२।

शमेः डतः प्रत्ययो भवति । 'शम दम्' शाम्यतीति
शतम् । डानुबन्धः ।

शम् धातु से डत प्रत्यय होता है । डत में ड् अनुबन्ध
धातुस्वरादि के लोपार्थ प्रयुक्त है ।

शतम् शम् उपशमने (दि.४२) । शान्त होना । शाम्यति । शम्+डत,
ड् अनुबन्ध से 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) इस सूत्र से
शम् में अम् का लोप, विभक्तिकार्य, शतम् । १०० संख्या का वाचक
शब्द ।

३०७. पञ्चेरनिः १५-४३।

पञ्चेरनिप्रत्ययो भवति । 'पचि विस्तारे' इदनुबन्धः ।
चुरादिः । पञ्चयन्ति विस्तारयन्ति सङ्ख्यामिति पञ्च ।

पञ्च् धातु से अनि प्रत्यय होता है । पचि में इदनुबन्ध से न् आगम होता है । पचि यह चौरादिक धातु है । 'अनि' में इ अनुबन्ध उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

पञ्च पचि विस्तारे (चु.७२) । विस्तार होना । 'पचि' में इदनुबन्ध से न् आगम । पञ्चयन्ति विस्तारयन्ति संख्याम् । (जो संख्या का विस्तार करते हैं) । पञ्च्+अनि, पञ्चन्, विभक्तिकार्य, पञ्च । ५ संख्या का वाचक शब्द ।

३०८. अशेस्तोऽन्तश्च १५-४४।

अशेर्धातोः अनिप्रत्ययो भवति तोऽन्तश्च । 'अशू व्याप्तौ' अशनुत इति अष्टन् । 'छशोश्च' इति षत्वम् । तवष उवर्गादिति उत्त्वम्!..... (तवर्गस्य षटवर्गादिति टत्वम्) ।

अश् धातु से अनि प्रत्यय होता है तथा उसे त अन्तादेश होता है ।

अष्टन् अशू व्याप्तौ (सु.२२) । व्याप्त होना । अश्+अनि, त् अन्तादेश, 'छशोश्च' (कात.३/६/६०) सूत्र से श् को ष, 'तवर्गस्य षटवर्गादित्वर्गः' (कात.३/८/५) सूत्र से त् को ट्, विभक्तिकार्य, अष्टन् । आठ संख्या का वाचक ।

1. म.सं. में 'तवष उवर्गादिति उत्त्वम्' ऐसा पाठ है । प्रकृत सूत्र के उदाहरण 'अष्टन्' में त् को ट् करने वाला सूत्र कातन्त्र व्याकरण में 'तवर्गस्य षटवर्गादित्वर्गः' (कात.३/८/५) ऐसा प्राप्त होता है । इसी का भ्रष्ट रूप उपर्युक्त वृत्ति में प्रकाशित है ।

३०९. यजेरुसिः १५-४५।

यजेरुसिप्रत्ययो भवति । 'यज देवपूजादिषु' इज्यन्ते पितरः अनेनेति यजुः वेदः ।

यज् धातु से उसि प्रत्यय होता है । 'उसि' में इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

यजुः यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु (भू.६०८) । यज्ञ करना, आदि । इज्यन्ते पितरः अनेन (जिससे पितरों की पूजा की जाती है) । यज्+उसि, इ अनुबन्ध का अप्रयोग, यजुस् विभक्तिकार्य, यजुः । वेद । यजुर्वेद । स्त्रियामृक् सामयजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी (अ.को.१/६/३) ।

३१०. मुहेरुगूर्तकौ क्षणे १५-४६।

मुहेरुक्- ऊर्तक् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः क्षणेऽभिधेये । 'मुह वैचित्ये' मुह्यत इति मुहुः प्रतिक्षणम् । मुह्यतीति मुहूर्त दिनपञ्चदशोऽन्तः ।

मुह धातु से उक् तथा ऊर्तक् ये दोनों प्रत्यय होते हैं । क् अनुबन्ध अगुणार्थ प्रयुक्त है ।

मुहुः मुह वैचित्ये (दि.प.३७) । वैचित्य=पागल होना, बुद्धिभ्रष्ट होना । मुह्यते । मुह्+उक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, मुहुः । प्रतिक्षण । बार बार । मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्षणमसकृत्समाः (अ.को.३/४/१) ।

मुहूर्तम् मुह्+ऊर्तक्, क् अनुबन्ध से धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, मुहूर्तम् । दिन का पन्द्रहवाँ भाग ।

बारह क्षण (दो घड़ी) मुहूर्तो द्वादशास्त्रियाम् (अ.को.१/४/११) ।

३११. कुले टालेरिलुक् डश्च १५-४७।

कुले उपपदे टालेरिनन्तस्य डः प्रत्ययो भवति इलुक् च । 'टल ट्वल वैक्लव्ये' हेताविन् । अस्योपधाया दीर्घः । कुलपूर्वः । कुलं टालयतीति। कुलटा पांशुला । स्त्रियामा ।

कुल के उपपद में रहने पर इनन्त टालि धातु से ड प्रत्यय होता है तथा टालि में इ का लोप होता है ।

कुलटा टल वैक्लव्ये (भू.५४६) । विह्वल होना, दुःखित होना । 'धातोश्च हेतौ' (कात.३/२/१०) से इन् । 'अस्योपधाया' (कात.३/६/५) इस सूत्र से उपधादीर्घ । कुलं टालयति (जो अपने कुल को दूषित करती है) । कुल उपपद पूर्वक टालि+ड, इ का लोप, ड् अनुबन्ध के कारण 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' (कात.२/६/४२) इस सूत्र से अन्त्य स्वरादि आल् का लोप, 'कुल ट् अ' स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, कुलटा । पांशुला । व्यभिचारिणी स्त्री ।

३१२. अनेः शुः १५-४८।

अनेर्धातोः शुः प्रत्ययो भवति । 'अन च' अनतीति (अनिति) अंशुः रश्मिः ।

अन् धातु से शु. प्रत्यय होता है ।

अंशुः अन च (=प्राणने) (अ.३४) । जीना, समर्थ होना । अनिति । अन+शु, 'मनोरनुस्वारो धुटि' (कात.२/४/४४) इस सूत्र से नकार

- पा.व्या. में कुलस्य अटा (जो अनेक कुलों में घूमती है) इस अर्थ में 'शकन्धादिषु पररूपं वाच्यम्' (पा.सू.१/१/६४, का.वा.१६) इस वार्तिक से पररूप होने पर कुलटा शब्द निष्पन्न होता है । का.व्या. के अनुसार जो बाहर न घूमते हुए भी घर में ही कुसङ्गति या कुप्रवृत्ति से दुष्कर्म में प्रवृत्त होती है, उसे कुलटा कहा जा सकता है । (द्र.- का.व्या.वि.पृ.१३) ।

को अनुस्वार, विभक्तिकार्य, अंशुः । किरण । अशुरर्कप्रभोक्षेषु
(मेदिनी.शान्त.२) ।

३१३. तनित्यजियजिभ्यो ङदिः । ५-४९।

एभ्यो ङदिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । 'तनु
विस्तारे' तनोतीति सः (तद्) 'त्यज हानौ' त्यजतीति त्यः (त्यद्)
'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' यजतीति यः- (यद्)- तद्-
त्यद्- यद् इत्येते त्रयः शब्दा वाच्यलिङ्गाः ।

तनु, त्यज्, यज् इन धातुओं से ङदि प्रत्यय होता है । ङदि
में इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

तद् तनु विस्तारे (त.१) । बढ़ाना । विस्तार करना । तनोति ।
तन्+ङद् (=अद्) इ अनुबन्ध के कारण धातुघटक अन् का लोप,
विभक्तिकार्य, तद् ।

त्यद् त्यज हानौ (भू.२८७) । छोड़ना । त्यजति । त्यज्+ङद्, इ
अनुबन्ध के कारण अन् का लोप, विभक्तिकार्य, त्यद् ।

यद् यज् देवपूजादिषु (भू.६०८) । यजति । यज्+ङद्, इ अनुबन्ध के
कारण धातुघटक अज् का लोप, विभक्तिकार्य, यद् ।

तु.-त्यजितनियजिभ्यो ङित् (दया.उ.को.१-१३२) ।

३१४. कायतेर्ङितिङिमौ । ५-५०।

कायतेः ङितिङिमौ प्रत्ययौ भवतः । 'कै शब्दे'
सन्ध्यक्षरान्तानामाकारः । कायतीति कति सङ्ख्या । कायतीति
कः (किम्) डानुबन्धः सर्वत्र ।

कै धातु से डति तथा डिम् ये दो प्रत्यय होते हैं । इनमें ड् अनुबन्ध है । 'कै' धातु में ऐकार को 'सन्ध्यक्षरान्तानामाकारोऽविकरणे' (कात.३/४/२०) इस सूत्र से आकार होता है ।

कति कै शब्दे (भू.२५६) । शब्द करना । कायति । कै+डति, सन्ध्यक्षर ऐकार को आकार, विभक्तिकार्य, कति । संख्यावाची ।

किम् का+डिम्, ड् अनुबन्ध से आकार का लोप, किम् । प्रश्नवाची । किम् कुत्सायां वितर्के च निषेधप्रश्नयोरपि (मेदिनी.व्यञ्जनवर्ग ५२) ।

३१५. इणो दमक् तदश्च १५-५१।

इणो धातोः दमक् तदश्च इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । कानुबन्धः । 'इण् गतौ' एतीति इदम् । एतीति एतद् । अत्रान्यत्र गुणः । प्रथमैकवचने तु अयम् इयम् इदम् एषः एषा एतद् स्त्रीपुंनपुंसकेषु ।

इण् धातु से दमक्-तद् ये दो प्रत्यय होते हैं । दमक् में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है ।

इदम् इण गतौ (अ.१३) । एति । इ+दमक्, क् अनुबन्ध से गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, इदम् (=यह) । सर्वनामवाची ।

तु.- इन्देः कमिन्नलोपश्च (दया.उ.को.४/१५८) ।

एतद् इ+तद्, इकार को गुण से एकार, विभक्तिकार्य, एतद् । सर्वनामवाची । इदम्-पु.-अयम्, स्त्री-इयम्, नपुं.-इदम् । एतद्-पु. एषः स्त्री.-एषा, नपुं.-एतद् ।

तु.- एतेस्तुद् च (दया.उ.को.१/१३३) ।

३१६. खण्डेर्गक् १५-५२।

खण्डेः धातोः गक्प्रत्ययो भवति । 'खडि भेदे' इदनुबन्धत्वान्नागमः । खण्डयति भिनत्तीति खड्गः प्रसिद्धः कारितलोपः । अथ वा 'विकल्पेनन्ताश्चुरादयः' । अनिदनुबन्धानाम् इति नञादिष्टत्वाद् इदनुबन्धस्यापि नलोपः ।

खण्डि धातु से गक् प्रत्यय होता है । गक् में क् अनुबन्ध है । खडि में इकार अनुबन्ध से न् आगम हो जाता है ।

खड्गः खडि भेदे (चु.३१) । तोड़ना, भेदना । इदनुबन्ध से न् आगम । खण्डयति भिनत्ति । खण्डि+गक्, कारितसंज्ञक इ का लोप, 'विकल्पेनन्ताश्चुरादयः' (चुरादि से इन् प्रत्यय विकल्प से होता है) इस वचन से कारित लोप का अनावश्यकत्व 'अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः' (कात.३/६/१) इस सूत्र में 'अनिदनुबन्धानाम्' इस पद के नञ्-आदिष्ट होने के कारण इदनुबन्ध हेतुक नकार का लोप, खड्गः । प्रसिद्ध आयुध । खड्गो गण्डकशृङ्गासिबुद्धभेदेषु गण्डके (मेदिनी.गान्त.४) ।

३१७. कुटिजटिभ्यां किलः १५-५३।

आभ्यां किलप्रत्ययो भवति । 'कुट कौटिल्ये' कुटतीति कुटिलः वक्रः । 'जट झट संघाते' जटतीति जटिलः जटावान् । यः केशान् जटीकरोति सोऽर्थात् जटिल उच्यते ।

कुट, जट इन दोनों धातुओं से किल प्रत्यय होता है । किल में ककार अनुबन्ध है । 'इल' प्रयुक्त होता है ।

कुटिलः कुट कौटिल्ये (तु.८३) । दुष्टता करना, टेढ़ा होना । ठगना । कुटति । कुट्+किल, (इल) क् अनुबन्ध के कारण धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, कुटिलः । वक्र । कुटिलं वाच्यवद् भुग्ने कुटिला सरिदन्तरे (वि.प्र.को.लान्त.७२) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

313

जटिलः जट संघाते (भू.१०) । इकट्ठा करना, जुटाना । जटति (जो केशों को एक साथ मिलाता है) । जट्+किल, विभक्तिकार्य, जटिलः । जटाधारी । जटिलस्तु जटायुक्ते जटिला मांसिकौषधौ (वि.प्र.को.लान्त.७२) ।

पिच्छादिभ्य इलच् (अ.सू.-का.वा.५/२/१००) ।

३१८. पटेरोलः । ५-५४।

पटेरोलप्रत्ययो भवति । 'अट पट' पटतीति पटोलः फलम् ।

पट् धातु से ओल प्रत्यय होता है ।

पटोलः पट गतौ (भू.१०२) । पटति । पट्+ओल, विभक्तिकार्य, पटोलः । फल । वस्त्रविशेष । पटोलं वस्त्रभेदे नौषधौ ज्योत्स्न्यां तु योषिति (मेदिनी.लान्त.१०६) ।

३१९. सहेरुरिः । ५-५५।

सहेर्धातोः उरिप्रत्ययो भवति । 'षह मर्षणे' सहतीति (संहते) सहुरिः पृष्ठम् ।

सह् धातु से उरि प्रत्यय होता है ।

सहुरिः षह मर्षणे (भू.आ.५६०) । सहना, शक्तिमान् होना । धात्वादेः षः सः । सहते । सह्+उरि, विभक्तिकार्य, सहुरिः । पृष्ठ । सूर्य, भूमि । अनङ्वान्, आदित्य ।

तु.- जसिसहोरुरिन् (वै.सि.कौ.उ.२/२३१) ।

३२०. अमेर्धुः । ५-५६ ।

अमेर्धुः प्रत्ययो भवति । 'अम द्रम गतौ' अम्यते जलार्थिभिरिति अन्धुः कूपः ।

अम् धातु से धु प्रत्यय होता है ।

अन्धुः अम गतौ (भू.१६०) । अम्यते जलार्थिभिः (जल चाहने वालों के द्वारा जहाँ जाया जाता है) । अम्+धु, 'मनोरनुस्वारो धुटि' (कात.२/४/४४) इस सूत्र से मकार को अनुस्वार, 'वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा' (कात.१/४/१६) इस सूत्र से पञ्चम वर्ण नकार, विभक्तिकार्य, अन्धुः । कूप । पुंस्येवान्धुः प्रहिः कूप उदपानं तु पुंसि वा (अ.को.१/१०/२६) ।

अम्+कु, धुक् आगम, अन्धुः (वै.सि.कौ.उ.१/१७) ।

३२१. हसेर्वः । ५-५७ ।

हसेर्वप्रत्ययो भवति । 'हस शब्दे' हसति उच्चारणकाले मन्दं शब्दं करोतीति हस्वः लघुः ।

हस् धातु से व प्रत्यय होता है ।

हस्वः हस शब्दे (भू.२३२) । हसति उच्चारणकाले मन्दं शब्दं करोति (जो उच्चारण के समय में धीरे से कहा जाता है) हस्+व, हस्वः । लघु । हस्वो न्यक्-खर्वयोस्त्रिषु (मेदिनी.वान्त.२९) । हस्वखर्वीविमौ शब्दावेकार्थौ वामनार्थयोः (वि.प्र.को.वान्त.१८) ।

३२२. किरतेरूरो रत्वम् । ५-५८ ।

किरतेः धातोः ऊरप्रत्ययो भवति । ऋकारस्य च रत्वम् । 'कृ विक्षेपणे' किरति दयां क्रूरः दुष्टः ।

कृ धातु से ऊर प्रत्यय तथा ऋकार को रकार होता है ।

क्रूरः कृ विक्षेपे (तु.२१) । किरति दयाम् (जो दया को दूर कर देता है) । कृ+ऊर, कृ- घटक ऋ को रु विभक्तिकार्य, क्रूरः । दुष्ट । खल । क्रूरस्तु कठिने घोरे नृशंसेऽप्यभिधेयवत् (मेदिनी.रान्त.१९) ।

तु.- कृतेश्छः क्रू च (दया.उ.को.२/२१) ।

३२३. प्रथेरमः । ५-५९।

प्रथेरमप्रत्ययो भवति । 'प्रथ प्रख्याने' प्रथते प्रथ्यते वा प्रथमः आद्यः ।

प्रथ् धातु से अम प्रत्यय होता है ।

प्रथमः प्रथ प्रख्याने (भू.४९१) । प्रसिद्ध होना । प्रथते । प्रथ्+अम, विभक्तिकार्य, प्रथमः । आद्य । पहला । उत्तम । नवीन । प्रथमस्तु भवेदादौ प्रधानेऽपि च वाच्यवत् (मेदिनी.मान्त.४७) ।

तु.- प्रथेरमच् (वै.सि.कौ.उ.५/७४७) ।

३२४. स्वृभृभ्यां गः । ५-६०।

आभ्यां गः प्रत्ययो भवति । 'स्वृ शब्दे' स्वयति पुण्यार्थिभिरिति स्वर्गः देवलोकः । 'डु भृज्' बिभर्ति लोकान् इति भर्गः महेश्वरः ।

स्वृ एवं भृ धातु से ग प्रत्यय होता है ।

स्वर्गः स्वृ शब्दोपतापयोः (भू.२७१) । स्वयति पुण्यार्थिभिः (पुण्य चाहने वालो के द्वारा जिसकी चर्चा की जाती है) । स्वृ+ग, ऋकार को अरु, विभक्तिकार्य, स्वर्गः । देवलोक । नाक । त्रिदशालय । त्रिविष्टप ।

सु अर्ज+घञ्, सुष्ठु अर्ज्यते स्वर्गः (पा.अ.३/३/१९) ।

भर्गः डु भृञ् धारणपोषणयोः (अ.८५) । बिभर्ति लोकान् (जो लोको का धारण एवं पोषण करता है) । भृ+ग, ऋ को अर्, भर्गः । महेश्वर । शङ्कर ।

भृजी भर्जने, पचाद्यच् (पा.३/१/१३४) न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम् (पा.७/३/५३) ।

३२५. पतेर्नी १५-६१।

पतेर्नीप्रत्ययो भवति । 'पत्लृ गतौ' पतति पाति^१(याति) पतिमिति पत्नी कलत्रम् ।

पत् धातु से नी प्रत्यय होता है ।

पत्नी पत्लृ गतौ (भू.५५४) । पतति=याति पत्नीम् (जो पति को प्राप्त करती है) । पत्+नी, विभक्तिकार्य, पत्नी । कलत्र । पत्नी पाणिगृहीती च द्वितीया सहधर्मिणी (अ.को.२/६/५) ।

पातेर्डीतिः (दया.उ.को.४/५८) । पत्युर्नो यज्ञसंयोगे (पा.४/१/३३) सूत्र से पति को नकार, डीप्, पत्नी ।

३२६. शमिकमिभ्यां बलः १५-६२।

आभ्यां बलप्रत्ययो भवति । शमु दमु शाम्यतेऽनेनेति शम्बलं पाथेयम् । 'कमु कान्तौ' काम्यत इति कम्बलः प्रसिद्धः ।

1. 'पाति' के स्थान पर 'याति' पाठ होना चाहिए । यतः पतति का पाति अर्थ नहीं हो सकता । सम्भवतः मुद्रण दोष से 'या' के स्थान पर 'पा' पाठ हो गया । पतिं याति अर्थात् 'प्राप्नोति' ऐसा अर्थ होगा । पतिं पतति याति पत्नी (नाममाला, धनञ्जयकृत, अमरकीर्ति कृत भाष्य सहित-पृ.१६ पं.१३) ।

शम् एवं कम् धातुओं से बल प्रत्यय होता है ।

शम्बलम् शमु उपशमने (दि.४२) । शान्त होना । शाम्यते अनेन (जिसके द्वारा बुभुक्षा शान्त की जाती है) । शम्+बल, विभक्तिकार्य, शम्बलम् । पाथेय । रास्ते में खाने हेतु ले जाने वाली खाद्य सामग्री (कलेवा) । शम्बलोऽस्त्री सम्बलवत् कुलपाथेयमत्सरे (मेदिनी.लान्त.१३५) ।

कम्बलः कमु कान्तौ (भू.४०५) । चाहना । काम्यते । कम्+बल, कम्बलः । प्रसिद्ध । कम्बलो नागराजे स्यात् सास्नाप्रावारयोरपि कृमावप्युत्तरासङ्गे सलिले तु नपुंसकम् (मेदिनी.लान्त.६७) ।

कमर्बुक्, कल्, कम्बलः (वै.सि.कौ.उ.१/१०६) ।

३२७. उषिकुषिगार्तिभ्यस्थः । ५-६३।

एभ्यस्थप्रत्ययो भवति । 'उष दाहे' उष्यते तप्तान्नादिना सौकुमार्यादिति ओष्ठः दन्तवासः । 'कुष निष्कर्षे' कुष्यते अस्माद्धान्यमिति कोष्ठः धान्यस्थानम् । 'गै शब्दे' गायत (गीयत) इति गाथा प्राकृतरचनाविशेषः । 'ऋ गतौ' अर्यत इति अर्थः । अथ वा पुण्यकृतमियर्ति इत्यर्थः द्रव्यम् ।

उष्, कुष्, गा, ऋ इन धातुओं से थ प्रत्यय होता है ।

ओष्ठः उष दाहे (भू.२२९) । जलाना । उष्यते तप्तान्नादिना (गरम अन्न से जो जलता है) । उष्+थ, धातुघटक उकार को ओकार, 'तवर्गस्य षटवर्गाद्वर्गः' (कात.३/८/५) इस सूत्र से थकार को ठकार, विभक्तिकार्य, ओष्ठः । दाँतों को आच्छादित करने वाला । मुख का अवयव । ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी (अ.को.२/६/९०) ।

कोष्ठः कुष निष्कर्षे (क्री.४०) । रगड़कर निकालना । कुष्यते अस्माद्धान्यम् (जिससे धान्य रगड़कर निकाला जाता है) । कुष्+थ, थकार को ठकार, विभक्तिकार्य, कोष्ठः । धान्यस्थान । कुशूल ।

अन्तर्गृह । कुक्षि । कोष्ठः कुसूले चात्मीये कुक्षेरन्तर्गृहस्य च
(वि.प्र.को.ठान्त.५) ।

गाथा नै शब्दे (भू.२५६) । गीयते । गा+थ, स्त्रीत्वविवक्षा मे आ
प्रत्यय, विभक्तिकार्य गाथा । प्राकृतरचनाविशेष । प्राकृत भाषा की
रचना, संक्षेप में प्रचलित कथा । गाथा श्लोके संस्कृतान्यभाषायां
गेयवृत्तयोः (मेदिनी.थान्त.६) ।

अर्थः ऋ गतौ (अ.७४) । पुण्यकृतम् इयति (जो पुण्य कर्म करने
वाले के पास जाता है) । ऋ+थ, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य,
अर्थः । द्रव्य ।

३२८. माङः सः । ५-६४ ।

माङः स-प्रत्ययो भवति । 'माङ् माने' मीयते
घटिकादिभिः मासः त्रिंशदहोरात्रः ।

मा धातु से स प्रत्यय होता है ।

मासः माङ् माने (दि.९१) । मान करना, नापना । मीयते घटिकादिभिः
(घड़ी आदि से जिसका मान किया जाता है) । मा+स, विभक्तिकार्य,
मासः । तीस रात-दिन । पक्षौ पूर्वापरौ शुक्लकृष्णौ मासस्तु तावुभौ ।
(अ.को.१/४/१२) ।

३२९. मनेर्दीर्घश्च । ५-६५ ।

मनेः स-प्रत्ययो भवति दीर्घश्च । 'मन ज्ञाने' मन्यते
सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेन इति मांसं पिशितम् ।

मन् धातु से स प्रत्यय तथा धातु को दीर्घ होता है ।

-
1. अर्थो विषयार्थनयोर्धन- कारणवस्तुषु ।
अभिधेये च शब्दानां निवृत्तौ च प्रयोजने ॥ (मेदिनी.थान्त.२) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

मांसम् मन ज्ञाने (दि.११३) । ज्ञान करना, समझना । मन्यते सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेन (जिससे शरीर की वृद्धि सम्भव होती है) । मन्+स, धातु को दीर्घादेश, 'मनोरनुस्वारो धुटि' (कात.२/४/४४) इस सूत्र से नकार को अनुस्वार, विभक्तिकार्य, मांसम् । आमिष । गोश्त । मांसं स्यादामिषे क्लीबं कक्कोलीजटयोः स्त्रियाम् (मेदिनी.सान्त.८) ।

३३०. अमेः शुकः १५-६६।

अमेः शुकप्रत्ययो भवति । [अम गत्यादिषु] अमतीति अंशुकः वस्त्रम् ।

अम् धातु से शुक प्रत्यय होता है ।

अंशुकः अम गत्यादिषु (भू.१६०) । अमति । अम्+शुक्, म् को 'मनोरनुस्वारो धुटि' (कात.२/४/४४) इस सूत्र से अनुस्वार, विभक्तिकार्य, अंशुकः । वस्त्र । कपड़ा । अंशुकं श्लक्ष्णवस्त्रे स्याद् वस्त्रमात्रोत्तरीययोः (मेदिनी.कान्त.४३) ।

३३१. हजो म्यः १५-६७।

हजो म्यप्रत्ययो भवति । 'हज् हरणे' हरति हरते वा मनांसि चारुतया इति हर्म्यम् । अथ वा हरति चन्द्रकलामिति हर्म्यम् । धवलगृहम् ।

॥ इति दौर्गसिंहा(सिंहा)मुणादिवृत्तौ पञ्चमः पादः ॥

हज् धातु से म्य प्रत्यय होता है ।

हर्म्यम् हज् हरणे (भू.५९६) । हरण करना । हरति चन्द्रकलामिति (जो चन्द्र-कला-गुणों को प्राप्त करता है) । ह+म्य, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, हर्म्यम् । धवलगृह । श्वेतगृह । हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभुजाम् (अ.को.२/२/९) ।

(श्रीदुर्गसिंहकृत उणादिवृत्ति के पञ्चम पाद की हिन्दी टीका समाप्त)

॥ अथ षष्ठः पादः ॥

३३२. पटिकमिमुशिकुशिभ्यः कलः । ६-१।

एभ्यः कलः प्रत्ययो भवति । 'पट गतौ' पटतीति पटलं समूहमण्डलम् । 'कमु कान्तौ' कम्पते भ्रमरैः इति कमलं पद्मम् । 'मुश खण्डने' मुश्यते धान्यमनेनेति मुशलं कण्डनोपकरणम् । 'कुश श्लेषणे' कुश्यते पृच्छयते अनेनेति कुशलं क्षेमम् । धातूनामनेकार्थत्वात् प्रश्नेऽपि वर्तते ।

पट, कमु, मुश, कुश इन धातुओं से कल प्रत्यय होता है । कल में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है । इससे धातु को गुण का निषेध होता है ।

पटलम् पट गतौ (भू.१०२) । पटति । पट्+कल, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, विभक्तिकार्य, पटलम् । समूहमण्डल । नेत्ररोग । छाजन । तिलक । पटलं छदिषि व्रजे । पिटके नेत्ररोगे च तिलके च परिच्छदे (वि.प्र.को.लान्त.६१) ।

कमलम् कमु कान्तौ (भू.४०५) । चाहना । भ्रमरैः कम्पते (भौरों के द्वारा जिसे चाहा जाता है) । कम्+कल, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, कमलम्^१ । पद्म ।

मुशलम् मुश खण्डने (मु.स.दि.५९) । मुश्यते धान्यमनेन (जिसके द्वारा धान्य कूटा जाता है) । मुश्+कल, विभक्तिकार्य, मुशलम् । कूटने का उपकरण । पाठा-मुसलम् । अयोऽग्रं मुसलोऽस्त्री (अ.को.२/९/२५) ।

-
1. कमलं सलिले ताप्रे जलजे लोमनि भेषजे ।
मृगभेदे च कमलः कमला श्रीवरस्त्रियोः॥ (वि.प्र.को.लान्त.५३) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

321

कुशलम् कुश श्लेषेण (दि.५७) । आलिङ्गन करना, गले लगाना ।
 'धातूनामनेकार्थत्वात्' इस हेतु से कुश् का प्रश्न अर्थ में प्रयोग ।
 कुश्यते पृच्छ्यते अनेन (जिसके द्वारा पूछा जाता है) । कुश्+कल,
 विभक्तिकार्य, कुशलम् । क्षेम । कल्याण । चतुर । कुशलः शिक्षिते
 क्षेमपर्याप्तिसुकृतेषु च (वि.प्र.को.लान्त.६६) ।

३३३. कुटेः कीरः । ६-२।

कुटेः कीरप्रत्ययो भवति । 'कुट कौटिल्ये' कुटतीति
 कुटीरम् । गृहविशेषः ।

कुट् धातु से कीर प्रत्यय होता है । 'कीर' में क् अनुबन्ध के
 यणवद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध होता है ।

कुटीरम् कुट कौटिल्ये (तु.८३) । टेढ़ा चलना, वक्रता करना ।
 कुटति । कुट्+कीर, क् अनुबन्ध से धातु को गुणनिषेध, विभक्तिकार्य,
 कुटीरम् । गृहविशेष । कुटिया (झोपड़ी) ।

३३४. तसेः करः । ६-३।

तसेः करप्रत्ययो भवति । 'तसु दसु उपक्षये' तस्यति
 परद्रव्यमिति तस्करः चौरः ।

तस् धातु से कर प्रत्यय होता है । यह निरनुबन्ध प्रत्यय है ।

तस्करः तसु उपक्षये (दि.५२) । फेंकना, उड़ा देना । तस्यति परद्रव्यम्
 (जो दूसरे के द्रव्य को चुराता है या जो तस्करी करता है^१) ।
 तस्+कर, विभक्तिकार्य, तस्करः । चोर ।

1. लोके दृश्यते परद्रव्यस्योपक्षयकारिणं जनाः 'चौर' इति वदन्ति, सोऽर्थः
 कातन्त्रे सारल्येन ज्ञायते । पाणिनीये तु तच्छब्देन चोरकर्मणः
 परामर्शमङ्गीकृत्य यो हि इष्टोऽर्थोऽवगम्यते तत्र किञ्चित् काठिन्यं
 प्रतीयते (कात.व्या.वि., पृ.१४०) ।

तत् करोति, निपातनाद् द- लोपः सुडागमश्च (अ.६/१/१५७ग.सू.) ।

३३५. पतिवपिशुकिचक्यगिभ्यो रक् ।६-४।

एभ्यो रक्प्रत्ययो भवति । 'पत्लु गतौ' पतति पत्यते वा पत्रं पर्णं वाहनं वा । 'डु वप्' वपतीति वप्रं प्राकारः कूटं वा । 'शुक गतौ' शुक्यते गम्यते कार्यार्थं दैत्यैः इति शुक्रः दैत्यगुरुः । शुक्रं रेतश्च । 'चक तृप्तौ प्रतिघाते च' चकतीति चक्रं प्रसिद्धम् । 'अगिः गत्यर्थः' अङ्गति गच्छति अग्रं प्रान्तम् आद्यं वा ।

पत्, वप्, शुक्, चक्, अग् इन सभी धातुओं से रक् प्रत्यय होता है । रक् में क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ प्रयुक्त है ।

पत्रम् पत्लु गतौ (भू.५५४) । गिरना, जाना । पतति पत्यते वा । पत्+रक्, विभक्तिकार्य, पत्रम् । पर्ण (पत्ता) या वाहन । पत्र (सन्देशवाहक) पत्रं स्याद् वाहने पर्णे पक्षे च शरपक्षिणाम् (वि.प्र.को.रान्त.३५) ।

तु- पत्+ष्ट्रन् (वै.सि.कौ.उ.४/४९८) ।

वप्रम् डु वपु बीजसन्ताने (भू.६०९) । वपति । वप्+रक्, विभक्तिकार्य, वप्रम् । मिट्टी की दीवार । तटबन्ध या टीला । चोटी, शिखर । पितृकेदारयोर्वप्रो वप्रः प्राकाररोधसोः (वि.प्र.को.रान्त.६५) ।

शुक्रः शुक गतौ (भू.३४) । शुक्यते गम्यते कार्यार्थं दैत्यैः (दैत्यो के द्वारा जिसके पास कार्यार्थ जाया जाता है) । शुक्+रक्, विभक्तिकार्य, शुक्रः । दैत्यगुरु । शुक्रम् रेत । वीर्य । शुक्रः काव्येऽनले ज्येष्ठे शुक्रं रेतोऽक्षिसूर्ययोः (वि.प्र.को.रान्त.५१) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

शुचेश्चस्य कः, रन्प्रत्ययः, शुक्रः । पक्षे लः शुक्लः
(वै.सि.कौ.उ.२/१८६) ।

चक्रम् चक तृप्तौ प्रतिघाते च (भू.५३०) । तृप्त होना, सन्तुष्ट होना,
चकमा देना, धोखा देना । चकति । चक्+रक्, विभक्तिकार्य, चक्रम् ।
प्रसिद्ध अस्त्र । पहिया । चकवा । राष्ट्र । विष्णु का सुदर्शन
चक्र । चक्रो गणे चक्रवाके चक्रं सैन्यरथाङ्गयोः । ग्रामजाले कुलालस्य
भाण्डे राष्ट्रास्त्रयोरपि । (वि.प्र.को.रान्त.४९) ।

अग्रम् अगिः गत्यर्थः (भू.३८) । अङ्गति गच्छति । अङ्ग्+रक्,
नकारलोप, विभक्तिकार्य, अग्रम् । प्रान्त, प्रथम ।

अग्रमालम्बने व्राते परिमाणे पलस्य च । प्रान्ते पुरस्तादधिके
प्रधाने प्रथमोदूर्ध्वयोः । (वि.प्र.को.रान्त.५३) ।

३३६. दुनोतेर्दीर्घश्च । ६-५।

दुनोतेः रक्प्रत्ययो भवति दीर्घश्च । 'दु दु उपतापे'
दुनोतीति दूरं विप्रकृष्टम् ।

दु धातु से रक् प्रत्यय तथा दु-घटक उकार को दीर्घ होता है ।
दूरम् 'दु उपतापे' (सु.१०) । दुःख भोगना, जलना । दुनोति ।
दु+रक्, दीर्घ ऊकार, विभक्तिकार्य, दूरम् । विप्रकृष्ट । दूरवर्ती
स्थान ।

दुःखेन ईयते प्राप्यते दुर इण्+रक्, धातुलोप, दूरम्
(वै.सि.कौ.उ.२/१७७) ।

३३७. पुलिनलिबलिमलिद्रुहिभ्यः किनः । ६-६।

एभ्यः किनप्रत्ययो भवति । 'पुल महत्त्वे' पोलति महत्त्वं
याति इति पुलिनम् नदीतटम् । 'णल गन्धे' नलतीति नलिनं

कमलम् । 'बल प्राणने' बलतीति बलिनः बलवान् । 'मल धारणे' मलति मल्यते वा मलिनः प्रसिद्धः । 'द्रुह जिघांसायाम्' द्रुह्यते¹ असुरेभ्यः द्रुहिणः अथवा द्रुह्यत्यशिष्टान् द्रुहिणः ब्रह्मा ।

पुल्, णल्, बल्, मल्, द्रुह इन सभी धातुओं से किन प्रत्यय होता है । 'किन' में क् अनुबन्ध के यणवद्भावार्थ होने से धातु को गुणनिषेध होता है ।

पुलिनम् पुल महत्त्वे (भू.५५१) । ढेर होना, राशि होना, बढ़ना । पोलति । पुल्+किन, क् अनुबन्ध के कारण धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, पुलिनम् । नदी का तट । सेतु । तोयोत्थितं तत्पुलिनम् (अ.को.१/१०/९) ।

तु.- पुल्+इनन्, पुलिनम् (वै.सि.कौ.उ.सू.२/२११) ।

नलिनम् णल् गन्धे (भू.५४९) । सूंघना, गन्ध लेना । 'णो नः' से णकार को नकार । नलति । नल्+किन, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, विभक्तिकार्य, नलिनम् । कमल । नलिनं कमले जले (वि.प्र.को.नान्त.१२८) ।

बलिनः बल प्राणने (भू.५५०) । बलयुक्त होना । बलति । बल्+किन, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, विभक्तिकार्य, बलिनः । बलवान् ।

मलिनः मल धारणे (भू.४१७) । धारण करना । मलति । मल्यते । मल्+किन, विभक्तिकार्य, मलिनः । दूषित व्यक्ति या वस्तु । मलिनं दूषिते कृष्णे ऋतुमत्यां तु योषिति (मेदिनी.नान्त.४) ।

द्रुहिणः द्रुह जिघांसायाम् (दि.प्र.३८) मारना । द्रुह्यते असुरेभ्यः (जो असुरों से द्रोह करता है) । अथवा द्रुह्यति अशिष्टान् (जो अशिष्टों से

1. द्रुह धातु दिवादिगण में परस्मैपद के रूप में पठित है । अतः वृत्ति में 'द्रुह्यते' के स्थान पर 'द्रुह्यति' पाठ होना चाहिए ।

द्रोह करताहै) । द्रुह्+किन, नकार को णकार, विभक्तिकार्य, द्रुहिणः ।
ब्रह्मा ।

३३८. खलेरीनश्च । ६-७।

खलेरीनप्रत्ययो भवति, किनश्च । 'खल चलने' खलति
अश्वमिति खलीनं खलिनं कविकम् ।

खल् धातु से ईन तथा चकार बल से किन प्रत्यय होता है ।

खलीनम् खल चलने (भू.१८१) । जाना, प्राप्त करना । खलति
अश्वम् (जो घोड़े (के मुख) को प्राप्त करती है) । खल्+ईन,
खलीनम् । खल्+किन, खलिनम् । घोड़े की लगाम । कविका तु
खलीनोऽस्त्री (अ.को.२/८/४९) ।

३३९. दृणातेर्घु- (घ) क् । ६-८।

दृणातेर्धातोः घु(घ)क् प्रत्ययो भवति । कानुबन्धो
यण्वत् । 'दृ विदारणे' दृणाति उच्चारणकाले मुखं विदारयति
इति दीर्घः प्राशुः । कृदन्तस्य^२ (आख्यातस्य) आरनमिनोर्वि
(नामिनो वीरकुर्छुरोर्व्यञ्जने) इति दीर्घः ।

दृ धातु से घक् प्रत्यय होता है । 'घक्' में क् अनुबन्ध के
यण्वद्भावार्थ होने से गुण-निषेध होता है । घुक् पाठ मानने पर उसमें
'उ' अनुबन्ध आदि की कल्पना से गौरव प्रतीत होता है ।

१. घुक् के स्थान पर 'घक्' पाठ होना चाहिए । घुक् में उकार को
भी अनुबन्ध मानने से 'घ्' मात्र शेष होगा तब अकारान्त 'दीर्घ'
शब्द निष्पन्न नहीं हो पाएगा । अतः 'घुक्' के स्थान पर 'घक्'
पाठ अपेक्षित है ।
२. कृदन्तस्य के स्थान पर 'आख्यातस्य' पाठ होना चाहिए क्योंकि
'नामिनो वीः' (कात.३/८/१४) यह सूत्र आख्यात-प्रकरण का है ।

दीर्घः दृ विदारणे (क्री.१९) । विदारण करना, फैलाना, फाड़ना ।
 दृणाति उच्चारणकाले मुखं विदारयति (जो उच्चारण के समय मुख
 फैलाता है) । दृ+घक् (क् अनुबन्ध) क् अनुबन्ध से अगुण, ऋ को
 इर् आदेश, 'नामिनो वीरकुर्छुरोर्व्यञ्जने' (कात.३/८/१४) इस सूत्र से धातु
 को दीर्घ, विभक्तिकार्य, दीर्घः । प्रांशु । बड़ा । आयत ।

३४०. तमेरूलञ् बोऽन्तश्च । ६-९।

तमेरूलञ् भवति, बोऽन्तश्च । 'तमु काङ्क्षायाम्' तम्यते
 आकाङ्क्ष्यत इति ताम्बूलम् प्रसिद्धम् ।

तम् धातु से ऊलञ् प्रत्यय तथा ब् अन्तादेश होता है ।

ताम्बूलम् तमु काङ्क्षायाम् (दि.४३) । चाहना। तम्यते आकाङ्क्ष्यते ।
 तम्+ऊलञ्, ब् अन्तादेश, ञ् अनुबन्ध से इज्वद्भाव के कारण
 'अस्योपधाया०' (कात.३/६/५) इस सूत्र से उपधा-दीर्घ, विभक्तिकार्य,
 ताम्बूलम् । पान । ताम्बूलो नागवल्ल्याञ्च ताम्बूलं क्रमुकेऽपि च
 (वि.प्र.को.लान्त.१३५) ।

३४१. मनेरुष्यः । ६-१०।

मनेर्घातोरुष्यप्रत्ययो भवति । [मन ज्ञाने] मन्यते
 सुखदुःखादिकमिति मनुष्यः मनुजः ।

मन् धातु से उष्य प्रत्यय होता है ।

मनुष्यः मन ज्ञाने (दि.११३) । जानना, ज्ञान करना । मन्यते
 सुखदुःखादिकमिति (जो सुख एवं दुःख आदि को जानता है) ।
 मन्+उष्य, विभक्तिकार्य, मनुष्यः । मनुज । मानव ।

मनोरपत्यम् (मनु की सन्तान) मनु+षुक् (अ.४/१/१६१) ।

३४२. मानेरुषः ।६-११।

मानेरुषप्रत्ययो भवति । 'मान पूजायाम्' मानयति मान्यत इति [वा] मानुषः मानवः ।

मान् धातु से उष प्रत्यय होता है ।

मानुषः मान पूजायाम् (चु.४७) । पूजा करना, सम्मान करना । मानयति, मान्यते । मान्+उष, मानुषः । मानव ।

३४३. मृडस्त्यः ।६-१२।

मृडः त्यप्रत्ययो भवति । 'मृड् प्राणत्यागे' म्रियते प्राणैर्वियुज्यते इति मर्त्यः मनुजः प्रसिद्धः ।

मृड् धातु से त्य प्रत्यय होता है ।

मर्त्यः मृड् प्राणत्यागे (तु.१११) । प्राण छोड़ना, मरना । म्रियते प्राणैर्वियुज्यते (जो प्राणों से वियुक्त होता है) । मृ+त्य, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, मर्त्यः । मनुज । मनुष्या मानवा मर्त्या मनुजा मानवा नराः (अ.को.२/६/१) ।

स्वार्थे यत्, मर्त्यः (काशिका.५/४/२५) ।

३४४. कृपेरटः ।६-१३।

कृपेरटप्रत्ययो भवति । 'कृप् सामर्थ्ये' कल्पत इति कर्पटम् वस्त्रम् ।

कृप् धातु से अट प्रत्यय होता है ।

कर्पटम् कृपू सामर्थ्ये (भू.४८८) । शक्तिमान् होना । कल्पते ।
कृप्+अट्, ऋ को अर्, विभक्तिकार्य, कर्पटम् । वस्त्र ।

कर्पटः छिन्नं पुराणं वस्त्रं वा (दया.उ.को.४/८२ व्याख्यानतर्गत) ।
वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वसनमंशुकम् (अ.को.२/६/११५) ।

३४५. कृभूभ्यां कनः । ६-१४।

आभ्यां कनप्रत्ययो भवति । 'कृ विक्षेपे' किरति
विक्षिपत्यन्धकारमिति किरणः रश्मिः । 'भू सत्तायाम्' भवन्ति
भूतान्यस्मादिति भुवनं जगत् । कृदन्तस्योरस्वराविवर्णो वर्णोऽन्तस्ये
त्यादिना उङ् ? (आख्यातस्य स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ
इति उवङ्) ।

कृ एवं भू धातुओं से कन प्रत्यय होता है । कन में कृ
अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से गुण का निषेध होता है ।

किरणः कृ विक्षेपे (तु.२१) । फेंकना । किरति विक्षिपति अन्धकारम्
(जो अन्धकार को फेंक देता है) । कृ+कन, कृ अनुबन्ध का, अप्रयोग
तथा उसके कारण गुण का अभाव, 'कृदन्तस्येरगुणे' से ऋ को इर्,
नकार को णकार, विभक्तिकार्य, किरणः । रश्मिः ।

भुवनम् भू सत्तायाम् (भू.१) । होना । भवन्ति भूतान्यस्मादिति (जिससे
प्राणी उत्पन्न होते हैं) । भू+कन, 'स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ'
(कात.३/४/५५) इस सूत्र से भू-घटक ऊकार को उव् आदेश,
विभक्तिकार्य, भुवनम् । जगत् । संसार । भुवनं विष्टपेऽपि स्यात्
सलिले गगने जले (मेदिनी.नान्त.२) ।

1. मूल वृत्ति में अपूर्ण एवं भ्रष्ट पाठ है । कृदन्तस्य के स्थान पर
आख्यातस्य पाठ होना चाहिए । शुद्ध पाठ- 'स्वरादाविवर्णो
वर्णान्तस्य धातोरियुवौ' इति उवङ् (कात.३/४/५५) ऐसा होगा ।

तु.- भू+क्युन्, योरनादेशः, भुवनम् (वै.सि.कौ.उ.२/२३८) ।

३४६. कुट्टेष्टिमक् १६-१५।

कुट्टेष्टिमक्प्रत्ययो भवति । 'कुट कौटिल्ये' कुट्यत इति कुट्टिमं बद्धभूमिकम् ।

कुट् धातु से टिमक् प्रत्यय होता है । क् अनुबन्ध अप्रयोगार्ह तथा यण्वद्भावार्थ है ।

कुट्टिमम् कुट कौटिल्ये (तु.८३) । टेढ़ा होना । कुट्यते । कुट्+टिमक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, कुट्टिमम् । कुटी हुई भूमि । नींव, कुरसी, फरसबन्दी, मिट्टी या सीमेण्ट से बंधी हुई जमीन (फर्सी) । कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः (रामाश्रमी अ.को.३/५/३४) ।

३४७. कषेरायः १६-१६।

कषेरायप्रत्ययो भवति । 'कष हिंसायाम्' कषतीति कषायः रसविशेषः सौरभ्यं वा ।

कष् धातु से आय प्रत्यय होता है ।

कषायः कष हिंसायाम् (भू.२२४) । हिंसा करना, नष्ट करना । कषति । कष्+आय, विभक्तिकार्य, कषायः । रसविशेष (कसैला) । सुगन्धित । गेरुवा रंग, काढ़ा, रस ।

कषायो रसभेदे स्यादङ्गरागे विलेपने । निर्यासेऽपि कषायोऽस्त्री सुरभौ लोहितेऽन्यवत् । (वि.प्र.को.यान्त.७३) ।

३४८. वलिमलिगोमिभ्योऽयः । ६-१७।

एषामयप्रत्ययो भवति । 'वल भृतौ' वल्यत इति वलयं हस्तकटकम् । 'मल धारणे' मलति चन्दनादिगन्धमिति मलयः पर्वतः वाटिका च । 'गोम उपलेपने' गोम्यते भूरनेनेति गोमयं गोशकृत् ।

वल, मल, गोम् इन धातुओं से अय प्रत्यय होता है ।

वलयम् वल भृतौ (संवरणे, भू.४१६) । वल्यते । वल्+अय, विभक्तिकार्य, वलयम् । हस्तकटक । हाथ का कड़ा आभूषण, बाजूबन्द । वलयः कण्ठरोगे ना कटके पुन्नपुंसकम् (मेदिनी.यान्त.९६) ।

तु.- वल्+कयन् (वै.सि.कौ.उ४/५३९) ।

मलयः मल धारणे (भू.४१७) । धारण करना । मलति चन्दनादिगन्धम् (चन्दन आदि की सुगन्ध को जो धारण करता है) । मल्+अय, विभक्तिकार्य, मलयः । पर्वत तथा वाटिका । मलयः पर्वतान्तरे । शैलांशे देश आरामे त्रिवृतायान्तु योषिति (मेदिनी.यान्त.९९) ।

गोमयम् गोम उपलेपने (चु.१९४) । लीपना । गोम्यते भूरनेन (जिससे भूमि लीपी जाती है) । गोम्+अय, विभक्तिकार्य, गोमयम् । गाय का गोबर । गोविद् गोमयमस्त्रियाम् (अ.को.२/९/५०) ।

३४९. शृणातेरावः । ६-१८।

शृणातेरावप्रत्ययो भवति । 'शृ हिंसायाम्' शीर्यन्ते मनागापोऽनेनेति शरावः मृत्पात्रविशेषः ।

शृ धातु से आव प्रत्यय होता है ।

शरावः शृ हिंसायाम् (क्री.१५) । शीर्यन्ते मनागापः अनेन (जिससे थोड़ा सा जल सुखाया जाता है) । शृ+आव, ऋ को अरु, विभक्तिकार्य,

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

331

शरावः । मिट्टी का विशेष पात्र । कसोरा या तस्तरी । शरावो
वर्द्धमानकः (अ.को.२/९/३२) ।

३५०. मडिकुडिमङ्गिभ्योऽलः । ६-१९।

एभ्योऽलः प्रत्ययो भवति । 'मडि भूषायाम्'
इदनुबन्धत्वान्नागमः^१ । मण्ड्यत इति मण्डलं वृत्तम् । 'कुडि
स्नेहने'^२ इदनुबन्धः । कुड्यत (कुण्ड्यत) इति कुण्डलं
कर्णाभूषणम् । 'मङ्गिः गत्यर्थः' मङ्गति सुकृतिनमिति मङ्गलम्
भद्रम् ।

मण्ड, कुण्ड, मग् इन धातुओं से अल प्रत्यय होता है ।

मण्डलम् मडि भूषायाम् (भू.१०३) । अलङ्कृत करना, आभूषित
करना । इदनुबन्ध से न् आगम । मण्ड्यते । मण्ड्+अल, विभक्तिकार्य,
मण्डलम् । वृत्त । गोलाकार । क्लीबेऽथ निवहे बिम्बे त्रिषु पुंसि तु
कुक्कुरे (मेदिनी.लान्त.१२०) ।

कुण्डलम् कुडि स्नेहने (रक्षणे चु.५०) । स्नेह करना, प्रेम करना ।
इदनुबन्ध से न् आगम । कुण्ड्यते । कुण्ड्+अल, विभक्तिकार्य,
कुण्डलम् । कर्णाभूषण ।

कुण्डलं कर्णाभूषायां पाशेऽपि वलयेऽपि च । काञ्चनद्रुगुडूच्योः
स्त्री. (मेदिनी.लान्त.८२) ।

-
१. अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः (कात.३/६/१) इत्यत्र 'इदनुबन्धानाम्'
इत्यादिष्टत्वात् नागमः) ।
 २. कुडि धातु स्नेह अर्थ में पठित नहीं है । यह धातु वैकल्य
(भू.१०४) दाह (भू.३६२) तथा रक्षा (चु.५०) अर्थों में पठित है ।
असत्यभाषण अर्थ में भी का.कृ.धा. (चु.१३) में पठित है ।

मङ्गलम् मणिः गत्यर्थः (भू.३८) । मङ्गति सुकृतिनम् (जो सुकर्म=पुण्य करने वाले को प्राप्त होता है) । इदनुबन्ध से धातु को न् आगम । मङ्ग+अल, विभक्तिकार्य, मङ्गलम् । कल्याण । नपुंसकन्तु कल्याणे सर्वार्थरक्षणेऽपि च (मेदिनी.लान्त.१२०) ।

३५१. कन्देररः । ६-२०।

कन्देररप्रत्ययो भवति । 'कदि वैक्लव्ये' इदनुबन्धत्वान्नागमः । कन्दति विक्लवो भवति अत्र नरः कन्दरः पाषाणरन्ध्रप्रदेशः ।

कन्द् धातु से अर प्रत्यय होता है ।

कन्दरः कदि वैक्लव्ये (भू.४९८) । वैक्लव्य=व्याकुल होना, या फंस जाना । इदनुबन्ध होने से धातु को न् आगम । कन्दति विक्लवो भवति अत्र नरः (जहाँ आदमी फंस जाता है) । कन्द्+अर, विभक्तिकार्य, कन्दरः । पाषाण की गुफा या घाटी । कन्दरस्त्वङ्कुशे पुंसि गुहायाञ्च नपुंसकम् (मेदिनी.रान्त.१३२) ।

३५२. कुलेः किशः । ६-२१।

कुलेः किशप्रत्ययो भवति । 'कुल संस्त्याने' भयदत्वात् पर्वतानां (पर्वतान्) कोलति सङ्घीकरोति इति कुलिशं वज्रम् ।

कुल् धातु से किश प्रत्यय होता है । क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है ।

कुलिशम् कुल संस्त्याने (संख्याने बन्धुषु च भू.५५२) । इकट्ठा करना, बटोरना । पर्वतों के भयकारक होने से जो उनका संग्रह करता है) । कुल्+किश, धातु को गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, कुलिशम् । वज्र । कुलिशो न स्त्री दम्भोलौ ना झषान्तरे (मेदिनी.शान्त.१९) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

333

३५३. पटिजटिभ्यामलिञ् । ६-२२।

आभ्यामलिञ्प्रत्ययो भवति । 'पट गतौ' पटतीति
पाटलिः । 'जट सङ्घाते' जटति जटयते वा जटालिः।
(जाटलिः) वृक्षविशेषः । जानुबन्ध इज्वद्भावार्थः । अस्योपधाया
दीर्घः ।

पट् एवं जट् धातु से अलिञ् प्रत्यय होता है । इसमें ज्
अनुबन्ध इज्वद्भावार्थ प्रयुक्त है, जिससे दीर्घ होता है ।

पाटलिः पट गतौ (भू.१०२) । पटति । पट्+अलिञ्, ज् अनुबन्ध के
कारण 'सिद्धिरिज्वद् ज्ञानुबन्धे' (कात.४/१/१) से इज्वद्भाव तथा
'अस्योपधाया०' सूत्र से उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, पाटलिः । पादर का
फूल (पाठर) फलेरुहा । पाटलिः पाटला मोघा काचस्थाली फलेरुहा
(अ.को.२/४/४४) ।

जाटलिः जट सङ्घाते (भू.९०) । जटति । जट्+अलिञ्, उपधादीर्घ,
विभक्तिकार्य, जाटलिः । गुलर का पेड़ (वृक्षविशेष) ।

३५४. राते रिफः । ६-२३।

राते रिफप्रत्ययो भवति । 'रा ला दाने' रातीति रेफः^२
वर्णविशेषः ।

१. जटालिः म.सं. । अन्य उणादि ग्रन्थों में यह अप्राप्त है । उक्त
सूत्र से अलिञ् प्रत्यय तथा ज् अनुबन्ध के कारण धातु की उपधा
को दीर्घ करने से जाटलिः ऐसा उदाहरण होना चाहिए । वृत्ति में
जटालिः पाठ अनुपयुक्त है । अ.को. में भी जाटलिर्मनुः (अ.को.३)
ऐसा पाठ उपलब्ध है । क्वचित् 'झाटलिः' ऐसा भी पाठान्तर
प्राप्त है ।
२. पा.उ. में रिफ् धातु से कुत्सित (वै.सि.कौ.उ.सू.५/७३२) अर्थ में अ
प्रत्यय करके 'रेफ' शब्द निष्पादित है, इससे निष्पन्न 'रेफ' शब्द
का अर्थ 'निन्दित' होगा । किन्तु वर्ण अर्थ की वाचकता हेतु यह

रा धातु से रिफ प्रत्यय होता है ।

रेफः रा दाने (अ.२४) । देना । रा+रिफ, र् अनुबन्ध का अप्रयोग, गुणादेश, विभक्तिकार्य, रेफः । वर्णविशेष । रेफो वर्णे च पुंसि स्यात् कुत्सितेऽन्यवत् (मेदिनी.फान्त.२) ।

३५५. लिशेः सक् १६-२४।

लिशेः सक्प्रत्ययो भवति । 'लिश श्लेषणे' लिशतीति लिक्षा ईषद्वपुः प्राणी । छशोश्च षत्वम् । षढोः कः सेः, कत्वम् । निमित्तत्वात् षत्वम् । स्त्रियामादा ।

लिश् धातु से सक् प्रत्यय होता है । सक् में क् अनुबन्ध अप्रयोगार्ह है ।

लिक्षा लिश श्लेषणे (लिश-गतौ तु.५६, - अल्पीभावे दि.११७) । आलिङ्गन करना, जुड़ना, मिलना । लिशति । लिश्+सक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुणनिषेध, 'छशोश्च' (कात.३/६/६०) से शकार को षकार, 'षढोः कः से' (कात.३/८/४) सूत्र से षकार को ककार, 'निमित्तात् प्रत्ययविकारागमस्थः सः षत्वम्' (कात.३/८/२६) से सकार को षकार, क्-ष् के संयोग से क्षकार, 'स्त्रियामादा' (कात.२/४/४९) से स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, लिक्षा । सूक्ष्म शरीर वाला प्राणी । केशजन्तु । लीख, जूँ ।

३५६. ध्वनेः क्षो दीर्घश्च १६-२५।

ध्वनेः क्षप्रत्ययो भवति दीर्घश्च । 'ध्वन शब्दे' ध्वनतीति ध्वाङ्क्षः वायसः बकश्च ।

उपयुक्त नहीं है । इसीलिए कात.उ. में दानार्थक रा धातु से वर्णवाची अर्थ में रिफ प्रत्यय किया गया ।

ध्वन् धातु से क्ष प्रत्यय होता है तथा धातु को दीर्घ होता है ।

ध्वाङ्क्षः ध्वन शब्दे (भू.५३०) । शब्द करना, ध्वनि करना । ध्वनति । ध्वन्+क्ष, वकारघटक धातु की उपधाभूत अकार को दीर्घ, 'मनोरनुस्वारो घुटि' (कात.२/४/४४) सूत्र से नकार को अनुस्वार, 'वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा' (कात.२/४/४५) सूत्र से अनुस्वार को पञ्चम वर्ण, ध्वाङ्क्षः । कौवा तथा बगुला ।

ध्वाङ्क्षो मत्स्यात्खगे काके तक्षके भिक्षुकेऽपि च (मेदिनी.षान्त.१६) । ध्वाङ्क्षस्तु काकबकयोस्तर्कुके भिक्षुके गृहे (वि.प्र.को.क्षान्त.९) ।

३५७. दीधीङो डितिः । ६-२६।

दीधीङो धातोः डितिप्रत्ययो भवति । 'दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः' दीधीते दीप्यते इति दीधितिः रश्मिः ।

दीधीङ् धातु से डिति प्रत्यय होता है । ङ् अनुबन्ध अगुणार्थ है- डे न गुणः (कात.४/१/६) ।

दीधितिः दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः (अ.५७) । चमकना, प्रकाशित होना, खेलना । दीधीते । दीधी+डिति, ङ् अनुबन्ध से 'डे न गुणः' (कात.४/१/६) सूत्र से धातु को गुणनिषेध, धातुघटक ईकार का लोप, विभक्तिकार्य, दीधितिः^१ । किरण ।

1. पा.व्या.-दीधीङ् दीप्तिवमनयोः 'क्तिचक्तौ च संशयाम्' (अ.३/३/१७४) सूत्र से क्तिच् प्रत्यय तथा यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः (अ.सू.७/४/५३) इस सूत्र से धातुघटक ईकार का लोप, दीधितिः ।

३५८. अतेस्त्रिः। १६-२७।

अतेस्त्रिः प्रत्ययो भवति । 'अत सातत्यगमने' अतति धर्मार्थमिति । अत्यते वा अत्रिः ऋषिः ।

अत् धातु से त्रि प्रत्यय होता है ।

अत्रिः अत सातत्यगमने (भू.३) । निरन्तर चलना । अतति धर्मार्थम् । (जो धर्म के लिए निरन्तर चलता है) । अत्+त्रि, विभक्तिकार्य, अत्रिः । ऋषि ।

३५९. वचेरालाटौ दीर्घश्च १६-२८।

वचेः धातोः आलाटौ प्रत्ययौ भवतः दीर्घश्च । 'वच परिभाषणे' अत्यर्थं वक्तीति वाचालः । वाचाटः बहुभाषी ।

वच् धातु से आल एवं आट ये दो प्रत्यय होते हैं तथा धातु को दीर्घदिश भी होता है ।

वाचालः वच परिभाषणे (अ.३०) । अत्यर्थं वक्ति (जो अनपेक्षित अधिक बोलता है) । वच्+आल, धातुघटक अकार को दीर्घ, विभक्तिकार्य, वाचालः । वच्+आट, दीर्घ, वाचाटः । बहुभाषी । स्याज्जल्पाको वाचालो वाचाटो बहुगर्हवाक् (अ.को.३/१/३६) ।

1. पा.उ.-अदेस्त्रिनिश्च (दया.उ.को.४/६८) सूत्र से अत्ति भक्षयति अर्थ में त्रिन् एवं चकारात् त्रिप् प्रत्यय के द्वारा अत्री (भक्षक) तथा अत्रि (ऋषि) ये दो शब्द निष्पादित हैं । श्वेतवनवासी ने त्रिप् के विधान को अनर्थक बतलाकर केवल 'अत्रिः' शब्द ही निष्पन्न किया है ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

337

३६०. खलेरतिकः । ६-२९।

खलेरतिकः प्रत्ययो भवति । 'खल चलने' खलतीति
खलतिकः देशः । तद्वनानि खलतिकम् ।

खल् धातु से अतिक प्रत्यय होता है ।

खलतिकः खल चलने (भू.१८१) । खलति । खल्+अतिक,
विभक्तिकार्य, खलतिकः । देश । उसके वन खलतिकम् । खलतिः
निष्केशशिराः पुरुषो वा (दया.उ.को.३/११२) ।

३६१. नजि पतेर्यः । ६-३०।

नज्युपपदे पतेर्यो भवति । 'पत्लु गतौ' नयन्ति। (न
पतन्ति) येन जातेन पूर्वजाः । नस्य तत्पुरुषे लोप्यः ।
मामात्य(सामान्य)विवक्षायाम् । पौत्रोऽप्यपत्यमित्युच्यते । अपत्यं
पुत्रः पौत्रश्च ।

नज् के उपपद में रहने पर पत् धातु से य प्रत्यय होता है ।

अपत्यम् पत्लु गतौ (भू.५५४) । न पतन्ति येन जातेन पूर्वजाः
(जिसके उत्पन्न होने से पूर्वज पतित नहीं होते हैं) न पत्+य 'नस्य
तत्पुरुषे लोप्यः' (कात.२/५/२२) इस सूत्र से न् का लोप, विभक्तिकार्य,
अपत्यम् । पुत्र तथा पौत्र । सन्तान ।

३६२. कलेरशः । ६-३१।

कलेरशप्रत्ययो भवति । 'कल गतौ' संख्याने च'
कलत्युद्दकानीति कलशः कुम्भः ।

1. वृत्ति में 'नयन्ति' पाठ भ्रष्ट है । नयन्ति के स्थान पर 'न पतन्ति'
ऐसा पाठ होना चाहिए ।
2. कल (चु.१८५) धातु के चौरादिक होने से वृत्ति में 'कलति' के
स्थान पर 'कलयति' पाठ होना चाहिए ।

कल् धातु से अश प्रत्यय होता है ।

कलशः कल गतौ संख्याने च (चु.१८५) । कलयत्युदकानि (जो जल को धारण करता है) । कल्+अश, विभक्तिकार्य, कलशः । कुम्भ । घड़ा । कलसस्तु त्रिषु द्वयोः (अ.को.२/९/३१) ।

३६३. हज्जष्टीतकन् । ६-३२।

हरतेष्टीतकन् प्रत्ययो भवति । 'हज् हरणे' हरति रोगानिति हरीतकी । टकारो नदाद्यर्थः ।

ह धातु से टीतकन् प्रत्यय होता है । टीतकन् में 'ईतक' शेष रहता है । ट् अनुबन्ध के नदाद्यर्थ होने से स्त्री. में ई प्रत्यय होता है ।

हरीतकी हज् हरणे (भू.५९६) । हरति रोगान् (जो रोगों को दूर करती है) । ह्+टीतकन्, ऋ को अर्, तथा ट् अनुबन्ध से 'नदाद्यन्वि०' (कात.२/४/५०) इत्यादि सूत्र से स्त्री. में ई प्रत्यय, विभक्तिकार्य, हरीतकी । हर । औषध । हरीतकी हैमवती चैतकी श्रेयसी शिवा (अ.को.२/४/५९) ।

३६४. उन्देः ककः । ६-३३।

उन्देः ककप्रत्ययो भवति । 'उन्दी क्लेदने' उनत्ति क्लिद्यते अनेन वस्त्विति उदकं जलम् ।

उन्द् धातु से कक प्रत्यय होता है । इसमें पूर्ववर्ती क् अनुबन्ध अप्रयोगार्ह तथा यण्वद्भावार्थ (गुणनिषेध) है ।

उदकम् उन्दी क्लेदने (रु.१६) । गीला होना, आर्द्र होना । उनत्ति क्लिद्यते अनेन वस्तु (जिससे वस्तु गीली हो जाती है) । उन्द्+कक,

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

339

क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण धातु को गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, उदकम् । जल ।

तु.- उन्दी क्लेदने, क्वुन् (वै.सि.कौ.उ.२/१९७) ।

३६५. पातेरकः । ६-३४।

पातेरकप्रत्ययो भवति । पत्लु गतौ । हेताविन् ।
पातयति पत्यते वा तपस इति पातकम् पापम् ।

पा धातु से अक प्रत्यय होता है ।

पातकम् पत्लु गतौ (भू.५५४) । 'धातोश्च हेतौ' (कात.३/२/१०) इस सूत्र से हेतु में इन् । पत्यते तपसः (जो तप से नष्ट हो जाता है) । पत्+अक, पाति+अक, इकारलोप, विभक्तिकार्य, पातकम् । पाप ।

३६६. उन्देरनो नलोपश्च । ६-३५।

उन्देरनः प्रत्ययो भवति नलोपश्च । 'उन्दी क्लेदने' उनत्ति ओदनम् भुक्तम् (भक्तम्) । गुण उतः ।

उन्द् धातु से अन प्रत्यय होता है तथा नलोप होता है ।

ओदनम् उन्दी क्लेदने (रु.१६) । भीगना । उनत्ति । उन्द्+अन, नकारलोप, धातुघटक उकार को ओकार गुण, विभक्तिकार्य, ओदनम् । भक्त । ओदनं न स्त्रियां भक्ते बलायामोदनी स्त्रियाम् (मेदिनी.नान्त.४३) ।

तु.-उन्द्+युच्, न् का लोप, यु को अन (वै.सि.कौ.उ.२/२३४) ।

३६७. सिनोतेर्नः । ६-३६।

सिनोतेः नः प्रत्ययो भवति । 'षिञ् बन्धने' सिनोति परबलमिति सीयते वा सेना कटकम् । स्त्रियामादा ।

षिञ् धातु से न प्रत्यय होता है ।

सेना षिञ् बन्धने (सु.२) । बाँधना । सिनोति परबलम् (जो शत्रुओं के बल को बाँधती है) । 'धात्वादेः षः सः' से ष् को स् । सि+न, धातुघटक इकार को एकार गुणादेश, स्त्री. में 'स्त्रियामादा' (कात.२/४/४९) सूत्र से आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, सेना । कटक ।

३६८. द्यतेरिच्च । ६-३७।

द्यतेः नः प्रत्ययो भवति आकारस्य इच्च । 'दो अवखण्डने' द्यति अन्धकारमिति दिनं वासरः ।

'दो' इस धातु से न प्रत्यय तथा आकार को इकार होता है ।

दिनम् दो अवखण्डने (दि.२२) टुकड़े टुकड़े करना । द्यति अन्धकारम् (जो अन्धकार को नष्ट करता है) । दो+न सन्ध्यक्षर ओकार को आकार, तथा प्रकृत सूत्र से आकार को इकार, विभक्तिकार्य, दिनम् । वासर ।

३६९. मुहेर्धिक्^१(धक्) हस्य गः । ६-३८।

मुहेर्धिक्प्रत्ययो भवति हस्य च गः । 'मुह वैचित्ये' मुह्यतीति मुग्धा अप्रगल्भा । कोऽगुणार्थः ।

-
1. धिक् के स्थान पर 'धक्' पाठ होना चाहिए । 'मुग्धा' शब्द की 'धिक्' प्रत्यय के द्वारा निष्पत्ति करने में 'धिक्' में या तो इकार को अकार करना पड़ेगा अथवा 'धक्' ऐसा पाठ करना पड़ेगा तभी अकारान्त 'मुग्ध' से स्त्री. में आ प्रत्यय होकर 'मुग्धा' बन सकता है । अतः 'धिक्' की अपेक्षा 'धक्' पाठ करने में 'लाघव' होगा ।

मुह् धातु से धक् प्रत्यय तथा धातुघटक हकार को गकार होता है ।

मुग्धा मुह वैचित्ये (दि.३७) । पागल होना, बुद्धि-भ्रष्ट होना । मुह्यति । मुह्+धक्, हकार को गकार, क् अनुबन्ध से अगुण, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, मुग्धा । अप्रगल्भा । कुमारी । सुलभ भोलेपन से आकर्षक किशोरी । सुन्दर नायिका । नाट्यशास्त्र में 'नायिका का भेद ।

३७०. सचेः लिलश्च चस्य लुक् । ६-३९।

सचेः लिलप्रत्ययो भवति, चस्य लुक् च । 'षच् सेचने' सचत इति सलिलं जलम् ।

सच् धातु से लिल प्रत्यय होता है तथा सच् के च् का लोप भी होता है ।

सलिलम् षच सेचने (भू.३३८) । गीला होना । 'धात्वादेः षः सः' से ष् को स् । सचते । सच्+लिल, चकार का लोप, विभक्तिकार्य, सलिलम् । जल ।

षल गतौ+इलच्, सलति गच्छति निम्नमिति सलिलम् (वै.सि.कौ.उ.१/५४) ।

३७१. कुरेः करकः। (ककः) । ६-४०।

कुरेः धातोः करक (कक) प्रत्ययो भवति । 'कुर शब्दे' कुरतीति कुरकः श्वा ।

1. मूल में करकः के स्थान पर 'ककः' ऐसा पाठ उचित है । 'कुरक' की निष्पत्ति हेतु कुर् धातु से कक प्रत्यय मात्र का विधान उचित है । करक में 'र्' अनर्थक प्रतीत होता है । अतः 'कुरेः ककः' ऐसा सूत्र पाठ उचित है ।

कृ घातु से कक प्रत्यय होता है । इसमें पूर्ववर्ती क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है ।

कुरकः कुर शब्दे (तु.६२) । कुरति । कृ+कक, यण्वद्भाव से गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, कुरकः । श्वा । कुत्ता ।

३७२. आप्नोतेः क्विप् ह्रस्वः ।६-४१।

आप्नोतेः क्विप्प्रत्ययो भवति, ह्रस्वश्च । 'आप्लु व्याप्तौ' आप्नुवन्ति समुद्रमिति आपः जलानि । जसि दीर्घः । अपश्च ।

आप् घातु से क्विप् प्रत्यय तथा घातु को ह्रस्व होता है । जस् में दीर्घ होता है ।

आपः आप्लु व्याप्तौ (सु.१४) । आप्नुवन्ति समुद्रम् (जो समुद्र को प्राप्त होते हैं) आप्+क्विप्, क्विप् का लोप, ह्रस्व, लिङ्गसंज्ञा, जस् प्रत्यय, 'जसि' (कात.२/१/१५) सूत्र से दीर्घ, विभक्तिकार्य, आपः । जल । शस् विभक्ति-अपः ।

तु.- आपः कर्माख्यायाम् (वै.सि.कौ.उ.४/६४७) ।

३७३. वन्देस्त्रश्छादेशश्च ।६-४२।

वन्देः त्रप्रत्ययो भवति छादेशश्च । 'वदि अभिवादनस्तुत्योः' इदनुबन्धत्वान्नागमः । वन्दते उपाध्यायमिति छात्रः विद्यार्थी ।

-
1. गुरुदोषाच्छादनं छात्रम् । तच्छीलमस्य छात्रादिभ्यो णः (अ.४/४/६२) छात्रः । गुरु के दोषों को छिपाने वाला ।

वन्द् धातु से त्र प्रत्यय तथा वन्द् के स्थान पर छा आदेश होता है ।

छात्रः वदि अभिवादनस्तुत्योः (भू.२९९) । अभिवादन करना, स्तुति करना । इदनुबन्ध से न् आगम । वन्दते उपाध्यायम् (जो गुरु को प्रणाम करता है) । वन्द्+त्र, वन्द् के स्थान पर छा आदेश=छात्र, विभक्तिकार्य, छात्रः । विद्यार्थी ।

३७४. कलेरहः । ६-४३।

कलेरहप्रत्ययो भवति । 'कल गतौ संख्याने च' चुरादिः कलयत्युभयोः माहात्म्यमिति कलहः प्रसिद्धः ।

कलहः कल गतौ संख्याने च (चु.१८५) । जाना, गिनना । कलयति उभयोः माहात्म्यम् (जो दोनों पक्षों के महत्त्व को गिनाता है) । कल्+अह, कलहः । प्रसिद्ध । कलहं युधि वाटे ना खड्गकोषे च भण्डने (मेदिनी.हान्त.१६) ।

३७५. उम्भेरिक् द्विशच । ६-४४।

उम्भेरिक्प्रत्ययो भवति द्विरादेशश्च । इकारोक्तः सविभक्तिरादेशो स्वरः^१ (?) (ऽस्वरः) 'उभ उम्भ पूरणे' उभत इति द्वौ पदार्थौ । द्विवचनमिह ।

उम्भ् धातु से इक् प्रत्यय तथा उम्भ् के स्थान में द्वि आदेश होता है । वृत्ति में प्रशनाङ्कित पाठ सन्दिग्ध है । कातन्त्रपरिभाषा-संग्रह में 'इकारोक्तः सविभक्तिरादेशोऽस्वरः' ऐसी परिभाषा निर्दिष्ट है । स्वरः के स्थान पर 'अस्वरः' पाठ होना चाहिए ।

१. इकारोक्तः सविभक्तिरादेशोऽस्वरः प.सं.६१ द्र.-कलापव्याकरणम् (प.२२८) सम्पादक- डॉ० जानकीप्रसाद द्विवेदी ।

द्वौ उभ पूरणे (तु.३६) । भरना, पूरा करना । उभते । उभ्+इक, तथा उभ को द्वि आदेश 'त्यदादीनाम विभक्तौ' (कात.२/३/२९) इस सूत्र से द्वि के इकार के स्थान में अकार, 'ओकारे औ औकारे च' (कात.१/२/७) इस सूत्र से 'द्व' घटक अकार के स्थान में औ तथा परवर्ती औकार का लोप, विभक्तिकार्य, द्वौ । द्वित्व । द्विवचन ।

३७६. नमिसमिभ्यामञ् । ६-४५।

आभ्यामञ्प्रत्ययो भवति । 'णमु प्रह्वत्वे' नमति नम्यते वा नाम संज्ञा । 'षम स्तम' समतीति साम वेदः । जानुबन्ध इज्वद्भावार्थः ।

नम् एवं सम् धातु से अञ् प्रत्यय होता है । अञ् में ज् अनुबन्ध के इज्वद्भावार्थ होने से धातु की उपधा को दीर्घ होता है ।

नाम णमु प्रह्वत्वे (भू.१५९) । प्रणाम करना । 'णो नः' से णकार को नकार । नमति । नम्+अञ्, ज् अनुबन्ध के कारण इज्वद्भाव तथा 'अस्योपधाया०' इस सूत्र से उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, नाम । संज्ञा ।

साम षम वैक्लव्ये (भू.५४२) । 'धात्वादेः षः सः' से ष् को स् । समति । सम्+अञ्, ज् अनुबन्ध के कारण इज्वद्भाव तथा उससे उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, साम । वेद । तृतीय वेद । साम क्लीबमुपायस्य भेदे वेदान्तरेऽपि च (मेदिनी.नान्त.५४) ।

३७७. कूजेरिलो जः किश्च । ६-४६।

कूजेरिलः प्रत्ययो भवति । जस्य कत्वम् । 'कूज अव्यक्ते शब्दे' कूजतीति कोकिलः पक्षिविशेषः ।

कूज् धातु से इल प्रत्यय होता है तथा कूज् में ज् को क् होता है ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

345

कोकिलः कूज अव्यक्ते शब्दे (भू.७४) । अस्पष्ट बोलना ।
कूजति । कूज्+इल ज् को क्, ऊकार को ओकार गुणादेश,
विभक्तिकार्य, कोकिलः । पक्षिविशेष । कोयल ।

तु.- कुक आदाने, इलच् (वै.सि.कौ.उ.१/५४) ।

३७८. मयतेरूरोखौ ।६-४७।

मयतेः धातोरूरोख इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः । 'मीङ्
हिंसायाम्' मयत (मीयत) इति मयूरः कलापी । मयते विस्तारं
यातीति मयूखः किरणः ।

मय् धातु से ऊर एवं ऊख प्रत्यय होते हैं ।

मयूरः मीङ् हिंसायाम् (दि.८५) । मी+ऊर, ईकार को एकार गुणादेश,
'ए अय्' से एकार को अय्, विभक्तिकार्य, मयूरः । कलापी । मोर ।
मयूरो बर्हिचूडायामपामार्गे शिखण्डिनि (मेदिनी.रान्त.१९०) ।

मयूखः मी+ऊख, गुण, अयादेश, विभक्तिकार्य, मयूखः । किरण ।

३७९. अङ्गेरुलः ।६-४८।

अङ्गेरुलप्रत्ययो भवति । [अगिः गत्यर्थः] अङ्गतीति
अङ्गुलः ।

अङ्ग धातु से उल प्रत्यय होता है ।

अङ्गुलः अङ्गि गत्यर्थः (भू.३८) । इदनुबन्ध से न् आगम । अङ्गति ।
अङ्गुल+उल, विभक्तिकार्य, अङ्गुलः । अङ्गुठा ।

३८०. कनिचनिभ्यामकः । ६-४९।

आभ्यामकः प्रत्ययो भवति । 'कनी दीप्तिकान्तिगतिषु'
कनतीति कनकं सुवर्णम् । [चन श्रद्धोपहननयोः] चनत इति
चनकः धान्यविशेषः ।

कन् एवं चन् धातु से अक प्रत्यय होता है ।

कनकम् कनी दीप्तिकान्तिगतिषु (भू.१५४) । चमकना, प्रकाशित होना,
चाहना, जाना । कनति । कन्+अक, विभक्तिकार्य, कनकम् । सुवर्ण ।
कनकं हेमि पुंसि स्यात् किंशुके नागकेसरे (मेदिनी.कान्त.५३) ।

चनकः चन श्रद्धोपहननयोः (चन च, भू.५१७) । श्रद्धा रखना, भरोसा
रखना, मारना, दुःख देना । चनति । चन्+अक, विभक्तिकार्य,
चनकः । धान्यविशेष । चना । चणको हरिमन्थकः (अ.को.२/९/१८) ।

३८१. चटिवटिकटिभ्य उश्च । ६-५०।

एभ्य उप्रत्ययो भवति । 'चट भेदे' चटति माधुर्यात्
हृदयं भिनत्ति इति चटुः प्रियवाक्यम् । 'वट वेष्टने' वटति
वेष्टति इति वटुः माणवकः । 'कट गतौ' कटतीति कटुः
रसविशेषः । चकारादकश्च । चटति भिनत्तीति चटकः
गृहपक्षी । वटकः । पक्वान्नविशेषः । कटति भुजमावृणोतीति
कटकः हस्ताभरणम् । कटकं सेना च ।

चट, वट, कट इन धातुओं से उ प्रत्यय होता है तथा सूत्रस्थ
चकार-निर्देश से अक प्रत्यय भी होता है ।

चटुः चट भेदे (चु.१४१) । तोड़ना, भेदन करना । चटति माधुर्यात् हृदयं भिनत्ति (जो अपनी मधुरता से हृदय को आवर्जित कर देता है) । चट्+उ, विभक्तिकार्य, चटुः । प्रियवाक्य ।

वटुः वट वेष्टने (भू.८७) । वेष्टित करना । वटति, वेष्टते । वट्+उ, विभक्तिकार्य, वटुः । माणवक । बालक ।

कटुः कट गतौ (भू.१०२) । कटति । कट्+उ, विभक्तिकार्य, कटुः । रसविशेष । कटुः स्त्री कटु रोहिण्यां लताराजिकयोरपि । नपुंसकमकार्य स्यात् पुल्लिङ्गो रसमात्रके । (मेदिनी.टान्त.४) ।

सूत्रस्थ 'उश्च' पद में चकार-बल से अक प्रत्यय भी होता है । यथा चट्+अक, चटकः गृहपक्षी (गौरैया, चिड़िया) । वट्+अक, वटकः, पका हुआ अन्न । कट्+अक, कटति भुजमावृणोति (जो भुजा का आवरण करता है) । कटकः कड़ा, हाथ का आभूषण । कटकम् सेना ।

३८२. अशोर्मकः । ६-५१।

अशोर्मक्प्रत्ययो भवति । 'अशू व्याप्तौ' अश्नुते इति अश्मकाः देशः ।

अश् धातु से मक् प्रत्यय होता है ।

अश्मकाः अशू व्याप्तौ (सु.२२) । व्याप्त होना । अश्नुते । अश्+मक, विभक्तिकार्य, अश्मकाः (बहु.) देश । जनपद ।

३८३. मङ्गोः कधः । ६-५२।

मङ्गोः कधप्रत्ययो भवति । मङिः गत्यर्थः । इदनुबन्धत्वान्नागमः । मङ्गतीति मङ्गः देशो राजा च । मङ्गधा पुरी । कानुबन्धत्वान्नलोपः ।

मङ्ग् धातु से कध प्रत्यय होता है । कध में क् अनुबन्ध के कारण धातुघटक न् का लोप होता है ।

मगधः मगिः गत्यर्थः (भू.३८) । इदनुबन्ध से न् आगम । मङ्गति । मङ्ग्+कध, क् अनुबन्ध के कारण न् का लोप, विभक्तिकार्य, मगधः । देश तथा राजा । जनपद । राजा की वंशावली का वर्णन करने वाला (अ.को.२/८/९७) । स्त्री.-मगधा ।

३८३. दिवेर्दि (डि) विः । ६-५३।

दिवेः दिवि(डिवि)प्रत्ययो (१२) भवति । 'दिवु क्रीडादिषु' दीव्यन्ति क्रीडन्ति अत्र पुण्यवन्त इति द्यौः स्वर्गः ।

दिव् धातु से डिवि प्रत्यय होता है । सूत्र में दिवि प्रत्यय विहित है । दिवि के स्थान पर 'डिवि' पाठ उचित है । इ अनुबन्ध से 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' इस सूत्र से धातु स्वर का लोप होता है ।

द्यौः दिवु क्रीडादिषु (दि.१) । खेलना आदि । दीव्यन्ति क्रीडन्ति अत्र पुण्यवन्तः (जहाँ पुण्यवान् खेलते हैं) । दिव्+डिवि, इ अनुबन्ध के कारण इ-व् का लोप, इकार को यकार तथा लिङ्गसंज्ञा, सि, 'औ सौ' (कात.२/२/२६) इस सूत्र से प्रत्यय-घटक व् को औ, 'रेफसोर्विसर्जनीयः' (कात.२/३/६३) से स् को विसर्ग, द्यौः । स्वर्ग ।

गमेर्दोः बाहुलकात् द्योतन्ते लोका अस्यां यया वा द्योतते सा द्यौः अन्तरिक्षं वा (दया.उ.को.२/६८) ।

1. दिवेर्डिविः (सरस्वती.२/१/३०६) ।
2. (?) दिवि के स्थान पर डिवि पाठ उचित है । इसी से प्रश्न चिन्ह की निवृत्ति हो जाती है । पूर्व सम्पादक ने इसे प्रश्न चिह्नाङ्कित किया है ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

349

३८५. कलेरिङ्गः । ६-५४।

कलेरिङ्गप्रत्ययो भवति । 'कल गतौ' कलतीति कलिङ्गः
देशः ।

कल् धातु से इङ्ग प्रत्यय होता है ।

कलिङ्गः कल गतौ (चु.१८५) । कलति । कल्+इङ्ग, विभक्तिकार्य,
कलिङ्गः । देश । पक्षी । कुटज फल । राजा । कलिङ्गः पूतिकरजे
धूम्याटे भूमि नीवृति । न द्वयोः कौटजफले महिलायां तु योषिति ।
(मेदिनी.गान्त.३१) ।

३८६. वसेरिष्ठः । ६-५५।

वसेरिष्ठः प्रत्ययो भवति । 'वस निवासे' वसति तपसे
वसिष्ठः ऋषिः ।

वस् धातु से इष्ठ प्रत्यय होता है ।

वसिष्ठः वस निवासे (भू.६१४) । वसति तपसे (जो तप के लिए
रहता है) । वस्+इष्ठ, विभक्तिकार्य, वसिष्ठः । ऋषि । आपवस्तु
वसिष्ठः स्याद्यज्ञाढ्यस्तु पराशरः (वेज.को.३/६/१५५) ।

३८७. उडो मक् । ६-५६।

उडो मक्प्रत्ययो भवति । 'उड् शब्दे' उवते (अवते)
इति उमा पार्वती ।

उड् धातु से मक् प्रत्यय होता है ।

उमा उड् शब्दे (भू.४५८) । अवते । उ+मक्, क् अनुबन्ध से
गुणाभाव, स्त्री. में आ प्रत्यय, विभक्तिकार्य, उमा । पार्वती ।
उमाऽतसीहेमवतीहरिद्राकीर्तिकान्तिषु (मेदिनी.मान्त.२) ।

३८८. असि (शि) कुषिभ्यां सिक् १६-५७।

आभ्यां सिक्प्रत्ययो भवति । 'अशू व्याप्तौ' अशनुते व्याप्नोत्यासनेन घटादीनर्थानिति अक्षि नयनम् । 'कुषि निष्कर्षे' कुष्णातीति कुक्षिः उदरैकदेशः । छशोश्च इति षत्वम् । 'षढोः कः सि' (से) इति कत्वम् । क-षसंयोगे क्षः ।

अश् एवं कुष् धातु से सिक् प्रत्यय होता है । इसमें क् अनुबन्ध है ।

अक्षि अशू व्याप्तौ (सु.२२) । अशनुते व्याप्नोति आसनेन घटादीनर्थान् (जो घट-पट आदि अर्थों को एक ही स्थान से व्याप्त कर लेता है । अश्+सिक्, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, 'छशोश्च' (कात.३/६/६०) इस सूत्र से शकार को षकार 'षढोः कः से' (कात.३/८/४) इस सूत्र से षकार को ककार, प्रत्ययावयव सकार को षकार 'कष संयोगे क्षः' इस नियम से क्-ष् दोनों के संयोग से क्षकार, विभक्तिकार्य, अक्षि । नेत्र ।

तु.- अशेर्नित्, अश्+क्सि, अक्षि (वै.सि.कौ.उ.सू.३/४३६) ।

कुक्षिः कुष निष्कर्षे (क्री.४०) । रगड़कर निकालना । कुष्णाति । कुष्+सिक्, क् अनुबन्ध से गुणाभाव, 'षढोः कः से' (कात.३/८/४) इस सूत्र से षकार को ककार, सकार को षकार, क् एवं ष् के संयोग से क्षकार, विभक्तिकार्य, कुक्षिः । उदर का एकदेश । पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दम् (अ.को.२/६/७७) ।

३८९. अतेर्मन् दीर्घश्च १६-५८।

अतेर्मन्प्रत्ययो भवति दीर्घश्च । 'अत सातत्यगमने' अतति संसारे सततं गच्छतीति आत्मा विश्वरूपः ।

अत् धातु से मन् प्रत्यय तथा धातुघटक अकार को दीर्घ होता है ।

आत्मा अत सातत्यगमने (भू.३) । निरन्तर चलना । अतति संसारे सततं गच्छति (जो संसार में निरन्तर गतिशील रहता है) । अत्+मन् धातुघटक अकार को दीर्घ, लिङ्गसंज्ञा, सि, 'नान्तस्य चोपधायाः' (कात.२/२/१६) इस सूत्र से उपधादीर्घ, 'व्यञ्जनाच्च' (कात.२/१/४९) से सि-लोप, 'लिङ्गान्तनकारस्य' (कात.२/३/५६) इस सूत्र से न् लोप, आत्मा । विश्वरूप, परमात्मा, देह, जीव, धृति, सत्य, बुद्धि, ब्रह्म । आत्मा पुंसि स्वभावेऽपि प्रयत्नमनसोरपि । धृतावपि मनीषायां शरीरब्रह्मणोरपि । (मेदिनी.नान्त.३८) ।

अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोति स आत्मा (दया.उ.को.४/१५४) ।

३९०. वनिस्तस्य धः ।६-५९।

अतेर्वनिप्रत्ययो भवति तस्य धश्च । इकार उच्चारणार्थः । 'अत सातत्यगमने' अतति सन्ततं गच्छति जनोऽत्र अध्वा मार्गः ।

अत् धातु से वनि प्रत्यय होता है तथा तकार को धकार होता है । वनि में इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है ।

अध्वा अत सातत्यगमने (भू.३) । निरन्तर चलना । अतति सन्ततं गच्छति जनोऽत्र (जिस पर व्यक्ति निरन्तर चलता है) । अत्+वनि, इकार अनुबन्ध का अप्रयोग, तकार को धकारादेश, 'नान्तस्य चोपधायाः'

(कात.२/२/१६) इस सूत्र से उपधादीर्घ, विभक्तिकार्य, अध्वा । मार्ग । काल । अध्वा ना पथि संस्थाने स्यादवस्कन्त्ययोः (मेदिनी.नान्त.३५) ।

३९१. धिषेन्यक् १६-६०।

धिषेः न्यक्प्रत्ययो भवति । 'धिष' शब्दे 'दिधेष्टि' शब्दं करोति इति धिष्यं गृहम् । नस्य णत्वम् ।

धिष् धातु से न्यक् प्रत्यय होता है । क् अनुबन्ध यण्वद्भावार्थ है ।

धिष्यम् धिष शब्दे (अ.७८) । दिधेष्टि शब्दं करोति (जो शब्द करता है) धिष्+न्यक्, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुणनिषेध, नकार को णकार (कात.२/४/४८) विभक्तिकार्य, धिष्यम् । गृह । नक्षत्र । तारा । धिष्यं स्थानाग्निसदमसु ऋक्षे शक्तौ च (मेदिनी.यान्त.३३) । तारा हुताशनश्चैव धिष्यं स्थानं तथा गृहम् (श्वेत.४/११७) ।

तु.- जि धृषा, ण्यः ऋकारस्येकारः धिष्यम् (वै.सि.कौ.उ.४/५४७) ।

२९२. जलेर्मञ् १६-६१।

जलेर्मञ्प्रत्ययो भवति । 'जल अपवारणे' चुरादिः । जाल्यते जाल्मः मूर्खः । कारितलोपे जानुबन्धत्वाद् दीर्घः ।

जल् धातु से मञ् प्रत्यय होता है । ज् अनुबन्ध के इज्वद्भावार्थ होने से धातु को दीर्घ होता है ।

जाल्मः जल अपवारणे (चु.११) । ढाँकना, निवारण करना । जाल से ढाँकना । जाल्यते । जालि+मञ्, 'कारितस्यानामिड्विकरणे' (कात.३/६/४४) सूत्र से कारितलोप, ज् अनुबन्ध से इज्वद्भाव के कारण दीर्घ, विभक्तिकार्य, जाल्मः । मूर्ख ।

जाल्मः स्यात् पामरे कूरेऽसमीक्ष्यकारिणि त्रिषु (मेदिनी.मान्त.१०९) ।
जडो जाल्मश्च निर्बुद्धौ । (वैज.को.६/४/६) ।

३९३. क्लिशोः कोरो ललोपश्च । ६-६२।

क्लिशोः कोरप्रत्ययो भवति ललोपश्च । 'क्लिशू विबाधने'
क्लिश्यत इति किशोरः बालोऽश्वः । कानुबन्धत्वादगुणत्वम् ।

क्लिश् घातु से कोर प्रत्यय होता है । क्लिश् में ल् का
लोप भी होता है । कोर में क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से
घातु को गुण का निषेध होता है ।

किशोरः क्लिशू विबाधने (दि.आ.१०४, उपतापे) क्लेश या दुःख देना,
दुःख सहन करना । क्लिश्यते । क्लिश्+कोर, ल् का लोप, क्
अनुबन्ध को यण्वद्भाव तथा गुणनिषेध, विभक्तिकार्य, किशोरः ।
अश्व-शावक । तरुण । किशोरस्तरुणावस्थे हयशावकसूर्ययोः
(वि.प्र.को.रान्त.१९५) ।

तु.- किंपूर्वस्य शृणातेष्टिलोपः किमोऽन्त्यलोपः, ओरप्रत्ययः किशोरः
(वै.सि.कौ.उ१/६५) ।

३९४. उपेरधिः । ६-६३।

उपेरधिप्रत्ययो भवति । 'उष दाहे' उपतीति^१ (ओषति)
ओषधिः भेषजम् ।

उष् घातु से अधि प्रत्यय होता है ।

ओषधिः उष दाहे (भू.२२९) । जलाना । ओषति । उष्+अधि,
धातुघटक उकार को ओकार, विभक्तिकार्य, ओषधिः । भेषज । दवा ।

१. उष् घातु के भौवादिक मात्र होने से 'ओषति' रूप होगा ।

३९५. कनेरुटो मकिश्च ।६-६४।

कनेरुटप्रत्ययो भवति धातोः मकिरादेशश्च । 'कनी गत्यादिषु' कनतीति मकुटः शेखरः ।

कन् धातु से उट प्रत्यय होता है तथा धातु को मकि आदेश भी होता है ।

मकुटः कनी गत्यादिषु (भू.१५४) । कनति । कन्+उट, कन् के स्थान में मकि आदेश, विभक्तिकार्य, मकुटः । शेखर । मुकुट ।

किरीटं मकुटोऽस्त्रियाम् (वैज.को.४/३/१३५) ।

३९६. सुखेः को मुखिश्च ।६-६५।

सुखेः कः प्रत्ययो भवति धातोः मुखिश्च । इकार उच्चारणार्थः । 'सुख दुःख तत्क्रियायाम्' चौरादिः । सुखयति अन्नादिखादनेनेति मुखं वक्त्रम् । कानुबन्धः, तेनागुणत्वम् ।

सुख् धातु से क प्रत्यय होता है तथा धातु के स्थान में 'मुखि' आदेश होता है । 'मुखि' में इकार उच्चारणार्थ प्रयुक्त है । 'मुख' अवशिष्ट रहता है । 'क' प्रत्ययस्थ क् अनुबन्ध के यण्वद्भावार्थ होने से धातु को गुण का निषेध होता है ।

मुखम् सुख तत्क्रियायाम् (चु.२३७) । सुखी करना, आनन्दित करना । सुखयति अन्नादिखादनेन (जो अन्न आदि के भक्षण से सुखी करता है) । सुख्+क, सुख् के स्थान में मुख् आदेश, क् अनुबन्ध से यण्वद्भाव के कारण गुण का निषेध, विभक्तिकार्य, मुखम्^१ । वक्त्र । मुँह । उपाय । श्रेष्ठ । प्रारम्भ, अग्र ।

१. मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि ।

सन्ध्यन्तरे नाटकादेः शब्देऽपि च नपुंसकम् ॥ (मेदिनी.खान्त.३) ।

डित्खनेर्मुट् स चोदात्तः (वै.सि.कौ.उ.५/६९८) ।

३९७. महेर्हस्य घः ।६-६६।

महेः कः प्रत्ययो भवति, हस्य घत्वं च । 'अर्हं मह पूजायाम्' महतीति मघा नक्षत्रम् ।

मह धातु से क् प्रत्यय होता है तथा ह के स्थान में घ् आदेश होता है ।

मघा मह पूजायाम् (भू.२५०) । पूजा करना । महति । मह+क, ह को घ्, क् अनुबन्ध का अप्रयोग, स्त्री. में आ प्रत्यय, सि, 'श्रद्धायाः सिलोपम्' (कात.२/१/३७) से सि का लोप, मघा । नक्षत्र । अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में दसवाँ नक्षत्र । मघा मघी च नक्षत्रे धान्यभेदे यथाक्रमम् (मेदिनी.घान्त.९) ।

तु.- मघेरन् नलोपश्च (श्वेत.५-७६) ।

३९८. मुहेर्गुणश्च ।६-६७।

मुहेः कः प्रत्ययो भवति । हस्य घः । गुणत्वम् । 'मुह वैचित्ये' मुह्यतीति मोघः विफलः ।

मुह धातु से क प्रत्यय होता है । मुह में ह को घ् होता है । यद्यपि प्रत्ययस्थ क् अनुबन्ध से गुण का निषेध होता है, तथापि सूत्रनिर्देश से यहाँ गुण होता है ।

मोघः मुह वैचित्ये (दि.३७) । बुद्धिभ्रष्ट होना, मोहित करना । मुह्यति । मुह+क, क् अनुबन्ध से धातु को गुणनिषेध होने पर भी सूत्रस्थ गुण-निर्देश से मुह में उकार को ओकार गुणादेश, ह को घ्, विभक्तिकार्य, मोघः । विफल । निष्फल । व्यर्थ । मोघा स्त्री पाटलायां स्याद्धीननिष्फलयोस्त्रिषु (मेदिनी.घान्त.४) ।

३९९. सावमेरिन् दीर्घश्च । ६-६८।

सावुपपदे अमेर्धातोः इन्प्रत्ययो भवति दीर्घश्च । 'अम गतौ' सुपूर्वः । शोभनममति स्वामी प्रभुः । 'इन्हन्पूषा' इत्यादिना सौ दीर्घः ।

शब्दानामानन्त्याद् व्युत्पत्तिर्दृश्यते येषाम् ।
तेषां विज्ञैः कार्य्या मृग्या धातोः ततः प्रत्ययान्ताम्^१(?) (त्) ॥

॥ इति दौर्गसिंहा(सिंहा)मुणादिवृत्तौ षष्ठः पादः समाप्तः ॥

सु के उपपद में रहने पर अम् धातु से इन् प्रत्यय तथा धातु को दीर्घ होता है ।

स्वामी अम गतौ (भू.१६०) । शोभनम् अमति (जो अच्छी तरह से व्यवहार करता है) सु अम्+इन्, 'वमुवर्णः' (कात.१/२/९) इस सूत्र से सु-घटक उकार को वकार, प्रकृत सूत्र से 'अम्' को दीर्घदिश, लिङ्गसंज्ञा, सि, 'इन-हन्-पूषार्यम्णां शौ च' (कात.२/२/२१) इस सूत्र से दीर्घदिश, 'लिङ्गान्तनकारस्य' (कात.२/३/५६) से नकार का लोप, 'व्यञ्जनाच्च' (कात.२/१/५३) से सिलोप, स्वामी । प्रभु । ईश्वर, पति, नायक, नेता, समर्थ । राज्य का अङ्ग^२ ।

स्वामिनैश्वर्ये (अ.५/२/१२६) स्व+आमिनच् ।

१. 'प्रत्ययान्ताम्' यह पाठ शुद्ध नहीं है । इसके स्थान पर 'प्रत्ययान्तात्' ऐसा पाठ शुद्ध होगा । मान्या के स्थान मृग्या पाठ उचित प्रतीत होता है ।
२. स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च । राज्याङ्गानि प्रकृतयः (अ.को.२/८/१७) ।

पादः]

कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः

357

शब्दानामानन्त्यादिति- शब्दों के अनन्त होने के कारण जिन शब्दों की व्युत्पत्ति देखी जाती है, उनकी निष्पत्ति विद्वानों को धातु एवं प्रत्यय से माननी चाहिए ।

(दुर्गासिंह कृत उणादि वृत्ति के षष्ठ पाद की हिन्दी-टीका समाप्त)

॥ इति कातन्त्रोणादिसूत्रवृत्तिः ॥

००~००

परिशिष्ट-(क)

उणादि-सूत्र-सूची

| | | | |
|--------------------------|------|--------------------------|------|
| अहे रिः | ५-३१ | अर्तेरुश्च | ४-६७ |
| अगिश्रुश्रियुवहिभ्यो निः | ३-५० | अर्तेरु च | १-१२ |
| अङ्गिमदिमन्दिकडि० | ३-१९ | अवमह्योष्टिषः | १-२० |
| अङ्गेरुलः | ६-४८ | अविकम्बिभ्यामुः | ५-३५ |
| अङ्ग्यतिभ्यामुलीथी | ३-३० | अवितृस्तृत्तन्त्रिभ्य ईः | ३-३४ |
| अजिजन्यतिरशिपणिभ्यश्च | ४-६ | अवे भृजः | २-११ |
| अजिरादयः | १-२४ | अशिलटिखटि० | २-१ |
| अञ्जेरलिः | ३-४२ | अशेरीतिः | ५-४० |
| अतिचमिरभियुभ्योऽसः | ३-१० | अशेर्मकः | ६-५१ |
| अतेर्मन् दीर्घश्च | ६-५८ | अशेस्तोऽन्तश्च | ५-४४ |
| अतेस्त्रिः | ६-२७ | असिकुषिभ्यां सिक् | ६-५७ |
| अदि भुवो डुतः | ४-२५ | अहिकम्प्योर्नलोपश्च | ४-४ |
| अनुनासिकान्ताङ्गुः | १-३७ | आङि णिनिः | ४-४८ |
| अनेः शुः | ५-४८ | आङि वसेरथः | ३-८ |
| अनेहसोऽप्सरसोऽङ्गिरसः | ४-५८ | आङ्परयोः खनि० | १-१६ |
| अपष्ठ्वादयः | १-१५ | आप्नोतेः क्विप् ह्रस्वः | ६-४१ |
| अभावीशेः कुः | ५-१ | आशौ शुषेः सनिक् | ५-१५ |
| अमिनक्षिकडिभ्योऽत्रः | ३-५ | इः सर्वधातुभ्यः | ३-१४ |
| अमेः शुकः | ५-६६ | इणो दमक् तदश्च | ५-५१ |
| अमेर्धुः | ५-५६ | इणो यण्वत् | ३-२६ |
| अमेर्भोऽन्तश्च | ४-६६ | इण्जिकृषिभ्यो नक् | २-५१ |
| अर्चिशुचिहुसृपिच्छदि० | २-४४ | इण्भीकापाशल्यर्चि० | २-५७ |
| अर्तिहुसृक्षिणीपद० | १-५३ | इन्धियुधिश्श्याधूहिभ्यो० | १-५५ |
| अर्तेरलिः | ३-४१ | इल्वलपल्वलशुक्ल० | १-४६ |
| अर्तेरन्यः | ३-२ | इषिधृषिभिदिगृधि० | १-१० |

| | | | |
|------------------------------|-------|-----------------------|------|
| इषेः कीकः | २-६५ | कनिचनिध्यामकः | ६-४९ |
| इषेः सुक् | ३-३३ | कनेरुटो मकिश्च | ६-६४ |
| इष्यशिष्यां तकः | ३-२४ | कन्देररः | ६-२० |
| उडो मक् | ६-५६ | कपितमिमृणिपलिकुलि० | ५-१९ |
| उन्देः ककः | ६-३३ | कमिमनिजनिवसि० | १-२७ |
| उन्देरनो नलोपश्च | ६-३५ | कमेरठः | १-३९ |
| उपेगः (बं.सं. ^१) | १-१८ | कलेरङ्कः | ५-३४ |
| उम्पेरिक् द्विश्च | ६-४४ | कलेरशः | ६-३१ |
| उल्वादयः | ३-६२ | कलेरहः | ६-४३ |
| उषिकुषिगार्तिभ्यस्थः | ५-६३ | कलेरिङ्गः | ६-५४ |
| उषितृषिभ्यां कनः | ५-२५ | कषेरायः | ६-१६ |
| उषिरञ्जिशृभ्यो० यणवत् | ४-५९ | कायतेडीतिडिमौ | ५-५० |
| उषेरधिः | ६-६३ | किञ्जरयोः श्रिणभ्याम् | १-२ |
| उषेर्जश्च | ४-६१ | किरतेरूरो रत्वम् | ५-५८ |
| उष्ट्रः (बं.सं.) | ५-२४१ | किल्चिषाव्यथिषौ | १-२२ |
| ऊर्मिभूमिरश्मयः | ३-३२ | कीनाशाङ्कुशौ | ४-५२ |
| ऋकृतृवृज्यमि० | २-६० | कुडो ररक् | ३-१८ |
| ऋतृसृधृज० | २-४३ | कुटिजटिभ्यां किलः | ५-५३ |
| ऋपृवपिचक्षिजनि० | २-४६ | कुटेः कीरः | ६-२ |
| ऋषिवृषिभ्याम् | ३-१३ | कुटेर्मलः | ४-४३ |
| एतेरिज्वत् | २-४७ | कुटेष्टिमक् | ६-१५ |
| कचेश्छः | ४-२१ | कुणिपीङ्भ्यां कालः | १-४४ |
| कच्छ्वादयः | १-३४ | कुन्दादयः | ३-६४ |
| कठिचकिभ्यामोरः | ४-३७ | कुरेः करकः | ६-४० |
| कणेषः | १-४२ | कुलेः किशः | ६-५१ |

१. बं.सं. से तात्पर्य बङ्ग संस्करण है । इस ग्रन्थ के 'बङ्ग संस्करण' में जो अतिरिक्त सूत्र प्राप्त हुए उनका भी समावेश इस ग्रन्थ में है ।

| | | | |
|-------------------|------|-------------------|----------------|
| कुले टालेरिलुक् | ५-४७ | खर्जिकृपिमसि० | ३-६० |
| कूजेरिलो जः किश्च | ६-४६ | खलेरतिकः | ६-२९ |
| कृके वचो घुण् | १-४ | खलेरीनश्च | ६-७ |
| कृगृजागृभ्यः | ३-३७ | गण्डिमण्डिभ्याम्० | ३-१६ |
| कृजः पासः | ४-५४ | गमेरिनिः | ४-४७ |
| कृजादिभ्यो० | ४-१५ | गमेर्गः | ४-१९ |
| कृतिभिदिलतिभ्यो० | ३-२३ | गमेर्डोः | २-२८ |
| कृतृभ्यामीषः | ३-४६ | गमेर्धः | (बं.सं.) ५-२२४ |
| कृतेः स्नक् | ४-६८ | गमेश्छो० | ५-१८ |
| कृधुवाभ्यः सरक् | २-६२ | गृनाभ्युपधात्० | ३-१५ |
| कृपेः कणश्च | ५-१७ | ग्रसेरा च | १-५४ |
| कृपेरटः | ६-१३ | ग्लानुदिभ्यां डौः | २-२९ |
| कृवापाजिमिस्वदि० | १-१ | घर्मसीमा० | १-५६ |
| कृशृशलिगर्दि० | ३-१२ | घुणेर्डोः | ४-३८ |
| कृषिचमितनिधनि० | १-३१ | घृसिदूभ्यः क्तः | २-६७ |
| कृषेर्वृद्धिर्वा | ४-१४ | चतिकटशृवृज् | २-४८ |
| कृग्रो ऋत० | १-११ | चतिकटिवटिभ्यो० | ६-५० |
| कृतृकृपिभ्यः | ४-२२ | चतेर्वारिः | ४-४६ |
| कृपृवृज्निधाभ्यो० | २-३५ | चन्द्रे मातेः | ४-५७ |
| कृभूभ्यां कनः | ६-१४ | चरेरमः | ५-२७ |
| कृशृशौण्डिभ्यो० | ३-४८ | चिमिदिभ्याम् | ४-४० |
| केत्वादयः | १-२८ | छव्यादयः | ३-३८ |
| क्रिय इकः | २-२० | छादेर्नश्च | ४-६५ |
| क्लिशेः कोरो० | ६-६२ | छित्वरादयः | २-५० |
| क्षिपिष्ठविलिख० | ४-१२ | जटामर्कटौ | ३-५८ |
| क्षीरोशीरगभीर० | ३-४९ | जत्र्वादयः | ३-६६ |
| खञ्जेराकः | ३-३९ | जनिमनिदसि० | ४-१ |
| खण्डेर्गक् | ५-५२ | जनेर्धः | ४-२० |

परिशिष्ट-(क)

361

| | | | |
|----------------------|------|------------------------|-------|
| जलेर्मञ् | ६-६१ | दृवसिध्याम् | ४-१० |
| जर्ततातपलित० | २-६८ | दृगृध्यां भः | ३-२५ |
| जिविशिवसि० | ३-१७ | देविवठिभ्रमि० (बं.सं.) | ५-२३४ |
| जृवृध्यामूथः | ३-९ | द्यतेरिच्च | ६-३७ |
| ज्योतिरादयः | २-४५ | घावसिद्धिभ्यो नः | २-५३ |
| तनित्यजियजिभ्यो० | ५-४९ | घिषेर्न्यक् | ६-६० |
| तनेः कयः | २-२५ | घृज् षोऽन्तो० | १-५१ |
| तनोतेर्डवत् | ५-३२ | घिषेर्धिष च | २-३६ |
| तमेरूलज्० | ६-९ | धेन्वादयः | २-९ |
| तम्यमिजीनां दीर्घश्च | २-१६ | ध्वनेः क्षो दीर्घश्च | ६-२५ |
| तरतेरसुड् | ५-८ | नजि च नन्देः | २-३९ |
| तसेः करः | ६-३ | नजि जहातेः | २-४ |
| तिजेर्दीर्घश्च | ४-७० | नजि पतेर्यः | ६-३० |
| तिन्तिडीकादयः | २-६६ | नमिसमिध्यामज् | ६-४५ |
| तिमिरुधिमदिमन्दि० | १-२३ | नावञ्चेः | १-१४ |
| तृपतिध्यामङ्गः | ५-२२ | नियो ङानुबन्धश्च | २-४१ |
| तो दीर्घश्च | ५-२९ | नीदलिध्यां मिः | ३-३१ |
| त्रो दोऽन्तश्च | १-३२ | नीपादयः | २-५६ |
| दशेः कनिः | ५-३ | नीविः | ४-८ |
| दमेर्डोस् | २-३१ | नौतेरत्यनौ | ५-३७ |
| दरिद्रातेर्यालोपश्च | १-३३ | नौ सदि | २-४९ |
| दाभारिकृञ्भ्यो नुः | २-७ | न्युदोः शीङ्गाभ्याम् | २-१२ |
| दिवेः ऋन् | २-३८ | पञ्चेरनिः | ५-४३ |
| दिवेर्दिविः | ६-५३ | पञ्चेरालः | ५-१३ |
| दीधीङ्गो | ६-२६ | पटिकमिमुशि० | ६-१ |
| दुनोतेर्दीर्घश्च | ६-५ | पटिजटिभ्या० | ६-२२ |
| दूषेरिकः | ३-४५ | पटेरोलः | ५-५४ |
| दृणातेर्धुक् | ६-८ | पन्त्यसिवसि० | १-६ |

| | | | |
|------------------|----------------|--------------------------|------|
| पणिकितिभ्यामवक् | ५-२६ | भीशीङ्भ्यामानकः | २-६३ |
| पतिचण्डिभ्या० | १-४३ | (भुजिमृडोः) युक्त्युक्तौ | २-३४ |
| पतिवपिशुकि० | ६-४ | भूस्थाभ्याम्० | ४-४९ |
| पतेर्नीः | ५-६१ | भूस्वदिभ्यः० | ३-५३ |
| परमेष्ठी | ४-५० | भृजोऽतः | ३-६ |
| परौ व्रजेश्च | २-२४ | भृमृतृचरि० | १-५ |
| पर्जन्यपुण्ये | ३-४ | भृवमिकुभ्यः | ४-५१ |
| पतेराशः | ५-२१ | भ्रमेर्द्धः | २-३० |
| पातेः पः | २-५५ | भ्रस्जेः सलोपश्च | १-१३ |
| पातेरकः | ६-३४ | मकुरदर्दुर० | १-१८ |
| पातेर्दतिः | ३-५३ | मङ्गोः कघः | ६-५२ |
| पिशुनफाल्गुनौ | २-६१ | मङ्घेर्नलुगवन्तश्च | ५-४ |
| पीम्यो रुः | ३-६५ | मञ्जूषादयः | ३-५६ |
| पुरोवयःपयस्सु० | (बं.सं.) ५-२५७ | मडिकुडि० | ६-१९ |
| पुलिनलिबलि० | ६-६ | मदेः स्यः | ४-३२ |
| पुषो यण्वत् | ४-३५ | मद्यकिवासिमथि० | १-१७ |
| पूजो ह्रस्वश्च | ४-४१ | मद्यसि(श)वसि० | ४-३३ |
| पूषादयः | २-५ | मनिजनिनमाम् | १-८ |
| पृणातेः कुषः | ३-५४ | मन्यतेः किरत० | ४-३ |
| पृषिरञ्जिभ्याम्० | ३-७ | मनेरुष्यः | ६-१० |
| पृष्ठयूथप्रोथाः | २-१३ | मनेर्दीर्घश्च | ५-६५ |
| प्रथेरमः | ५-५९ | मयतेरूरोखौ | ६-४७ |
| प्रथेः ध्विन् | (बं.सं.) १-१० | महेर्हस्य घः | ६-६६ |
| प्रीजोऽङ्गुक् | ५-१२ | माङः सः | ५-६४ |
| बन्धेर्ब्रधिश्च | २-५२ | माच्छाशसिभ्यो यः | ४-२९ |
| बलाकादयः | ३-४० | मानेरुषः | ६-११ |
| बृहेः क्मानच्च० | ५-६ | मिथिलसिभ्यां कुनः | ५-९ |
| भियः सुरन्तो वा | १-५८ | मुदिगृभ्याम्० | १-४९ |

| | | | |
|--------------------|------|------------------------|----------------|
| मुरेर्धनिः | ५-३६ | रौते रुक् | ५-२४ |
| मुहेरुगूर्तकौ० | ५-४६ | लक्षेरीमो० | ३-३५ |
| मुहेर्गुणश्च | ६-६७ | लिशेः सक् | ६-२४ |
| मुहेर्धिक् हस्य गः | ६-३८ | वचिप्रच्छिन्नद्रु० | २-२३ |
| मुहेर्मुर् च | ४-१७ | वचेरालाटौ | ६-२८ |
| मुकादयः | २-५८ | वचेर्मिनिञ्० | ५-११ |
| मूषिकसीमिकौ | २-१९ | वचेः सो(षो)ऽन्तश्च | ४-६२ |
| मृकणिभ्यामीचिः | ३-४३ | वदेरान्यः | ५-१० |
| मृगृवाहस्यमि० | ४-२७ | वनिस्तस्य धः | ६-५९ |
| मृगोरुतिः | १-३० | वन्देस्त्रश्छादेशश्च | ६-४२ |
| मृडस्त्यः | ६-१२ | वरण्डादयः | १-३८ |
| मृदिकुरिभ्याम्० | ५-२३ | वलिमलि० | ६-१७ |
| यजेरुसिः | ५-४५ | वसेः(शेः) कनसिः | ४-५५ |
| यजेः शिर् च | ४-६० | वसेरिष्ठः | ६-५५ |
| यतेश्च | २-४० | वहलादिभ्य० | ३-५९ |
| यसिपनिभ्यां कः | ५-३० | वहिरहितलि० | १-३ |
| युजिरुचितिजाम्० | १-५७ | वहिवस्यमि० | ४-११ |
| युष्यसिभ्यां मदिक् | १-५२ | वातप्रमीः | ३-३६ |
| योरानुः | ३-६७ | वातेरायसः | (बं.सं.) २-१२५ |
| रज्जुतर्कुवल्गु० | १-९ | विटपादयः | ३-२१ |
| रमिकासिकुषि० | २-१० | वित्र्योः श्यतेर्डीति० | ५-३९ |
| राते रिफः | ६-२३ | विशेः कानः | ५-१६ |
| रातेर्डेः | २-२७ | वीपतिभ्याम्० | ३-२७ |
| रातेस्त्रिः | ३-४४ | वृजिनाजिनेरिण० | २-२२ |
| रास्नासास्ना० | २-५४ | वृज एण्यः | ३-१ |
| रुचिभुजिभ्याम्० | ४-३१ | वृत्वदिहनि० | ४-५३ |
| रुहिह्रया० | ४-२६ | वृतेस्तिकः | ३-२२ |
| रुहेर्वृद्धिश्च | १-२१ | वृश्चिकृषिभ्याम्० | २-१८ |

| | | | |
|--------------------------|-------|-------------------|------|
| वृषितक्षिराजि० | २-३ | शृणातेरावः | ६-१८ |
| वृषलादयः | १-४१ | शृदृभ्यामदिः | १-५० |
| वे(ओ डिः) | ४-७ | शृवसिवपिराजि० | ४-५ |
| वेतसवाहस० | ३-११ | श्याहजव० | २-२१ |
| वौ धाजश्च० | ५-२ | श्रुवश्चिक् | ४-४५ |
| व्रश्चेः सक् | ४-४४ | श्लषेरितोऽच्च | ४-६९ |
| व्रियो हिः० | ५-१४ | सख्यादयः | ४-९ |
| शकादिभ्योऽटः | ३-५७ | सचेः लिलश्च | ६-३९ |
| शकिशमिवहि० | १-४० | सञ्ज्यसिभ्याम्० | ३-२८ |
| शङ्केरुन्युन्तौ | २-५९ | सन्ध्यादयः | ४-३० |
| शमिकमिभ्याम्० | ५-६२ | सपेस्तिततितनः | ५-३८ |
| शमेर्दतः | ५-४२ | सर्तेरपष्पो० | ३-२० |
| शमेः खः | ४-१६ | सर्तेरयूः | २-३२ |
| शमेर्दः | ४-२३ | सर्तेर्गोऽन्तश्च | ५-२० |
| शमेर्दः | १-३६ | सर्तेर्वः | ३-६१ |
| शर्वीजिह्वा० | २-२ | सर्वधातुभ्यः | ४-३९ |
| शलिमण्डि० | १-२५ | सर्वधातुभ्यो मन् | ४-२८ |
| शविकमिभ्यां दः | ३-६३ | सर्वधातुभ्योऽसुन् | ४-५६ |
| शिखा | ४-१८ | सहेरस्रम् | ५-४१ |
| शिङ्घेराणकः | २-६४ | सहेरुरिः | ५-५५ |
| शिरीषादयः | ३-४७ | सहेः षष्० | ५-५ |
| शीङो धुक् | २-३३ | सारेरङ्गः | १-४७ |
| शीङः फोऽन्तश्च | ४-६४ | सारेरधिः | ३-२९ |
| शीङो वालवलजौ | १-४५ | सावमेरिन्० | ६-६८ |
| शूद्रादयः | २-१७ | सावशेराप्तौ | १-१९ |
| शृङ्गभृङ्गाङ्गानि | १-४८ | सितनिगमि० | १-२६ |
| शृङ्गारभृङ्गार० (बं.सं.) | ३-१५१ | सिनोतेर्नः | ६-३६ |
| शृणातेः करः | ४-३४ | सिनोतेर्मो० | ५-२८ |

| | | | |
|-----------------------|-------|-----------------------|-------|
| सिर्मनन्तश्च | ४-४२ | स्वस्रादयः | २-४२ |
| सुखेः को मुखिश्च | ४-४२ | स्वभृभ्यां गः | ५-६० |
| सुसूधाञ्गृधि० | २-१५ | हनेर्जघश्च | २-३७ |
| सूचेः स्मः | ४-२४ | हन्तेरङ्घश्च (बं.सं.) | ४-२११ |
| सूचेश्चकः (बं.सं.) | २-१२६ | हन्तेरूपः | ३-५५ |
| सूविषिभ्यां यण्वत् | २-८ | हृकृञ्भ्यामेणुः | २-६ |
| सृणिवेणिवृष्णि० | ३-५१ | हजष्ठीतकन् | ६-३२ |
| सृपिकपिललिभ्य | ५-७ | हजो दोऽन्तश्च | २-२६ |
| सृ(शृ)णातेः पक् | ५-३३ | हजो म्यः | ५-६७ |
| स्तनिहृषिपुषि० | १-२९ | हसृतडिरुहि० | १-३५ |
| स्तृणातेर्ङ्गट् | ४-३६ | हो द्वे च | ४-१३ |
| स्पृहेराय्यः | २-६९ | हो हिरश्च | ३-३ |
| स्फायितञ्चि | २-१४ | हसेर्वः | ५-५७ |
| स्यन्देः सम्प्रसारणम् | १-७ | हीकृशिभ्याम्० | ४-२ |
| स्युरीभ्याम्० | ४-६३ | | |

परिशिष्ट-(ख)

उणादिप्रत्यय-सूची

| | | | |
|------------|--------------------|------------|---------------------|
| १. अक | ३-३९, ४० | २६. अर | ६-२० (बं.सं. ५-२३४) |
| २. अङ्क | ५-३४ | २७. अल | १-४०, ४१, ६-१९ |
| ३. अङ्ग | १-४७, ४८, ५-२२, २३ | २८. अलि | ३-४२ |
| ४. अङ्गुक् | ५-१२ | २९. अलिज् | ६-२२ |
| ५. अज् | ६-४५ | ३०. अवक् | ५-२६ |
| ६. अट | ३-५७, ५८, ६-१३ | ३१. अश | ६-३१ |
| ७. अठ | १-३९ | ३२. अस | ३-१०, ११ |
| ८. अत | ३-६, ७ | ३३. असुट् | ५-८ |
| ९. अति | ४-११, ५-३७ | ३४. असुन् | ४-५६ से ६७ |
| १०. अतिक | ६-२९ | ३५. अस्रम् | ५-४१ |
| ११. अलि | ३-४१ | ३६. अह | ६-४३ |
| १२. अत्र | ३-५ | ३७. आगू | ३-६७ |
| १३. अथ | ३-८ | ३८. आट | ६-२८ |
| १४. अथि | ३-२९ | ३९. आटक् | ५-७ |
| १५. अदि | १-५०, ५१ | ४०. आणक | २-६४ |
| १६. अधि | ६-६३ | ४१. आनक | २-६३ |
| १७. अन | ६-३५ | ४२. आनुक् | ४-२ |
| १८. अनि | २-४३, ५-४३, ४४ | ४३. आन्य | ५-१० |
| १९. अन् | ५-३७ | ४४. आय | ६-१६ |
| २०. अन्य | ३-२, ३, ४ | ४५. आयस | (बं.सं.) २-१२५ |
| २१. अप | ३-२०, २१ | ४६. आय्य | २-६९ |
| २२. अभ | ३-१२, १३ | ४७. आर | ३-१९ |
| २३. अम | ५-२७, ५-५९ | ४८. आल | ५-१३, ६-२८ |
| २४. अय | ६-१७ | ४९. आलज् | १-४३ |
| २५. अयू | २-३२ | ५०. आव | ६-१८ |

परिशिष्ट-(ख)

367

| | | | |
|-----------|-------------------------|-----------------|------------|
| ५१. आश | ५-२१ | ७८. उण् | १-१ से ३ |
| ५२. इ | ३-१४ | ७९. उति | १-३० |
| ५३. इक् | २-२०, ३-४५ | ८०. उन्न | ३-५९ |
| ५४. इक् | ६-४४ | ८१. उन | २-६०, ६१ |
| ५५. इङ्ग | ६-५४ | ८२. उनि | २-५९ |
| ५६. इञ् | ४-५, ६ | ८३. उन्ना | २-५९ |
| ५७. इत | ४-२६ | ८४. उर | १-१७ से १९ |
| ५८. इति | १-३५ | ८५. उरि | ५-५५ |
| ५९. इत्तु | १-२९ | ८६. उल | ६-४८ |
| ६०. इत्र | ३-५९ | ८७. उलि | ३-३० |
| ६१. इथि | ३-३० | ८८. उष | ६-११ |
| ६२. इन | २-२१, २२ | ८९. उष्य | ६-१० |
| ६३. इनि | ४-४७ | ९०. उसि | ५-४५ |
| ६४. इन् | ६-६८ | ९१. उस् | २-४६, ४७ |
| ६५. इफ | ६-२३ | ९२. ऊ | १-३१ से ३४ |
| ६६. इल | ६-४६ | ९३. ऊकञ् | १-२५ |
| ६७. इष्ठ | ६-५५ | ९४. ऊख | ६-४७ |
| ६८. इसि | २-४४, ४५ | ९५. ऊथ | ३-९ |
| ६९. ई | ३-३४ से ३६ | ९६. ऊर | ३-६०, ५-५८ |
| ७०. ईचि | ३-४३ | ९७. ऊर्तक् | ६-४६ |
| ७१. ईति | ५-४० | ९८. ऊल | ३-६० |
| ७२. ईन | ६-७ | ९९. ऊलञ् | ६-९ |
| ७३. ईर | ३-४८, ४९ | १००. ऊष | ३-५५, ५६ |
| ७४. ईष | ३-४६, ४७ | १०१. ऋन् (वुन्) | २-३८ से ४२ |
| ७५. उ | १-५ से ९, ५-३५, ६-५० | १०२. एण् | २-६ |
| ७६. उक् | ५-४६ | १०३. एण्य | ३-१ |
| ७७. उट | ६-६४ | १०४. ओर | ४-३७ |
| | | १०५. ओल | ५-५४ |

| | | | |
|----------------------------|-----------------------|-------------|------------------|
| १०६. क | २-५७, ५८, ५-३० | १३३. कोर | ६-६२ |
| १०७. क | ६-६५. से ६७ | १३४. क्त | २-६७, ६८ |
| १०८. कक | ६-३३, ६-४० | १३५. क्ति | ४-१० |
| १०९. कण | ५-१७ | १३६. क्थि | ३-२८ |
| ११०. कध | ६-५२ | १३७. क्न | ५-२५ |
| १११. कन | ६-१४ | १३८. क्मान् | ५-६ |
| ११२. कनसि | ४-५५ | १३९. क्रि. | ३-५३ |
| ११३. कनि | २-३ से ५, ५-३ से ५ | १४०. क्व | २-१, २ |
| ११४. कय | २-२५, २६ | १४१. क्वि | ३-३७, ३८ |
| ११५. कर | ४-३४, ३५, ६-३ | १४२. क्विप् | २-२३, २४, ६-४१ |
| ११६. कल | ६-१ | १४३. ख | ४-१६ से १८ |
| ११७. कान | ५-१६ | १४४. ग | १-४९, ४-१९, ५-६० |
| ११८. काल | १-४४, ५-१९, २० | १४५. गक् | १-४९, ५-५२ |
| ११९. कि | ३-१५, ४-३, ४ | १४६. घ | ४-२० |
| १२०. किक | २-१८, १९ | १४७. घक् | ६-८ |
| १२१. किन | ६-६, ७ | १४८. घुण् | १-४ |
| १२२. किर | १-२३, २४ | १४९. घमक् | १-५७, ५८ |
| १२३. किल | ५-५३ | १५०. डिति | ६-२६ |
| १२४. किश | ६-२१ | १५१. चिक् | ४-४५ |
| १२५. किष्य | ४-३१ | १५२. छ | ४-२१, ५-१८ |
| १२६. कीक | २-६५, ६६ | १५३. झ | ३-१६, १७ |
| १२७. कीट | ४-२२ | १५४. टत् | ४-३६ |
| १२८. कीर | ६-२ | १५५. टिमक् | ६-१५ |
| १२९. कु १-१० से १५, ५-१, २ | | १५६. टिष | १-२० से २२ |
| १३०. कुक् | ४-२ | १५७. टीतकन् | ६-३२ |
| १३१. कुन | ५-९ | १५८. ट्वर | २-४८ से ५० |
| १३२. कुष | ३-५४ | १५९. ठ | १-४२ |
| | | १६०. ड | ४-२३, १-३७, ३८ |

| | | | |
|-----------|----------------|------------|---------------|
| १६१. ड | ५-४७ | १८९. त्यक् | २-३४ |
| १६२. डत | ५-४२ | १९०. त्र | ६-४२ |
| १६३. डति | ३-५२, ५-३९, ५० | १९१. त्रक् | ४-४०, ४१ |
| १६४. डत् | ५-३९ | १९२. त्रि | ३-४४, ६-२७ |
| १६५. डदि | ५-४९ | १९३. थ | ५-६३ |
| १६६. डि | ४-७ से ९ | १९४. थक् | २-१० से १३ |
| १६७. डिम् | ५-५० | १९५. द | ३-६३, ६४ |
| १६८. डिवि | ६-५३ | १९६. दमक् | ५-५१ |
| १६९. डु | १-१६ | १९७. धः | (बं.सं.) ५-२४ |
| १७०. डुत | ४-२५ | १९८. धक् | ६-३८ |
| १७१. डू | २-३० | १९९. धनिः | ५-३६ |
| १७२. डै | २-२७ | २००. धु | ५-५६ |
| १७३. डो | २-२८ | २०१. धुक् | २-३३ |
| १७४. डोर | ४-३८ | २०२. न | २-३५ से ३७. |
| १७५. डोस् | २-३१ | | ६-३६, ३७ |
| १७६. डौ | २-२९ | २०३. नक् | २-५१, ५२ |
| १७७. ढ | १-३६ | २०४. नि | ३-५०, ५१ |
| १७८. णिनि | ४-४८ से ५० | २०५. नी | ५-६१ |
| १७९. त | ४-२७, ५-२९ | २०६. नु | २-७ |
| १८०. तक | ३-२४ | २०७. न्यक् | ६-६० |
| १८१. तति | ५-३८ | २०८. प | २-५५, ५६ |
| १८२. तद् | ५-५१ | २०९. पक् | ५-३३ |
| १८३. तन | ३-२७ | २१०. पास | ४-५४ |
| १८४. तन् | ५-३८ | २११. ब | ३-६२ |
| १८५. ति | ५-३८ | २१२. बल | ५-६२ |
| १६६. तिक | ३-२२, २३ | २१३. भ | ३-२५, २६ |
| १८७. तुन् | १-२६ से २८ | २१४. म | १-५३, ५४ |
| १८८. त्य | ६-१२ | २१५. मक् | ६-५१ |

| | | | | | |
|------|--------|----------------------|------|---------|----------------|
| २१६. | मक् | १-५५, ५६, ६-५६ | २३७. | वाल | १-४५ |
| २१७. | मञ् | ६-६१ | २३८. | वु | ४-१६ |
| २१८. | मदिक् | १-५२ | २३९. | वुक् | ४-१२ से १४ |
| २१९. | मन् | ४-२८, ६-५८ | २४०. | शक् | ४-५१, ५२ |
| २२०. | मल | ४-४३ | २४१. | शु | ५-४८ |
| २२१. | मि | ३-३१, ३२ | २४२. | शुक् | ५-६६ |
| २२२. | मिनिञ् | ५-११ | २४३. | ष्ट्रन् | ४-३९ |
| २२३. | म्य | ५-६७ | २४४. | ष्विन् | (बं.सं.) १-१० |
| २२४. | य | ४-२९, ३०, ६-३० | २४५. | स | ४-५३, ५-६४, ६५ |
| २२५. | यु | ४-१ | २४६. | सक् | ४-४४, ६-२४ |
| २२६. | युक् | २-३४ | २४७. | सनिक् | ५-१५ |
| २२७. | रक् | २-१४ से १७ ६-४, ५ | २४८. | सर | ४-३३ |
| २२८. | ररक् | ३-१८ | २४९. | सरक् | २-६२ |
| २२९. | रि | ५-३१, ३२ | २५०. | सि | ४-४२ |
| २३०. | रु | ३-६५, ६६ | २५१. | सिक् | ६-५७ |
| २३१. | रुक् | ५-२४ | २५२. | सुक् | ३-३३ |
| २३२. | लिल | ६-३९ | २५३. | स्नक् | ४-६८ से ७० |
| २३३. | व | ५-५७ | २५४. | स्म | ४-२४ |
| २३४. | वनि | ६-५९ | २५५. | स्य | ४-३२ |
| २३५. | वलञ् | १-४५, ४६ | २५६. | हक् | ५-२८ |
| २३६. | वार | ४-४६ | २५७. | हि | ५-१४ |
| | | | २५८. | क्ष | ६-२५ |

परिशिष्ट-(ग)

औणादिक-शब्द-सूची

| | पाद | पृ० | | पाद | पृ० |
|-----------------|------|-----|-------------|------|--------|
| अंशुः | ५-४८ | ३०९ | अतसी | ३-१० | १६६-६७ |
| अंशुकः | ५-६६ | ३१९ | अतिथिः | ३-३० | १८८-८९ |
| अंहतिः (बं.सं.) | ४-११ | २३१ | अत्रिः | ६-२७ | ३३६ |
| अग्निः | ३-५० | २०३ | अद्भुतम् | ४-२५ | २४१ |
| अग्रम् | ६-४ | ३२४ | अग्निः | ३-५३ | २०७ |
| अङ्कुरः | १-१७ | ३२ | अघमः | १-५६ | ७९ |
| अङ्कुशः | ४-५२ | २६४ | अध्वर्युः • | १-१५ | ३० |
| अङ्गम् | १-४८ | ७१ | अध्वा | ६-५९ | ३५१ |
| अङ्गारः | ३-१९ | १७९ | अनेहा | ४-५८ | २७१ |
| अङ्गिराः | ४-५८ | २७२ | अन्तः | ४-२७ | २४३ |
| अङ्गुलः | ६-४८ | ३४६ | अन्दुः • | १-३४ | ५५ |
| अङ्गुलिः | ३-३० | १८८ | अन्धूः | ५-५६ | ३१४ |
| अङ्घ्रिः | ५-३१ | ३०१ | अपत्यम् | ६-३० | ३३७ |
| अजिनम् | २-२२ | ११२ | अपष्ठु | १-१५ | २८ |
| अजिरम् | १-२४ | ३८ | अप्सरसः | ४-५८ | २७२ |
| अञ्जलिः | ३-४२ | १९८ | अब्दः | ३-६४ | २१७ |
| अणुः | १-६ | १७ | अभीषुः | ५-१ | २८२ |
| अण्डम् (बं.सं.) | १-३७ | ६१ | अमका • | ४-१५ | २३६ |

(बं.सं.) इस सङ्केत से अङ्कित शब्द बं.सं. अर्थात् बङ्ग-संस्करण से इस सूची में उद्धृत है । इस ग्रन्थ के बङ्ग-संस्करण में जो इससे अतिरिक्त शब्द प्राप्त होते हैं, उन शब्दों की सिद्धि भी इस ग्रन्थ में की गई है ।

- इस चिह्न से निर्दिष्ट शब्द इस ग्रन्थ के मूल भाग में असंगृहीत हैं, किन्तु अन्य उणादि ग्रन्थों में सम्बद्ध प्रत्यय स्थल पर संगृहीत हैं । अतः केवल अर्थ निर्देश के साथ (बिना साधनिका) हिन्दी टीका में अन्य उणादि ग्रन्थों से उन्हें यहाँ दिखाया गया है । इस सूची में • इस चिह्न से अङ्कित ऐसे अनेक शब्द हैं ।

| | | | | | |
|---------------|------|-----|------------|------|-----|
| अमनिः | ४-११ | २३१ | अविषः | १-२० | ३५ |
| अमत्रम् | ४-३९ | २५५ | अविः | ३-१४ | १७३ |
| अमत्रम् | ३-५ | १६३ | अवीः | ३-३४ | १९९ |
| अमित्रः ● | ३-५९ | २१२ | अव्यथिषः | १-२२ | ३६ |
| अम्बरीषः | ३-४७ | २०१ | अशनिः | २-४३ | १३० |
| अम्बु | ५-३५ | ३०३ | अशित्रम् ● | ३-५९ | २१२ |
| अम्भः | ४-६६ | २७७ | अशिरः ● | १-२४ | ४० |
| अयः | ४-५६ | २६९ | अशीतिः | ५-४० | ३०६ |
| अरणिः | २-४३ | १२९ | अश्मकाः | ६-५१ | ३४७ |
| अरण्यम् | ३-२ | १६१ | अश्रिः | ४-९ | २२९ |
| अरत्तिः | ३-४१ | १९७ | अश्वः | २-१ | ८२ |
| अरुणः | २-६० | १५० | अष्टका | ३-२४ | १८५ |
| अरुः | २-४६ | १३४ | अष्टन् | ५-४४ | ३०७ |
| अर्कः | २-५७ | १४६ | असवः | १-६ | १५ |
| अर्चिः | २-४४ | १३१ | असुरः | १-१८ | ३३ |
| अर्जुनः | २-६० | १५१ | अस्थि | ३-२८ | १८७ |
| अर्थः | ५-६३ | ३१८ | अस्मत् | १-५२ | ७३ |
| अर्भकः | २-५८ | १४८ | अहः | २-४ | ८६ |
| अर्मः | १-५३ | ७४ | अहिः | ४-४ | २२३ |
| अर्यमा | २-५ | ८७ | अक्षः | ४-५३ | २६६ |
| अलकम् ● | ४-१५ | २३५ | अक्षरम् | ४-३३ | २४९ |
| अलाबूः | १-३४ | ५४ | अक्षि | ६-५७ | ३५० |
| अलीकम् ● | २-६६ | ११७ | आखुः | १-१६ | ३० |
| अवटः | ३-५७ | २१० | आगन्तुः | १-२६ | ४२ |
| अवनिः | २-४३ | १३० | आगामी | ४-४८ | २६१ |
| अवभृथः | २-११ | ९६ | आजिः | ४-६ | २२६ |
| अवसथः (बं.सं) | ३-८ | १६६ | आटरुषः | ३-५६ | २०९ |
| अविनः | २-२१ | १११ | आडूः | १-३४ | ५४ |

| | | | | | |
|-------------|------------|-----|-----------------|------|-----|
| आतिः | ४-६ | २२७ | उद्गीथः | २-१२ | १७ |
| आत्मा | ६-५८ | ३५१ | उद्गः | २-१४ | १०१ |
| आपः | ६-४१ | ३४२ | उपगुः (बं.सं.) | १-१८ | ३१ |
| आप्तुः | १-२८ | ४७ | उपवसथः (बं.सं.) | ३-८ | १६८ |
| आग्रः | २-१६ | १०५ | उमा | ६-५६ | ३४९ |
| आयुः | २-४७ | १३५ | उरः | ४-६७ | २७८ |
| आवसथम् | ३-८ | १६५ | उरुः | १-१२ | २५ |
| आशु | १-१ | ८ | उलपः | ३-२१ | १८२ |
| आशुशुक्षणिः | ५-१५ | २९१ | उल्बम् | ३-६२ | २१५ |
| इदम् | ५-५१ | ३११ | उशना | ४-५५ | २६७ |
| इधम् | १-५५ | ७७ | उशीरम् | ३-४९ | २०२ |
| इनः | २-५१ | १३९ | उषपः | ३-२१ | १८३ |
| इन्दुः | १-६ | १६ | उषः | ४-५९ | २७२ |
| इन्द्रः | २-१४ | १०१ | उष्ट्रम् | ४-३९ | २५५ |
| इभः | ३-२६ | १८६ | उष्णः | ५-२५ | २९७ |
| इरा | २-१७ | १०७ | उक्षा | २-५ | ८८ |
| इरिणम् | २-२२ | ११२ | ऊरुः | १-१२ | २६ |
| इला | २-१७ | १०७ | ऊर्मिः | ३-३२ | १९० |
| इल्वलाः | १-४६ | ६८ | ऊष्मा● | ४-२८ | २४४ |
| इषिरः● | १-२४ | ४० | ऋजीषम् | ३-४७ | २०१ |
| इषीका | २-६५ | १५५ | ऋतुः | १-२८ | ४६ |
| इषुः | १-१० | २३ | ऋषभः | ३-१३ | १७१ |
| इष्टका | ३-२४ | १८५ | एकः | २-५७ | १४५ |
| इक्षुः | ३-३३ | १९० | एतद् | ५-५१ | ३११ |
| ईर्ष्युः● | १-१५ | ३० | एघतुः | १-२८ | ४७ |
| उक्थम् | २-१० | ९५ | ओजः | ४-६१ | २७४ |
| उग्रः | २-१७ | १०६ | ओतुः | १-२६ | ४२ |
| उदकम् | ६-३३३३८-३९ | | ओदनम् | ६-३५ | ३३९ |

| | | | | | |
|-----------|------|-----|------------|------|-----|
| ओषधिः | ६-६३ | ३५३ | कमठः | १-३९ | ६३ |
| ओष्ठः | ५-६३ | ३१७ | कमलम् | ६-१ | ३२० |
| कंसः | ४-५३ | २६६ | कम्बलः | ५-६२ | ३१७ |
| कचपम्● | ३-२१ | १८३ | कम्बुः | ५-३५ | ३०३ |
| कच्छः | ४-२१ | २३८ | कम्बूः | १-३४ | ५४ |
| कच्छूः | १-३४ | ५३ | करकम् | ४-१५ | २३५ |
| कटकः | ६-५० | ३४७ | करटः | ३-५७ | २१० |
| कटपूः | २-२३ | ११४ | करण्डः | १-३८ | ६२ |
| कटित्रम्● | ३-५९ | २१२ | करभः | ३-१२ | १६९ |
| कटुः | ६-५० | ३४७ | करम्बः● | ३-६२ | २१६ |
| कद्वरः | २-४८ | १३६ | करीरः | ३-४८ | २०२ |
| कठोरः | ४-३७ | २५३ | करीषः | ३-४६ | २०० |
| कडत्रम् | ३-५ | १६३ | करुणा | २-६० | १५० |
| कडारः | ३-१९ | १८० | करेणुः | २-६ | ९० |
| कणीचिः | ३-४३ | १९८ | कर्कन्धूः | १-३४ | ५४ |
| कण्ठः | १-४२ | ६५ | कर्करीकम्● | २-६६ | १५७ |
| कति | ५-५० | ३११ | कर्णः | २-३५ | १२१ |
| कदम्बः● | ३-६२ | २१६ | कर्पटम् | ६-१३ | ३२८ |
| कनकम् | ६-४९ | ३४६ | कर्पासः | ४-५४ | २६७ |
| कन्तुः | १-२७ | ४५ | कर्पूरः | ३-६० | २१३ |
| कन्दः | ३-६३ | २१६ | कर्म● | ४-२८ | २४४ |
| कन्दरः | ६-२० | ३३२ | कर्वरः● | २-५० | १३९ |
| कन्दुः | १-६ | १७ | कर्षूः | १-३१ | ५० |
| कपटः● | ३-५७ | २१० | कलङ्कः | ५-३४ | ३०२ |
| कपाटम् | ५-७ | २८६ | कललम् | १-४१ | ६४ |
| कपालम् | ५-१९ | २९३ | कलशः | ६-३१ | ३३८ |
| कपिः | ४-४ | २२४ | कलहः | ६-४३ | ३४३ |
| कफेलूः● | १-३४ | ५५ | कलिङ्गः | ६-५४ | ३४९ |

| | | | | | |
|-----------------|------|-----|-----------|------|-----|
| कल्कः | २-५७ | १४७ | कुटिलः | ५-५३ | ३१२ |
| कवकम्● | ४-१५ | २३६ | कुटीरम् | ६-२ | ३२१ |
| कविः | ३-१४ | १७२ | कुटुम्बम् | ३-६२ | २१६ |
| कषायः | ६-१६ | ३२९ | कुट्टिमम् | ६-१५ | ३२९ |
| कषीका● | २-६६ | १५७ | कुड्मलम् | ४-४३ | २५८ |
| कसेरुः | १-३४ | ५५ | कुणपः | ३-२१ | १८२ |
| कस्तूरः● | ३-६० | २१४ | कुणालः | १-४४ | ६६ |
| कक्षा | ४-५३ | २६६ | कुण्डम् | १-३७ | ६० |
| काकः | २-५७ | १४६ | कुण्डलम् | ६-१९ | ३३१ |
| काण्डः (बं.सं.) | १-३७ | ६१ | कुन्दः | ३-६४ | २१७ |
| कारुः | १-१ | ६ | कुमारयुः | १-१५ | २९ |
| कार्षकः | ४-१४ | २३४ | कुरकः | ६-४० | ३४२ |
| काष्ठम् | २-१० | ९४ | कुरङ्गः | ५-२३ | २९६ |
| कासूः | १-३४ | ५५ | कुररः | ३-१८ | १७८ |
| किंशारुः | १-२ | ९ | कुरुः | १-११ | २५ |
| किकिदीविः | ३-३८ | १९५ | कुलटा | ५-४७ | ३०९ |
| किङ्किणीका | २-६६ | १५६ | कुलालः | ५-१९ | २९४ |
| कितवः | ५-२६ | २९८ | कुलिशम् | ६-२१ | ३३२ |
| किम् | ५-५० | ३११ | कुशः | ४-५१ | २६३ |
| किरणः | ६-१४ | ३२८ | कुशलम् | ६-१ | ३२१ |
| किरीटः | ४-२२ | २३९ | कुष्ठम् | २-१० | ९४ |
| किल्बिषम् | १-२२ | ३६ | कुसूलः● | ३-६० | २१४ |
| किशोरः | ६-६२ | ३५३ | कुक्षिः | ६-५७ | ३५० |
| कीचकः● | ४-१५ | २३५ | कूपः | २-५६ | १४४ |
| कीनाशः | ४-५२ | २६३ | कृकवाकुः | १-४ | १२ |
| कीलालम् | ५-१९ | २९४ | कृणुः● | २-९ | ९३ |
| कुञ्जरः | ३-१९ | १८१ | कृत्तिकाः | ३-२३ | १८४ |
| कुटपः | ३-२१ | १८२ | कृत्तुः● | २-९ | ९३ |

| | | | | | |
|-----------|-------|-----|----------------|------------|-----|
| कृत्स्नम् | ४-६८ | २७८ | खर्जूरः | ३-६० | २१३ |
| कृपणः | ५-१७ | २९२ | खर्जूः | १-३१ | ५१ |
| कृपाणः | ५-१७ | २९२ | खलतिकः | ६-२९ | ३३८ |
| कृपीटः | ४-२२ | २३९ | खलिनम् | ६-७ | ३२५ |
| कृविः | ३-३७ | १९३ | खलीनम् | ६-७ | ३२५ |
| कृशानुः | ४-२ | २२२ | खष्पः ● | २-५६ | १४५ |
| कृषिः | ३-१५ | १७५ | खिदिरः ● | १-२४ | ४० |
| कृषिकः | २-१८ | १०८ | गङ्गा | ४-१९ | २३७ |
| कृष्णः | २-५१ | १३९ | गच्छः | ५-१८ | २९३ |
| कृसरा | २-६२ | १५२ | गण्डः ● | १-३७ | ६१ |
| केतुः | १-२८ | ४६ | गण्डयन्तः | ३-१६ | १७५ |
| केवलः | १-४१ | ६४ | गण्डूषम् | ३-५६ | २०९ |
| केवलयुः ● | १-१५ | ३० | गदयित्तुः | १-२९ | ४८ |
| कोकिलः | ६-४६ | ३४५ | गन्तुः | १-२६ | ४२ |
| कोरकम् ● | ४-१५ | २३५ | गन्धः (बं.सं.) | (५-२५४)२४० | |
| कोष्ठः | ५-६३ | ३१७ | गभीरः | ३-४९ | २०३ |
| क्रतुः | १-२८ | ४६ | गमी | ४-४७ | २६० |
| क्रयिकः | २-२० | ११० | गम्भीरः | ३-४९ | २०३ |
| क्रूरः | ५-५८, | ३१५ | गरुत् | १-३० | ५० |
| क्रोष्टुः | १-२६ | ४३ | गर्गः | १-४९ | ७१ |
| क्लेदा | २-५ | ८८ | गर्तः | ४-२७ | २४३ |
| खजाकः | ३-३९ | १९५ | गर्दभः | ३-१२ | १६९ |
| खज्ञपम् ● | ३-२१ | १८३ | गर्भः | ३-२५ | १८६ |
| खट्वा | २-१ | ८३ | गर्वरः ● | २-५० | १३९ |
| खडूः ● | १-३४ | ५५ | गह्वरम् | २-५० | १३८ |
| खड्गः | ५-५२ | ३१२ | गातुः ● | १-२८ | ४७ |
| खण्डम् | १-३७ | ५९ | गाथा | ५-६३ | ३१८ |
| खदिरः | १-२४ | ३९ | गिरिः | ३-१५ | १७४ |

| | | | | | |
|--------------------|------|--------|-----------|------|-----|
| गुरुः | १-११ | २५ | चण्डालः | १-४३ | ६६ |
| गूथम् | २-१० | ९५ | चतुरः | १-१७ | ३२ |
| गृधुः | १-१० | २४ | चत्वरम् | २-४८ | १३५ |
| गृध्रः | २-१५ | १०३ | चत्वारः | ४-४६ | २६० |
| गृहयुः ● | १-१५ | ३० | चनकः | ६-४९ | ३४६ |
| गृविः | ३-३७ | १९३ | चन्दिरः | १-२३ | ३७ |
| गोमयम् | ६-१८ | ३३० | चन्द्रः | २-१४ | १०१ |
| गोमायुः | १-१ | ७ | चन्द्रमाः | ४-५७ | २७१ |
| गौः | २-२८ | ११७ | चपेटा ● | ३-५७ | २१० |
| गौरः | २-१७ | १०७ | चमसम् | ३-१० | १६७ |
| ग्रन्थिः (ति.अनु.) | ३-१४ | १७३ | चमूः | १-३१ | ५० |
| ग्रहणिः | २-४३ | १३० | चरकः ● | ४-१५ | २३६ |
| ग्रामः | १-५४ | ७६ | चरमः | ५-२७ | २९८ |
| ग्रीवा | २-२ | ८४ | चरुः | १-५ | १३ |
| ग्रीष्मः | १-५६ | ७९ | चर्म ● | ४-२८ | २४४ |
| ग्लौः | २-२९ | ११८ | चषालः | १-४६ | ६९ |
| घर्मः | १-५६ | ७९ | चक्षुः | २/४६ | १३४ |
| घातिः | ४-५ | २२५ | चाटुः | १-१ | ९ |
| घृणिः | ३-१५ | १७५ | चारु | १-१ | ९ |
| घृतम् | २/६७ | १५८ | चित्रम् | ४-४ | २५६ |
| घोरम् | ४-३८ | २५३-५४ | चीवरम् | २-५० | १३८ |
| घोषयितुः (बं.सं.) | १-२९ | ४९ | चूर्णिः | ३-५१ | २०५ |
| चकोरः | ४-३७ | २५३ | चेतः | ४-५६ | २६९ |
| चक्रम् | ६-४ | ३२३ | च्युपः ● | २-५६ | १४५ |
| चञ्चरीकः ● | २-६६ | १५७ | छत्वारः | २-५० | १३७ |
| चटकः | ६-५० | ३४७ | छदिः | २-४४ | १३२ |
| चटुः | ६-५० | ३४७ | छद्म ● | ४-२८ | २४४ |
| चण्डः ● | १-३७ | ६१ | छन्दः | ४-६५ | २७६ |

| | | | | | |
|----------|------------|-----|----------|------|-----|
| छर्दिः | २-४४ | १३२ | जानुः | १-१ | ९ |
| छविः | ३-३८ | १९४ | जामाता | २-४२ | १२८ |
| छात्रः | ६-४२ | ३४३ | जाया | ४-३० | २४७ |
| छाया | ४-२९ | २४५ | जायुः | १-१ | ७ |
| छित्तरः | २-५० | १३७ | जाल्मः | ६-६१ | ३५२ |
| छिदिरः ● | १-२४ | ४० | जिगनुः ● | २-९ | ९३ |
| छिद्रम् | २-१५ | १०३ | जिनः | २-५१ | १३९ |
| जघनम् | २-३७ | १२२ | जिह्वा | २-२ | ८४ |
| जङ्घा | ४-२० | २३८ | जीरः | २-१६ | १०५ |
| जटा | ३-५८ | २११ | जीवातुः | १-२८ | ४७ |
| जटायुः | १-१५ | २९ | जूः | २-२३ | ११५ |
| जटिलः | ५-५३ | ३१३ | ज्योतिः | २-४५ | १३२ |
| जतु | १-८ | १९ | डिम्बः ● | ३-६२ | २१६ |
| जत्रु | ३-६६ | २१९ | तक्रम् | २-१४ | ९९ |
| जनिः | ४-६ | २२७ | तडित् | १-३५ | ५६ |
| जनुः | २-४६ | १३४ | तण्डुलः | १-४६ | ६९ |
| जन्तुः | १-२७ | ४५ | तद् | ५-४९ | ३१० |
| जन्युः | ४-१ | २२१ | तनयः | २-२५ | ११६ |
| जम्बूः | १-३४ | ५३ | तनुः | १-५ | १४ |
| जयन्तः | ३-१७ | १७६ | तनुः | २-४६ | १३४ |
| जरायुः | १-२ | १० | तनूः | १-३१ | ५० |
| जरूथम् | ३-९ | १६६ | तन्तुः | १-२६ | ४२ |
| जर्जरीका | २-६६ | १५७ | तन्त्रीः | ३-३४ | १९१ |
| जर्तः | २-६८ | १५९ | तपः | ४-५६ | २६९ |
| जहकः | ४-१३२३३-३४ | | तमकः ● | ४-१५ | २३६ |
| जहनुः | २-९ | ९२ | तमालः | ५-१९ | २९४ |
| जागृविः | ३-३७ | १९३ | तरङ्गः | ५-२२ | २९५ |
| जाटलिः | ६-२२ | ३३३ | तरणिः | २-४३ | १२९ |

| | | | | | |
|-----------------|------|-----|------------|------|--------|
| तरीः | ३-३४ | १९१ | त्रपु | १-६ | १६ |
| तरीषः | ३-४६ | २०० | त्रयः | ५-३२ | ३०१ |
| तरुः | १-५ | १३ | त्रिंशत् | ५-३९ | ३०५ |
| तरुणः | २-६० | १५० | त्वष्टा | २-४२ | १२६ |
| तर्कुः | १-९ | २१ | त्सरुः | १-५ | १४ |
| तर्दूः | १-३२ | ५१ | दण्डः | १-३७ | ६० |
| तर्म० | ४-२८ | २४४ | दद्भुः | १-३३ | ५२ |
| तर्षः | ४-५३ | २६५ | दन्तः | ४-२७ | २४३ |
| तल्पम् | २-५६ | १४४ | दभ्रम् | २-१५ | १०४ |
| तस्करः | ६-३ | ३२१ | दरत् | १-५० | ७२ |
| तक्षा | २-३ | ८५ | दरिः | ३-१४ | १७२ |
| तातः | २-६८ | १५९ | दर्दरीकम्० | २-६६ | १५७ |
| ताम्बूलम् | ६-९ | ३२६ | दर्दुरः | १-१८ | ३३ |
| ताम्रम् | २-१६ | १०४ | दर्भः | ३-२५ | १८६ |
| तालुः | १-३ | ११ | दर्विः | ३-३८ | १९४ |
| तिग्मम् | १-५७ | ८० | दलपः | ३-२१ | १८२ |
| तिन्तिडीका | २-६६ | १५६ | दल्मिः | ३-३१ | १८९ |
| तिमिरम् | १-२३ | ३७ | दश | ५-३ | २८३ |
| तिरः | ५-८ | २८७ | दस्युः | ४-१ | २२१-२२ |
| तिरीटम् | ४-२२ | २३९ | दक्षिणः | २-२१ | १११ |
| तीर्थम् | २-१० | ९५ | दाकः | २-५७ | १४७ |
| तीवरः | २-५० | १३८ | दानुः | २-७ | ९० |
| तीक्ष्णम् | ४-७० | २८० | दारुः | १-१ | ८ |
| तुहिनम् | २-२२ | ११२ | दारुणः | २-६० | १५१ |
| तृप्रः | २-१५ | १०४ | दिधिषुः | १-३४ | ५३ |
| तृष्णा | ५-२५ | २९७ | दिनम् | ६-३७ | ३४० |
| तोलिका (बं.सं.) | ३-२३ | १८४ | दिवसः | ३-११ | १६८ |
| त्यद् | ५-४९ | ३१० | दीदिविः | ३-३८ | १९५ |

| | | | | | |
|----------------|---------|-----|------------|------|-----|
| दीधितिः | ६-२६ | ३३५ | धनुः | १-३१ | ५१ |
| दीपिः | ३-१५ | १७५ | धन्वा | २-३ | ८५ |
| दीर्घः | ६-८ | ३२६ | धमकः | ४-१२ | २३३ |
| दुकूलम् • | ३-६० | २१४ | धमनिः | २-४३ | १३० |
| दुष्टु | १-१५ | २८ | धरणिः | २-४३ | १३० |
| दुहिता | २-४२ | १२८ | धर्मः | १-५३ | ७५ |
| दूतः | २-६७ | १५८ | धाकः | २-५७ | १४७ |
| दूरम् | ६-५ | ३२३ | धातुः | १-२६ | ४३ |
| दूषीका | ३-४५ | १९९ | धानाः | २-५३ | १४१ |
| दृतिः | ४-१० | २३० | धिषणा | २-३६ | १२२ |
| दृन्भूः • | १-३४ | ५५ | धिष्यम् | ६-६० | ३५२ |
| दृषत् | १-५१ | ७२ | धीरः | २-१५ | १०३ |
| देवका • | ४-१५ | २३६ | धीवरः | २-५० | १३८ |
| देवटः • | ३-५७ | २१० | धुस्तूरः • | ३-६० | २१४ |
| देवयुः | १-१५ | २९ | धूमः | १-५५ | ७८ |
| देवरः (बं.सं.) | (५-२३४) | २५० | धूसरः | २-६२ | १५२ |
| देवलः | १-४१ | ६४ | धृषुः | १-१० | २३ |
| देवा | २-३८ | १२३ | धृष्णिः | ३-५२ | २०५ |
| दोषा | २-५ | ८९ | धेनुः | २-९ | ९२ |
| दोः | २-३१ | ११९ | ध्रुवकः | ४-१२ | २३३ |
| द्यौः | ६-५३ | ३४८ | ध्वनिः | ३-१४ | १७२ |
| द्रविणम् | २-२१ | १११ | ध्वाङ्क्षः | ६-२५ | ३३५ |
| द्रुहिणः | ६-६ | ३२४ | ननान्दा | २-३९ | १२३ |
| द्वः | २-२३ | ११४ | नन्दन्तः | ३-१७ | १७७ |
| द्रोणः | २-५३ | १४१ | नप्ता | २-४२ | १२६ |
| द्वौ | ६-४४ | ३४४ | नलिनम् | ६-६ | ३२४ |
| धनुः | १-१५, | २९, | नव | ५-३७ | ३०४ |
| | २-४६ | १३४ | नवतिः | ५-३७ | ३०४ |

परिशिष्ट-(ग)

381

| | | | | | |
|------------------------|------|-----|-----------------|------|-----|
| नक्षत्रम् | ३-५ | १६३ | पतङ्गः | ५-२२ | २९५ |
| ना | २-४१ | १२४ | पताका | ३-४० | १९७ |
| नाकुः | १-८ | १९ | पतिः | ३-५२ | २०६ |
| नाभिः | ४-५ | २२६ | पत्तनम् | ३-२७ | १८७ |
| नाम | ६-४५ | ३४४ | पत्नी | ५-६१ | ३१६ |
| निकुरुम्बम्● | ३-६२ | २१६ | पत्रम् | ६-४ | ३२२ |
| नितम्बः● | ३-६२ | २१६ | पद्मम् | १-५३ | ७५ |
| निधानम् | २-३५ | १२२ | पन्थाः | ३-१४ | १७३ |
| निम्बः | ३-६२ | २१५ | पयः | ४-५६ | २६९ |
| निशीथः | २-१२ | ९७ | पयोधाः (बं.सं.) | ४-५६ | २७० |
| निषद्वरः | २-४९ | १३६ | परमेष्ठी | ४-५० | २६२ |
| नीपः | २-५६ | १४४ | परशुः | १-१६ | ३१ |
| नीवरः | २-५० | १३८ | परिवसथः(बं.सं.) | ३-८ | १६६ |
| नीविः | ४-८ | २२८ | परिव्राट् | २-२४ | ११५ |
| नृभूः (ति.अनु.त्रिभूः) | १-३४ | ५५ | परुः | २-४६ | १३४ |
| नेमः | १-५३ | ७५ | पर्जन्यः | ३-४ | १६२ |
| नेमिः | ३-३१ | १८९ | पर्णम् | २-३५ | १२१ |
| नेष्टा | २-४२ | १२६ | पर्पम् | २-५६ | १४५ |
| नौः | २-२९ | ११८ | पर्परीका | २-६६ | १५७ |
| न्यङ्कुः | १-१४ | २७ | पललम् | १-४१ | ६४ |
| पङ्कः | ५-३० | ३०० | पलालम् | ५-१९ | २९४ |
| पञ्च | ५-४३ | ३०७ | पलाशः | ५-२१ | २९५ |
| पञ्चालः | ५-१३ | २९० | पलितम् | २-६८ | १५९ |
| पटलम् | ६-१ | ३२० | पल्वलम् | १-४६ | ६८ |
| पटुः | १-६ | १५ | पशुः | १-१५ | २९ |
| पटोलः | ५-५४ | ३१३ | पांशुः | १-३ | ११ |
| पणवः | ५-२६ | २९८ | पाकः | २-५७ | १४६ |
| पण्डः● | १-३७ | ६१ | पाटलिः | ६-२२ | ३३३ |

| | | | | | |
|-------------|------|-----|----------------|------|-----|
| पाणिः | ४-६ | २२७ | पुरोधाः | ४-५६ | २७० |
| पातकम् | ६-३४ | ३३९ | पुलिनम् | ६-६ | ३२४ |
| पातालम् | १-४३ | ६५ | पुष्करम् | ४-३५ | २५१ |
| पात्रम् | ४-३९ | २५५ | पुष्कलम् | ४-३५ | २५१ |
| पाथः | २-१० | ९५ | पूपम्● | २-५६ | १४५ |
| पाथिः● | २-४५ | १३३ | पूषा | २-५ | ८७ |
| पादूः | १-३४ | ५४ | पृथ्वी● | १-१० | २३ |
| पापम् | २-५५ | १४३ | पृथिवी● | १-१० | २३ |
| पापिण्डः | १-३८ | ६२ | पृथु | १-९ | २२ |
| पायुः | १-१ | ७ | पृथुकः | २-५८ | १४८ |
| पार्णिः | ३-५१ | २०५ | पृथ्वी(बं.सं.) | १-१० | २२ |
| पिचण्डः | १-३८ | ६२ | पृषतः | ३-७ | १६५ |
| पिञ्जूरः | ३-६० | २१३ | पृष्ठम् | २-१३ | ९८ |
| पिता | २-४२ | १२७ | पेचकः● | ४-१५ | २३५ |
| पिनाकम् | ३-४० | १९६ | पेरुः | ३-६५ | २१८ |
| पियालः | १-४४ | ६७ | पोतः | ४-२७ | २४४ |
| पिशुनः | २-६१ | १५१ | पोता | २-४२ | १२७ |
| पिष्टपम् | ३-२१ | १८३ | पोतुः● | १-२८ | ४७ |
| पीतुः | १-२८ | ४७ | पोषयितुः | १-२९ | ४८ |
| पीयूषम् | ३-५६ | २०९ | प्रथमः | ५-५९ | ३१५ |
| पीवरः | २-५० | १३८ | प्रदिवा | २-३ | ८६ |
| पुण्डरीकम्● | २-६६ | १५७ | प्रशास्ता | २-४२ | १२७ |
| पुण्यम् | ३-४ | १६३ | प्रहिः | ४-९ | २२९ |
| पुत्रः | ४-४१ | २५७ | प्रियङ्गुः | ५-१२ | २८९ |
| पुमान् | ४-४२ | २५७ | प्रोथः | २-१३ | ९८ |
| पुरीषम् | ३-४७ | २०१ | प्लीहा | २-५ | ८८ |
| पुरुषः | ३-५४ | २०७ | फण्डः● | १-३७ | ६१ |
| पुरुः | १-१० | २४ | फ(प)नसः | ३-११ | १६८ |

परिशिष्ट-(ग)

383

| | | | | | |
|------------------------|------|-----|----------------------|---------|--------|
| फर्फरीकम् ^७ | २-६६ | १५७ | भावी | ४-४९ | २६१ |
| फलकः | ४-१५ | २३५ | भासन्तः | ३-१७ | १७७ |
| फल्गु | १-९ | २१ | भित्तिका | ३-२३ | १८४ |
| फाल्गुनः | २-६१ | १५२ | भिदिरम् ^७ | १-२४ | ४० |
| बधिरः | १-२३ | ३८ | भिदुः | १-१० | २३ |
| बन्धुः | १-६ | १७ | भीमः | १-५८ | ८१ |
| बर्वरः | २-४८ | १३६ | भीष्मः | १-५८ | ८१ |
| बर्हिः | २-४५ | १३३ | भुजिष्यः | ४-३१ | २४७-४८ |
| बलाका | ३-४० | १९६ | भुज्युः | २-३४ | १२० |
| बलिनः | ६-६ | ३२४ | भुवनम् | ६-१४ | ३२८ |
| बलिः | ३-१४ | १७२ | भुविः ^७ | २-४५ | १३३ |
| बहु | १-६ | १७ | भूकम् | २-५८ | १४९ |
| बाहुः | १-३ | १० | भूमिः | ३-३२ | १९० |
| बिम्बम् | ३-६२ | २१५ | भूरि | ३-५३ | २०७ |
| ब्रध्नः | २-५२ | १४० | भृगुः | १-१३ | २६ |
| ब्रह्मा | ५-६ | २८५ | भृङ्गः | १-४८ | ७० |
| भण्डः(बं.सं.) | १-३७ | ६१ | भृङ्गारः | ३-१९ | १८० |
| भद्रम् | २-१७ | १०७ | भृशम् | ४-५१ | २६२ |
| भयानकः | २-६३ | १५३ | भेकः | २-५७ | १४६ |
| भरतः | ३-६ | १६४ | भेरी | २-१७ | १०७ |
| भरुः | १-५ | १३ | भ्रमरः (बं.सं.) | (५-२३४) | २५० |
| भर्गः | ५-६० | ३१६ | भ्राता | २-४२ | १२८ |
| भल्लुकः | १-२५ | ४१ | भ्रूः | २-३० | ११९ |
| भस्त्री | ४-३९ | २५४ | मकुटः | ६-६४ | ३५४ |
| भस्म | ४-२८ | २४४ | मकुरः | १-१८ | ३३ |
| भातुः | १-२८ | ४७ | मगाधः | ६-५२ | ३४८ |
| भानुः | २-७ | ९० | मघवा | ५-४ | २८४ |
| भामः | १-५३ | ७६ | मघा | ६-६६ | ३५५ |

| | | | | | |
|-----------|------|-----|------------|------|-----|
| मङ्गलम् | ६-१९ | ३३२ | मयुः | १-१५ | २९ |
| मज्जा | २-५ | ८७ | मयूखः | ६-४७ | ३४५ |
| मञ्जूषा | ३-५६ | २०९ | मयूरः | ६-४७ | ३४५ |
| मण्डम् | १-३७ | ६० | मरकः | ४-१५ | २३५ |
| मण्डयन्तः | ३-१६ | १७६ | मरीचिः | ३-४३ | १९८ |
| मण्डलम् | ६-१९ | ३३१ | मरुः | १-५ | १३ |
| मण्डूकः | १-२५ | ४० | मरुत् | १-३० | ४९ |
| मत्सरः | ४-३३ | २४९ | मर्कटः | ३-५८ | २११ |
| मत्स्यः | ४-३२ | २४८ | मर्जुः ● | १-३४ | ५५ |
| मथुरा | १-१७ | ३२ | मर्तः | ४-२७ | २४३ |
| मदयितुः | १-२९ | ४९ | मर्त्यः | ६-१२ | ३२७ |
| मदारः | ३-१९ | १७९ | मर्मरीकः ● | २-६६ | १५७ |
| मदिरा | १-२३ | ३७ | मलयः | ६-१७ | ३३० |
| मदगुः | १-५ | १४ | मलिनः | ६-६ | ३२४ |
| मद्रः | २-१४ | १०१ | मल्लकः ● | ४-१५ | २३६ |
| मधुः | १-८ | १९ | मशकः ● | ४-१५ | २३६ |
| मनः | ४-५६ | २६९ | मसूरः | ३-६० | २१३ |
| मनुष्यः | ६-१० | ३२६ | मस्तु | १-२६ | ४२ |
| मनुः | १-६ | १६ | महिनम् | २-२२ | ११३ |
| मन्तुः | १-२७ | ४५ | महिरः ● | १-२४ | ४० |
| मन्थाः | ३-१४ | १७३ | महिषः | १-२० | ३५ |
| मन्दः | ३-६३ | २१७ | मातरिश्वा | २-५ | ८८ |
| मन्दारः | ३-१९ | १८० | माता | २-४२ | १२८ |
| मन्दिरम् | १-२३ | ३७ | मात्रा | ४-३९ | २५५ |
| मन्दुरा | १-१७ | ३२ | मानुषः | ६-११ | ३२७ |
| मन्द्रः | २-१४ | १०१ | माया | ४-२९ | २४५ |
| मन्युः | ४-१ | २२१ | मायुः | १-१ | ७ |
| मयटा ● | ३-५७ | २१० | मार्जारः | ३-१९ | १८० |

| | | | | | |
|------------|-------|-----|----------|------|-----|
| माला | १-४६ | ६९ | मृणालम् | ५-१९ | २९४ |
| मासः | ५-६४ | ३१८ | मृत्युः | २-३४ | १२० |
| मांसम् | ४-५३, | २६५ | मृदङ्गः | ५-२३ | २९६ |
| मांसम् | ५-६५ | ३१९ | मृदु | १-१० | २४ |
| मितद्दुः | १-१५ | २८ | मृद्वीका | २-६६ | १५७ |
| मित्त्रम् | ४-४० | २५६ | मेचकः ● | ४-१५ | २३६ |
| मित्रयुः ● | १-१५ | ३० | मेनका ● | ४-१५ | २३६ |
| मिथुनम् | ५-९ | २८८ | मेरुः | ३-६५ | २१८ |
| मीवरः ● | २-५० | १३९ | मोघः | ६-६७ | ३५५ |
| मुखम् | ६-६५ | ३५४ | यजुः | ५-४५ | ३०८ |
| मुग्धा | ६-३८ | ३४१ | यद् | ५-४९ | ३१० |
| मुचिरः ● | १-२४ | ४० | यमुना | २-६० | १५१ |
| मुण्डः | १-३७ | ६० | यवसः | ३-१० | १६७ |
| मुदिरः ● | १-२४ | ४० | यवागुः | ३-६७ | २२० |
| मुद्गः | १-४९ | ७१ | यशः | ४-६० | २७३ |
| मुद्रा | २-१५ | १०३ | यस्कः | ५-३० | ३०० |
| मुनिः | ४-३ | २२३ | याता | २-४० | १२४ |
| मुशलम् | ६-१ | ३२० | यातुः ● | १-२८ | ४७ |
| मुहिरः ● | १-२४ | ४० | यामः | १-५३ | ७६ |
| मुहुः | ५-४६ | ३०८ | युग्मम् | १-५७ | ८० |
| मुहूर्तम् | ५-४६ | ३०८ | युष्मम् | १-५५ | ७७ |
| मूकः | २-५८ | १४८ | युवा | २-३ | ८६ |
| मूर्खः | ४-१७ | २३६ | युष्मत् | १-५२ | ७३ |
| मूर्धा | २-५ | ८८ | यूका | २-५८ | १४८ |
| मूर्धा | ५-३६ | ३०३ | यूथम् | २-१३ | ९८ |
| मूषिकः | २-१९ | १०९ | यूपः | २-५६ | १४४ |
| मृगयुः | १-१५ | ३० | यूषा | २-५ | ८९ |
| मृडीकः ● | २-६६ | १५७ | योनिः | ३-५० | २०४ |

| | | | | | |
|----------|------|-----|------------------|------|-----|
| योषित् | १-३५ | ५७ | रुधिरम् | १-२३ | ३७ |
| रजः | ४-५९ | २७३ | रुरुः | ५-२४ | २९६ |
| रजतम् | ३-७ | १६५ | रूपम् | २-५६ | १४५ |
| रज्जुः | १-९ | २० | रेणुः | २-७ | ९० |
| रण्डा | १-३७ | ६० | रेतः | ४-६३ | २७५ |
| रतूः | १-३४ | ५५ | रेफः | ६-२३ | ३३४ |
| रथः | २-१० | ९४ | रोचिः | २-४४ | १३१ |
| रभसः | ३-१० | १६७ | रोहितः | ४-२६ | २४१ |
| रविः | ३-१४ | १७२ | रोहित् | १-३५ | ५७ |
| रश्मिः | ३-३२ | १९० | रौहिषम् | १-२१ | ३५ |
| रहः | ४-५६ | २६९ | लक्ष्मीः | ३-३५ | १९२ |
| राः | २-२७ | ११७ | लघुः | १-९ | २२ |
| राकः | २-५७ | १४७ | लङ्घकः | ४-१२ | २३३ |
| राका | २-५७ | १४७ | लट्वा | २-१ | ८२ |
| राजा | २-३ | ८५ | लत्तिका | ३-२३ | १८४ |
| राजिः | ४-५ | २२५ | लब्धिका (बं.सं.) | ३-२३ | १८४ |
| रात्रिः | ३-४४ | १९९ | ललाटम् | ५-७ | २८७ |
| राशिः | ४-६ | २२७ | लशुनम् | ५-९ | २८८ |
| रासभः | ३-१२ | १७० | लाङ्गूलम् | ३-६० | २१३ |
| रास्ना | २-५४ | १४१ | लिक्षा | ६-२४ | ३३४ |
| राहुः | १-३ | १० | लेखकः | ४-१२ | २३३ |
| रिक्थम् | २-१० | ९५ | लेमः (बं.सं.) | १-५३ | ७६ |
| रिपुः | १-९ | २१ | लोतः | ४-२७ | २४३ |
| रुक्मम् | १-५७ | ८० | लोत्रम् | ३-५९ | २१२ |
| रुचिरम् | १-२३ | ३८ | लोष्टः | २-६८ | १६० |
| रुचिष्यः | ४-३१ | २४७ | लोहितम् | ४-२६ | २४२ |
| रुचिः | ३-१५ | १७४ | वंशः | ४-५१ | २६३ |
| रुदः | २-१४ | १०० | वक्रम् | २-१४ | १०० |

| | | | | | |
|-----------------|-------|-----|-----------|------|-----|
| वगुः | २-९ | ९३ | वर्षम् | ४-५३ | २६५ |
| वज्रम् | २-१७ | १०६ | वलभी | ३-१२ | १७० |
| वटकः | ६-५० | ३४७ | वलयम् | ६-१७ | ३३० |
| वटुः | ६-५० | ३४७ | वलीकम्● | २-६६ | १५७ |
| वठरः (बं.सं.) | ५-२३४ | २५० | वल्गु | १-९ | २१ |
| वण्डः | १-३७ | ५९ | वल्मीकम्● | २-६६ | १५७ |
| वत्सरः | ४-३३ | २४९ | वल्लभः | ३-१२ | १७० |
| वत्सः | ४-५३ | २६५ | वल्लिः | ३-१४ | १७२ |
| वदान्यः | ५-१० | २८८ | वल्लूरम्● | ३-६० | २१४ |
| वधित्रम्● | ३-५९ | २१२ | वसतिः | ४-११ | २३१ |
| वधूः | १-३१ | ५१ | वसन्तः | ३-१७ | १७७ |
| वन्ध्या | ४-३० | २४७ | वसिष्ठः | ६-६५ | ३४९ |
| वपुः | २-४६ | १३४ | वसु | १-६ | १६ |
| वप्रम् | ६-४ | ३२२ | वस्तिः | ४-१० | २३० |
| वयः | ४-५६ | २७० | वस्तु | १-२७ | ४५ |
| वयोधाः (बं.सं.) | ४-५६ | २७० | वस्नम् | २-५३ | १४१ |
| वरटः● | ३-५७ | २१० | वहतिः | ४-११ | २३० |
| वरण्डः | १-३८ | ६१ | वहतुः | १-२८ | ४७ |
| वरुणः | २-६० | १५० | वहन्तः | ३-१७ | १७७ |
| वरुत्रम्● | ३-५९ | २१२ | वहलम् | १-४० | ६३ |
| वरूथम् | ३-९ | १६६ | वहित्रम् | ३-५९ | २१२ |
| वरेण्यः | ३-१ | १६१ | वहिः | ३-५० | २०४ |
| वर्णः | २-३५ | १२१ | वक्षः | ४-६२ | २७४ |
| वर्णुः | २-७ | ९१ | वाक् | २-२३ | ११४ |
| वतीनिः | २-४३ | १३० | वाग्मी | ५-११ | २८९ |
| वर्त्तिका | ३-२२ | १८३ | वाचाटः | ६-२८ | ३३६ |
| वर्त्त | ४-२८ | २४४ | वाचालः | ६-२८ | ३३६ |
| वर्वरीकः● | २-६६ | १५७ | वातप्रमीः | ३-३६ | १९२ |

| | | | | | |
|----------------|-----------|-----|-------------------|------|-----|
| वातः | ४-२७ | २४३ | वृश्चिकः | २-१८ | १०८ |
| वापी | ४-५ | २२५ | वृषभः | ३-१३ | १७१ |
| वायसः (बं.सं.) | (२-१२५) | १५४ | वृषलः | १-४१ | ६४ |
| वायुः | १-१ | ७ | वृषा | २-३ | ८५ |
| वारि | ४-५ | २२५ | वृष्णिः | ३-५१ | २०५ |
| वाष्पः | २-५६ | १४३ | वृक्षः | ४-४४ | २५८ |
| वासरः | २-६२ | १५३ | वेणिः | ३-५१ | २०५ |
| वासरः | ४-३३ | २४९ | वेणुः | २-९ | ९३ |
| वासिः | ४-५ | २२५ | वेतना | ३-२७ | १८६ |
| वासुरा | १-१७ | ३२ | वेतसः | ३-११ | १६८ |
| वास्तु | १-२७ | ४५ | वेत्रम् | ४-३९ | २५५ |
| वाहसः | ३-११ | १६८ | वेधाः | ४-५६ | २६८ |
| विटपः | ३-२१ | १८२ | वेशन्तः | ३-१७ | १७६ |
| विधुः | ५-२ | २८३ | वेष्पः ● | २-५६ | १४५ |
| विधुरः | १-१८ | ३३ | व्यलीकम् ● | २-६६ | १५७ |
| विपिनम् | २-२२ | ११२ | व्रीहिः | ५-१४ | २९० |
| विप्रः | २-१७ | १०६ | शकटः | ३-५७ | २१० |
| विशिपम् ● | ३-२१ | १८३ | शकलम् | १-४० | ६३ |
| विश्वम् | २-१ | ४३ | शकुनः (बं.सं.) | २-५९ | १४९ |
| विषाणम् | ५-१६ | २९२ | शकुनिः | २-५९ | १४९ |
| विष्णुः | २-८ | ९१ | शकुन्तः | २-५९ | १४९ |
| विंशतिः | ५-३९ | ३०५ | शकुन्तिः (बं.सं.) | २-५९ | १४९ |
| विः | ४-७२२७-२८ | | शक्रः | २-१४ | १०० |
| वीणा | २-५४ | १४२ | शङ्कुः | १-१५ | २८ |
| वृकः | २-५८ | १४८ | शङ्खः | ४-१६ | २३६ |
| वृजिनम् | २-२२ | ११२ | शण्डः | ४-२३ | २३९ |
| वृत्रः | २-१५ | १०३ | शण्डः | १-३६ | ५८ |
| वृन्दः | ३-६४ | २१७ | शतद्रुः | १-१५ | २८ |

| | | | | | |
|------------|------|--------|-----------|------|-----|
| शतम् | ५-४२ | ३०६ | शिखा | ४-१८ | २३७ |
| शत्रुः | ३-६६ | २१९ | शिग्रुः | ३-६६ | २१९ |
| शब्दः | ३-६३ | २१६ | शिङ्घाणकः | २-६४ | १५३ |
| शब्दप्राट् | २-२३ | ११४ | शिथिलः | १-४६ | ६९ |
| शमलम् | १-४० | ६३ | शिविरम् | १-२४ | ३९ |
| शम्बः ● | ३-६२ | २१६ | शिरः | ४-५९ | २७३ |
| शम्बलम् | ५-६२ | ३१७ | शिरीषः | ३-४७ | २०१ |
| शयानकः | २-६३ | ३५३ | शिल्पम् ● | २-५६ | १४५ |
| शयुः | १-५ | १४ | शिशिरः | १-२४ | ३९ |
| शरत् | १-५० | ७१ | शिशुः | १-९ | २१ |
| शरभः | ३-१२ | १६९ | शिष्यः ● | २-५६ | १४५ |
| शरावः | ६-१८ | ३३०-३१ | शीघ्रः | २-३३ | १२० |
| शरीरम् | ३-४८ | २०२ | शुक्रः | ६-४ | ३२२ |
| शर्करा | ४-३४ | २५१ | शुक्लः | १-४६ | ६८ |
| शर्म ● | ४-२८ | २४४ | शुभ्रम् | २-१५ | १०४ |
| शर्वः | २-२ | ८३ | शुल्बम् | ३-६२ | २१५ |
| शर्वरः | २-४८ | १३६ | शुषिरम् | १-२३ | ३८ |
| शर्वरी | २-४८ | १३६ | शूद्रः | २-१७ | १०६ |
| शर्शरीकः ● | २-६६ | १५७ | शृङ्गम् | १-४८ | ७० |
| शलभः | ३-१२ | १६९ | शृङ्गारः | ३-१९ | १८० |
| शलाका | ३-४० | १९७ | शृङ्गुः ● | १-३४ | ५५ |
| शल्लः | २-५७ | १४८ | शेफः | ४-६४ | २७६ |
| शष्पम् | २-५६ | १४४ | शेवालम् | १-४५ | ६७ |
| शारिः | ४-५ | २२४ | शेवलम् | १-४५ | ६७ |
| शार्दूलः ● | ३-६० | २१४ | शोचिः | २-४४ | १३१ |
| शालुकम् | १-२५ | ४० | शौटीरः | ३-४८ | २०२ |
| शालूरः ● | ३-६० | २१४ | श्मश्रु | ३-६६ | २१९ |
| शिखण्डः | १-३८ | ६२ | श्यामः | १-५५ | ७८ |

| | | | | | |
|------------|------|-----|---------------|------|-----|
| श्यामाकः | ३-४० | १९७ | सर्वम् | ३-६१ | २१४ |
| श्वेतः | ४-२६ | २४२ | सर्षपः | ३-२० | १८१ |
| श्वेनः | २-२१ | ११० | सलिलम् | ६-३९ | ३४२ |
| श्रण्डः | १-३७ | ६० | सस्यम् | ४-२९ | २४६ |
| श्रीः | २-२३ | ११४ | सहस्रम् | ५-४१ | ३०६ |
| श्रुः | २-२३ | ११४ | सहुरिः | ५-५५ | ३१३ |
| श्रेणिः | ३-५० | २०४ | संयद्वरः ॐ | २-५० | १३९ |
| श्रोणिः | ३-५० | २०३ | संवत्सरः | ४-३३ | २४९ |
| श्लक्ष्णम् | ४-६९ | २७९ | संवसथः(बंसंः) | ३-८ | १६६ |
| श्लेष्मा ॐ | ४-२८ | २४४ | साधन्तः | ३-१७ | १७७ |
| शवा | २-५ | ८८ | साधुः | १-१ | ८ |
| शिवत्रम् | २-१५ | १०३ | सानुः | १-१ | ८ |
| षट् | ५-५ | २८४ | साम | ६-४५ | ३४४ |
| षण्डः | १-३७ | ५९ | साम्बः ॐ | ३-६२ | २१६ |
| सक्तुः | १-२६ | ४२ | सारङ्गः | १-४७ | ७० |
| सक्थि | ३-२८ | १८७ | सारथिः | ३-२९ | १८८ |
| सखि | ४-९ | २२९ | सास्ना | २-५४ | १४२ |
| सधिः ॐ | २-४५ | १३३ | सिक्थम् | २-१० | ९५ |
| सन्ध्या | ४-३० | २४६ | सितः | २-६७ | १५८ |
| सप्ततिः | ५-३८ | ३०५ | सिन्धुः | १-७ | १८ |
| सप्तिः | ५-३८ | ३०४ | सिंहः(सिंहः) | ५-२८ | २९९ |
| सरकः | ४-१५ | २३५ | सीता | ५-२९ | ३०० |
| सरटः | ३-५७ | २१० | सीमा | १-५६ | ७९ |
| सरणिः | २-४३ | १२९ | सीमिकः | २-१९ | १०९ |
| सरयुः | २-३२ | ११९ | सुत्रामा ॐ | ४-२८ | २४४ |
| सरित् | १-३५ | ५६ | सुप्रतीकः ॐ | २-६६ | १५७ |
| सर्जुः | १-३१ | ५१ | सुमेरुः | ३-६५ | २१८ |
| सर्पिः | २-४४ | १३२ | सुरतम् | २-६८ | १५९ |

परिशिष्ट-(ग)

391

| | | | | | |
|---------------|------------|-----|--------------|------|-----|
| सुरा | २-१५ | १०२ | स्थिरः | १-२४ | ३९ |
| सुष्ठु | १-१५ | २८ | स्थूणा | २-५४ | १४२ |
| सूचकः (बं.स.) | २-१२६ | १८५ | स्नेहा | २-५ | ८८ |
| सुनुः | २-८ | ९१ | स्पृहयाय्यम् | २-६९ | १६० |
| सूपः | २-५६ | १४४ | स्फारम् | २-१४ | ९९ |
| सूरः | २-१५ | १०२ | स्फिरः ॐ | १-२४ | ४० |
| सूरिः | ३-५३ | २०७ | स्रक् | ४-४५ | २५९ |
| सूर्पः | ५-३३ | ३०२ | स्रोतः | ४-६३ | २७५ |
| सूक्ष्मम् | ४-२४ | २४० | स्वर्गः | ५-६० | ३१५ |
| सुकः | २-५८ | १४८ | स्वशुरः | १-१९ | ३४ |
| सृगालः | ५-२० | २९४ | स्वसा | २-४२ | १२५ |
| सृणिः | ३-५१ | २०५ | स्वादुः | १-१ | ८ |
| सृपाटः | ५-७ | २८६ | स्वामी | ६-६८ | ३५६ |
| सेतुः | १-२६ | ४२ | हंसः | ४-५३ | २६५ |
| सेना | ६-३६ | ३४० | हलुः ॐ | २-९ | ९३ |
| सेमः (बं.सं.) | १-५३ | ७६ | हनुः | १-६ | १६ |
| सोमः | १-५३ | ७४ | हनुषः | ३-५५ | २०८ |
| स्तनयितुः | १-२९ | ४८ | हरिः | ३-१४ | १७३ |
| स्तबकः ॐ | ४-१५ | २३६ | हरिणः | २-२१ | १११ |
| स्तम्बः ॐ | ३-६२ | २१६ | हरितः | ४-२६ | २४२ |
| स्तरीः | ३-३४ | १९१ | हरित् | १-३५ | ५६ |
| स्तूपः ॐ | २-५६ | १४५ | हरिद्रुः | १-१५ | २८ |
| स्तोमः | १-५३ | ७४ | हरीतकी | ६-३२ | ३३९ |
| स्त्री | ४-३६ | २५२ | हरेणुः | २-६ | ८९ |
| स्थविः | ३-३८ | १९५ | हर्म्यम् | ५-६७ | ३१९ |
| स्थाणुः | २-९ | ९२ | हर्षयितुः | १-२९ | ४८ |
| स्थाम ॐ | ४-२८ | २४४ | हविः | २-४४ | १३२ |
| स्थायी | ४-४९२६१-६२ | | हस्तः | ४-२७ | २४३ |

| | | | | | |
|------------|------|-----|------------------|------|-----|
| हिडिम्बः ● | ३-६२ | २१६ | हीकुः | ४-२ | २२२ |
| हिमम् | १-५५ | ७८ | क्षत्ता | २/४२ | १२७ |
| हिरण्यम् | ३-३ | १६२ | क्षवकः ● | ४/१५ | २३५ |
| हृदयम् | २-२६ | ११६ | क्षारकः ● | ४/१५ | २३६ |
| हृषीकम् ● | २-६६ | १५७ | क्षिपकः | ४/१२ | २३२ |
| हेतुः | १-२७ | ४५ | क्षिप्रः | २/१४ | १०० |
| हेम ● | ४-२८ | २४४ | क्षीरम् | ३/४९ | २०२ |
| हेमन्तः | ३-१७ | १७७ | क्षुद्रः | २/१४ | १०० |
| होता | २-४२ | १२७ | क्षेमः | १/५३ | ७५ |
| होमः | १-५३ | ७४ | क्षौमम् (बं.सं.) | १/५३ | ७६ |
| ह्रस्वः | ५-५७ | ३१४ | | | |

परिशिष्ट-(घ)

ग्रन्थ-सूची

१. अनेकार्थसङ्ग्रहकोशः, श्रीहेमचन्द्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस सम्बत् १९८५
२. अमरकोशः, अमरसिंह, ('मणिप्रभा' हिन्दी-टीका सहित), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, सम्बत् १९८४ ई०
३. अष्टाध्यायी, पाणिनि, सम्पादक-श्रीनारायण मिश्र (हिन्दी अनुवाद)
४. उणादिकोशः, दयानन्द सरस्वतीकृत व्याख्या संपादक-यु.मी., रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरयाणा, १९७४ ई०
५. उणादिवृत्तिः, उज्ज्वलदत्त, जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य द्वारा संपादित, कलकत्ता १८७३ ई०
६. उणादिवृत्तिः, श्वेतवनवासीकृत (ति.रा.चिन्तामणि-सम्पादित, मद्रास विश्वविद्यालय, १९३३ ई०)
७. उणादिमणिदीपिका, रामभद्रदीक्षितकृत (के.कुञ्जनीराज द्वारा सम्पादित), मद्रास विश्वविद्यालय, १९७२ ई०
८. औणादिकपदार्णव, पेरुसूरि (ति.रा.चिन्तामणि-सम्पादित), मद्रास विश्वविद्यालय, १९३९ ई०
९. कलापव्याकरणम्, डॉ० जानकीप्रसाद द्विवेदी, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९८८ ई०
१०. कलापोणादिवृत्तिः (तिब्बती-अनुवाद), अनुवादक-दोर्जे ग्यलछन् (वज्रध्वज), देगे-तन्पुर, ग्र.सं. ४४२६

११. कलापोणादिसूत्राणि (तिब्बती-अनुवाद), नम्-खा-सङ्पो (आकाशभद्र), देगे-तन्युर, ग्र.सं. ४४२५
१२. कलापोणादिसूत्राणि (बङ्ग-संस्करण), गुरुनाथ विद्यानिधि भट्टाचार्य-संपादित, निवेदिता मार्ग, कलकत्ता, १८५५ शकाब्द
१३. कातन्त्रधातुपाठः (कलापव्याकरणम् ग्रन्थ के अन्तर्गत सङ्गृहीत), डॉ० जानकीप्रसाद द्विवेदी, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९८८ ई०
१४. कातन्त्रम् (दुर्गसिंहकृत वृत्ति सहित), शर्ववर्मा, एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल, कलकत्ता, १८७४ ई०
१५. कातन्त्ररूपमाला, शर्ववर्मा भावमिश्र कृत टीका सहित, दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर, मेरठ, १९८७ ई०
१६. कातन्त्रव्याकरणविमर्शः, डॉ० जानकीप्रसाद द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७५ ई०
१७. काशकृत्स्नधातुव्याख्यानम् , (चन्नवीरकृत कन्नड टीका का रूपान्तर), सम्पादक-यु.मी., प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अलवर गेट, अजमेर, १९६७ ई०
१७. चान्द्रव्याकरणम् (उणादिसूत्र), चन्द्रगोमी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६७ ई०
१८. दशपाद्युणादिवृत्तिः, सम्पादक-यु.मी., राजकीय संस्कृत कालेज, बनारस, १९४३ ई०
१९. नाममाला (सभाष्य), महाकवि धनञ्जय कृत, अमरकीर्तिकृत-भाष्य सहित), भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५० ई०
२०. प्रक्रियासर्वस्वम् (उणादि खण्ड), नारायण भट्ट, (सम्पादक-ति.रा. चिन्तामणि), मद्रास विश्वविद्यालय, १९३३ ई०



२१. महाभाष्यम्, पतञ्जलि (सम्पादक-बालशास्त्री), वाणीविलास प्रेस, वाराणसी, १९८७ ई०
२२. माधवीयाधातुवृत्तिः, सायणाचार्य, प्राच्य भारती प्रकाशन, वाराणसी, १९६४ ई०
२३. मुकुन्दकोशः (लिङ्गानुशासनवर्ग), मुकुन्द शर्मा, मुकुन्दाश्रम, अमोल, गढवाल, (उ०प्र०), १९६२ ई०
२४. मेदिनीकोशः मेदिनीकर, विद्या विलास प्रेस, बनारस, १९४० ई०
२५. रघुनाथचक्रवर्तिकृतटीका (अमरकोश), रघुनाथ चक्रवर्ती, गोयावागान ट्रस्ट, सं.२, क्राउन यन्त्र, कलकत्ता, १८८६ ई०
२६. रघुवंशमहाकाव्यम्, कालिदास, कालिदास ग्रन्थावली, सम्पादक-डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७६ ई०
२७. लक्ष्मीनिवासकोशः (उणादिकोश), शिवराम त्रिपाठी (सम्पादक-पण्डित रामअवध पाण्डेय), विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी, १९८५ ई०
२८. वाक्यपदीयम्, भर्तृहरि (रामगोविन्द शुक्ल कृत हिन्दी व्याख्या सहित) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि०सं० २०३६
२९. विश्वप्रकाशकोशः, श्री महेश्वर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९११ ई०
३०. वैजयन्तीकोशः, यादवप्रकाशाचार्य (सम्पादक-हरगोविन्द शास्त्री), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९६१ ई०
३१. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (बालमनोरमा, तत्त्वबोधिनी टीका सहित चतुर्थ भाग), भट्टोजिदीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

३२. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (गुटकाकार), भट्टोजिदीक्षित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९५८ ई०
३३. व्याकरणशास्त्र का इतिहास (भाग-२), युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरयाणा, वि.सं. २०३०
३४. संस्कृत के बौद्ध वैयाकरण, डॉ० जानकीप्रसाद द्विवेदी, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी
३५. संस्कृतधातुकोशः, सम्पादक-यु.मी., श्री द्राक्षादेवी प्यारेलाल परोपकारी ट्रस्ट, सी-४ सी०सी० कालोनी, दिल्ली, वि०सं० २०३८
३६. संस्कृतशास्त्रों का इतिहास, (द्वितीय खण्ड), पं० बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, १९७३ ई०
३७. सरस्वतीकण्ठाभरणम् (उणादिखण्ड) भोज-प्रणीत (दण्डनाथ नारायण कृत हृदयहारिणी टीका), मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास, १९३४ ई०
३८. सिद्धान्तचन्द्रिका उत्तरार्द्ध, (सारस्वत.व्या.), श्री रामाश्रम आचार्य, सदानन्दकृत सुबोधिनी व्याख्या सहित, बाबू बैजनाथप्रसाद बुक्सेलर, राजा दरवाजा, बनारस सिटी, संवत् १९८८

